CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

आचार्य श्री वीरनन्दि सैद्धान्तिकचक्रवर्तिविरचित

आचारसार

हिन्दी अनुवादिका

आर्यिका रत्न १०५ श्री सुपार्श्वमतिमाताजी

संयोजन

प्रतिष्ठाचार्य डॉ० आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री कोलकाता

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं
आचार्य वर्द्धमान सागर स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव की अनुपम भेंट २०१९-२०

आचार्य श्री वीरनन्दि सैद्धान्तिकचक्रवर्तिविरचित

आचारसार

हिन्दी अनुवादिका

विद्यावारिधि-आर्यिका रत्न पूज्यनीया

१०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी

संशोधक

धर्मालंकार पं. हेमचन्द्र जैन शास्त्री एम.ए.

न्याय काव्यतीर्थ, प्रभाकर-अजमेर

आचार्य श्री शान्तिसागर फाउण्डेशन

ॐ प्रथमं चरणं नमः | ॐ करणं द्रव्यं

कोलकाता

संयोजन

प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री, कोलकाता

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ	-	**आचारसार**
ग्रन्थकार	-	**आचार्य श्री वीरनन्दि सैद्धान्तिकचक्रवर्तिविरचित**
सन्दर्भ	-	चा. च. आ. श्री शान्तिसागर जी मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं आचार्य वर्द्धमान सागरजी (स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव-२०१९-२०)
मार्गदर्शन एवं सम्प्रेरणा	-	जगद्गुरु कर्मयोगी स्वस्तिश्रीचारुकीर्ति भट्टारक स्वामी श्री क्षेत्रश्रवणबेलगोला
ग्रन्थमाला सम्पादक	-	डॉ. श्रेयांसकुमार जैन-वड़ौत डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री-कोलकाता
संस्करण	-	प्रथम २०१९-२०
प्रतियाँ	-	१०००
मूल्य	-	३००/-
संयोजन	-	प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री, कोलकाता
पुण्यार्जक	-	**पवन कुमार-पाना देवी सेठी (चौरंगी, कोलकाता)** **पुत्र-पुत्रवधू**-विनय-शर्मिला, विकास-रीमा, विवेक-संध्या, विशाल-अनिता, **पौत्र**-रोहिल, शाहिल, प्रियांक, रीसेल, जय आदित्य, कवीस, द्युदीत **पौत्री**-जागृति, पलक।
प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान	-	आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन १/२ दर्पनारायण टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००६ **9831008868,9903080975** ई-मेल-**shantisagar.foundation@gmal.com**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्णतीर्थ चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज मुनि दीक्षा शताब्दी

वर्ष – 2019-20

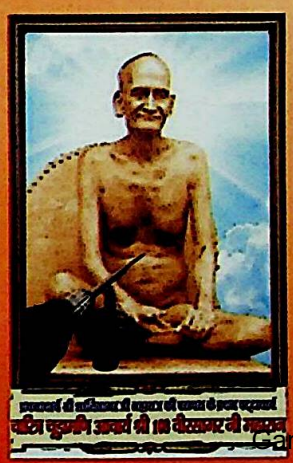

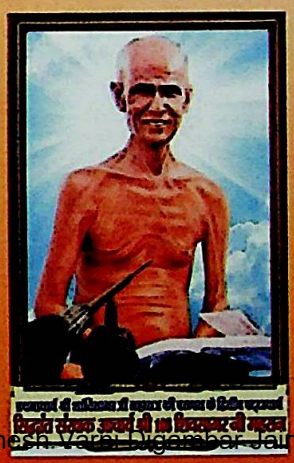

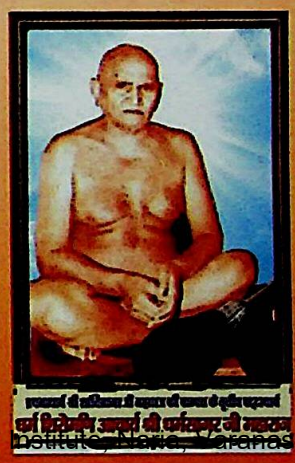

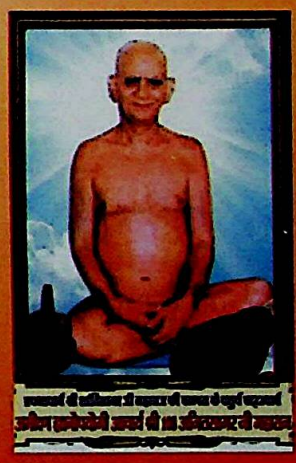

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वात्सल्यवारिधि, जिनधर्म प्रभावक, राष्ट्रगौरव आचार्य १०८ श्री वर्द्धमान सागर जी महाराज का जीवन परिचय -

जन्म नाम	-	यशवंत पंचोलिया
जन्म तिथि	-	१८ सितम्बर १९५० ई. (भादवा सुदी ७) उत्तम आर्जवधर्म
जन्म स्थान	-	सनावद (म.प्र.)
पिता का नाम	-	श्री कमलचन्द्र जी पंचोलिया
माता का नाम	-	श्रीमती मनोरमा देवी
लौकिक शिक्षा	-	बी.ए. प्रथम वर्ष
ब्रह्मचर्य व्रत	-	आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से
शिक्षा प्रदाता	-	आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागर जी महाराज
मुनि दीक्षा	-	२४ फरवरी १९६९ विक्रम-संवत् २०२४, सोमवार, फा.शु. ८, श्री महावीरजी
दीक्षा गुरु	-	आचार्य शिरोमणि १०८ धर्मसागर जी महाराज
आचार्य पद प्रदाता	-	आचार्यरत्न १०८ श्री अजितसागर जी महाराज
आचार्य पद	-	२४ जून १९९०, पारसोला (राज.) आषाढ़ शुक्ल २ पट्टाचार्य : २०वीं सदी के प्रथमाचार्य प.पू.चा.च. १०८ श्री शांतिसागरजी महाराज की अक्षुण्ण मूल बा.ब. परंपरा के पंचम पट्ठाचार्य
विशेष	-	कुल चातुर्मास-४९, दीक्षा-७७, मुनि-२७, आर्यिका-२८, क्षुल्लक-१२, क्षुल्लिका-९, ऐलक-१, पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ-५१, समाधि-४१
पावन सान्निध्य	-	गोम्टेश्वर बाहुबली महामस्तकाभिषेक में १९९३,२००६,२०१८
यात्राएँ	-	सिद्धभूमि सम्मेदशिखरजी, चंपापुरजी, सिद्धवरकूटजी ऊन (पावनगिरि), बावनगजाजी, तारंगाजी, कुण्डलपुरजी, गिरनारजी, कुण्डलगिरिजी आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

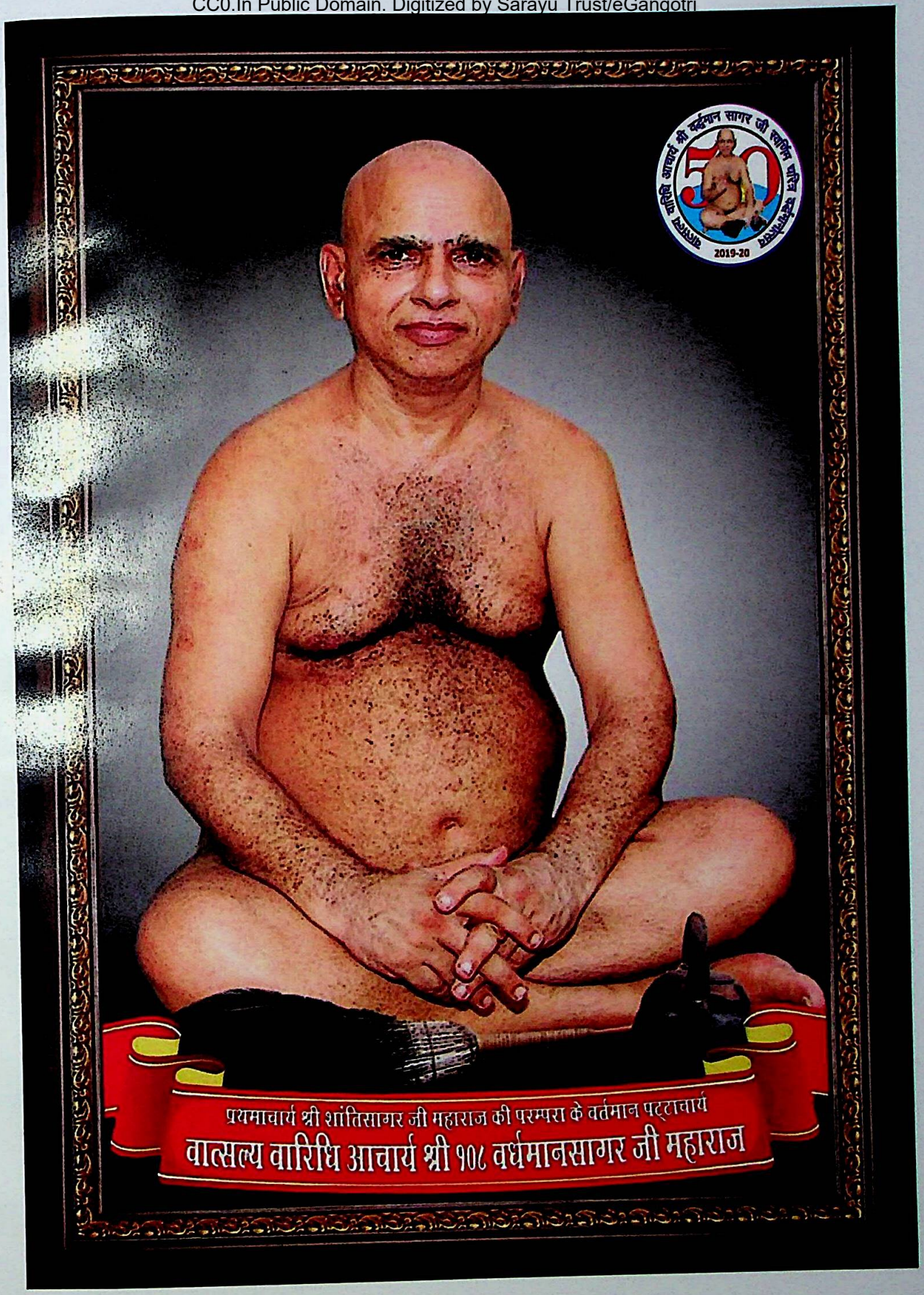

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीसवीं सदी के निर्मल सम्वाहक

श्रमण परम्परा के पुनरुद्धारक

प्रथमाचार्य, चारित्रचक्रवर्ती

श्री शान्तिसागर जी महाराज

मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं

की अक्षुण्ण वाल ब्रह्मचारी पट्ट

परम्परा के सफल सारथी

आगमानुसार चर्या के पोषक,

राष्ट्र गौरव, वात्सल्यवारिधि

आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज

के स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव

पर शत् शत् नमन करते हुए उनके

ही कर कमलों में यह ग्रन्थराज जी सादर समर्पित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी कलम से

प्रतिष्ठाचार्य डॉ. आनन्दप्रकाश जैन शास्त्री
कोलकाता

श्रमण परम्परा के संवाहक वीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज की मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं पचास वर्ष मुनि दीक्षा के रूप में "स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव" में यह ग्रन्थ हम जिनके श्री कर कमलों में समर्पित कर रहे हैं उन महामना आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी की कीर्ति पताका सारे विश्व में फहरा रही है। वह जैनाचार्य है, वात्सल्य के सागर है, उनका प्रेम, उनकी करुणा और उनकी सम्वेदनशीलता किसी धर्म विशेष तक सीमित नहीं है, वह सबके हैं और सब उनके हैं।

यह पचास वर्ष की यात्रा किसी 'यशवन्त' की यात्रा नहीं है, यह यात्रा धर्म की यात्रा हैं...जिस प्रकार तीर्थयात्रा में पड़ाव आते हैं उसी प्रकार इस धर्म की यात्रा में पड़ाव आते है...पहला पड़ाव बचपन का है बालक यशवन्त विद्याध्ययन के लिये उत्सुक होता है लेकिन वह पुस्तकीय ज्ञानार्जन न करके आत्मीय ज्ञानार्जन करता है धर्म के प्रति अनुरक्त होता है। बाहरी चकाचौंध से अलग होकर अपने भीतर अदृश्य जगत् को देखने की दृष्टि पैदा कर दी और दृश्य जगत के पीछे छिपे अदृश्य दृश्य को देखना ही अब उनका ध्येय हो गया।

घर आँगन में बचपन की अठखेलियाँ करते हुए पड़ाव पर पड़ाव आते गए और उन्नीस (१९) वर्ष की युवावस्था में १९६९ में सीधे आचार्य श्री धर्मसागर जी से मुनि दीक्षा ले ली नाम रखा गया मुनि वर्द्धमान सागर। उस समय उन्होंने समस्त पूर्वाचार्यों की शरण को स्वीकार कर लिया...आचार्य श्री धर्मसागर जी ने जब से उन्हें मुनि पद पर प्रतिष्ठित किया, तब से उनकी यात्रा शुरू हुई। इस यात्रा में "वर्द्धमान सागर जी" सतत साधना पथ पर अग्रसर होते गये। उनकी चर्या निर्दोष, उनकी साधना निर्दोष जिसके कारण उनकी आंतरिक उपलब्धियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती गई। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी की निर्दोष परम्परा को उन्होंने पचास वर्ष तक आगम की छाँव तले निभाया तथा २९ वर्ष आचार्य पद पर रहकर जिन्होंने शिष्य परम्परा को वृद्धिंगत किया और सारे विश्व में दिगम्बरत्व का डंका बजाया।

विश्व प्रसिद्ध भगवान् बाहुबली का द्वादशवर्षीय महामस्तकाभिषेक भी जिनके सान्निध्य में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन बार हो चुका...जिनकी वात्सल्य की छाँव तले सैकड़ों मुनि आर्यिका एक ही मंच पर बैठकर उनकी आत्मीयता का रसपान करते हैं।

परमपूज्य प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उनकी पट्ट परम्परा में पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री वर्द्धमान सागरजी महाराज जी के पचासवें (५०) मुनिदीक्षा महोत्सव पर "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" से जैनधर्म की प्रभावना, श्रुत की प्रभावना का प्रचार-प्रसार सारे विश्व में हो, भगवान महावीर की वाणी अवाधगति से प्रचारित होती रहे इस भावना को लेकर आर्ष परम्परागत आचार्य प्रणीत ५० ग्रन्थों का प्रकाशन शताब्दी समारोह एवं आचार्य श्री वर्द्धमान सागरजी महाराज के पचासवें मुनि दीक्षा महोत्सव पर करते हुए हमें हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ राज आचारसार आचार्य श्री वीरनन्दिदेव की रचना है जिसमें साधुधर्म का सांङ्गोपांग वर्णन सरल संस्कृत भाषा में करीब १२५० श्लोकों में किया है साधु समाज आचारसार रूपी महासमुद्र में गोते लगाकर और अनादिकालीन किट्टकालिमा को धोकर आत्मा को परम स्थान में ले जाने का पुरुषार्थ करेगा। इस शास्त्र का यही यथार्थ मूल्य है। ग्रन्थ सभी के लिए सर्वोपयोगी एवं रत्नत्रय की साधना में दर्पण का काम करने वाला होगा।

यह ग्रन्थराज पूर्व में श्री रतन लाल जी, मोहनलाल, रूपचंद, पदमचंद, प्रकाशचंद पाण्ड्या मैनसर (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित किया गया था। सर्वोपयोगी वा अनुपलब्ध होने के कारण इस ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन आचार्य शान्तिसागर पाउण्डेशन कोलकाता से किया जा रहा है। पूर्व प्रकाशक व पुनः प्रकाशन में सहयोग देने वाले महानुभावों के प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हैं।

मैं जगद्गुरु कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी भट्टारक स्वामी जी को नमन करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरणा एवं मार्गदर्शन देकर इस कार्य के लिए प्रेरित किया। साथ ही विद्वत् शिरमौर डॉ. श्रेयांस कुमार जी बड़ौत के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरा धैर्य और साहस बढ़ाया। श्राविका श्रेष्ठ-धर्म परायण कलकत्ता निवासी श्री कुसुम जी छाबड़ा को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थों के प्रकाशन में बहुत बड़ा सहयोग दिया। धर्मपत्नी विनीती सिंघई जी का भी इस कार्य में बहुत बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ अतः उनके श्रुत ज्ञान वर्द्धन की कामना करता हूँ तथा ग्रन्थों के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनके मंगल जीवन की कामना करता हूँ। श्री सुभाष जी यादव (बनारस) ने इस ग्रन्थ का सुचारू रूप से कम्पोज करके तथा अनेक और ग्रन्थों का कम्पोज किया है उनकी यह श्रुत सेवा प्रशंसनीय है। हम उनको सहर्ष धन्यवाद देते हैं।

प्रतिष्ठाचार्य

डॉ. आनन्दप्रकाश शास्त्री

कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभाशंसा

स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी
श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

भगवान महावीर की दिव्यध्वनि को धारण कर गौतम गणधर स्वामी ने श्रुत का गुम्फन किया, उसी श्रुत का आश्रय लेकर श्रुत केवलियों के द्वारा द्वादशांग का प्रणयन हुआ। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वादशांग के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं। उनके बाद श्रुत का बोध हीन होता गया अनन्तर एक अंग के ज्ञाता रहे फिर अंग और पूर्व के आंशिक ज्ञान वाले श्रुतज्ञानी रहे इसी क्रम में गुणधर-धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य हुए। इन्होंने कसायपाहुड और षट्खण्डागम जैसे आगम ग्रन्थों की रचना की, फिर आचार्य कुन्दकुन्द देव, आचार्य यतिवृषभ, आचार्य शिवार्य, आचार्य नेमिचन्द्र, आचार्य जिनसेन आदि अनेक आचार्यों ने ग्रन्थों को रचकर श्रुत का सम्बर्द्धन किया। आचार्यों का विशिष्ट अवदान वर्तमान में संरक्षित रखना सभी मनीषियों का कर्त्तव्य है।

इसी समुद्देश्य से चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं की परम्परा के पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्यवारिधि आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज के स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव के सुअवसर पर आचार्यों द्वारा प्रणीत प्राचीन मूल ग्रन्थों को "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता से प्रकाशित किया जाना महान् पुण्य का कार्य हैं। प्राकृत-संस्कृत में रचित ग्रन्थों में अध्यात्म और सिद्धान्त की प्ररूपणा है। आध्यात्म और सिद्धान्त जैन-धर्म दर्शन के प्राणतत्व है। इनका परिज्ञान के बिना आत्मबोध असंभव होता है।

आत्म प्रबोधन ने निमित्त भूत ग्रन्थराजों का प्रकाशन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, श्रुतज्ञान की प्रभावना केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण होती है। केवलज्ञान का कारण ही विनय पूर्वक श्रुताभ्यास है इसीलिए श्रुत के अभ्यास हेतु श्रमण और श्रावक आगम ग्रन्थों का अध्ययन कर आत्मकल्याण करें। ग्रन्थों के प्रकाशन का जो कार्य कोलकाता के उदीयमान नक्षत्र युवा विद्वान् डॉ. आनन्दप्रकाश शास्त्री ने अपने हाथ में लिया है। उनकी यह सेवा ज्ञान वृद्धि में सहायक हो, पचास ग्रन्थों का प्रकाशन एक ऐतिहासिक सिद्ध होगा। श्रुत संवर्द्धन योजना ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम का कारण है। इस योजना के लिए सहर्ष अनुमोदना, शुभकामना करते हैं।

जययु सुद देवता
स्वस्ति चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी
श्रीक्षेत्रश्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
१५/०३/२०१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरोवाक्

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत
अध्यक्ष : अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्

सातिशय पुण्योदय से चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की मुनि दीक्षा शताब्दी समारोह एवं उन्हीं की परम्परा के पञ्चम पट्टाचार्य वात्सल्यावारिधि श्री वर्द्धमान सागर जी महाराज के मुनिदीक्षा के पचास वर्ष होने पर सम्पूर्ण जैन समाज आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव प्रभावना के साथ मना रही है इसी पुण्यावसर पर "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता लोक कल्याण और स्वाध्याय हेतु ५० ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहा है। यह प्रशस्त कार्य है क्योंकि धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय ही कल्याण का पावन निमित्त होता है जैसा कि कहा गया है–

धर्मशास्त्रश्रुतौ शाश्वत् लालसं यस्य मानसम्।
परमार्थं स एवेह सम्यज्जानाति ना परः।।

जिसका मन धर्म-शास्त्र के सुनने में सदा लालसा युक्त रहता है वही इस जगत् में परमार्थ को अच्छी तरह जानता है, अन्य नहीं। मानव ने विज्ञान के माध्यम से जड़ तत्वों का अन्वेषण किया है उसने जड़ तत्व को देखा परखा और गहराई में पहुँचकर परमाणु जैसे सूक्ष्म तत्व में निहित विराट शक्ति को खोजा किन्तु इससे शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। शान्ति की अजस्रधारा तो आत्मदर्शन और आत्मज्ञान से ही संभव है वह आत्मज्ञान भगवान् जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित दिव्य ज्ञान से होता है। भगवान जिनेन्द्र की वाणी को गणधर स्वामी और आरातीय आचार्यों की परम्परा से श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने लिपिबद्ध किया। आचार्यों द्वारा प्रणीत शास्त्रों में आत्मा की मीमांसा है आत्मा का ज्ञान मूल शास्त्रों से ही हो सकता है इसीलिए इनका स्वाध्याय आवश्यक है। क्योंकि–

स्वाध्याज्ज्ञानवृद्धिः स्यात्तस्यां वैराग्यमुत्वणम्।
तस्मात्सर्गपरित्यागस्ततश्चित्तं निरोधनम्।।

अर्थात्–स्वाध्याय से ज्ञान वृद्धि होती है। ज्ञान वृद्धि होने पर उत्कृष्ट वैराग्य बढ़ता है। वैराग्य से संसार त्याग होता है और उससे चित्त का नियन्त्रण होता है।

चित्त का नियन्त्रण ही आत्मज्ञान में सहकारी बनता है। आत्मज्ञान के लिए शास्त्रों का स्वाध्याय अमोघ दीपक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सचेतक विद्वान डॉ. आनन्दप्रकाश जी शास्त्री, कोलकाता ने आचार्य शान्तिसागर दीक्षा शताब्दी समारोह एवं आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी स्वर्णिम दीक्षा वर्द्धमानोत्सव के प्रसंग पर ५० मूल प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाशन कराने का जो "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता ने उपक्रम किया है वह महत्वपूर्ण है। इन ग्रन्थों के प्रकाशन से स्वाध्यायियों को तो विशेष लाभ होगा ही साथ में शोध के क्षेत्र में बहुत अधिक सहयोग मिलेगा।

वात्सल्यावारिधि आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज का सभी विद्वानों को विशेष आशीर्वाद है। विद्वान श्रुत सपर्या करते हुए अपने जीवन को कृतार्थ करें। यह ग्रन्थ प्रकाशन योजना श्रुतसंरक्षण का महत्त्वपूर्ण योग है इस योग हेतु "आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन" कोलकाता के समस्त पदाधिकारी सहित डॉ. आनन्दप्रकाश जी शास्त्री कोलकाता के श्रुतज्ञान वर्धन की कामना करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी का बाह्य व्यक्तित्व
उतना ही मनोरम है जितना अंतरंग...
तपस्या में वे वज्र से कठोर है...पर
उनके मुक्त हास्य और सौम्य मुखमुद्रा से
कुसुम की कोमलता झलकती है...
वे जीवन के शाश्वत सत्यों से स्वयं
रूबरू होकर हमें भी रूबरू करवा रहे हैं...।
सूरज की किरण बनकर हमारे भीतर
आशा और विश्वास का सवेरा जगाते हैं...
तो चंदा की चाँदनी बनकर हमारे अज्ञान के
अन्धकार को दूर करते हैं...
वे अपनी आत्मीयता में डुबोते हैं और...
बहुत सरलता से पार उतरने के लिये पतवार
थमा देते हैं...वे हमें सच्चाई
का सामना करने का पथ और साहस प्रदान करते हैं।
ऐसे वात्सल्य वारिधि का
"स्वर्णिम चारित्र वर्द्धमानोत्सव"
हमें प्रेरणास्पद बने....इस भावना
के साथ उनके चरणों में शत शत नमन...।

—कुसुम छाबड़ा
कोलकाता

जिनके पुनीत स्मरण से मन उदार और श्रद्धा से भर जाता है,
कठिनाईयों से भरी राहों में जो उम्मीद की किरण दिखाते हैं,
जीवन के हर मोड़ पर जो नई राह बनाना सिखाते हैं।
तथा सदोष काल में जो निर्दोष परम्परा को निभा रहे हैं
ऐसे वन्दनीय गुरुवर, श्री वर्द्धमान सागरजी के
५०वें मुनि दीक्षा पर शत शत नमन....।

-विनीता सिंघई
कोलकाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचारसार के रचयिता श्रीवीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्ती

आचारसार के रचयिता श्री वीरनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्ती मूलसंघ पुस्तकगच्छ तथा देशीयगण के आचार्य थे। आचारसार के प्रारम्भ और अन्त में श्री वीरनन्दी आचार्य ने अपने गुरु मेघचन्द्राचार्य का बहुत भक्ति के साथ स्मरण किया है। बारहवें अधिकार के अन्त में दिये गये निम्नलिखित पुष्पिका वाक्य में अपने परिचय के पूर्व मेघचन्द्राचार्य के प्रति पूर्ण कृतज्ञता प्रकट की है–

"इति श्रीमन्मेघचन्द्रत्रैविद्यदेवपादप्रसादाऽऽसादिताऽऽत्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभाव-सकलदिग्वर्तिकीर्ति-श्रीमद्वीरनन्दि-सैद्धान्तिक चक्रवर्तिप्रणीते श्री 'आचारसार' नाम्निग्रन्थे शीलगुणवर्णनात्मको द्वादशोऽधिकारः।"

अन्य अधिकारों के अन्त में सामान्य रूप से अपना ही उल्लेख किया है। ग्रन्थ के अन्त में दी हुई निम्न प्रशस्ति से वीरनन्दी आचार्य ने अपने आपको मेघनन्दी आचार्य की मूर्तिमती कीर्ति घोषित किया है–

श्रीमेघचन्द्रोज्ज्वलमूर्तिकीर्तिः, समस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्ती।
श्रीवीरनन्दी-कृतवानुदारमाचारसारं यतिवृत्तसारम्।।३३।।

जो मेघचन्द्राचार्य की मानों मूर्तिमन्त उज्ज्वल कीर्तिरूप है और समस्त सिद्धान्त के ज्ञाता मुनियों में जो चक्रवर्ती के समान है–प्रधान है, उन वीरनन्दी आचार्य ने मुनियों के चारित्र का वर्णन करने वाला यह उत्कृष्ट आचारसार ग्रन्थ बनाया है। इसी अधिकार के ३० और ३१ वें श्लोक में अपने गुरु मेघचन्द्राचार्य की स्तुति करते हुए लिखा है–

सिद्धान्तार्णपूर्णतारकपति-स्तर्काम्बुजाहर्पतिः
शब्दोद्यानवनामृतोरुसरणिर्योगीन्द्रचूडामणिः।
त्रैविद्यापर-सार्थनामविभवः, प्रोद्धू तचेतोभवः
स्थेयादन्यमतावनीभृदशनिः, श्रीमेघचन्द्रो मुनिः।।३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सिद्धान्तरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए पूर्ण चन्द्रमा हैं, न्यायशास्त्ररूप कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य हैं, व्याकरण रूपी वन को हराभरा रखने के लिए जल की नहर हैं, महामुनियों में शिरोमणि है, त्रैविद्य नामक सार्थक नाम से सहित हैं, जिन्होंने काम को नष्ट कर दिया है और जो अन्य मतरूपी पर्वतों को नष्ट करने के लिए वज्रस्वरूप हैं, ऐसे मेघचन्द्रमुनि सदा विद्यमान रहें।

यद्वाक्छ्रीरवतंसमण्डन-मणि-वैदग्ध्यदिग्धत्विषां
यच्चारित्रविचित्रता शमभृतां, सूत्रं पवित्रात्मनाम्।
यत्कीर्तिर्धवल-प्रसादनधुरं, धत्ते धरायोषितः
स त्रैविद्यविभूषणो विजयते, श्रीमेघचन्द्रो मुनिः।।३१।।

जिनके वचनों की लक्ष्मी बड़े-बड़े विद्वानों के कर्णाभरण में लगे मणिस्वरूप है, जिनके चारित्र की विचित्रता अन्य पवित्र मुनियों के लिए सूत्रस्वरूप है–प्रवर्तक है। जिनकी कीर्ति पृथिवीरूपी स्त्री को शुक्ल करने वाले पदार्थों में प्रमुख है और त्रैविद्य पदवी जिनका आभूषण है वे मेघचन्द्रमुनि सदा विजयवन्त हैं–सर्वोत्कृष्ट हैं।

इन्हीं मेघचन्द्र की प्रशस्ति में **श्रवणवेलगोला के ४७वें प्रशस्तिलेख** में इस प्रकार उल्लेख है–

तर्कन्यायसुवज्रवेदिरमलार्हत्सूक्ति-सन्मौक्तिकः
शब्दग्रन्थविशुद्धशङ्खकलितः, स्याद्वादसद्विद्रुमः।
व्याख्यानोर्जितपोषण-प्रविपुल-प्रज्ञोद्धवीचीचयोः
जीयाद् विश्रुतमेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यरत्नाकरः।।
श्रीमूलसंघकृतपुस्तकगच्छदेशी-
योद्यद्गणाधिपसुतार्किकचक्रवर्ती।
सैद्धान्तिकेश्वर-शिखामणिमेघचन्द्र-
स्त्रैविद्यदेव, इति सद्विबुधाः स्तुवन्ति।।
सिद्धान्ते जिनवीरसेनसदृशः, शास्त्राब्जिनीभास्करः,
षट्तर्केष्वकलङ्क-देवविबुधः, साक्षादयं भूतले।
सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः, श्रीपूज्यपादः स्वयं,
त्रैविद्योत्तम-मेघचन्द्रमुनिपो, वादीवपञ्चाननः।।

इन पद्यों से स्पष्ट है कि वीरनन्दी आचार्य के गुरु मेघचन्द्र बहुश्रुत विद्वान् थे। उनके अनेक शिष्य थे जिनमें प्रभाचन्द्र तथा शुभचन्द्र आदि कई प्रधानशिष्यों के स्मृतिलेख श्रवणवेलगोला के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिलापट्टों में अंकित हैं।

'कर्नाटककविचरितं' के उल्लेखानुसार **मेघचन्द्र की गुरु परम्परा** इस प्रकार है–

गोलाचार्य

अभयनन्दी

सोमदेव

सकलचन्द्र

मेघचन्द्र

श्रवणवेलगोला के ५० वें अभिलेख से यह भी सिद्ध होता है कि वीरनन्दी का मेघचन्द्र के साथ न केवल गुरुशिष्य सम्बन्ध था किन्तु पिता-पुत्र सम्बन्ध भी था। उल्लेख इस प्रकार है–

वैदग्ध्यश्रीवधूटीपतिरतुलगुणालंकृतिर्मेघचन्द्र-
त्रैविद्यस्यात्मजातो मदनमहिभृतो भेदने वज्रपातः।
सैद्धान्तव्यूहचूड़ामणि-रनुपमचिन्तामणिर्भूजनानां,
योऽभूत्सौजन्यरुद्रश्रियमवति महौ वीरनन्दी मुनीन्द्रः।।

यही पद्य अभिलेख संख्या ५० का ५० वाँ पद्य भी है, इससे स्पष्ट है कि वीरनन्दी मेघचन्द्रत्रैविद्य के आत्मजात-पुत्र थे।

वीरनन्दी आचार्य का वैदुष्य–

आचारसार को रचना को देखते हुए लगता है कि वीरनन्दी जहाँ सैद्धान्तिकचक्रवर्ती थे, वहाँ वे कवि नहीं महाकवि थे। प्रथमाधिकार के निम्नश्लोक उनके साहित्यिक वैदुष्य को प्रकट करने में पूर्ण सक्षम हैं–

देहव्यूहमहीजराजियभयदे, दुःखावलीश्वापदे,
विश्वाशान्तिकरालकालदहने, शुष्यन्मनीषावने।
नानादुर्णयमार्गदुर्गमतमे, दृङ्मोहिना देहिनां,
जैनं दर्शनमेकमेव शरणं, जन्माटवीसंकटे।।४।।
सन्नार्थ परिपूर्णनिर्मलकलं, सल्लक्ष्मलक्ष्मीकुलं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोषासंगमनङ्गराजविजयं, नित्यं सुवृत्तोदयम्।
स्वान्तध्वान्तविनाशिनं कुवलयानन्दामृतस्यन्दिनं,
प्रोत्योपेत्य मुनीन्द्रचन्द्रमपरं, तत्पादसेवापरः।।८।।

(इन श्लोकों का अर्थ टीका से अवगत करे)

सातवें अधिकार में वीर्याचार का वर्णन करते हुए और दसवें अधिकार में ध्यान तथा द्वादश अनुप्रेक्षाओं के वर्णन में जिस शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया है, वह उनके साहित्यिक ज्ञान की गरिमा को बढ़ाने में पूर्ण सक्षम है।

समय-निर्णय-

श्रवणवेलगोला के अभिलेख संख्या ४७, ५० और ५२ से ज्ञात होता है कि मेघचन्द्राचार्य का स्वर्गवास शकसंवत् १०३७ (वि. सं. ११७२ में और उनके शिष्य शुभचन्द्र का शक संवत् १०६९ (वि.सं. १२०३) में हुआ था उनके द्वितीय शिष्य प्रभाचन्द्रदेव ने शक संवत् १०४१ (वि.सं. ११७६) में एक महापूजाप्रतिष्ठा कराई थी, इससे प्रतीत होता है कि आचारसार के कर्ता वीरनन्दी आचार्य भी इसी समय हुए थे अर्थात् उनका काल १२ वीं शताब्दी है।

ग्रन्थ परिचय–

आचार्य वीरनन्दी की **'आचारसार'** नामक एक ही रचना उपलब्ध है। इसके बारह अधिकारों में मुनियों के चारित्र का पूर्ण विवरण है–

प्रथम अधिकार में ५१ पद्य हैं, जिनमें भवभ्रमणभीरु भव्य संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर सद्गुरु के पास जाकर निर्ग्रन्थ दीक्षा की प्रार्थना करता है। सद्गुरु उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर दीक्षा देते हैं। दीक्षा के बाद उस नवदीक्षित साधु को २८ मूलगुणों का स्वरूप समझाते हैं।

द्वितीय अधिकार के ९४ पदों में मुनियों को क्रियाकलाप आदि की शिक्षा दी गई है।

तृतीय अधिकार के ७५ श्लोकों में दर्शनाचार का वर्णन है जिसमें सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति तथा भेदों का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अधिकार के ९७ पद्यों में ज्ञान के भेद-प्रभेदों की विस्तृत चर्चा की गयी है।

पञ्चम अधिकार के १५१ पद्यों में चारित्राचार का विस्तार से वर्णन किया गया है।

षष्ठ अधिकार के १०२ पद्यों में तप आचार का वर्णन करते हुए बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग तपों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

सप्तम अधिकार के २६ पद्यों में वीर्याचार का वर्णन करते हुए २२ परीषहों का मार्मिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णन है।

अष्टम अधिकार के ८४ पद्यों में आठ शुद्धियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

नवम अधिकार के १०२ पद्यों में षडावश्यकों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

दशम अधिकार के ६३ पद्यों में ध्यान के चार भेद तथा अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन है।

एकादश अधिकार के १९० पद्यों में जीव के विस्तृत भेद बीस प्ररुपणाओं के माध्यम से बताये गये हैं, इसी सन्दर्भ में मध्यलोकस्थित द्वीप-समूहों का स्वर्गों का तथा नरकों का भी वर्णन किया गया है।

द्वादश अधिकार के ३३ पद्यों में शील के अठारह हजार भेद तथा चौरासी लाख उत्तर गुणों का वर्णन संख्या, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट के माध्यम से किया गया है।

ग्रन्थ-परिमाण-

अधिकारों की निर्दिष्ट संख्या के अनुसार सब श्लोकों का योग १०६८ आता है। परन्तु ग्रन्थकर्ता ने निम्नश्लोक में–

'ग्रन्थप्रमाणमाचार-सारस्य श्लोकसम्मितम्।
भवेत् सहस्रं द्विशतं, पञ्चाशच्चाङ्कतस्तथा।।'

१२५० श्लोक प्रमाण बताया है। यह वर्णन ३२ अक्षरी अनुष्टुप् श्लोकों की अपेक्षा जानना चाहिए।

ग्रन्थ में अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीड़ित, स्रग्धरा, उपजाति, वंशस्थ और इन्द्रवंश आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। सब छन्दों के अक्षरों का योग कर उसमें ३२ का भाग देने पर १२५० श्लोक प्रमाण आवेगा। बड़े-बड़े ग्रन्थों का परिमाण इसी अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से निकलता है।

भ्रम निवारण-

चन्द्रप्रभचरित के रचयिता वीरनन्दी आचार्य, इन वीरनन्दी से भिन्न है। क्योंकि वे अभयनन्दी के शिष्य तथा गुणनन्दी के प्रशिष्य थे और ये मेघचन्द्राचार्य के शिष्य थे। चन्द्रप्रभचरित के कर्ता वीरनन्दी इनसे पहले हुए हैं।

आचारसार का आधार-

आचारसार पर मूलाचार का प्रभाव तो है ही, उसके सिवाय ज्ञानाचार तथा जीव और कर्म का वर्णन करने में गोम्मटसार जीवकाण्ड का भी पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ परिचय

यह आचारसार वीरनंदि विरचित है–इसमें मुनिगणों की चर्या का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है जिसका अवलोकन कर तपस्वीगण अपने चारित्र को निर्मल बना सकते हैं। साधुगणों की चर्या के लिए यह आदर्श ग्रन्थ है। इसका हिन्दी प्रकाशन पूर्व में पं. लालाराम शास्त्री ने किया है परन्तु उसकी उपलब्धि इस समय दुष्कर है इसलिए १०८ श्री अजितसागर जी (मेरे विद्यागुरु) ने मुझे प्रेरित किया। पूज्य मां इन्दुमती का प्रोत्साहन और स्नेह ने ही आज मुझ तुच्छ बुद्धि वाली आर्यिका को ग्रन्थ की हिन्दी टीका करने का साहस प्रदान किया। उनकी आज्ञानुसार मैंने इसकी हिन्दी लिखी है। इसमें त्रुटियाँ रहना संभव है, इसलिए विद्वजन क्षमा करेंगे।

–आ. सुपार्श्वमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो शब्द

साल और समय का स्मरण नहीं रहा परन्तु धर्मोधोत की वे सारी परिस्थितियां स्मृति पटल पर ज्यों की त्यों उभर रही है जिस समय अजमेर नगर में परम पूज्य आचार्य १०८ श्री शिवसागर जी महाराज का चातुर्मास का समागम प्राप्त हुआ जो आचार्य १०८ वीरसागरजी के सुशिष्य एवं उन्हीं के आसन पर अभिषिक्त हुये थे। यह पट्ट स्वर्गीय आचार्य १०८ वीरसागर को स्वर्गीय १०८ आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। पूज्यनीया १०५ आर्यिका श्री इन्दुमतीजी माताजी व विद्यावारिधि आर्यिकारत्न १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी इन्हीं परम पूज्य १०८ आचार्य वीरसागरजी से दीक्षित हैं। अपने शिक्षा गुरु थी १०८ मुनिराज अजितसागरजी अपने अनुपम क्षयोपशम, मधुर वक्तव्य, शैली एवं संयम साधना से प्रथमतः राजस्थान को ही उपकृत करती रही। राजस्थान में आपके सुजानगढ़, लाडनूं, नागौर-नांवा आदि कई स्थानों में चातुर्मास हुए। अजमेर नगर में जो आपका चातुर्मास सम्पन्न हुआ वह अब भी स्मरणीय है। आपके समागम से इन सभी स्थानों में महती धर्म प्रभावना हुई।

विक्रम संवत् २०२८ में आपका संघ शिखरजी वंदनार्थ पहुंचा और वहाँ से बिहार करते हुए समस्त बिहार प्रान्त के प्रमुख नगरों में आपके संघ द्वारा महती धर्म प्रभावना हुई। मैं तीसरी बार कलकत्ता पर्यूषण पर्व में आमंत्रित किया गया था। बड़ी प्रबल आकांक्षा थी आपके संघ के दर्शन करने की। उस समय आपके संघ का चातुर्मास धूलियान (पं. बंगाल) में था। सपत्नीक मैं वहां पहुँचा। संघ का दर्शन किया और धर्म लाभ लिया। माताजी का आग्रह दस दिन रोकने का था, पर समय की कमी होते हुए भी तीन दिन ही रुका। इन दिनों माताजी सुपार्श्वमतीजी अज्ञात रूप से लेखन प्रवृत्ति में लगी हुई थी। अप्रकाशित प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का प्रकाशन एवं नवीन लोकोपयोगी साहित्य प्रकाशन की बलवती भावना मैंने माताजी में पाई। दर्शन लाभ लेकर हम कलकत्ते से अजमेर आ गये।

विक्रम संवत् २०३१ में गौहाटी पर्यूषण पर्व में जाना पड़ा। वहां मालूम हुआ कि आपका संघ बंगाल में बिहार करता हुआ आसाम की ओर बढ़ रहा है। गौहाटी के धर्मवत्सल बन्धुओं ने संघको आसाम में विहार कराने की ठान ही रखी थी। श्रीमान् सेठ लखमीचंदजी छाबड़ा, सेठ मिश्रीलालजी बाकलीवाल, श्री मोतीलालजी छाबड़ा, सेठ हरकचंदजी पांड्या आदि से विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनियम चला और हमसे संघ विहार कराने के परामर्श किये। संघ इस समय किशनगंज में था। हम इच्छा रखते हुए भी वहाँ दर्शनार्थ नहीं पहुंच सके। संघ क्रमशः विहार करता रहा। हम गौहाटी से पर्यूषण समाप्त कर कानकी पहुँचे।

कानकी में हमसे सबसे पहिला प्रश्न माताजी का था कि एक मास का सावकाश रखकर ही आये होंगे। अब तो रिटायर्ड भी हो गये हो। मैं माताजी के अनुरोध परतीन दिन रुका और प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन की चर्चा प्रारम्भ हुई।

उस समय भी संघ का रूप वही था जो आज भी शिखरजी में है। संघ नायिका पूज्यनीया १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी, आर्यिकारत्न सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी व आर्यिका सुप्रभामतीजी तथा कुछ ब्रह्मचारिणियां संघ में विद्यमान हैं। कुछ परामर्श के बाद प्रस्तुत कार्य का शुभारम्भ हुआ। कु. प्रमिला ने १२ रजिस्टर सामने रख दिये। ग्रन्थ था "आचार्य वीरनंदि कृत आचारसार"। माताजी ने बड़े परिश्रम से उक्त चारित्र विषयक ग्रन्थ की अत्यन्त सरल अन्वयार्थ सहित भाषा में टीका की है अर्थात् यह कहना विशेष संगत होगा कि आचार्य श्री की संस्कृत भाषा को जनभाषा में ढाल दिया है। कुछ सिंहावलोकन के बाद में यह कह कर चला आया था कि आप इसे एक बार भली प्रकार देख लें पीछे मैं इस कार्य में अपनी सेवायें दे सकूंगा। बात गई आई हुई।

और एक दिन डाक का पार्सल आया और ग्रन्थ के कुछ अध्याय मुझे मिले। मैंने उन्हें ध्यान से देखा और उचित संशोधन भी किया। गत वर्ष कोडरमा में पर्यूषण बिताने के बाद राजगृही में संघ के दर्शन सौभाग्य से मिले और ग्रन्थ प्रकाशन व्यवस्था का कार्य अजमेर में होना निश्चित हुआ। अब सारा ग्रन्थ मेरे पास था। प्रकाशन व्यवस्था का भार श्री महेन्द्रकुमार जी बोहरा एवं मिलापचन्दजी पाटनी ने लेकर मेरे उत्साह को वृद्धिगत किया।

किसी भी पूर्ण ग्रन्थ को संशोधन का यह मेरा प्रथम प्रयास था अतः कठिनाइयों से बचा नहीं। मैंने पूज्य माताजी के शब्द, वाक्य, तात्पर्य, भावार्थ आदि को पूर्णतः सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है, केवल भाषा का रूप निखारने का अवश्य प्रयत्न किया है। ग्रन्थ का सरल अनुवाद पूज्य माताजी की देन है। मेरे द्वारा जो इसका परिमार्जन एवं सृजन हुआ है उससे ग्रन्थ सुशोभित हुआ है या नहीं यह तो विद्वज्जन ही समझ सकेंगे। यह एक आचार्य प्रणीत आचार ग्रंथ है इससे मुनि मार्ग दर्शन प्रशस्त होगा, यह सुनिश्चित है।

धर्मप्रेमी श्रीमान् स्वर्गीय सेठ प्रेमसुखजी पांड्या मैनसर की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्रीमान् रतनलालजी मोहनलालजी, रूपचंदजी, पदमचंदजी एवं प्रकाशचंदजी ने उक्त ग्रन्थ की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाध्यायार्थ ५०० प्रतियों के प्रकाशनार्थ जो द्रव्य प्रदान कर जिनवाणी की सेवा की है तथा अन्य ५०० प्रतियों के प्रकाशन के लिए जिन-जिन महानुभावों ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री महेन्द्रकुमार जी बोहरा एवं मिलापचंदजी पाटनी अजमेर के सहयोग से वह कार्य मुझके बन गया है, अतः वे सस्नेह धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री जैन आर्ट प्रिन्टर्स-नया बाजार, अजमेर के स्वत्वाधिकारी बाबू मूलचन्दजी बाकलीवाल का मुझे सहयोग विशेष ही मिला। आज जबकि सभी प्रकाशकीय वस्तुयें महंगी एवं दुर्लभ हो रही हैं, परन्तु आपके सतत परिश्रम से कठिनाइयां सरल हुी और ग्रन्थ का प्रकाशन सुलभ हो सका। अन्त में सभी भाइयों से जिस प्रकार की मुझे प्रत्यक्ष या परीक्षा सहयोग प्राप्त हुआ उन्हें मैं साधुवाद करता हूँ तथा अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करता हूँ।

विनीतः-

(ध.लं.) हेमचन्द्र जैन शास्त्री एम.ए.

अजमेर (राज.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात् श्री के प्रति किञ्चित प्रसून

पूज्य आर्यिका रत्न विद्यावारिधि सुपार्श्वमती माताजी ने आचारसार ग्रन्थ की हिन्दी टीका करके मुनि के आचारसार का ज्ञान सुलभ कर दिया इससे साधुवर्ग तो अपनी क्रियाओं से अवगत होंगे ही, किन्तु श्रावक भी उनकी चर्या और चारित्र को जानकर उनसे बन जायेंगे ऐसी आशा है। पूज्य माताजी के पास रहते हुये मुझे १० वर्ष हो गये, इन वर्षों के अन्तराल में मैंने माताजी में जो कुछ पाया और देखा उसको लिखने के लिए मेरी लेखनी समर्थ नहीं हो सकती। प्रातः ब्रह्ममूहूर्त्त से उठकर रात्रि ११ बजे तक का कार्य क्रम माताजी का इस तरह चलता है जैसे कोई सरकारी कानून की कार्यवाही की जा रही है। और उनका इस तरह का पाठन और अध्यापन का कार्य ही मुझे दो शब्द लिखने का प्रोत्साहन दिया है। और पूज्यमात्श्री के पास रहकर ही मैंने लौकिक शिक्षा एम. ए. पास किया और आपकी ही प्रेरणा तथा पूर्ण सहयोग से मैं पी.एच.डी. करने का साहस कर रही हूँ।

पूज्य माताजी ने इस पुस्तक में पांच महाव्रत, पांच समिति, पंचेन्द्रियों का दमन, षट् आवश्यक, केशलुञ्चन नग्नत्व, अस्नान, पृथ्वीशयन, अदन्त घर्षण, खड़े होकर एक बार आहार करना, इन सब अट्ठाईस मूलगुणों का तथा क्षुधा तृण आदि बाईस परिषहों जो भी साधु स्वेच्छा पूर्वक सहन करता है और स्वाध्याय संयम और आत्म निरक्षण में सर्वदा प्रवृत्त रहता है–ऐसा दर्शाया है।

जिस प्रकार प्रारंभिक अभ्यासी अक्षरों की और शब्दों की आकृतियों को देखकर उसी प्रकार के अक्षर और शब्द लिखने लगता है उसी प्रकार आत्माभ्यासी वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी तीर्थंकरों की वाणी को सुनकर और समझकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार पूज्य माताजी ने इसका हिन्दी सार्थ करके जिनवाणी का विस्तार है।

ऐसी परम श्रद्धेय आध्यात्मदर्शी, चैतन्य विहारिणी, जिनशासन की प्रचारिका, आत्मा साधिका पूज्य माताजी के चरणों पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई, उनके मार्ग पर चलने की भावना भाती हुई, प्रभु से प्रार्थना करती हूँ : कि आप दीर्घायु होवें और हम सबका मार्ग प्रशस्त करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तूने ऐसा जादू डाला।
अणु अणु जीवित कर डाला।।
अरे मात् तेरी प्रतिमा ने।
जादू सा ये क्या कर डाला।।

कुमारी प्रमिला शास्त्री एम. ए.
जबलपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम पूज्या १०५ आर्यिका-रत्न सिद्धान्त-वारिधि प्रकाण्ड-पण्डिता श्री सुपार्श्वमतीजी माताजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

परम पूज्या श्री सुपार्श्वमतीजी का जीवन चारित्र लिखते अथवा मनन करते समय कितनी प्रेरणा मिलती है यह तो जो उनके निकट सम्पर्क में रहा हो, वो अनुभव कर सकता है। पू. माताजी ने जैन धर्म का ध्वज उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व भारत में समस्त जगह इस प्रकार से फहराया कि जहां जहां आपका पदार्पण हुआ, वहाँ के जन समुदाय पर आपकी अमिट छाप आज तक भी स्मृति रूप में बनी हुई है।

जन्म-

पूज्य माताजी की जन्म फाल्गुन शुक्ला ९ सं. १९८५ की शुभ घड़ी में ग्राम मेनसर (जिला नागौर) में हुआ। आपकी जन्मदात्री मातेश्वरी महान पुण्यवती श्रीमती अणची देवी एवं पिता श्री हरकचंद चूड़ीवाल थे।

परिवार-

आपके पांच भाई एवं एक बहिन थी। जन्म नाम आपका "भंवरी बाई" रक्खा गया।

शिक्षा-

गाँव छोटा सा होने के कारण आप पाठशाला में केवल अक्षर बोध तक का ही ज्ञान प्राप्त कर सकी थी।

परिणय संस्कार-

मारवाड़ की प्राचीन परम्परानुसार आपका विवाह १२ वर्ष की अवस्था में ही माघ शुक्ला १० संवत् १९९७ में श्री इन्द्रचंदजी बड़जात्या नागौर निवासी के साथ सम्पन्न हुआ था। आपको दो माह पश्चात् ही पति वियोग का असह्य दु:ख सहन करना पड़ा। सांसारिक भोगों से विरक्तता तो थी ही, इस वियोग ने सांसारिक वास्तविकता का और विशेष अनुभव करा दिया। अत: माताजी दिनोंदिन अपनी दैनिक चर्या कार्यों में अधिक समय बिताने लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैराग्य भावना-

गृहस्थ में रह इसी प्रकार लगभग ६-७ साल तक धर्माध्यान करती रही। संयोगवश २००५ की साल में पूज्या १०५ श्री इन्दुमतीजी माताजी का उस गांव में पदार्पण हुआ। पू. इन्दुमती जी ने माताजी सुपार्श्वमतीजी की दैनिक चर्या देख कर इन्हें होनहार समझकर धार्मिक उपदेश से सम्बोधित किया। जिसका परिणाम यह निकला कि भंवरी बाई (सुपार्श्वमतीजी) ने उसी वक्त संकल्प लिया कि क्यों नहीं मैं भी जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मानव जीवन को सफल बनाऊं। अत: माघ शुक्ला ४ संवत २००५ को आपने पू. इन्दुमतीजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए आपकी विवाह विधि तो अवश्य सम्पन्न हुई थी परन्तु आपको बाल ब्रह्मचारिणी कहना ही न्याय संगत है।

शिक्षा अध्ययन-

भ्रमण करते करते आप जयपुर परम पूज्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के संघ में पधार गई। वहां श्री राजमल जी ब्रह्मचारी (वर्तमान में पू. श्री अजितसागर जी) से चारों ही अनुयोग एवं संस्कृत-प्राकृत का पठन-पाठन अध्ययन मनन किया। चौबीस घंटों में १६ घंटे आपके पठन पाठन में व्यतीत होने लगे।

आर्यिका-दीक्षा-

त्याग की अन्तिम श्रेणी आर्यिका दीक्षा-आपने भाद्रपद शुक्ला ६ सं. २०१४ को ग्रहण की। दीक्षा गुरु थे परम पूज्य १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज। इसी तिथी को भगवान सुपार्श्वनाथ भगवान का गर्भ कल्याण होने से आपका नाम भी सुपार्श्वमतीजी रक्खा गया।

विशेषता–

चारों अनुयोगों के साथ आपकी ज्योतिष, यांत्रिक, सांत्रिक, तान्त्रिक, वैद्यक विषयों का भी गहन अनुभव है। स्मरण शक्ति क्रमबद्ध ग्रन्थों के नाम, श्लोक आदि का उद्धरण के साथ प्रवचन, कषायों का अभाव, मधुर भाषी होना ही आपकी विशेषता है।

चातुर्मास-

आपने अब तक जयपुर लाडनूं। सीकर, अजमेर, चांपानेर, सनावद, ओरंगाबाद, कुंभोज बाहुबली, अकलूज, वारामती, कारन्जा, सम्मेदशिखर, कलकत्ता, धुलियान, किशनगंज, गोहाटी, डीमापुर (नागालैंड) विजयनगर (आसाम) कानकी, भागलपुर में चातुर्मास किये। सं. २०३७ में आपका चातुर्मास पुन: तीर्थराज सम्मेदशिखर में बड़ी प्रभावना के साथ हो रहा है। सं. २०३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में भागलपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आपका पूर्ण सक्रिय सहयोग रहा। इस अवसर पर आपको 'सिद्धान्त वारिधि आर्यिका रत्न' की उपाधि से अलंकृत किया इसके पूर्व किशनगंज (पू. बंगाल) में आपका चातुर्मास हुआ था। बाद में विजयनगर (आसाम) में आपका चातुर्मास हुआ। विजयनगर की मनोहर समवशरण रचना आपकी ही प्रेरणा का सुफल है।

ग्रंथ रचना एवं अनुवाद-

आपका स्वाथ्य निरंतर खराब रहता आया है फिर भी आप चारित्र पालन, पठन पाठन में सदा लीन रहती है। आपने योगसार-सूक्ति मुक्तावली श्लोकों का अन्वय अर्थ, सागार धर्मामृत संस्कृत, प्रमेय कमल मार्तन्ड आचारसार आदि का अनुवाद एवं नारी का चातुर्य, मेरा चिन्तवन, दश लक्षण धर्म, पार्श्वनाथ का पंचकल्याणक स्वतंत्र, प्रतिक्रमण पंजिका सटीक रचना आपके द्वारा लिखी जा चुकी हैं।

शिक्षण शिविर-

संवत २०२६ में परम पावन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर पर अष्टान्हिका पर्व पर एक धार्मिक शिक्षण शिविर आपके सानिध्य में आयोजित हुआ था जिसमें देश के सभी विद्वान आयें थे। सभी के द्वारा माताजी के इस सफल आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

संघस्थ त्यागीगण–

परम पूज्य इन्दुमतीजी, पू. सुपार्श्वमतीजी, पू. विद्यामतीजी, पू. सुप्रभामतीजी ब्रह्मचारिणी कु. प्रमिला आदि सभी त्यागीगण निरन्तर स्वाध्यायरत रहकर आत्म कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर हैं। मेरी ओर से सभी आर्यिका माताजी के चरण कमलों में वन्दामी।

गुरु चरण सेवक

स्वरूपचंद कासलीवाल

अजमेर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय सूची

प्रथम अधिकार

विषय	पृष्ठ	श्लोक
मंगलाचरण	१	१-२
धर्म का स्वरूप	२	१
जैन धर्म शरण है	३	२
शरीर का स्वरूप	४	३
इन्द्रिय जन्य दुःख	५	४
संसार से भयभीत भव्य का मुनि के समीप जाना	५	५-७
दीक्षा लेने योग्य पात्र	७	८
दीक्षा की विधि	९	९-१३
अट्ठाईस मूलगुण	११	१४
महाव्रतों के नाम	११	१५
अहिंसा महाव्रत	१२	१६
सत्य महाव्रत	१२	१७
अचौर्य महाव्रत	१२	१८
ब्रह्मचर्य महाव्रत	१३	१९
परिग्रह महाव्रत	१३	२०
समितियों के नाम	१४	२१
ईर्या समिति	१४	२२
भाषा समिति	१४	२३
एषणा समिति	१५	२४
आदान निक्षेपण समिति	१५	२५
व्युत्सर्ग समिति	१६	२६
इन्द्रियनिरोध	१६	२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्षु इन्द्रिय निरोध ..... १६ ..... २८
कर्ण ,, ,, ... १७ ..... २९
घ्राण ,, ,, ... १७ ..... ३०
रसना ,, ,, ... १८ ..... ३१
स्पर्शन ,, ,, ... १८ ..... ३२
आवश्यकों के नाम ..... १९ ..... ३३
समता ..... १९ ..... ३४
स्तुति ..... १९ ..... ३५
वंदना ..... २० ..... ३६
प्रतिक्रमण ..... २० ..... ३७
प्रत्याख्यान ..... २१ ..... ३८
कायोत्सर्ग ..... २१ ..... ३९
केशलोंच और उसका फल ..... २२ ..... ४०
केशलोंच कब करना चाहिये ..... २२ ..... ४१
नग्नत्व ..... २२ ..... ४२
स्नान त्याग ..... २३ ..... ४३
भूमि शयन ..... २३ ..... ४४
स्थित भोजन ..... २४ ..... ४५
अदन्त धावन ..... २४ ..... ४६
एक भुक्ति ..... २४ ..... ४७
मूल गुण धारण करने का फल ..... २५ ..... ४८
श्री नेमिनाथ की स्तुति ..... २६ ..... ४९
अन्तिम मंगलाचरण ..... २७ ..... ५०

दूसरा अधिकार

(समाचार नीति का वर्णन)

पार्श्वनाथ की स्तुति ..... २८ ..... १
समाचार नीति कहने की प्रतिज्ञा ..... २८ ..... २
समाचार का अर्थ ..... २९ ..... ३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार नीति के भेद..... २९ ..... ४
समाचार नीति के १० भेद..... २९ ..... ५
इच्छाकार ..... ३० ..... ६
मिथ्याकार ..... ३० ..... ७
तथाकार ..... ३० ..... ८
इच्छावृत्ति..... ३१ ..... ९
आशीर्वाद वचन ..... ३१ ..... १०
निषिद्धिका ..... ३१ ..... ११
आशी और निषिद्धिका कहां होनी चाहिए..... ३२ ..... १२
आपृच्छन ..... ३२ ..... १३
प्रतिप्रच्छन ..... ३३ ..... १४
आनिमंत्रण..... ३३ ..... १५
संश्रय के भेद ..... ३३ ..... १६
विनय संश्रय ..... ३४ ..... १७-१८
क्षेत्र ,, ... ३४ ..... १९-२०
मार्ग ,, ... ३५ ..... २१
सुखदुख ,, ... ३५ ..... २२-२३
सूत्र संश्रय में किस मुनि को किस प्रकार
बिहार करना ..... ३६ ..... २४-२७
अकेले बिहार का निषेध ..... ३७ ..... २८
अकेले बिहार करे से हानि..... ३८ ..... २९-३०
संघ में कैसे पहुँचना चाहिये ..... ३९ ..... ३१
आचार्य का लक्षण ..... ३९ ..... ३२-३३
उपाध्याय ,, ... ४० ..... ३४
प्रवर्तक ,, ... ४० ..... ३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थविर आचार्य और गणधर का लक्षण..... ४१ ..... ३६
संघ में जाकर क्या करना चाहिये..... ४१ ..... ३७-४१
आचार्य कर्त्तव्य व परीक्षा..... ४३ ..... ४२-४५
आचार्य से निवेदन व सूत्र संश्रय समाप्ति ..... ४४ ..... ४६-४८
विस्तार नीति का कथन ..... ४५ ..... ४९-५०
मुनियों की पाठ्य सामग्री ..... ४६ ..... ५१-५२
प्रायश्चित शास्त्र के पठनाधिकारी ..... ४७ ..... ५३-५५
आचार्य पद के योग्य मुनि ..... ४८ ..... ५६
भावना का स्वरूप..... ४८ ..... ५७
नमस्कार योग्य साधन ..... ४८ ..... ५८-५९
आचार्य वंदना का रूप ..... ४९ ..... ६०-६१
प्रतिवंदना का रूप..... ५० ..... ६२-६५
आशीर्वाद वचन ..... ५१ ..... ६६-६७
सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा ..... ५२ ..... ६८
पारस्परिक शुद्धि विचार ..... ५२ ..... ६९-७१
आर्यिकाओं का व्यवहार ..... ५३ ..... ७२-९२
समाचार नीतिका महत्त्व ..... ६१ ..... ९३
अरहनाथ स्तुति..... ६१ ..... ९४

तृतीय अधिकार
(दर्शनाचार का वर्णन)

अनंतानाथ स्तुति ..... ६३ ..... १
दर्शनाचार की प्रतिज्ञा ..... ६३ ..... २
सम्यग्दर्शन का स्वरूप ..... ६४ ..... ३
आप्त का स्वरूप..... ६४ ..... ४
आगम ,, ... ६४ ..... ५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्वार्थ का लक्षण	६५	६
द्रव्य का लक्षण	६५	७
गुण पर्याय का लक्षण	६६	८
जीव का लक्षण	६६	९-१०
जीव के भेद	६७	११-१२
पुद्गल का स्वरूप	६९	१३-१४
परमाणु की वंध व्यवस्था	७०	१५-१६
पुद्गलों के भेद	७१	१७-१९
धर्म द्रव्य	७४	२०
अधर्म द्रव्य	७५	२१
काल द्रव्य	७५	२२-२३
आकाश द्रव्य	७६	२४
पंचास्तिकाय	७६	२५
नौपदार्थ	७७	२६
पुण्य पाप का लक्षण	७७	२७-२८
आश्रव	७८	२९-३०
संवर	७९	३१-३२
निर्जरा	८०	३३-३५
संवर निर्जरा के कारण	८१	३६
वंध	८१	३७-४०
मोक्ष	८२	४१-४२
सात तत्त्व	८४	४३
मूढ़ता	८४	४४
लोक मूढ़ता	८५	४५
देव मूढ़ता	८५	४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाखंडी मूढ़ता ..... ८५ ..... ४७
वेद मूढ़ता ..... ८६ ..... ४८
प्रशमादि गुण ..... ८६ ..... ४९
अंगों के नाम ..... ८८ ..... ५०-५१
निःशंकित ..... ८८ ..... ५२-५४
निःकांक्षित ..... ९० ..... ५५-५६
निर्जुगुप्सा ..... ९० ..... ५७-५८
अमूढदृष्टि ..... ९१ ..... ५९-६०
उपगूहन ..... ९२ ..... ६१
स्थितिकरण ..... ९२ ..... ६२
वात्सल्य ..... ९३ ..... ६३-६५
प्रभावना ..... ९४ ..... ६६-६८
सम्यग्दर्शन के भेद ..... ९५ ..... ६९
सम्यक्त्व का अधिकारी ..... ९५ ..... ७०
सम्यक्त्व के ३ भेद ..... ९६ ..... ७१
दर्शनाचार की महिमा ..... ९७ ..... ७३-७४
पुष्पदन्त की स्तुति ..... ९८ ..... ७५

चतुर्थ अधिकार

(ज्ञानाचार का वर्णन)

अजितनाथ की स्तुति ..... १०० ..... १
ज्ञान का लक्षण ..... १०० ..... २-३
ऊर्ध्वतासामान्य का लक्षण ..... १०१ ..... ४
तिर्यग्सामान्य का लक्षण ..... १०१ ..... ५
विशेष के भेद ..... १०२ ..... ६-७
ज्ञान के भेद ..... १०२ ..... ८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतिज्ञान का लक्षण व भेद ..... १०३ ..... ९-३३
श्रुतज्ञान का लक्षण व भेद ..... ११२ ..... ३४-३७
अवधिज्ञान का लक्षण व भेद ..... ११४ ..... ३८-५१
मन: पर्यय का लक्षण व भेद ..... ११९ ..... ५२-५५
केवलज्ञान का लक्षण ..... १२१ ..... ५६-५८
प्रत्यक्ष परोक्ष ..... १२१ ..... ५८-५८
ज्ञानाचार का स्वरूप ..... १२३ ..... ६१
वाचना का लक्षण ..... १२३ ..... ६२
द्रव्यशुद्धि ..... १२३ ..... ६३-६४
क्षेत्र शुद्धि ..... १२४ ..... ६५-६९
कालशुद्धि ..... १२५ ..... ७०-८३
भावशुद्धि ..... १३० ..... ८४
सूत्राध्यान की विधि ..... १३० ..... ८५-८६
सूत्र का लक्षण ..... १३१ ..... ८८
विधि उल्लंघन का फल ..... १३२ ..... ८९
पृच्छना ..... १३२ ..... ९०
अनुप्रेक्षा आम्नाय ..... १३२ ..... ९१
धर्मोपदेश ..... १३२ ..... ९२
ज्ञानाचार का फल ..... १३३ ..... ९३-९४
जिनवाणी स्तुति ..... १३४ ..... ९५-९६
मल्लिनाथ स्तुति ..... १३५ ..... ९७

पांचवा अधिकार

(चारित्राचार का वर्णन)

संभवनाथ स्तुति ..... १३६ ..... १
चारित्र का लक्षण ..... १३६ ..... २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र के भेद ..... १३७ ..... ३-४

सामायिक ..... १३७ ..... ५

छेदोपस्थापना ..... १३८ ..... ६-७

हिंसा के भेद अहिंसा महाव्रत ..... १३८ ..... ८-२१

सत्यमहाव्रत ..... १४४ ..... २२-४१

अचौर्य महाव्रत ..... १५१ ..... ४२-४६

ब्रह्मचर्य महाव्रत ..... १५२ ..... ४७-६०

परिग्रह त्याग महाव्रत ..... १५७ ..... ६१-६८

महाव्रत की निरुक्ति ..... १६० ..... ६९

रात्रि भोजन त्याग ..... १६१ ..... ७०-७१

समिति का लक्षण ..... १६२ ..... ७२

ईर्या समिति ..... १६२ ..... ७३-७८

भाषा समिति ..... १६३ ..... ७९-९१

एषणा समिति ..... १६७ ..... ९२-१२९

आदान निक्षेपण ..... १७९ ..... १३०-१३२

व्युत्सर्ग समिति ..... १७९ ..... १३३-१३६

गुप्तियों का स्वरूप ..... १८१ ..... १३७-१४१

परिहार विशुद्धि चारित्र ..... १८२ ..... १४२-१४५

सूक्ष्म साम्पराय ..... १८४ ..... १४६

यथाख्यात चारित्र ..... १८४ ..... १४७

संयम का अर्थ ..... १८४ ..... १४८

चारित्र कल्पवृक्ष ..... १८५ ..... १४९

चारित्र की महिमा ..... १८५ ..... १५०

नेमिनाथ की स्तुति ..... १८६ ..... १५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठा अधिकार

(तप आचार का वर्णन)

अभिनन्दन स्तुति ..... १८७ ..... १
तपाचार कथन प्रतिज्ञा ..... १८७ ..... २
तप के भेद ..... १८८ ..... ३-४
अनशन ..... १८८ ..... ५-८
अवमोदर्य ..... १९० ..... ९-१०
वृत्ति परिसंख्यान ..... १९१ ..... ११-१२
रस परित्याग ..... १९२ ..... १३-१४
विविक्त शय्यासन ..... १९३ ..... १५-१६
कायक्लेश ..... १९३ ..... १७-१९
बाह्य तप की महिमा ..... १९४ ..... २०
अन्तरंग तप के भेद ..... १९५ ..... २१
प्रायश्चित्त तप व भेद ..... १९५ ..... २२-२४
आलोचना की विधि ..... १९६ ..... २५-४०
प्रतिक्रमण ..... २०२ ..... ४१
तद्भय ..... २०२ ..... ४२
विवेक ..... २०३ ..... ४३-४४
व्युत्सर्ग ..... २०३ ..... ४५
तप ..... २०४ ..... ४६
छेद ..... २०४ ..... ४७
मूल ..... २०४ ..... ४८
अपात्र मुनियों के भेद व रूप ..... २०५ ..... ४९-५२
परिहार व भेद ..... २०६ ..... ५३-६४
प्रायश्चित ..... २१० ..... ६५-६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनय तप ..... २११ ..... ६९-८५
वैयावृत्य ..... २१७ ..... ८६-९४
स्वाध्याय ..... २२० ..... ९५-९८
व्युत्सर्ग ..... २२१ ..... ९९
ध्यान ..... २२२ ..... १००
तप की महिमा ..... २२२ ..... १०१
मुनिसुव्रत स्तुति ..... २२२ ..... १०२

सातवां अधिकार
(वीर्याचार का वर्णन)

सुमतिनाथ स्तुति ..... २२४ ..... १
वीर्याचार का स्वरूप, परीषहनाथ ..... २२४ ..... २
क्षुधा परीषहजय ..... २२५ ..... ३
तृषा ,, ... २२६ ..... ४
शीत,, ... २२७ ..... ५
मल ,, ... २२७ ..... ६
उष्ण,, ... २२८ ..... ७
दंशमशक,, ... २२९ ..... ८
ईर्या-गमन,, ... २२९ ..... ९
रोग,, ... २३० ..... १०
शय्या,, ... २३१ ..... ११
तृण स्पर्श,, ... २३२ ..... १२
वध ,, ... २३२ ..... १३
अलाभ,, ... २३३ ..... १४
अरति,, ... २३४ ..... १५
अदर्शन,, ... २३५ ..... १६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री,, ... २३५ ..... १७
प्रज्ञा,, ... २३६ ..... १८
अज्ञान,, ... २३७ ..... १९
नाग्न्य,, ... २३८ ..... २०
आक्रोश,, ... २३८ ..... २१
सत्कार पुरस्कार,, ... २३९ ..... २२
याचना,, ... २४० ..... २३
निषद्या,, ... २४० ..... २४
वीर्याचार का स्वरूप ..... २४१ ..... २५
कुंथुनाथ स्तुति ..... २४२ ..... २६

आठवां अधिकार
(शुद्धियों का वर्णन)

पद्मप्रभ स्तुति ..... २४३ ..... १
शुद्धियों के नाम व प्रयोजन ..... २४३ ..... २-३
भावशुद्धि ..... २४४ ..... ४-५
वाह्य शुद्धि ..... २४५ ..... ६-९
कायशुद्धि ..... २४६ ..... १०-११
ईर्याशुद्धि ..... २४६ ..... १२-१३
भिक्षा शुद्धि ..... २४७ ..... १४-१८
उद्गम दोष ..... २४८ ..... १९-३४
उत्पादन दोष ..... २५५ ..... ३५-४४
एषणा समिति के दोष ..... २५८ ..... ४५-५३
संयोजना दोष ..... २६१ ..... ५४-५७
आहार का प्रयोजन ..... २६३ ..... ५८-६०
अंतराय ..... २६४ ..... ६१-६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनय शुद्धि ..... २६७ ..... ६९-७६
शयनासन शुद्धि ..... २७० ..... ७७-७८
व्युत्सर्ग शुद्धि ..... २७० ..... ७९-८२
शुद्धि की महिमा ..... २७२ ..... ८३
वासुपूज्य स्तुति ..... २७२ ..... ८४

नौवा अधिकार

(आवश्यकताओं का वर्णन)

सुपार्श्वनाथ स्तुति ..... २७३ ..... १
आवश्यक का लक्षण और भेद ..... २७३ ..... २-४
नाम निक्षेप ..... २७४ ..... ५
स्थापना निक्षेप ..... २७५ ..... ६
द्रव्य निक्षेप ..... २७५ ..... ७-१६
भाव निक्षेप ..... २७८ ..... १७-१९
सामायिक का अर्थ व विशेष ..... २७९ ..... २०-२४
चतुर्विंशतिस्तव ..... २८१ ..... २५
नाम स्थापना आदि का कथन ..... २८२ ..... २६-३२
ईर्यापथ शुद्धि ..... २८३ ..... ३३-३४
कायोत्सर्ग की विधि ..... २८४ ..... ३५-३९
कायोत्सर्ग का नियम ..... २८६ ..... ४०-४३
भक्ति का क्रम व कार्य ..... २८७ ..... ४४-८०
कायोत्सर्ग के दोष ..... २९८ ..... ८१-८५
आसन ..... ३०० ..... ८६-८७
वंदना के दोष ..... ३०९ ..... ८८-९२
पंच परमेष्ठी की स्तुति ..... ३०४ ..... ९३-९७
रत्नत्रय स्तुति ..... ३०६ ..... ९८-१००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म स्तुति ..... ३०६ ..... १०१
चन्द्रप्रभ स्तुति ..... ३०६ ..... १०२

दसवाँ अधिकार

(ध्यान का वर्णन)

शीतल नाथ स्तुति ..... ३०८ ..... १
मुनिपद प्रशंसा ..... ३०८ ..... २
नवीन आचार्य को भार समर्पण ..... ३०९ ..... २-५
अनियत विहार से लाभ ..... ३११ ..... ६
सल्लेखना का समय ..... ३१२ ..... ८-९
ध्यान की सामग्री ..... ३१४ ..... १०-११
ध्यान का लक्षण व भेद ..... ३१४ ..... १२
आर्त्तध्यान के ४ भेद ..... ३१५ ..... १३-१७
आर्त्तध्यान की निरुक्ति व फल ..... ३१८ ..... १८-१९
रौद्रध्यान के भेद ..... ३२० ..... २०-२१
रौद्रध्यान की निरुक्ति और फल ..... ३२९ ..... २२-२३
उत्तम ध्यान का क्षेत्र व ध्याता ..... ३२२ ..... २४-२७
धर्मध्यान के भेद ..... ३२४ ..... २८-३२
बारह अनुप्रेक्षा ..... ३२८ ..... ३३-४४
धर्मध्यान की निरुक्ति व फल ..... ३३६ ..... ४५-४६
बारह अनुप्रेक्षा ..... ३२८ ..... ३३-४४
धर्मध्यान की निरुक्ति व फल ..... ३३६ ..... ४५-४६
शुक्लध्यान के भेद ..... ३३७ ..... ४७-५३
आराधक व आराधना विधि ..... ३४२ ..... ५४-६०
समाधि मरण के भेद व स्वरूप ..... ३४६ ..... ६१
समाधि मरण की सफलता ..... ३४७ ..... ६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेवांस नाथ स्तुति ..... ३४७ ..... ६३

ग्यारहवां अधिकार

(जीत कर्म प्ररूपण अधिकार)

विमल नाथ स्तुति ..... ३४९ ..... १
जीव कर्म प्ररूपण की प्रतिज्ञा ..... ३४९ ..... २
बीस प्ररूपणाएं ..... ३५० ..... ३
जीव समास ..... ३५० ..... ४-६
योनियों के भेद ..... ३५२ ..... ७-१३
नरकादि में अवगाहना आदि ..... ३५५ ..... १४-२१
द्वीप समुद्र ..... ३६३ ..... २२-३१
जीवों की अवगाहना ..... ३६५ ..... ३२-४१
कुल कोडि ..... ३६९ ..... ४२-४५
जीवों की आयु ..... ३७० ..... ४६-६९
गुण स्थान ..... ३८० ..... ७०-७२
पर्याप्ति ..... ३८२ ..... ७३-७७
प्राण ..... ३८४ ..... ७८-७९
संज्ञा ..... ३८५ ..... ८०
मार्गणा ..... ३८६ ..... ८१-८२
गति मार्गणा ..... ३८६ ..... ८३
इद्रिय,, ... ३८७ ..... ८४-८९
काय ,, ... ३८९ ..... ९०-९८
योग ,, ... ३९२ ..... ९९-१००
वेद ,, ... ३९३ ..... १०१-१०३
कषाय,, ... ३९४ ..... १०४
ज्ञान संयम ,, ... ३९५ ..... १०५-१०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन ,, ... ३९६ ..... १०७-११०

लेश्या ,, ... ३९७ ..... १११-११२

सम्यक्त्व ,, ... ३९९ ..... ११३-११५

संज्ञि ,, ... ४०० ..... ११६

आहार ,, ... ४०० ..... ११७

उपयोग ..... ४०० ..... ११८

जीवों की उत्पत्ति ..... ४०१ ..... ११९-१३३

प्ररूपणाओं का गुण स्थान से सम्बन्ध ..... ४०६ ..... १३४-१५६

जीवों की न्यूनाधिकता ..... ४१४ ..... १५७-१६७

कर्मों का वर्णन ..... ४१७ ..... १६८-१८८

सिद्ध अवस्था ..... ४२७ ..... १८९

अनंत नाथ स्तुति ..... ४२७ ..... १९०

बारहवां अधिकार

(शील और गुणों का वर्णन)

धर्मनाथ स्तुति ..... ४२९ ..... १

शील के अठारह हजार भेद ..... ४२९ ..... २-७

चौरासी लाख उत्तर भेद ..... ४३१ ..... ८-१८

संख्याप्रस्तरादि ..... ४३५ ..... १९-२६

शील गुणों का फल ..... ४३७ ..... २७

शांतिनाथ स्तुति ..... ४३८ ..... २८

जैन शासन का प्रशंसा ..... ४३८ ..... २९

आचार्य मेघचन्द्र स्तुति ..... ४३९ ..... ३०-३१

श्री वीरनंदि स्वामी ..... ४४० ..... ३२-३३

ग्रन्थ प्रमाण संख्या ४४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमहावीराय नमः

ॐ

महाकवि श्री वीरनन्दि प्रणीतः

卐 आचारसारः 卐

मंगलाचरण

लक्ष्मीं वीरजिनेश्वरः पदनतानंतामराधीश्वरः
पद्मासद्मपदांबुजः परमचिल्लीलात्ततत्त्वव्रजः।
विद्यानद्युदयाचलोऽमितबलः शान्ताखिलैनोमलो
दद्यान्नस्त्रिजगन्नतिं गुणमणिव्रातोज्ज्वलालंकृतिम्।।१।।

अन्वयार्थ—पदनतानंतामराधीश्वरः = चरणों में झुके हुये हैं अनन्त देवों के अधीश्वर जिसके, पद्मासद्म पदांबुजः=लक्ष्मी का स्थान हैं चरण कमल जिसके, परमचिल्लीलात्ततत्त्वव्रजः = परम चैतन्य लीला से प्राप्त किया है तत्व के समूह को जिसने, विद्यानद्युदयाचलः = विद्या रूपी नदी के उदय के लिए पर्वत समान, अमितबलः = अनन्तबल के धारी। शांताखिलैनोमलः = शांत हो गये हैं अखिल पाप मल जिसके ऐसे; वीरजिनेश्वरः = महावीर भगवान। नः = हमारे लिये। गुणमणिव्रातोज्जवलालंकृतिं = गुणरूपी मणियों के समूह से अलंकृत। त्रिजगन्नतिं = तीनों जगत में पूज्यनीय। लक्ष्मीं = लक्ष्मी (मुक्तिरूपी लक्ष्मी) को। दद्यात् = देवें।

महावीर भगवान के चरण कमलों में तीन जगत के समस्त देव नमस्कार करते हैं; जिनके चरण कमल के प्रसाद से परम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है; जो परम चैतन्य लीला के विलास को प्राप्त हैं, ज्ञानरूपी नदी का निर्गमन इसी हिमाचल (उदयाचल) से होता है, जो अनन्तज्ञान के धारी हैं, अखिल कर्म रूपी रज से रहित हैं, वह वीर भगवान हमको जगत्पूज्य रत्नत्रयरूपी गुणों से अलंकृत केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्रदान करें।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनेयसस्योत्पलपुण्यवारि
प्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्रः।
श्री वासुपूज्यो व्रतिवंद्यपादो,
वरप्रदः स्तान्मम योगिवर्गः।।२।।

अन्वयार्थ–विनेयसस्योत्पलपुण्यवारिप्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्रः = शिष्यरूपी धान्य वा कमल के लिये पवित्र जल का सिंचन करने वाले आनन्द मेघ अथवा = भव्य रूपी कमलों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा, व्रतिवंद्यपादः = व्रतियों के द्वारा वंदनीय हैं चरण जिसके ऐसे। योगिवर्गः = योगिवर्ग। श्री वासुपूज्यः = श्री वासुपूज्य भगवान। मम = मेरे लिये। वरप्रदः = वर को देने वाले। स्यात् = हों।

भावार्थ–शास्त्र के प्रारम्भ में निर्विघ्नशास्त्र की समाप्ति के लिये सर्वप्रथम मंगलाचरण किया जाता है। इसलिये इस ग्रन्थ में आचार्य ने इन दो श्लोकों में मंगलाचरण किया है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा मंगलाचरण छह प्रकार का है। उन छहों में इस ग्रन्थ में भाव मंगल की मुख्यता है। प्रथम श्लोक में महावीर और द्वितीय में वासुपूज्य को नमस्कार किया है। सम्बन्धाभिधेय, इष्टप्रयोजन और शक्य अनुष्ठान वाले ही ग्रन्थ आदरणीय होते हैं, इसलिये आचार्य इस ग्रन्थ में प्रतिपाद्य विषय को प्रतिपादन करते हैं जिसका सम्बन्धाभिधेय इस ग्रन्थ में रहेगा।।२।।

धर्म का स्वरूप

संसारनीराकरमुत्तरीतुं
तरिश्चरित्रं गुणरत्नपात्रम्।
सद्दर्शनज्ञानसमेतमेत-
त्तत्पक्षलक्ष्माहमिहाऽस्य वक्ष्ये।।१।।

अन्वयार्थ–संसारनीराकरम् = संसाररूपी समुद्र से। तरितुं = तिरने के लिये। तरिः = नौकातुल्य। गुणरत्नपात्रं = गुणरूपी रत्नों का पात्र। सम्यग्दर्शनज्ञानसमेतं = सम्यदर्शन और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्ज्ञान से युक्त। एतत् = यह । चरित्रं = चारित्र है। अस्य = इस चारित्र का। तत्पक्षलक्ष्मं = श्रेष्ठळक्षण। इह = इस ग्रन्थ में। अहं = मैं। वक्ष्ये = कहूँगा।

भावार्थ—इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के अविनाशी सम्यकचारित्र का वर्णन है। वह सम्यकचारित्र संसाररूपी समुद्र से भव्य जीवों को पार करने के लिये नौका के समान है। उस चारित्र का श्रेष्ठ लक्षण वर्णन करने की आचार्य ने प्रतिज्ञा की है।।१।।

जैनधर्म शरण है

देहव्यूहमहीजराजिभयदे दुखावलीश्वापदे,
विश्वाशांतिकरालकालदहने शुष्यन्मनीषावने।
नानादुर्जयमार्गदुर्गमतमे दृङ्मोहिनां देहिनां
जैनं दर्शनमेकमेव शरणं जन्माटवीसंकटे।।२।।

अन्वयार्थ—देहव्यूहमहीजराजिभयदे = शारीरिक दुःखरूपी वृक्षों की पंक्तियों से भयंकर। दुखावलीश्वापदे = दुखों के समूहरूपी हिंसक प्राणियों का स्थान। विश्वाशांतिकरालकालदहने = संसार की अशांति रूपी प्रलयकाल की अग्नि है जिसमें। शुष्यन्मनीषावने = शुष्क है बुद्धिरूपी भूमि जिसमें। नानादुर्जयमार्गदुर्गमतमे = अनेक प्रकार की दुर्जयरूपी मार्ग से है जिसमें। शुष्यमनीषावने = शुष्क है बुद्धिरूपी भूमि जिसमें। नानादुर्जयमार्गदुर्गमतमे = अनेक प्रकार की दुर्जयरूपी मार्ग से दुर्गम तम ऐसी। जन्माटवीसंकटे = जन्म रूपी भयानक अटवी में। दृढ़ मोहिनां = मिथ्यादृष्टि। देहिनां = प्राणियों के लिये। एकं-एक। जैनं=जैन। दर्शन = दर्शन। एव = ही। शरणं=शरण हैं।

भावार्थ—आचार्यवर्य ने संसार की उपमा अटवी से दी है। जिस प्रकार अटवी अनेक प्रकार के वृक्षों की पंक्तियों से भयंकर होती है। सिंह आदि हिंसक पशुओं से व्याप्त होती है। विकराल दावानल से संतप्त होती है। स्थल-स्थल पर भूमि शुष्क रहती हैं। अनेक प्रकार के मार्गों से युक्त होती है ऐसी भयंकर अटवी में दिग्भ्रांत हुये प्राणियों के लिये जैसे मार्ग दर्शक राहगीर शरण होता है, उसी प्रकार प्राणियों के शरीर समूह तो जिसमें वृक्ष हैं, दुखों का समूह सिंहादि हिंसक पशु है। सांसारिक मानसिक अशांति, विकराल प्रलयकाल की अग्नि है, शुष्क बुद्धि भूमि है, अनेक

१. पक्षो मासार्धके गेह पार्श्वसाध्यविशेषयोः। केशादेः परतो वृन्दे बले सखिसहाययोः।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार के एकांतवादियों के द्वारा कथित दुर्जय (परस्पर निरपेक्षनय) जिसमें अनेक मार्ग हैं, ऐसी संसार अटवी ने दिग्भ्रांत (सम्यग्दर्शन का नहीं होना ही दिग्भ्रान्ति है) होकर भ्रमण करने वाले संसारी प्राणियों के लिये एक जैन धर्म ही शरण है। अन्य कोई शरण नहीं है अर्थात् संसार अटवी से प्राणियों को निकालने के लिये जिनधर्म को छोड़कर अन्य कोई समर्थ नहीं हैं।।२।।

शरीर का स्वरूप

कायोऽयं रसरक्तमांसविसरो मेदोऽस्थिमज्जव्रजो
वीभत्सो विततांत्यधातुरुदितः शुक्रार्तवाभ्याँ क्षयी।
जीवाश्लेषवशात्तकान्तिरखिलक्लेशैकनौडो जडः
संगोऽनेन सतां दुनोति हृदयम् मोदोऽत्र लज्जास्पदम्।।३।।

अन्वयार्थ—अहं = यह। कायः = शरीर। रस रक्तमांसविसरः = वीर्य रक्त मांस से भरा है मेदोऽस्थिमज्जव्रजः=भेद, अस्थि, मज्जा का समूह है, वीभत्सः = ग्लानि कारक है, विततांत्यधातुः = सप्तधातु से निर्मित है, शुक्रार्तवाभ्यां = वीर्य और रज के द्वारा, उदितः = उत्पन्न है, क्षयी = क्षयशील है, जीवाश्लेषवशात्तकान्तिः = जीव के संयोग से ही देदीप्तमान है। अखिलल्केशैकनीड़ः = सारे क्लेशों का एक घोंसला है। जडः=अचेतन है। अनेन = इस शरीर के साथ। संगः = सहवास । संतां = सज्जनों के। हृदयं = हृदय को। दुनोति = दुखी करता है। ऐसे। अत्र = इस शरीर में। मोदः = हर्षमानना। लज्जास्पदम् = लज्जा का स्थान है।

भावार्थ—जिस शरीर में अनादिकाल से यह आत्मा निवास कर रही है, वह शरीर हाड़, मांस, खून, मेद, मज्जा, वीर्यादि सप्त धातु से निर्मित है। माता का रज और पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। नाशवान है, ग्लानि कारक है, मलमूत्र की थैली है, समस्त दुःखों का घर है, अर्थात् अनंत दुखों की खान शरीर है जिसकी संगति से सम्यग्दृष्टियों का हृदय खेद खिन्न होता है। जब तक वह शरीर जीव सहित रहता है तब तक ही सुन्दर प्रतीत होता है। आत्मा के निकलते ही अमनोज्ञ और घृणास्पद हो जाता है। ऐसे उस अचेतन शरीर में हे आत्मन्! यदि तू आनंद मनाता है, आत्मानुभूति को छोड़कर इस पूतिगंध शरीर में रमण करता है तो यह बड़ी लज्जा की बात है।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रिय जन्य दुःख

चेतस्त्वं किमिति व्रजस्यतितरां, भ्रान्तिस्तवात्रास्ति किं
मोहोत्पादकमिन्द्रजालललिते कान्तैककान्तेऽक्षजे
सौख्यं ते विरसेऽभिमानसरसे कान्ताश्च तद्दर्पण-
प्रोल्लासिप्रतिविंबड़ँवरभराः संमोहदाः केवलम् ।।४।।

अन्वयार्थ—इन्द्रजालललिते = इन्द्रजाल के समान सुन्दर। अत्र = इस। कान्तैककान्ते = कान्ताजनित सुख से मनोज्ञ। विरसे = विरस। अभिमानसरसे = कल्पना से मनमोहक ऐसे। अक्षजे = इन्द्रियों से उत्पन्न सुख में। तव = तेरी। भ्रान्तिः = भ्रान्ति। अस्ति = है। इति = इसलिये। चेतः = हे मन। त्वं = तू। अतितरां = अत्यंत। मोहोत्पादकं = मोहोत्पादक। सौख्यं = सौख्य को। व्रजसि = प्राप्त हो रहा है। ते = तेरे। तद्दर्पणप्रोल्लासिप्रतिविवंडंबरभराः = मन रूपी दर्पण में प्रोल्लासित प्रतिविम्बडंवर भारवाली है। कान्ताः = स्त्रियां। केवलं = केवल। संमोहदाः = संमोहन करने वाली हैं।

भावार्थ—हे आत्मन्! तुझे इन्द्रियों से उत्पन्न हुये सुख इन्द्रजाल के समान सुन्दर दीखते हैं, परन्तु वास्तव में ये सुन्दर नहीं हैं, दुखद हैं। उनमें तुझे सुख की केवल भ्रान्ति हो रही है।।४।।

संसार से भयभीत भव्य का मुनि के समीप जाना

मत्त्वेवं भवदेहभोगजनितक्लेशाग्निहृत्प्लोषण-
स्तच्छान्त्यै प्रगुणस्तदक्षयपदानन्दामृतान्वेषणः
शुश्रुषाश्रवणादिपुण्यधिषणः सद्भव्यताभूषण-
श्चार्वी चारुपरीक्षतान्यसमयाप्ताचारसद्दूषणः।।५।।

अन्वयार्थ—एवं = ऐसा। मत्वा = मानकर। तच्छान्त्यै = उस सांसारिक दुखों को शांत करने के लिये। भवदेहभोगजनितक्लेशाग्निहृत्प्लोषणः = संसार शरीर और भोगों से उत्पन्न क्लेशरूपी अग्नि से हृदय जल रहा है जिसका। प्रगुणः = सरल। तदक्षतपदानन्दामृतान्वेषणः =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस अक्षय पद के आनन्दामृत का अन्वेषण करने वाला। शुश्रू षाश्रवणादिपुण्यधिषणः = शुश्रूषा श्रवणादि से पवित्र बुद्धि वाला। सद्भव्यताभूषणः = सद्भव्यता का भूषण। चारुपरीक्षितान्य-समयाप्ताचारसद्दूषणः = भली प्रकार परिचित है अन्य धर्मों में कथित आचार (चारित्र) के दूषण जिसने। चार्वी=श्रेष्ठ बुद्धि वाला भव्य।

युक्त्या युक्तं जिनोक्तं जिनवृजिनजिनं दत्तहस्तावलंबं
जन्मोदन्वन्निमज्जद्गुरु दुरितभरार्त्ताङ्गिनां तद्दयाढयम्।
धर्मं स्वर्मोक्षशर्मप्रदमपि मुदितः प्राप्य दुःप्रापमीशं
प्रीत्यै प्रीत्यर्त्तिपापप्रभवभवकरागारचारातिभीरुः।।६।।

अन्वयार्थ–युक्त्या = युक्ति से। युक्तं = युक्त। जिनवृजिनजिनं = काम और क्लेश को जीतने वाला। जन्मोदन्वन्निमज्जग्दुरु दुरित भरार्ताङ्गिनां = संसार रूपी समुंद्र में डूबने वाले गुरुतर पाप के भार से दुखी प्राणियों को। दत्तहस्तावलंबं = दिया है हस्ताबलम्बन जिसने। तद्दयाढ्यम् = दया से युक्त। स्वर्मोक्षशर्मप्रदं = स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को देनेवाले। दुःप्रापं = बड़ी कठिनता से प्राप्त। अपि = और। ईशं = ईश ऐसे। जिनोक्तं = जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित। धर्मं = धर्म को। प्राप्य करके। मुदितः = जो हर्षिता हुवा है। तथा प्रीत्यै = के लिवे। प्रीत्यर्त्तिपापप्रभवभव रागारचारातिभीरूः = रागद्वेषरूपी पाप से उत्पन्न संसार रूपी काराग्रह के संचार से भयभीत।

सन्नाथं परिपूर्णनिर्मलकलं सल्लक्ष्मलक्ष्मीकुलं
दोषासंगमनंगराजविजयं नित्यं सुवृत्तोदयम्।
स्वान्तध्वान्तविनाशिनं कुवलयानन्दामृतस्यन्दिनं
प्रीत्योपेत्य मुनीन्द्रचन्द्रमपरं तत्पादसेवापरः।।७।।

अन्वयार्थ–तत्पादसेवापरः = मुनियों के चरणों की सेवा करने में तत्पर ऐसा भव्य। सन्नाथं = सज्जन पुरूषों का स्वामी। चन्द्रपक्षे = नक्षत्रों का स्वामी। परिपूर्णनिर्मलकलं = परिपूर्ण और निर्मल है शरीर जिसका, चन्द्रपक्षे परिपूर्ण निर्मल है कलाओं का समूह जिसका,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लक्ष्मलक्ष्मीकुलं = समीचीन लक्षणवाली लक्ष्मी से व्याप्त, (चन्द्र पक्षे) नक्षत्रों के लक्षणवाली लक्ष्मी से व्याप्त, दोषासंगमं = दोषों के संगम से रहित, (चन्द्रपक्षे) = दोषा अर्थात् रात्रि के संग से सहित, अनंगराजविजयं = कामदेव को जीतने वाला परन्तु चन्द्रमा अनंगराज विजयी नहीं है, नित्यं = निरंतर, सुवृतोदयम् = समीचीनमहाव्रतादि के उदय सहित, (चन्द्रपक्षे) सुव्रतोदयी, गोलाकार, स्वान्तध्वान्तविनाशिनं = आंतरिक अज्ञान अंधकार का नाशक (चन्द्रपक्षे) आन्तरिक अंधकार का नाशक, कुवलयानन्दामृतस्यन्दिनं = पृथ्वीमंडल पर आनन्दामृत के प्रवाहक, (चन्द्रपक्षे) रात्रिविकाशी कमलों को अमृतानंद से सींचने वाला अर्थात् उनको विकसित करने वाला ऐसे अपरं = अपूर्व, सुनीन्द्रचन्द्रम् = मुनिचन्द्रमा के, प्रीत्या = प्रीति से, उपेत्यं = समीप जाकर।

भव्य के द्वारा दीक्षा हेतु निवेदन

नत्वा तमीशं विनतार्त्तिनाशं
विज्ञापितात्मीवमनोगतार्थः।
संगानपेक्षां मम देहि दीक्षां
दयामयीं भो! यतिवल्लभेति।।८।।

अन्वयार्थ–तं = उस, विनत्तार्त्तिनाशं = शिष्यों के दुख के नाशक मुनिपुंगव को, नत्वा = नमस्कार कर, विज्ञापितात्मीयमनोगतार्थः = विज्ञापित किया है स्व मनोगत अभिप्राय जिसने ऐसा भव्य निवेदन करता है कि, भो = हे यतिवल्लभ = गुरुदेव, मम = मुझको, संगानपेक्षां = परिग्रह की अपेक्षा न रखने वाली, दयामयीं = दयामयी, दीक्षां = दिगम्बरी दीक्षा, देहि = दीजिये।

भावार्थ–यह संसार असार है, इन्द्रिय जन्य संसारिक सुख इन्द्रजाल के समान है, मोह का उत्पादक है, कल्पना मात्र से रम्य और सरस प्रतीत होता है। वास्तविक विचार किया जाय तो यह सांसारिक भोग विरस है। यह स्त्रियों का समूह दर्पण में प्रतिबिम्बित हुये के समान निस्सार है। आत्मीय गुणों का घातक है, जिसने विचार किया है तथा संसार शरीर और भोगों से उत्पन्न हुई क्लेश रूपी अग्नि से जिसका हृदय सतप्त है, जो अक्षय, अविनाशी पदरूपी अमृतानंद का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वेषण करने का इच्छुक है, शुश्रूषा श्रवण आदि गुणों से जिसकी बुद्धि पवित्र हो गयी है, श्रेष्ठ भव्यता का जो भूषण है, जिसने अन्य मिथ्यादृष्टियों के चारित्र के दूषण को जान लिया है ऐसा भव्यप्राणी सांसारिक दुखों को शांत करने के लिए प्रत्यक्ष और अनुमान से अखंडित, काम क्रोधादि क्लेशों का नाशक, संसार समुद्र में डूबे हुये महापाप के भार से दुखी प्राणियों को हस्तावलंबन देकर निकालने वाला, स्वर्गमोक्ष का दायक, दुःप्राय्य जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित जिनधर्म को प्राप्त करता है। तदनंतर रागद्वेष से उत्पन्न संसाररूपी काराग्रह से भीरू वह भव्य, मुनिपुङ्गव के समीप जाता है, और सत्पुरुषों के स्वामी, निर्मल शरीर के धारक, सुलक्षणों से लक्षित, निर्दोष चारित्र के धारक, काम सुभट के विजेता, मानसिक अज्ञान अन्धकार के नाशक, अपने पवित्र वचनामृत के द्वारा पृथ्वीतल को आनन्दित करने वाले, शिष्यों के दुःखों के नाशक, मुनिचन्द्र को नमस्कार कर, अपनी मनोगत भावना को प्रकट करता हुआ कहता है कि ये यतिवल्लभ! आप मुझे दयामयी निर्ग्रन्थ दीक्षा दीजिये। ॥५, ६, ७, ८॥

दीक्षा योग्य पात्रता

प्राज्ञेन ज्ञातलोकव्यवहृतिमतिना तेन मोहोज्झितेन
प्राग्विज्ञातः सुदेशो द्विजनृपतिवणिग्वर्णवर्ण्योङ्गपूर्णः।
भूभृल्लोकाऽविरुद्धः स्वजनपरिजनोन्मोचितो बीतमोह-
श्चित्रापस्मारराेगाद्यपगत इति च ज्ञाति संकीर्त्तनाद्यैः।।९।।

अन्वयार्थ–सुदेशः = योग्यदेशीय, द्विजनृपतिवणिग्वर्णवर्ण्यः = ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक वर्ण में श्रेष्ठ, अंगपूर्णः = परिपूर्ण अंगयुक्त यह नवीन दीक्षार्थी, भूभृल्लेकाऽविरुद्धः=राजा और लोक से अविरुद्ध, स्वजनपरिजनोन्मोचितः = स्वजन परिजन से उन्मोचित, वीतमोहः=वीतमोहः=वीतमोही और, चित्रापस्मारराेगाद्यपगतः = चित्र, अपस्मार (मृगी) आदि रोगों से रहित है, इति = इस प्रकार, ज्ञातिसंकीर्तनाद्यैः = उसकी जाति के संकीर्तनादि द्वारा, प्राक् = पूर्व में, मोहोज्झितेन = मोर्हत्त रहित, प्राज्ञेन = बुद्धिमान! ज्ञातलोकव्यवहृतिभतिना = लोक व्यवहार के जानने वाले आचार्य द्वारा, विज्ञातः जान लिया जाता है।

भावार्थ–जो दीक्षार्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग का है वही दीक्षा योग्य है। शूद्रवर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के मानव दीक्षा के योग्य नहीं हैं। जिसका अंग खण्डित नहीं है, जो राजा और लोक से अविरूद्ध है, परिवार के लोगों से अनुमति लेकर आया है, इस प्रकार उसकी जाति आदि के द्वारा प्रज्ञाशील आचार्य प्रथम उसकी शुद्धि जानते हैं।।१९।।

दीक्षा विधि

ततस्तदाज्ञामृतपानपुष्टो निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्टः।
बाह्यान्तरंगं परिहृत्य संगं शस्ते मुहूर्ते स्थिरलग्नपूर्त्ते।।१०।।
प्रीत्या चैत्यगृहादि दक्षिणदिशि क्षोणीतले प्रासुके
प्राचीनसन्मुखमुत्तरास्यमथवा कृत्वा सरोजासनम्।
आसीनश्चिकुरोत्करं भवलतां वा दक्षिणावृत्तितः
प्रोत्पाट्याविकृतिं जगत्रयनतिं स्वीकृत्य जाताकृतिम्।।११।।
प्रऽदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्रगेहे प्रविश्य जैनप्रतिबिम्बपार्श्वे।
रम्ये स्थले वा प्रतिपाज्ञयैव क्रियां विधायात्तमहाव्रतादि।।१२।।
स्थित्वा ततः प्रमुदितो गुरुवामपार्श्वे
श्रुत्वा प्रतिक्रमणमीऽितयोगिवर्गः।
योऽयं जिनोक्तविधिनाऽधिगतागमार्थ-
श्चारित्रसंपदमुदंचति तां गुणालीम्।।१३।।

अन्वयार्थ–ततः = तदनंतर, तदाज्ञामृतपानपुष्टोः = उस आचार्यवर्य के आज्ञारूपी अमृतपान से पुष्ट, निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्टः = बन्धरहित गन्ध जाति के हाथी के समान प्रहर्षित दीक्षार्थी, वाह्यान्तरंगं=वाह्य और अभ्यंतर, संगं=परिग्रह को, परिहृत्य=छोड़कर, स्थिरलग्न पूर्त्ते = स्थिर लग्न से परिपूर्ण, प्रशस्ते =प्रशंसनीय, मुहूर्त्ते = मुहूर्त में, प्रीत्या=प्रीति से, चैत्यगृहादिदक्षिणदिशि = चैत्य गृहादि की दक्षिण दिशा में, प्रासुके = प्रासुक, क्षोणीतले = पृथ्वी तलपर, प्राचीसंमुखं = पूर्व में मुख अथवा, उत्तरास्यं = उत्तर मुख, कृत्वा = करके, सरोजासनं = पद्मासन से, आसीनः=बैठा हुआ। दक्षिणावृत्तितः= दक्षिण आवृत्ति से, भवलतां =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार बल्लरी के समान, चिकुरोत्करं = केशों के समूह को, प्रोत्पाट्य = उखाड़कर, जगत्त्रयनतिं = तीन जगत में पूज्यनीय, अविकृतिं = अविकारी, जाताकृति = यथाजात आकृति को, रचीकृत्य = स्वीकार करके, प्रदक्षिणी कृत्य = प्रदक्षिणा देकर, जिनेन्द्रगेहे=जिन मन्दिर में, प्रविश्य = प्रवेश करे, फिर जिनप्रतिबिम्बपार्श्वे = जिन प्रतिबिम्ब के पार्श्व भाग में, रम्ये = रमणीय, स्थले = स्थल पर, व्रतिपाज्ञया = आचार्य की आज्ञा से, क्रियां = क्रिया को, विधाय = करके, आत्तमहाव्रतादिः = महाव्रती बने। ततः = तदनन्तर, प्रमुदितः = हर्षित होता हुआ, गुरुवायपार्श्वे = गुरु के वाम पार्श्व में, स्थित्वा = बैठकर, प्रतिक्रमणं = प्रतिक्रिमण को, श्रुत्वा = सुनकर, ईडित योगिवर्गः = स्तुति की है योगिवर्ग की जिसने, जिनोक्तविधिना = जिनेंद्र कथित विधान से, अधिगतार्थः= जान लिया है अर्थ को जिसने ऐसा, यः = जो, अयं = यह भव्य मुनि। तां = उस, गुणालीं = २८ मूलगुणरूप, चारित्रसंपदं = चारित्ररूपी संपदा को, उदयति = प्राप्त करता है।

भावार्थ—आचार्य की सम्मति पाकर आचार्य की आज्ञारूपी अमृतपान से पुष्ट होता हुवा बंध से छुटे हुये गंध सिन्धुर के समान अत्यन्त हर्षित होता हुआ वह दीक्षार्थी शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न में चैत्यगृहादि की दक्षिण दिशा में प्रासुक भूमि पर पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके परिग्रह का त्यागकर पद्मासन से बैठ जाय। तदनंतर संसार की लतारूप शिर के केशों को दाढी और मूंछ के बालों को दक्षिणावृत्ति से उखाड़ कर फेंक देवे! उसके बाद तीन जगत में पूज्यनीय हृदय के अविकार को प्रकट करने वाले यथाजात (दिगम्बर) रूप को धारण करे।

दिगम्बर मुद्रा के धारण करने के बाद तीन प्रदक्षिणा देकर जिन मन्दिर में प्रवेश कर जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करे तथा जिनेन्द्र भगवान के विम्ब के पार्श्व भाग में रमणीय स्थलपर बैठकर आचार्यवर्य की आज्ञा से विधिपूर्वक क्रिया विधि को धारण करके महाव्रत को ग्रहण करे। तदनंतर जिनेन्द्र के द्वारा कथित विधि से आगम के अर्थ को जानने वाला वह नवीनसाधु अत्यन्त हर्षित मन से गुरु के वाम पार्श्व भाग में बैठकर प्रतिक्रमण सुने तथा अपने संघ के साधुओं को नमस्कार करके शास्त्रों में कथित चारित्र सम्पदा को स्वीकार करे॥१०/११/१२/१३.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधु के २८ मूलगुणों का वर्णन

युक्ताः पंचमहाव्रतैः समितयः पंचाक्षरोधाशयाः
पंचावश्यकषट्क लुञ्चनवशाचेलक्ययमस्नानता।
भूशय्यास्थितिभुक्तिदन्तकषणं चाप्येकभक्तम् यता-
वेवं मूलगुणाष्टविंशतिरियं मूलं चरित्रश्रियः।।१४।।

अन्वयार्थ–पंच्महाव्रतैः = पाँच महाव्रतों से, युक्ताः = युक्त, पंच= पाँच, समितयः = समिति, पंचाक्षरोधाशयाः = पंचेन्द्रिय निरोध, आवश्यकषट्कलुञ्चनवराचेलक्यं = छह आवश्यक, केशलोच, श्रेष्ठ अचेलकत्व, अस्नानताः = स्नानत्याग, भूशय्यास्थितिभुक्तिदन्तकषणं = भूमि पर शयन करना, खड़े होकर आहार करना, दान्तौन नहीं करना, च = और, अह्नि = दिन में, एकभुक्तं = एक बार भोजन करना, एवं = इस प्रकार, यतौ = मुनियों में, चारित्र श्रियः = चारित्र श्री के, मूलं = मूलभूत। इयं = ये, मूलगुणाष्टविंशतिः = मूलगुण अट्ठाईस होते हैं।

भावार्थ–पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पाँच ही इन्द्रियों के निरोध, छह आवश्यक, केशलोंच, आचेलक्य, पृथ्वीशयन, अदंतघर्षण, स्थितभोजन, एक भक्त और साधुओं के अट्ठाईस मूलगुण हैं।।१४।।

पंचमहाव्रत वर्णन

अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमसंगता
महाव्रतानि पंचैव निशेषावद्यबर्जनात्।।१५।।

अन्वयार्थ–निःशेषावद्यवर्जनात्=निःशेष सावद्य का त्याग होने से, अहिंसा = अहिंसा, सत्यं = सत्य, अस्तेयं = अचौर्य, ब्रह्मचर्य = ब्रह्मचर्य, असंगता =अपरिग्रह, पंचैव = ये पाँच ही महाव्रतानि = महाव्रत हैं।

भावार्थ–अहिंसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत ये पाँच महाव्रत होते हैं।।१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा महाव्रत

जन्मकाय कुलाक्षाद्यैर्ज्ञात्वा सत्वततिं श्रुतेः।
त्यागस्त्रिशुद्धया हिंसादेः स्थानादौ स्यादहिंसनम्।।१६।।

अन्वयार्थ–श्रुतेः = शास्त्र से, जन्मकायकुलाक्षाद्यैः = जन्म, काय, कुल और इन्द्रियादि के द्वारा, सत्वततिं: = जीवों के समूह को, ज्ञात्वा = जानकर, स्थानादौ = कार्योत्सर्ग आदि क्रिया में, त्रिशुद्धया = मन, वचन, काय की शुद्धि से, हिंसादेः = हिंसादि का, त्यागः = त्याग करना, अहिंसनं = अहिंसा, स्यात् = है।

भावार्थ–कुल, जाति इन्द्रियादि के द्वारा जीवों के भेदों को जानकर मन, वचन, काय से कार्योत्सर्ग आदि स्थानों में हिंसादि का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है।।१६।।

सत्यमहाव्रत

रागद्वेषादिजासत्यमुत्सृज्यान्याहितं वचः।
सत्यं तत्वान्यथोक्तं च वचनं सत्यमुत्तमम्।।१७।।

अन्वयार्थ–रागद्वेषादिजासत्यं = रागद्वेष आदि से उत्पन्न असत्य, अन्याहितः = दूसरे का अहितकारी, सत्यं = सत्य, च = और, तत्वान्यथा = शास्त्र के विरुद्ध, वचः = वचनों को, समुत्सृज्यः = छोड़कर, वचनं = वचनों को, उत्तमं = उत्तम, सत्यं = सत्य, उक्तं = कहा है।

भावार्थ–रागद्वेष, मोह आदि के कारणभूत असत्य वचन तथा परपीडाकारक सत्य वचन को छोड़कर शास्त्रानुसार उत्तम वचन बोलना सत्य महाव्रत है।।१७।।

अचौर्यमहाव्रत का लक्षण

बह्वल्पं वा परद्रव्यं ग्रामादौ पतितादिकम्।
अदत्तं यत्तदादानवर्जनं स्तेयवर्जनम् ।।१८।।

अन्वयार्थ–ग्रामादौ = ग्रामादि में, पतितादिकं = गिरे हुए और आदि शब्द से रखे हुए, भूले हुये, बह्वल्पं = बहुत अथवा अल्प, अदत्तं = बिना दिये हुए, परद्रव्यं = दूसरे की वस्तु को, यत् = जो, आदानवर्जनं = नहीं लेना है, तत् = वह, स्तेयवर्जनं = अचौर्य महाव्रत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–ग्राम, मार्ग आदि में गिरी हुई, भूली हुई, एकत्रित की हुई दूसरे की वस्तु को प्रमाद के वशीभूत होकर बिना दिये ग्रहण नहीं करना अचौर्य महाव्रत है।।१८।।

ब्रह्मचर्यमहाव्रत का लक्षण

रागालोककथात्यागः सर्वस्त्रीस्थापनादिषु।
माताऽनुजातनुजेति मत्या ब्रह्मव्रतं मतम्।।१९।।

अन्वयार्थ–सर्व स्त्री स्थापनादिषु–समस्त स्थापनादि स्त्रियों में, मातां-माता, अनुजा-छोटी बहन, तनुजा=पुत्री, इति = इस प्रकार की, मत्या = बुद्धि से, रागलोककथात्यागः = रागपूर्वक देखने और कथा का त्याग करना, ब्रह्मव्रतं = ब्रह्मचर्य व्रत, मतं = माना गया है।

भावार्थ–वृद्ध, बालक, युवा आदि सर्व स्त्रियों को तथा उनके चित्राम को देखकर उनको माता, बहिन, पुत्री के समान जानकर स्त्री सम्बन्धी कथा, राग पूर्वक अवलोकन, स्पर्शन एवं उनके साथ विकार भाव से वार्तालाप आदि नहीं करना ब्रह्मचर्य व्रत है।।१९।।

अपरिग्रह महाव्रत का लक्षण

चेतनेतरवाह्यांतरंगसंगविवर्जनम्।
ज्ञानसंयमसंगो वा निर्ममत्वमसंगता।।२०।।

अन्वयार्थ–(चेतनेतरबाह्यांतरंगसंगविवर्जनम्) चेतन, अचेतन बाह्याभ्यंतर परिग्रहों का त्याग करना (वा) अथवा, (ज्ञानसंयमसंगः) ज्ञान, संयम, शौच के उपकरण में (निर्ममत्वं) ममत्व रहित होना, (असंगता) अपरिग्रह महाव्रत है।

भावार्थ–गाय, भैंस, दासी, दास, स्त्री चेतन परिग्रह है। सोना, घर, आदि अचेतन परिग्रह है, अथवा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दास, कुप्य, भांड यह दस प्रकार के बहिरंग हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नुपंसकदेव और मिथ्यात्य यह १४ प्रकार के अंतरंग परिग्रह हैं। इन बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग करना तथा ज्ञानोपकरण (शास्त्र) में संयमोपकरण (पिच्छिका) में भी ममत्व नहीं करना अपरिग्रह महाव्रत है।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समितियों का लक्षण

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञिकाः।

व्रतत्राणाय पंचैताः स्मृताः समितयो यतेः।।२१।।

अन्वयार्थ–(व्रतत्राणाय) व्रतों की रक्षा करने के लिए (यतेः) मुनिरजों की (ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञिकाः) ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग नामक, (एताः) ये (पंच) पाँच (समितयः) समिति (स्मृताः) कही गई हैं।

भावार्थ–अहिंसा पाँच महाव्रतों की रक्षा करने के लिए ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समिति कही गई हैं।।२१।।

ईर्या समिति

पुरो युगान्तरेऽक्षस्य दिने प्रासुकवर्त्मनि।

सदयस्य सकार्यस्य स्यादीर्यासमितिर्गतिः।।२२।।

अन्वयार्थ–(दिने) दिन में (प्रासुकवर्त्मनि) प्रासुक मार्ग में (पुरः) सामने (युगान्तरे) चार हाथ प्रमाण भूमि (अक्षस्य) देखकर (सदस्य) दयालु (सकार्यस्य) साधु का कार्यवश (गतिः) गमन है वह (ईर्यासमितिः) ईर्यासमिति, (स्यात्) है।

भावार्थ–सामने की चार हाथ जमीन देखकर प्रासुक मार्ग में दयालु साधु सप्रयोजन गमन करता है, वह ईर्या समिति है।।२२।।

भाषा समिति

भेदपैशून्यपरुषप्रहासोक्त्यादिवर्जिता।

हितामित्तानिः सन्देहा भाषा भाषासमित्याख्या।।२३।।

अन्वयार्थ–(भेदपैशून्यपरुषप्रहासोक्त्यादिवर्जिता) भेद, पैशून्य, परुष, प्रहास के वचन आदि से रहित, (हितामितानिः संदेहाः) हित, मित, सन्देह रहित भाषा, वचन बोलना, (भाषा समित्याख्या) भाषा समिति है।

भावार्थ–दूसरों की गुप्त वार्ता प्रकट करना भेद है। झूठा दोषारोपण करना पैशून्य है। मर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदी कठोर वचन बोलना परुष है। किसी की हँसी उड़ाना या किसी से रागपूर्वक अश्लील वचन बोलना प्रहास है। इन भाषा समिति के घातक वचनों को त्याग कर हितकारी, मधुर, संशय के वाशक स्वल्प वचन बोलना भाषा समिति है।।२३।।

एषणा समिति

षट् चत्वारिञ्शद्दोषोना प्रासुकान्नादिकस्य या।

एषणासमितिर्भुक्तिः स्वाध्यायध्यानसिद्धये।।२४।।

अन्वयार्थ–(स्वाध्यायध्यानसिद्धये) स्वाध्याय और ध्यान की सिद्धि के लिए (षट्चत्वारिञ्शद्दोषोना) छियालिस दोष रहित (प्रासुकान्नादिकस्य) प्रासुक अन्नादि की (या) जो (भुक्तिः) भुक्ति है, वह (एषणासमितिः) एषणा समिति है।

भावार्थ–संयमीजनों का, आहार, ध्यान और स्वाध्याय की सिद्धि के लिए है, शरीर की पुष्टि के लिए नहीं है, इसलिए ध्यान और स्वाध्याय की सिद्धि के लिए साधुगण जो उङ्गमादि छियालीस दोष रहित प्रासुक शुद्ध आहार करते हैं उसको एषणा समिति कहते हैं।।२४।।

आदान निक्षेपण समिति

ज्ञानोपकरणादीनामादानं स्थापनं च यत्।

यत्नेनाऽऽदाननिक्षेपसमितिः करुणापरा।।२५।।

अन्वयार्थ–(ज्ञानोपकरणादीनां) ज्ञानादि के उपकरणों का (यत्नेन) यत्न पूर्वक (यत्) जो (आदानं) ग्रहण करना, (स्थापनं) स्थापन करना है वह (परा) श्रेष्ठ, (करुणा) दयाशील (आदाननिक्षेपसमितिः) आदान निक्षेप संमिति है।

भावार्थ–ज्ञान के निमित्त पुस्तक आदि उपकरण रूप ज्ञानोपधि, पापक्रिया की निवृत्तिरूप संयम के लिए पीछी, आदिक संयमोपधि, मूत्रविष्ठा आदि देहमल के प्रक्षालनरूप शौच का उपकरण कमंडलु आदि शौचोपधि, और अन्य संस्तर आदि के निमित्त उपकरण रूप अन्योपधि इनको यत्नपूर्वक उठाना, रखना आदाननिक्षेपण समिति है।।२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्युत्सर्ग समिति

दूरगूढ़विशालाबिरुद्धशुद्धमहीतले।
उत्सर्गसमितिर्विण्मूत्रादीनां स्याद्विसर्जनम्।।२६।।

अन्वयार्थ–(दूरगूढ़विशालाविरुद्धशुद्धमहीतले) दूर, गूढ़, विशाल, अविरोधी, शुद्ध भूतलपर (विण्मूत्रादीनां) मलमूत्रादिक का (विसर्जनं) विसर्जन करना (उत्सर्ग समितिः) समिति है।

भावार्थ–ग्राम के बाहर का स्थान दूर कहलाता है। छिपे हुए स्थान को गूढ़ कहते हैं। बिल, छेद रहित चौड़े स्थान को विशाल कहते हैं। लौकिक जनों के विरोध से रहित स्थान को अविरोधी कहते हैं। ऐसे जीवादि से रहित शुद्ध स्थान में मलमूत्र आदि करना उत्सर्ग समिति है।।२६।।

इन्द्रियनिरोध

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शाक्षगोचरे भिक्षोः।
रत्यरतिचितवृत्ते रोधः स्यादक्षसंरोधः।।२७।।

अन्वयार्थ–(चक्षुः श्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शाक्षगोचरे) चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, स्पर्शन इन्द्रिय गोचर विषयों में (रत्यरतिचितवृत्तेः) रति, अरति रुपचित वृत्ति का (रोधा) निरोध करना (भिक्षोः) भिक्षु का, (अक्षसंरोधः) इन्द्रिय निरोध है।

भावार्थ–स्पर्श आदि इन्द्रियों को अपने विषयों से रोकना इन्द्रियरोध है।।२७।।

चक्षु इन्द्रियनिरोध

चेतनेतरवस्तूनां हर्षमर्षाकरक्रिया।
वर्णसंस्थानभेदेषु चक्षूरोधोऽविकारधी।।२८।।

अन्वयार्थ–(चेतनेतरवस्तूनां) चेतन, अचेतन वस्तुओं के (वर्णस्थानभेदेषु) वर्ण, संस्थान और भेदों में (अविकारधीः) विकारबुद्धि नहीं होना। (हर्षमर्षाकरक्रिया) हर्ष, विषाद को नहीं करने वाली चेष्टा होना (चक्षुरोधः) चक्षु इन्द्रिय का निरोध है।

भावार्थ–चेतन और अचेतन वस्तु के वर्ण (काला और गोरा आदि) संस्थान (समचतुरस्रादि) आदि भेदों में अविकारी होना, इष्टानिष्ट की कल्पना नहीं होना चक्षु इन्द्रिय निरोध है।।२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्णइन्द्रिय निरोध

जीवाजीवोभयोद्भूते चेतोहारीतरस्वरे।

रागद्वेषाविलस्वान्तदण्डनं श्रोत्रदण्डनम्।।२९।।

अन्वयार्थ–(जीवाजीवोभयोद्भूते) जीव अजीव और जीव अजीव से उत्पन्न (चेतोहारीतरस्वरे) चित्त को हरण करने वाले तथा इत्तर स्वर में (रागद्वेषाविलस्वान्तदण्डनं) राग द्वेष से व्याप्त चित्त का दण्डन करना (श्रोत्रदण्डनम्) कर्णइन्द्रिय का निरोध है।

भावार्थ–षडज्, ऋषज, गन्धार, आदि सात स्वर जीवोत्पन्न तथा बीणा आदि से तत, विततादि अजीवोत्पन्न मनोज्ञ अमनोज्ञ स्वरों में रागद्वेष नहीं करना श्रोत्र इन्द्रिय निरोध है।।२९।।

घ्राणेन्द्रिय निरोध

प्रकृतिप्रयोगगन्धे जीवाजीवोभयाश्रये।

शुभेऽशुभे मनः साम्यं घ्राणेन्द्रियजयं विदुः।।३०।।

अन्वयार्थ–(जीवाजीवोभयाश्रये) जीव, अजीव और उभय के आश्रित (शुभाशुभे) मनोज्ञामनोज्ञ (प्रकृतिप्रयोगगन्धे) स्वाभाविक तथा प्रयोगकृत गंध में (मनः साम्यं) मन की समता को (घ्राणेन्द्रिजयं) घ्राणेन्द्रिय विजय, (विदुः) कहा है।

भावार्थ–पुरुष, स्त्री, देवांगना आदि की गंध जीवाश्रय कहलाती है। पुष्प, चन्दन आदि की गंध अजीवाश्रय है। चन्दन, कमल आदि की गंध प्राकृतिक है।

दूसरे पदार्थों के संयोग से होने वाली गंध प्रायोगिक है जैसे वस्त्र में चन्दन आदि के तेल डालने से जो सुगंधी होती है, वह प्रायोगिक है अथवा कितनी ही वस्तुओं का मिश्रण करके तेल बनाया जाता है वह भी प्रायोगिक है। वह गंध दो प्रकार की है शुभ और अशुभ।

घ्राण इन्द्रिय को प्रिय लगने वाली गंध शुभ है, जैसे चन्दन, गुलाब के फूल आदि की सुगंध। घ्राण इन्द्रिय को अप्रिय गंध अशुभ है जैसे मलमूत्र आदि की दुर्गन्ध। इन प्राकृतिक, प्रायोगिक आदि शुभ-अशुभ गंध में मनोज्ञ अमनोज्ञ की कल्पना कर रागद्वेष नहीं करना घ्राण इन्द्रिय निरोध है।।३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसना इन्द्रिय निरोध

गृहिदत्तेऽन्नापानादावदोषे समतायुतम्।

गात्रयात्रानिमित्तं यद्भोजनं रसनाजयः।।३१।।

अन्वयार्थ–(गृहिदत्ते) गृहस्थ के द्वारा दिये हुए (अदोषे) निर्दोष (अन्नपानादौ) अन्न पानी आदि में (समता युतं) समता युक्त होकर (गात्रायात्रानिमित्तम्) शरीर की स्थिति के लिए (यत्) जो (भोजनं) भोजन किया जाता है वह (रसनाजयः) रसना इन्द्रिय जय है।

भावार्थ–खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय के भेद से आहार चार प्रकार का है। दाल, भात, लड्डू रोटी आदि खाद्य है। पान सुपारी, इलायची आदि खाद्य है। रबड़ी, चटनी आदि लेह्य है। दूध, शरबत, पानी, मौसमी आदि का रस पेय है।

गृहस्थ के द्वारा दिया हुआ निर्दोष प्रासुक खाद्य आदि चार प्रकार के आहार में मनोज्ञामनोज्ञ की भावना न करके केवल शरीर की स्थिति के लिए जो भोजन किया जाता है, वह रसना इन्द्रिय का निरोध है।।३१।।

स्पर्श इन्द्रिय निरोध

जीवाजीवोभयस्पर्शे कर्कशाद्यष्टभेदके।

शुभेऽशुभेऽतिमध्यस्थं मनः स्पर्शाक्षनिर्जयः।।३२।।

अन्वयार्थ–(कर्कशाद्यष्टभेदके) कठोर आदि अष्ट भेद वाले (शुभेऽशुभे) शुभाशुभ (जीवाजीवोभयस्पश) जीव अजीव और उभय से उत्पन्न स्पर्श में (अतिमध्यस्थं) अत्यन्त मध्यस्थ (मनः) मन का होना (स्पर्शाक्षनिर्जयः) स्पर्शइन्द्रिय का निरोध है।

भावार्थ–हलका, भारी, कर्कश, मृदु, रूखा, चिकना, शीत, उष्ण, के भेद से स्पर्श आठ प्रकार का है। वह स्पर्श जीवोत्पन्न, अजीवोत्पन्न और जीवाजीवोत्पन्न के भेद से तीन प्रकार का है। स्त्री आदि का स्पर्श जीवोत्पन्न है। शय्यादि का स्पर्श अजीवोत्पन्न है।

जीव और अजीव इन दोनों से उत्पन्न स्पर्श उभयात्मक है इन समस्त स्पर्शन इन्द्रिय के विषय भूत स्पर्श में इष्टानिष्ट की कल्पना नहीं करना स्पर्शन इन्द्रियरोध है।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षट् आवश्यकों के नाम

आवश्यकक्रियाषट्कं समतास्तववंदनम्।
सप्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं कायविसर्जनम्।।३३।।

अन्वयार्थ–(समतास्तववंदनम्) समता, स्तवन, वंदना (सप्रतिक्रमणं) प्रतिक्रमण (प्रत्याख्यानं) प्रत्याख्यान (कायविसर्जनम्) कार्योत्सर्ग ये (आवस्यकक्रियाषट्कं) षट् आवश्यक क्रियायें हैं।

भावार्थ–सामायिक, चुतर्विशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान्, कार्योत्सर्ग ये छह मुनियों की षट् आवश्यक क्रियाये हैं।।३३।।

समता आवश्यक

लाभालाभासुखक्लेशप्रमुखे समतामतिः।
स्वायत्तकरणस्वान्तज्ञानिनः समता मता।।३४।।

अन्वयार्थ–(स्यायतकरणस्वान्तज्ञानिनः) अपने आधीन किया है, इन्द्रिय और मन को जिसने ऐसे ज्ञानी को (लाभालाभसुखक्लेशप्रमुखे) लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में (समतामतिः) जो साम्यभाव है उसको (समता) सामायिक (मता) माना है।

भावार्थ–इष्ट वस्तु की प्राप्ति का नाम लाभ है। इष्ट की अप्राप्ति का नाम अलाभ है। इन्द्रिय जन्य विषयों की प्राप्ति सुख है, मानसिक शारीरिक दुःख क्लेश है। ये दो ही प्रमुख हैं। इसी में जीवन-मरण, शत्रु-मित्र, आदि गर्भित होते हैं। इन लाभ, अलाभ आदि वस्तुओं और शीत, उष्ण, भूख, आदि में रागद्वेष, भय परिणाम नहीं करना, मनोज्ञ पदार्थों में साम्यभाव रखना सामायिक है।।३४।।

स्तुति आवश्यक

कृत्वा गुणगणोत्कीर्तिनामव्युत्पत्तिपूजनम्।
वृषभादिजिनाधीशस्तवनं स्तवनं मतम्।।३५।।

अन्वयार्थ–(गुणगणोत्कीर्त्तिनामव्युत्पत्तिपूजनम्) असाधारण गुणों के समूह का उत्कीर्तन, नामों की व्युत्पत्ति से चरण कमल की पूजा (कृत्वा) करके (वृषभादिजिनाः) वृषभादि चतुर्विशति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकरों का स्तवन करना (संस्तवनं) संस्तवन (मतं) कहलाता है।

भावार्थ–वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरों के नाम अनुसार अर्थ करना नाम व्युत्पत्ति है। जैसे–वृष अर्थात् धर्म और धर्म के वाहक को वृषभ कहते हैं। नाभि के पुत्र होने से नाभेय है। किसी से जीता नहीं गये इसलिए अजित है। अपने दोषों को शांत करने से शांति है इत्यादि नामानुसार कथन करना नाम व्युत्पत्ति है। जिनेन्द्र के असाधारण गुणों का कथन करना गुणोत्कीर्त्तन है। इस प्रकार गुणों का कथन आदि करके मन, वचन, काय की शुद्धि से उनके चरण कमल की पूजा करना, स्तुति करना संस्तवन कहलाता है।।३५।।

वंदना आवश्यक

जैनैकतीर्थकृत्सिद्धसाधूनां क्रिययान्वितम्।
वन्दनं स्तुतिमात्रं वा वन्दनं पुण्यनन्दनम्।।३६।।

अन्वयार्थ–(जैनैकतीर्थकृत्सिद्धसाधूनां) एक जिन, तीर्थंकर, सिद्ध और साधु की (क्रियान्वितम्) सिद्धभक्ति आदि क्रिया से युक्त (पुण्यनन्दनम्) पुण्यवर्द्धक (स्तुतिमात्रं) स्तुति मात्र करना (वा) अथवा (वन्दनं) वन्दना का करना ही वन्दना है।

भावार्थ–एक तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं की सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, कायोत्सर्ग आदि क्रियायुक्त मन, वचन, काय से नमस्कार कर स्तुति करना वन्दना है।।३६।।

प्रतिक्रमण आवश्यक

निन्दनं गर्हणं कृत्वा द्रव्यादिषु कृताग्रसाम्।
शोधनं वाड़मनः कायैस्तत्सप्रतिक्रमणं मतम्।।३७।।

अन्वयार्थ–(द्रव्यादिषु) द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव में (कृतागसाम्) किये गये अपराधों की (निन्दनं) निन्दा (गर्हणं) गर्हा (कृत्वां) करके (वाड़मनः कायैः) मन, वचन, काय से (शोधनं) शोधन करना (तत्) उसको (प्रतिक्रमणं) प्रतिक्रमण (मतम्) माना है।

भावार्थ–आहार शरीरादि द्रव्य में, वसति का शयन आसन आदि क्षेत्र में प्रातःकाल आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल में, चित्र के व्यापाररूप भाव (परिणाम) में किया गया जो व्रत में दोष उसका शुभ मन, वचन, काय से, शोधना, अपने दोषों को अपने आप प्रकट करना, आचार्यादिकों के समीप आलोचनापूर्वक अपने दोषों को प्रगट करना प्रतिक्रमण कहलाता है।।३७।।

प्रत्याख्यान आवश्यक

यन्नामस्थापनादीनामयोग्यपरिवर्जनम्।

त्रिशुद्धयाऽनागते काले तत्प्रत्याख्यानमीरितम्।।३८।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (अनागते) भविष्यत् (काले) काल में (नामस्थापनादीनां) नामस्थापनादिके (अयोग्यपरिवर्जनं) अयोग्य का त्याग किया जाता है (तत्) उसको (प्रत्याख्यानं) प्रत्याख्यान (ईरितं) कहा गया है।

भावार्थ–नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन छहों में शुद्ध मन वचन काय से आगामी काल के लिए अयोग्य द्रव्य का त्याग करना अर्थात् मैं अयोग्य नाम नहीं कहूँगा, न अयोग्य काम करूँगा और न अयोग्य चिंतवन करूँगा इत्यादि त्याग को प्रत्याख्यान कहते हैं।।३८।।

कायोत्सर्ग आवश्यक

स्तवनादौ तनुत्यागः श्रीमत्पंचगुरुस्मृतिः।

व्युत्सर्गः स्याच्छ्रुतप्रोक्तोच्छ् वासावसरलक्षणः।।३९।।

अन्वयार्थ–(स्तवनादौ) स्तवनादि क्रियाओं में (श्रुतप्रोक्तोच्छ्वासवसरलक्षणः) शास्त्रोक्त विधि से प्रमाण काल तक श्वासोच्छ्वास को विश्राम देना (श्रीमत्पंचगुरुस्मृतिः) श्री पंचगुरु के गुणों का स्मरण करते हुए (तनुत्यागः) शरीर से ममत्व का त्याग करना (व्युतसर्गः) कायोत्सर्ग (स्यात्) है।

भावार्थ–दैवसिक और स्तवन आदि क्रियाओं में पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिंतवन करते हुए २७, ५४, १०८ आदि श्वासोच्छवास प्रमाण शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग कहलाता है।।३९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केशलोंच उसका फल और समयावधि

कूर्चश्मश्रुकचोल्लुञ्चो लुं चनं स्यादमी यतः।
परीषह जयाऽदैन्यावैराग्यासंगसंयमाः।।४०।।

तच्चतुस्त्रिद्विमासेषु सोपवासे विधीयते।
जघन्यं मध्यमं ज्येष्ठं सप्रतिक्रमणे दिने।।४१।।

अन्वयार्थ–(अमी) ये (परीषहजयाऽदैन्यवैराग्य संगसंयमाः) परिषहजय अदीनता, वैराग्य और अपरिग्रह वाले संयमी (कूर्चश्मश्रु कचोल्लुञ्चः) दाढ़ी, मूंछ और मस्तक के बालों को उखाड़ते हैं वह (लुंचनं) केशलोच (स्यात्) मूलगुण हैं।।४०।।

(तत्) वह केशलोंच (चतुस्त्रि द्विमासेषु) दो, तीन, चार, मास में (सोपवासे) उपवास सहित (सप्रतिक्रमणे) प्रतिक्रमण सहित (दिने) दिन में (जघन्यं) जघन्य (मध्यं) मध्य (उत्कृष्टं) उत्कृष्टरूप से (विधीयते) किया जाता है।।४१।।

भावार्थ–दिगम्बर साधु परिषहजयी होते हैं। दीनता के त्यागी होते हैं, अपरिग्रह होते हैं। वैराग्य संयम से सम्पन्न होते हैं। इसलिए वह धीर वीर महापुरुष दाढ़ी मूँछ के तथा शिर के बाल अपने हाथों से उखाड़ते हैं।

क्योंकि अपरिग्रही होने से साधु अपने पास उस्तरा कैंची आदि रख नहीं सकते। किसी से याचना भी नहीं कर सकते, क्योंकि याचना से दीनता प्रकट होती है। वह सिंह वृत्ति के धारक होते हैं इसलिए याचना कर नहीं सकते। यदि केशों को नहीं उखाड़ते हैं तो उसमें लीख जूँ की उत्पत्ति होती है जिससे ध्यान में बाधा आती है और खुजलाने से उन जीवों की विराधना होती है। संयमी अहिंसा के प्रतीक होते हैं, इसलिए प्रतिक्रमण और उपवास पूर्वक दो महीना में तीन महीना में, चार महीना में, वैराग्य भावपूर्वक दाढ़ी, मूंछ और मस्तक के केशों को अपने हाथों से उखाड़ते हैं वह केशलोंच कहलाता है। दो महीने में करना उत्तम, तीन महीने में करना मध्यम और चार महीने में करना जघन्य है।।४१।।

नग्नत्व मूलगुण

वल्कला जिवनवस्त्राद्यैरंगासंवरण वरम्।
आचेलक्यमलंकारनंगसंगविवर्जितम्।।४२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(वल्कला जिनवस्त्राद्यैः) छाल, चर्म, वस्त्र आदि से (अंगासंवरणं) शरीर का आच्छादन नहीं करना तथा (अलंकारानंगसंगविवर्जितम्) अलंकार और कामादि की भावना से रहित होना (वरं) उत्कृष्ट (आचेलक्यम्) आचेलक्य मूलगुण है।

भावार्थ–वृक्षादि छाल से उत्पन्न हुए चटाई आदि से कपास, रेशम आदि के वस्त्र, मृगछालादि चर्म से शरीर को आच्छादित नहीं करना, तथा हार, मुकुट आदि आभूषणों से शरीर को सुसज्जित नहीं करना, और मानसिक काम विकारों को उत्पन्न नहीं होने देना ही उत्तम आचेलक्य मूलगुण है।।४२।।

स्नान त्यागमूलगुण

संयमद्वयरक्षार्थं स्नानादेर्वर्जनं मुनेः।

जलस्वेदमलालिप्तगात्रस्यास्नानता स्मृता।।४३।।

अन्वयार्थ–(जलस्वेदमलालिप्तगात्रस्य) जल, पसीना, शरीर के मैल आदि से लिप्त है गात्र (शरीर) जिसका ऐसे (मुनेः) मुनि का जो (संयमद्वयरक्षार्थं) दोनों संयम की रक्षा करने के लिए (स्नानादेर्वजनं) स्नान आदि का त्याग करना (अस्नानता) स्नान त्याग मूलगुण (स्मृताः) माना है।

भावार्थ–जल से स्नान करने से जलकाय और त्रसकाय जीवों की विराधना होती है, तथा शरीर के प्रति ममत्व भी उत्पन्न होती है, स्नान करने से प्राणि संयम और इन्द्रिय संयम इन दोनों संयमों का घात होता है। इसलिए साधुगण दोनों प्रकार के संयम की रक्षा करने के लिए स्नान का त्याग करते हैं। इससे कषाय का निग्रहरूप इन्द्रिय संयम और जीवों की रक्षा रूप प्राणि संयम का पालन होता है। स्नानत्याग उपलक्षण मात्र है। इसलिए चंदन का लेपन लगाना आदि शरीर के संस्कारों का भी त्याग करना चाहिए।।४३।।

भूमिशयन मूलगुण

प्रसन्नप्रासुकाऽनात्मसंस्कृतेलाशिला दिषु।

एक पार्श्वेन कोदण्डदण्डशय्या महीशयः।।४४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(प्रसन्नप्रासुकाऽनात्मसंस्कृतेलाशिलादिषु) निर्मल प्रासुक अपने लिए नहीं बनाई हुई पृथ्वी, शिला आदि पर (एकपार्श्वेन) एक पार्श्व भाग से (कोदण्डदण्डशय्या) धनुष वा दंड के समान सोना (महीशयः) भूमि शयन है।

भावार्थ–जीव जन्तु रहित निर्मल वस्तु पर वा अपने लिए नहीं बनायी हुई शिलामय, तृणमय, काण्ठमय आसन पर दंड के समान अथवा धनुष के समान एक पसवाड़े से शयन करना भूमि नाम मूलगुण है।।४४।।

स्थिति भुक्ति मूलगुण

स्वपात्रदातृशुद्धोर्व्या स्थित्वा समपदद्वयम्।

निरालंबं करद्वन्द्वभोजनम् स्थितिभोजनम्।।४५।।

अन्वयार्थ–(स्वपात्रदातृशुद्धोर्व्यां) अपनी पात्र की ओर दाता की शुद्ध भूमि पर (निरालंबं) दीवाल आदि के अवलंबन से रहित (समपदद्वयम्) चार अंगुल के अन्तर से दोनों चरणों को समपाद से (स्थित्वा) खड़ा होकर (करद्वन्द्वभोजनं) दोनों हाथों को अंजुलि करके करना स्थिति भोजन है।

भावार्थ–अपने चरणतल के स्थान को स्वस्थान कहते हैं। जिसमें अपनी जूठन गिरती है उसको पात्र स्थान कहते हैं। आहार देने वाले दाता के खड़े आदि के स्थान को दातृस्थान कहते हैं। उन तीनों की भूमि की शुद्धि को देखकर किसी दीवाल आदि का आश्रय नहीं लेकर चार अंगुल के अन्तर से रहित दोनों पैरों को समपाद से खड़ा होकर अपने हस्तांजुलि रूप भाजन में आहार करना स्थिति भोजन नामक मूलगुण है।।४५।।

अदन्त धावन मूलगुण

दशनाघर्षणं पाषाणांगुलीत्वंगनखादिभिः।

स्याद्दन्ताकर्षणं भोगदेहवैराग्यमन्दिरे।।४६।।

अन्यवार्य–(भोगदेहवैराग्यमंदिरे) भोग और शरीर से विरक्ति प्राप्त आत्मा मंदिर में (पाषाणांगुलीत्वङनखादिभिः) पाषाण अंगुलि छाल नख आदि के द्वारा (दशनाघर्षणं) दान्तों को नहीं घिसना (दन्ताकर्षणं) अदन्त धावन मूलगुण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–अंगुली, नख, दांतौन, तृणविशेष, पैनी कंकणी, वृक्ष की छाल, आदि से दांतमल को शुद्ध नहीं करना अर्थात् दांतौन नहीं करना, वह इन्द्रिय संयम की रक्षा करने वाला अदंतधावन मूलगुण है।।४६।।

एक भुक्ति मूलगुण

उदयास्तोभयं त्त्यक्त्वा त्रिनाडीर्भोजनम् सकृत्।
एकद्वित्रिमुहूर्त स्यादेकभक्तम् दिने मुनेः।।४७।।

अन्वयार्थ–(उदयास्तोभयं) सूर्योदय और अस्त इन दोनों के (त्रिनाडी) तीन घड़ी काल को (व्यक्त्वा) छोड़कर (दिने) दिन में (एकद्वित्रिमुहूर्त) एक, दो, तीन मुहूर्त काल में (सकृत्) एक बार (भोजनं) भोजन करना (मुनेः) मुनि का (एकभुक्तम्) एक भुक्त नामक मूलगुण (स्यात्) है।

भावार्थ–सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी छोड़कर, मध्याह्न काल के एक मुहूर्त, दो मुहूर्त, तीन मुहूर्त काल में एक बार भोजन करना वह एक एकभक्त नामक मूलगुण है।।४७।।

मूलगुणधारण करने का फल

येषां भूषणतां गता गुणगणैकावल्यलं निर्मला,
येयं विश्वनरामरेश्वरमिलिन्दानन्दिपादाम्बुजाः।
ये यान्ति श्रमणाग्रगण्यपदबीगण्या वरेण्यम् पदं
सिद्धिश्रीपरिरंभणामृतसुखास्वादास्पदं योगिनः।।४८।।

अन्वयार्थ–(येषां) जिन दिगम्बर साधुओं के (या) जो (इयं) यह (निर्मला) निर्मल (गुणगणैकावल्यलं) गुणों की समूहरूप श्रेष्ठ आवलि (भूषणतां) भूषणता को (गता) प्राप्त होती है। (विश्वनरामरेश्वरमिलिन्दानन्दिपादाम्बुजाः) विश्व के चक्रवर्ती, इन्द्र आदि भ्रमरों को आनन्ददायक चरण कमल युक्त (श्रमणाग्रपदवीगण्याः) श्रमणों के अग्रणीय पदवी में श्रेष्ठ (ते) वे (योगिनः) योगिगण (सिद्धिश्रीपरिरंभणामृतसुखास्वादास्पदं) मुक्ति श्री के आलिगंनामृतरूपी सुख के स्वाद का स्थान स्वरूप (वरेण्यं) श्रेष्ठ मुक्ति (पदं) पद को (यांति) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–जो योगिगण इन निर्मल अट्ठावीस मूलगुणों से शोभित होते हैं, उनके चरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमलों में चक्रवर्ती, इन्द्र आदि निरंतर नमस्कार करते हैं। वे दिगम्बर साधु श्रमण पदवी में अग्रणीय होते हैं तथा अनंत समस्त कर्मों का नाशकर मुक्तिरूपी लक्ष्मी के आलिंगन से उत्पन्न हुए सुस्वाद अमृतपान का आस्वादन करने के स्थान भूत मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं।।४८।।

अन्त मंगलाचरण नेमिनाथ स्तुति

प्रोन्निर्यत्करनीलरत्नरुचिरो दाराङ्गचेतोहरः,
पूर्णोदीर्णसदाश्रयान्तरमहाभोगास्पदाशोत्करः।
गंभीरास्तसमस्तदोषमधुरहवानोद्यदानन्दनः,
सर्वोर्वीसुखसंपदेऽस्त्वमृतदो नेमिर्घनः पावनः।।४९।।

अन्वयार्थ–(प्रोन्निर्यत्करनीलरत्नरुचिरः) उत्कृष्ट रूप से निकलती हुयी किरणों वाली नीलमणि के समान कांति वाले (दाराङ्गचेतोहरः) स्त्रियों के श्रेष्ठ चित्त को हरने वाला (पूर्णोदीर्णसदाश्रयान्तर महाभोगास्पदाशोत्करः) पूर्णवृद्धि को प्राप्त निरन्तर आश्रयभूत जीवों के महाभोगों के आस्थान रूपी आशाओं का समूह (गंभीरास्तसमस्त दोष मधुरहवानोद्यदानन्दनः) गंभीर, निर्दोष, मधुर ध्वनि से महान आनन्ददायक ऐसा (पावनः) पवित्र (नेमिर्घनः) नेमिनाथ रूपी मेघ (सर्वोर्वीसुख संपदे) सारी पृथ्वी की सुख संपदा के लिए (अमृतवदः) अमृत को देने वाला (अस्तु) हो।

भावार्थ–इस श्लोक में आचार्य ने नेमिनाथ भगवान को बादल से उपमा दी है।

बादल दैदीप्यमान नीलमणि के समान वर्ण वाले होते हैं। भगवान नेमिनाथ दैदीप्यमान नीलमणि के समान वर्ण वाले थे। बादल-दार खेती करने वाले किसानों के अंग और चित्त को हरने वाले होते हैं। नेमिनाथ भगवान भी अपने सौन्दर्य से "दार" स्त्रियों के श्रेष्ठचित्त को हरने वाले थे। बादल अपनी ध्वनि से आनंददायक होते हैं। भगवान भी अपनी निर्दोष मधुर से भव्यों को आनन्द देने वाले थे। बादल सर्व पृथ्वी पर अमृत पानी देता है और नेमिनाथ भगवान सारी पृथ्वीतल पर रहने वाले भव्य जीवों को अमृत-मोक्ष को देने वाले हैं।।४९।।

विघ्नों को नाश करने के लिए आदि, मध्य और अंत में मंगलाचरण करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम मंगलाचार

आदीवसाणमज्झे पण्णतं मंगलं जिणिदेहिं।

तो किय मंगल विणयो वि णमो सुत्तं पवक्खामि।।

आदिम्हि भद्द वयणं सिस्सा लहु पारया हवंतु त्ति।

मज्झे अव्वोच्छित्ति य विज्जाविज्ज फलं चरिभे।।

जिनेन्द्रदेव ने आदि, अन्त और मध्य में मंगल करने का विधान किया है।

शिष्य सरलता पूर्वक प्रारम्भ किये गये ग्रन्थाध्यायनादि कार्य के पारंगत हो इसलिए आदि में भद्र वचन अर्थात् मंगलाचरण करना चाहिए। प्रारम्भ किये गये कार्य की व्युच्छिति न हो इसलिए मध्य में मंगलाचरण करना चाहिए और विद्या तथा विद्या के फल की प्राप्ति हो इसलिए अन्त में मंगलाचरण करना चाहिए। इसीलिए आचार्य ग्रन्थ के एक अधिकार के प्रारंभ और समाप्ति में मंगलाचरण करने के लिए भगवान को नमस्कार करते हैं।

इति श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्त्ति विरचिते श्री आचारसनाम्नि शास्त्रे प्रथमोऽधिकारः।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वितीयोऽधिकारः

पार्श्वनाथ स्तुति

श्रियः पदं सर्वविदः पदाम्बुजं नमन्निलिंपालिमिलिन्दमन्दिरम्
सन्मानसोल्लासिनरवांशुकेसरं पार्श्वस्य नः स्ताद्वरदं जिनेशिनः।।१।।

अन्वयार्थ–(श्रियः) लक्ष्मी को (पदं) स्थान (नमन्निलिंपालिमिलिन्दमन्दिरम्) नमस्कार करते हुए देवों के समूह रूपी भ्रमरों का मन्दिर (सन्मानसोल्लासिनरवांशुकेसरं) सज्जनों के मन को उल्लासित कारक हैं नखों की कांतिरूपी केशर जिसमें ऐसे (सर्वविदः) सर्वज्ञ (जिनेशिनः) जिनेश्वर (पार्श्वनाथ) पार्श्वनाथ के (पादाम्बुजं) चरणं कमल (नः) हमारे लिए (वरदं) वर देने वाले (स्तात्) हों।

भावार्थ–जो शत इन्द्ररूपी भ्रमरों से सेवित हैं, सज्जनों के चित्त को उल्लसित करने वाली नखरूपी केशर से व्याप्त मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्थान हैं ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वर पार्श्वनाथ भगवान के चरण कमल हमको वर देने वाले हों।।१।।

समाचार नीति कहने की प्रतिज्ञा

तनोति संपदं नीतिर्यद्वत्तद्वद्गणश्रियम्।
सत्प्रियां या समाचारनीतिः सा कीर्त्यतेऽधुना।।२।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (नीतिः) नीति (सत्प्रिया) सज्जनों को प्रिय (संपदं) सम्पदा को (तनोति) विस्तारित करती है (तद्वत्) उसीप्रकार (या) जो (समाचार नीतिः) समाचार नीति (सत्प्रिया) सज्जन पुरुष को प्रिय (गणश्रियं) गणश्री (सम्पदं) सम्पदा को (तनोति) विस्तरित करती है (अधुना) इस समय (सा) वह समाचार नीति (कीर्त्यते) कही जाती है।

भावार्थ–जिसप्रकार नीति महान सम्पदा को देने वाली है, उसी प्रकार समाचार नीति महान गुण श्री को देने वाली है। वह मुनियों की समाचार नीति अब कही जाती है।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार का निरुक्ति अर्थ

समः समान सं सम्यगाचारो यः समैर्युतैः।
आचार्यत इति प्राज्ञैः स समाचार ईरितः।।३।।

अन्वयार्थ–(समः) समान (समानः) या समान (सं) अर्थात् (सम्यक्) समीचीन (आचारः) आचार अथवा जो (समैः) समता (युतैः) सहित (आचार्यते) आचरण किया जाता है (इति) ऐसा (प्राज्ञैः) बुद्धिमानों के द्वारा (सः) वह (समाचारः) समाचार (ईरितः) कहा जाता है।

भावार्थ–रागद्वेष के अभावरूप समताभाव है वह समाचार है, अथवा सम्यक् अर्थात् आचार रहित जो मूलगुणों का अनुष्ठान आचरण है वह समाचार है, अथवा प्रमत्तादि समस्त मुनियों का समान अहिंसादि रूप आचार है वह समाचार है, अथवा सब क्षेत्रों में हानिवृद्धि रहित कायोत्सर्गादिक सदृश परिणामस्वरूप आचरण है वह समाचार है।।३।।

समाचार नीति के भेद

एषं संक्षेपविस्तारद्विभेंदो दशभेदगः।
संक्षेपोऽनल्पभेदोऽन्य आदिभेदा इमे दशः।।४।।

अन्वयार्थ–(एषः) यह समाचार विधि (संक्षेपविस्तारात्) संक्षेप और विस्तार से (द्विभेदः) दो प्रकार की है। (संक्षेपः) संक्षेप समाचार (दशभेदगः) दश भेद वाला है (अन्यः) दूसरा विस्तार समाचार (अनल्पभेदः) बहुत से भेद वाला है (इमे) ये (दशः) (आदिभेदाः) आदि समाचार के भेद हैं।

भावार्थ–समाचार अर्थात् सम्यक् आचरण दो ही प्रकार है १ औघिक २ पदविभागिक। औघिक के दश भेद होते हैं और पदविभागिक समाचार अनेक प्रकार का है।।४।।

समाचार नीति के १० भेद

इच्छामिथ्यात्तथाकारेच्छावृत्यासीर्निषिद्धिका।
आप्रच्छन्नं प्रतिप्रश्नश्च निमंत्रणसंश्रयौ।।५।।

अन्वयार्थ–इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, इच्छावृत्ति, आशिका, निषिद्धिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, सनिमंत्रणा और सश्रय इस तरह ये औघिक समाचार के दश भेद हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छाकार

पुस्तकातापयोगादेर्या याञ्चा विनयान्विता।

स्वपरार्थे यतीन्द्राणां सेच्छाकारः प्ररुपितः।।६।।

अन्वयार्थ–(यतीन्द्राणां) मुनियों को (स्वपरार्थे) स्वपरार्थ में (पुस्तकातापयोगादेः) पुस्तक आतापयोगादिकी (या) जो (विनयान्विता) विनयपूर्वक (यांचा) याचना है (सा) वह (इच्छाकारः) इच्छाकार (प्ररूपितः) कहा जाता है।

भावार्थ–पिच्छिका आदि संयम के उपकरण, शास्त्रादि ज्ञानोपकरण, कमण्डलु शौचोपकरण, औषधि आदि के ग्रहण और आतापन योगादि के करने के लिए गुरु से जो विनयपूर्वक याचना की जाती है वह इच्छाकार है।।६।।

मिथ्याकार

यन्मया दुष्कृतं पूर्वं तन्मिथ्याऽस्तु न तत्पुरः।

करोमीति मनोवृत्तिर्मिथ्याकारोऽतिनिर्मलः।।७।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (मया) मैंने (पूर्वं) पूर्व में (दुष्कृतं) पाप किये हैं (तत्) वह (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) हों (तत्) वह पाप (पुरा) आगे (न) नहीं (करोमि) करता हूँ-करूँगा (इति) इस प्रकार की (अतिनिर्मलः) अतिनिर्मल (मनोवृत्तिः) मनोवृत्ति (मिथ्याकारः) मिथ्याकार है।

भावार्थ–जो व्रतादिक में अतिचार रूप पाप मैंने किया हो वह मिथ्या हो, मिथ्या किये हुए पाप को फिर करने की इच्छा नहीं करता और मनरूप अंतरंग भाव से प्रतिक्रमण करता है उसी के दुष्कृत मिथ्याकार होता है।।७।।

तथाकार

तत्वाख्यानोपदेशादौ नान्यथा भगवद्वचः।

तत्तथेत्यादरेणोक्तिस्तथाकारो गुणाकरः।।८।।

अन्वयार्थ–(तत्वाख्यानोपदेशादौ) तत्वव्याख्यान के उपदेश आदि में (भगवद्वचः) भगवान के वचन (अन्यथा) अन्यथा (नः) नहीं है (तत्तथा) जैसा भगवान कहते हैं वैसा ही है (इति) इस प्रकार (आदरेणं) आदर पूर्वक (उक्तिः) कहना (गुणाकरः) गुणों को करने वाला (तथाकारः) तथाकार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–भगवान सर्वज्ञ ने जो कहा है वह सत्य है क्योंकि भगवान अन्यथा वादी नहीं है। ऐसा दृढ़ विश्वास करना तथाकार है।।८।।

इच्छावृत्ति

पूर्वात्तानशनातापयोगोपकरणादिषु।

सेच्छावृत्तिर्गणीच्छानुवृत्तिर्या विनयास्पदा।।९।।

अन्वयार्थ–(पूर्वात्तानशनातापयोगोपकरणादिषु) पूर्व में गृहीत उपवास, योग पुस्तकादि उपकरणों में (या) जो (गणीच्छानुवर्ती) गुरु की इच्छानुकूल वृत्ति है। (सा) वह (विनयास्पदा) विनय का स्थान (इच्छानुवृत्तिः) इच्छानुवृत्ति है।

भावार्थ–आचार्य आदि के द्वारा दी हुई पुस्तक आदि उपकरण में गुरु की इच्छानुकूल प्रवृत्ति करना इच्छानुवृत्ति (छंदन) है।।९।।

आशा

स्थिता वयमियत्कालं यामः क्षेमोदयोस्तु ते।

इतीष्टाशंसनं व्यंतरादेराशीर्निरुच्यते।।१०।।

अन्वयार्थ–(इयत्कालं) इतने काल तक यहाँ पर (स्थिताः) ठहरे थे अब हम (यामः) जा रहे हैं (ते) तेरा (क्षेमोदयः) कल्याण (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार (व्यंतरादेः) व्यंतरादिकी (आशंसनं) प्रशंसा करना (इष्टा) इष्ट (आशीः) आशी (निरुच्यते) कही जाती है।

भावार्थ–किसी गुफा, शून्य मकान, पर्वत की कन्दरा, आदि में ठहर कर पुनः वहाँ से निकलते समय कहना कि हे व्यंतर देवों, हम इतने काल तक यहाँ पर ठहरे थे, अब हम जा रहे हैं, तुम्हारा कल्याण हो इस प्रकार के वचनों से व्यंतरादि देवों को आशीर्वादात्मक वचन कहना आशी है।।१०।।

निषिद्धिका

जीवानां व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम्।

अस्माभिः स्थीयते युष्मदृष्ट्यैवेति निषिद्धिका।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(व्यन्तरादीनां) व्यन्तरादि जीवादि की (बाधायै) बाधा के लिए (यत्) जो (निषेधनं) निषेध है कि हे व्यन्तर देवों! (अस्माभिः) हम लोगों के द्वारा (युष्मद्दिष्ट्याएव) तुम्हारी दृष्टि से ही (स्थीयते) ठहरा जाता है (इति) इस प्रकार कहना (निषिद्धिका) निषिद्धिका है।

भावार्थ–किसी जिन मंदिर, शून्य गृह, उपवन, पर्वत की कन्दरा आदि में प्रवेश करते समय हे व्यंतरदेव! हम लोग यहाँ ठहरना चाहते हैं। तुम्हारी दृष्टि से हमारा स्थान निर्विघ्न हो ऐसा कहना निषिद्धका है। अर्थात् किसी स्थान में प्रवेश करते समय निःसहि-२ का उच्चारण करना तथा वहाँ से निकलते समय आसहि-आसहि का उच्चारण करना आसिका और निषिद्धिका है।।११।।

आशी-निषिद्धिका का स्थान

प्रवासावसरे कन्दरावासादेर्निषिद्धिका।
तस्मान्निर्गमने कार्या स्यादाशीर्वैरहारिणी।।१२।।

अन्वयार्थ–(कन्दरावासादेः) कन्दरावासादि के (प्रवासावसरे) प्रवेश के समय (निषिद्धिका) निषिद्धिका तथा (तस्मात्) उस स्थान से (निर्गमने) निकलते समय (वैरहारिणी) वैर विरोध को नाश करने वाली (आशीः) मासिका (कार्या) करना (स्यात्) चाहिये।

भावार्थ–शून्य मकान आदि में प्रवेश करते समय निषिद्धिका और निकलते समय आसिका करना चाहिए यह आसिका और निषिद्धिका विरोध की नाशक है। अन्यथा देवों के साथ विरोध होने की संभावना है।।१२।।

आपृच्छन

ग्रंथारंभकचोल्लोचकाय शुद्धि क्रियादिषु।
प्रश्नः सूर्यादिपूज्यानां भवत्याप्रच्छनं मुनौ।।१३।।

अन्वयार्थ–(ग्रन्थारंभकचोल्लोचकायशुद्धिक्रियादिषु) ग्रन्थ का आरंभ, केशलोंच, आदि काय शुद्धि की क्रिया में (सूर्यादिपूज्यानां) आचार्यादि पूज्य पुरुषों को (प्रश्नः) पूछना (मुनौ) मुनि में (आप्रच्छना) आप्रच्छन (भवति) होती है।

भावार्थ–किसी शास्त्र का आरम्भ, केशलोंच, आदि क्रिया करना हो तो आचार्य को पूंछकर करना चाहिये। इसी को प्रच्छना कहते हैं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिप्रच्छन

यत्किंचन महत्कार्यं कार्य पृष्ट्वा यतीश्वरान्।
विनयेन पुनः प्रश्नः प्रतिप्रश्नः प्रकीर्तितः।।१४।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (किंचन) कुछ छोटा सा (महत्) बड़ा (कार्यं) कार्य हो उसको (यतीश्वरान्) आचार्यों को (विनयेन) विनयपूर्वक पूछकर (पुनः) पुनः (प्रश्नः) प्रश्न करना (प्रतिप्रश्नः) प्रतिप्रश्न (प्रकीर्त्तितः) कहा जाता है।

भावार्थ–जो कुछ महान कार्य हो वह गुरु प्रवर्तक स्थविरादिक से पूछकर करना चाहिए उस कार्य के करने के लिये दूसरी बार उनसे तथा अन्य साधर्मी से पूछना वह प्रतिपृच्छा है ऐसा जानना चाहिए।।१४।।

आनिमन्त्रण

पुस्तकादौ पुरा दत्ते रचात्मार्थे यन्निवेदनम्।
जिघृक्षायां पुनः सूरिप्रमुखेष्वानिमंत्रणम्।।१५।।

अन्वयार्थ–(पुराः) पूर्व में (दत्ते) दी हुई (पुस्तकादौ) पुस्तक आदि में (रचात्मार्थे) स्व के लिए स्वीकार करने के लिए (पुनः) पुन (जिघृक्षायां) ग्रहण करने की इच्छा होने पर (सूरिप्रमुखेषु) आचार्य आदि में (यत्) जो (निवेदनम्) निवेदन किया जाता है। (आनिमंत्रणम्) वह आनिमंत्रण है।

भावार्थ–पूर्व गुरु आदि को दी हुई अपनी पुस्तक वा उसकी पुस्तकादि कोई पुनः पुनः ग्रहण करने की इच्छा हो तो विनय पूर्वक याचना करके लेना चाहिए अथवा पूर्व ग्रहण की हुई पुस्तकादि को पुनः देते समय कोई अब हमें नहीं चाहिए ऐसा विनयपूर्वक निवेदन करना आनिमंत्रण है।।१५।।

संश्रय के भेद

विनयक्षेत्रमार्गाणां संश्रयः सुखदुखयोः।
सूत्रस्य चेत्ययं पंचप्रकारः संश्रयः स्मृतः।।१६।।

अन्वयार्थ–(विनयक्षेत्रमार्गाणां) विनय, क्षेत्र, मार्ग का (सुखदयोः) सुख दुख का (य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और (सूत्रस्य) सूत्र का (इति) इस प्रकार (अयं) यह (पंचप्रकारः) पाँच प्रकार का (संश्रयः) संश्रय (स्मृतः) कहा गया है।

भावार्थ—गुरुजनों के लिए मैं आपका हूँ, इस प्रकार आत्मसमर्पम करना संश्रय (उपसंयत) है। तथा यह विनय संश्रय, क्षेत्र संश्रय, मार्ग संश्रय, सुख या दुख संश्रय, और सूत्र संश्रय के भेद से पाँच प्रकार का है।।१६।।

"विनय संश्रय"

वीक्ष्याऽऽगन्तुकमायांतं यतिमुत्थाय संभ्रमात्।
पदानि सप्त गत्वा च कृत्वा तद्योग्यवन्दनम्।।१७।।
मार्ग श्रान्तिमपोह्यासनप्रदानादियत्नतः।
त्रिरत्नसुस्थितादीनां प्रश्नो विनय संश्रयः।।१८।। युग्मम्।।

अन्वयार्थ—(आयातं) आये हुए (आगन्तुकं) आगन्तुक (यतिं) मुनि को (वीक्ष्य) देखकर (संभ्रामात्) शीघ्र ही (उत्थाय) उठकर (सप्तदानि) सात पैर (गत्वा) उसके सम्मुख जाकर (च) और (तद्योग्यवन्दनम्) उसके योग्य वन्दना (कृत्वा) करके (आसनप्रदानादियत्नतः) आसन प्रदान आदि के यत्न से (मार्गश्रान्तिम्) मार्ग के खेद को (अपोह्य) दूर करके (त्रिरत्नसुस्थितादीनां) रत्नत्रय की कुशल (प्रश्नः) पूछना (विनय संश्रय) विनय संश्रय है।

भावार्थ—अन्य ग्रन्थ के मुनि को अपने संघ में आता हुआ देखकर शीघ्र ही उठकर सात पैर उसके सम्मुख जाकर उसका सत्कार करना, तदनंतर आसन प्रदान करना, पैर दबाकर मार्ग के खेद को दूर करना आपका आगमन कहाँ से हुआ है? आपका स्थान कहा है? आपके गुरु का नाम क्या है? आपके रत्नत्रय की कुशलता है, आदि पूंछना विनय संश्रय है।।१७,१८।।

क्षेत्र संश्रय

व्यक्त्वा दुर्नृपमक्ष्मापं पापं पापिजनाकुलम्।
देशं दीक्षोन्मुखापेतं दुर्भिक्षं क्लेशदायकम्।।१९।।
निर्वाधसस्यवद्यत्र वर्द्धते गुणमण्डलम्।
क्षेत्रसंश्रयणं तत्राऽऽवासश्चेतः सुखावहः।।२०।।युग्मम्।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अक्ष्मापं) पृथ्वी रक्षा नहीं करने वाला (दुर्नृपं) दुराचारी राजा (पापं) सावद्य युक्त (पापिजनाकुलम्) पापीजनों से भरे हुए (दीक्षोन्मुखापेतं) दीक्षा का सम्मुखता से रहित (दुभिक्षं) से व्याप्त (क्लेशदायकं) क्लेश दायक (देशं) देश को छोड़कर (यत्र) जिस देश में (निर्वाधसस्यवत्) के समान (गुणमण्डलम्) गुणों का समूह (वर्द्धते) वृद्धिगत होता है (तत्र) उस क्षेत्र में (चेतः) चित्त को (सुखावहः) सुखकारी (आवासः) आवास करना (क्षेत्रसंश्रयणं) क्षेत्रसंश्रय है।

भावार्थ–जिस क्षेत्र में राजा नहीं है, अथवा पापी राजा है, जो क्षेत्र पापाचार या पापीजनों से व्याप्त है, जो दुर्भिक्ष से पीड़ित है, दीक्षा के सन्मुखता से रहित है, ऐसे क्षेत्र को छोड़कर जिस देश में निर्विघ्नव्रतों के समूह का पालन होता है उस क्षेत्र में रहना क्षेत्र संश्रय है॥१९,२०॥

मार्ग संश्रय

आगन्तुकमुनेमार्गयातागमनजातयोः।
य सुखासुखयोः प्रश्नः सोऽयं स्यान्मार्गसंश्रयः।।२१।।

अन्वयार्थ–(आगन्तुकमुनेः) आगन्तुक मुनि के (मार्गयानागमनजातयोः) मार्ग में गमनागमन से उत्पन्न हुए (सुखासुखयोः) सुखदुख में (यत्) जो (प्रश्नः) प्रश्न पूछना है (सः) वह (अयं) यह (मार्गसंश्रयः) मार्ग संश्रय स्यात् है।

भावार्थ–आगन्तुक मुनि के मार्ग में गमनागमन से उत्पन्न हुए सुख, दुख के विषय में प्रश्न पूछना यह मार्ग संश्रय है॥२१॥

सुखासुख संश्रय

चौरक्रूरगदोर्वीशपीड़िताद्यर्तिवर्त्तिनाम्।
तोषोत्कर्षमाहारभेषजायतनादिभिः।।२२।।
स्वात्मार्पणमहं तुभ्यस्मीति च सुखेऽसुखे।
यत्तच्चितप्रसादार्थं तत्सुखासुखसंश्रयः।।२३।।युग्मम्

अन्वयार्थ–(चौरक्रू रगदोर्वीशपीडिताद्यार्त्तिवर्त्तिनाम्) चोर, क्रूर प्राणी, रोग, राजा आदि से पीड़ित होने से दुखी यतिगणों को (आहारभेषजायतनादिभिः) आहार, औषध, आयतन आदि के द्वारा (तोषोत्कर्षणं) सन्तुष्ट करना (सुखे) सुख में (च) और (असुखे) दुख में (अह) मैं (तुभ्यं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारे लिए (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार (यत) जो (आत्मसमर्पणं) आत्म समर्पण करना है। (तत्) वह (तच्चितप्रसादार्थं) उसके चित्त को प्रसन्न करने के लिए (तत्सुखासुखसंश्रयः) वह सुखासुख संश्रय है।

भावार्थ–जिस क्षेत्र में व्रत, संयम, तप की विराघना होती है, दुर्जन राजा व अगामी जनों के निमित्त से परिणामों में आकुलता होती है, उस क्षेत्र को छोड़कर तप, संयम के वृद्धिकारक क्षेत्र में निवास करना क्षेत्र संश्रय है।

आगन्तुक मुनि के मार्ग में उत्पन्न हुई सुख दुख की वार्ता पूछना मार्ग संश्रय है, तथा मार्ग में उनको किसी चोर ने वा किसी दुष्ट प्राणी ने पीड़ित किया है, अथवा कोई रोग उत्पन्न हुआ है, उसको औषधि, आसन, उपकरण आदि देकर दूर करना और आप आकुलित न हों, सुख दुख में मैं आपका ही हूँ इस प्रकार आत्म समर्पण करना सुख दुख संश्रय है।।२२-२३।।

"सूत्र संश्रय के भेद"

पुरा स्वगुरुपादान्ते शास्त्रं श्रुत्वाऽखिलं पुनः।
जिज्ञासायां स्वलोकान्यथा ग्रंथातिशये मुनिः।।२४।।

भक्त्योपेत्य गुरुन्नत्वा युष्मत्पादप्रसादत।
अन्यन्मुनीन्द्रवृन्दं में द्रष्टुं वांछः प्रवर्त्तते।।२५।।

इत्येवं बहुशः स्पृष्ट्वा लब्धवाऽनुज्ञां गुरोर्व्रजेत्।
व्रतिनैकेन वा द्वाभ्यां बहुभिः सह नान्यथा।।२६।। त्रिकालम्।।

अन्वयार्थ–(पुरा) प्रथम (स्वगुरुपादान्ते) अपने गुरु के चरणों में (अखिलं) सर्व (शास्त्रं) शास्त्रों को (श्रुत्वा) सुनकर (पुनः) पश्चात् (ग्रन्थातिशये) ग्रन्थों के अतिशय के लिये (स्वलोकान्यथा) दूसरे ग्रन्थों को पढ़ने की (जिज्ञासायां) इच्छा होने पर (मुनिः) मुनि (भक्त्या) भक्ति से (गुरुन्) भक्ति से (गुरुन्) गुरु के (उपेत्य) समीप जाकर (नत्वा) नमस्कार करके (युष्मत्पादप्रसादतः) आपके चरणों के प्रसाद से (मे) मेरी (अन्यत्) दूसरे (मुनिन्द्रवृन्दं) मुनि समूह के (दृष्टुं) दर्शन करने की (वांछा) इच्छा (प्रवर्त्तते) है (इत्येवं) इस प्रकार (अयं) यह (बहुशः) बारम्बार (स्पष्ट्वा) पूछकर (गुरोः) गुरु की (अनुज्ञां) अनुमति को (लब्ध्वा) प्राप्तकर (एकेना) एक (व्रतिना) मुनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(द्वाभ्यां) दो (बहुभिः) या बहुत से मुनियों के (सह) साथ (व्रजेत्) जावे (अन्यथा) अकेला (न) नहीं जावे।

भावार्थ—सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ के जानने के प्रयत्न को सूत्र संश्रय कहते हैं। उसके अर्थ को जानने का प्रयत्न करना अर्थ संश्रय है। सूत्रार्थ का जानने का प्रयत्न करना उभय संश्रय है। इसी को मूलाचार में उपसंयत् कहा है। उसी में सूत्र संश्रय, अर्थ संश्रय, उभय संश्रय, लौकिक, वैदिक और सामाजिक के भेद से तीन-तीन प्रकार का कहा है। व्याकरण गणित आदि लौकिक सूत्र हैं। सिद्धांत शास्त्र वैदिक कहलाते है। स्याद्वाद, न्याय शास्त्र अथवा आध्यात्मिक शास्त्र सामायिक है। जिसने पूर्व में स्वकीय गुरु से सर्व सिद्धान्तों को जान लिया है पुनः विशेष शास्त्रों के जानने की इच्छा होने पर विनयशील मुनि भक्ति और आदर पूर्वक अपने गुरु के पास जाकर बार-बार प्रार्थना करता है कि हे गुरुदेव, आपके प्रसाद से यद्यपि मैंने सारे सिद्धान्त को जान लिया है फिर भी विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करने लिए मैं सकल शास्त्र के पारंगत अन्य आचार्यों के समीप जाना चाहता हूँ, इस प्रकार बार-बार प्रच्छना करे। तदनंतर गुरु की अनुमति से एक, दो या बहुत से मुनियों के साथ वह दूसरे आचार्य के समीप जाने के लिए विहार करे।।२४,२५,२६।।

एकलविहारी निषेध

ज्ञानसंहननस्वांतभावना बलवन्मुनेः।
चिरप्रव्रजितस्यैक विहारस्तु मतः श्रुते।।२७।।

एतद् गुणगणापेत; स्वेच्छाचाररतः पुमान्।
यस्तस्यैकाकिता मा भून्मम जातु रिपोरपि।।२८।।

अन्वयार्थ—(चिरप्रव्रजितः) बहुत काल के दीक्षित (ज्ञानसंहननस्वांतभावनावलवन्मुनेः) ज्ञान, संहनन, स्वांतभावना से बलशाली मुनि के (एकविहारः) एकांकी विहार करना (श्रूते) शास्त्रों में (मतः) माना है। (तु) परन्तु (यः) जो (एतत्) इन (गुणगणापेतः) गुणों के समूह से रहित (स्वेच्छाचाररतः) स्वेच्छाचार में रत (पुमान्) पुरुष है (तस्य) उस (मम) मेरे (रिपोः) शत्रु के (अपि) भी (एकाकिता) एकाकी विहार (जातु) कभी भी (माभूत्) नहीं हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जो ज्ञानबल, संहननवल, मनोबल और शुभ भावना से युक्त है वह एकाकी विहार कर सकता है। ज्ञानबल, विशिष्ट आध्यात्मिक ज्ञान का धारी हो। संहननबल, उत्कृष्ट संहनन का धारी हो, अर्थात् भूख, प्यास सहन करने की शक्ति वाला हो, आत्मानुभूति से अपने मन को वश में करने वाला हो, चिरकाल का दीक्षित हो, ऐसा विशिष्ट मुनि एकाकी विहार करने वाला हो सकता है। परन्तु जिसमें यह गुण नहीं है, जो स्वेच्छाचार में रत रहता है अर्थात् सोने, बैठने, मलमूत्र के त्याग में वस्तु के ग्रहण करने में स्वच्छंद होकर प्रवृत्ति करता है ऐसा मुनि कभी एकांकी विहार न करे।

आचार्य खेद के साथ कहते हैं कि इन गुणों से रहित साधु मेरा शत्रु भी हो तो भी एकांकी विहार न करे।।२७-२८।।

"एकल विहार करने से हानि"

श्रुतसंतानविच्छित्तिरनवस्था यमक्षयः।
आज्ञाभंगश्च दुष्कीर्त्तिस्तीर्थस्य स्याद्गुरोरपि।।२९।।
अग्नितोयगराजीर्णसर्पक्रूरादिभिः क्षयः।
स्वस्याप्यार्त्तादिकादेकविहारेऽनुचिते यतः।।३०।।युग्मम्।

अन्वयार्थ–(यतः) क्योंकि (अनुचिते) अनुचित (एकविहारे) एकाकी विहार करने पर (श्रुतसंतान विच्छितिः) श्रुतज्ञान के संतान की विच्छित्ति (अनवस्था) अनवस्था (यमक्षयः) संयम का नाश (तीर्थस्य गुरोः) तीर्थ और गुरु की (अपि) भी (आज्ञाभंगः) आज्ञा का भंग और (दुःकीर्त्तिः) अपयशस्कीर्त्ति (अग्नितोयगराजीर्णसर्पक्रूरादिभिः) अग्नि, जल, विष, अजीर्ण और सर्पादि क्रूर प्राणियों के द्वारा (आंर्तादिकात्) आर्तध्यान से (स्वस्य) अपना (क्षयः) नाश होगा।

भावार्थ–एकांकी विहार करने से संयम का घात, श्रुत का विच्छेद, दीक्षा देने वाले गुरु की निन्दा, जिन शासन में कलंक, मूर्खता, कुशीलता आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं तथा जो स्वच्छंद होकर एकांकी विहार करते हैं, वे कंटक, चोर, क्रूर, पशुओं के द्वारा पीड़ित होते हैं, उनका अजीर्ण रोगादि से आर्त्तध्यान युक्त होकर मरण होता है। अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए एक, दो, तीन या बहुत से मुनियों के साथ विहार करना चाहिए। एकांकी विहार नहीं करना चाहिए।।२९-३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यसंघ में कैसे पहुँचे

गत्वातः सूर्योपाध्यायवर्त्तकस्थविरान्वितम्।

गणं गणधरोपेतमुपेयादीदृशाश्चते।।३१।।

अन्वयार्थ–(ईदृशाः) ऐसे साधुः अपने संघ से (गत्वा) निकलकर (सूर्योपाध्यायवर्त्तक-स्थविरान्वितम्) आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर से युक्त (गणधरोपेतं) गणधर वाले (गर्ण) गण को (उपेयात्) प्राप्त करें।

भावार्थ–गुरू की अनुमत्ति लेकर वह तपस्वी दो, तीन मुनियों के साथ अन्य संघ में जाता हैं जिसमें आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्त्तक और गणधर यह पांच मुनि होते हैं।।३१।।

"आचार्य का लक्षण"

संग्रहानुग्रहप्रौढ़ो रूढ़ः श्रुतचरित्रयोः।

यः पंचविधमाचारमाचारयति योगिनः।।३२।।

बहिः क्षिप्तमलः सत्वगांभीर्यातिप्रसादवान्।

गुणरत्नाकरः सोऽयमाचार्योऽवार्यधैर्यवान् ।।३३ युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (संग्रहानुग्रहप्रौढः) संग्रह और अनुग्रह करने में प्रौढ़ है (श्रुतचरित्रयोः) श्रुत और चारित्र में (रूढ़ः) आरूढ़ है (योगिअः) योगियों को (पंचविघं) पांच प्रकार के (आचारं) आचार को (आचारयति) आचरण कराता हो (वहिःक्षिप्तमलः) जिसमें व्रतादि अतिचार नहीं हों (सत्वंगांभीर्यातिप्रसादवान्) सत्व, गांभीर्व और अत्यन्त प्रसन्नता से युक्त (अवार्यधैर्यवान्) अत्यन्त धैर्यशाली (गुणरत्नाकरः) गुणों का समुद्र है। (सः) वह (अयं) यह (आचार्यः) आचार्य परमेष्ठी है।

भावार्थ–जो शिष्यों का संग्रह और संग्रह किये हुए का अनुग्रह उपकार करने में चतुर है, ज्ञान और चरित्र में प्रौढ़ है अर्थात् जिसका ज्ञान विशाल है, और चरित्र अत्यन्त निर्मल है, दिगम्बर साधुओं को ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, चारित्राचार, दर्शनाचार का पालन कराता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतः पांच आचारों का पालन करता है जिसका भेष पंच अतिचार के मल से रहित है अर्थात् व्रतों में दूषण नहीं लगाता है, जो पृथ्वी के समान क्षमा शील है, ससुद्र के समान गंभीर है, निर्मल जल के समान अत्यन्त प्रसन्न है, आकाश के समान निर्लेप है, वायु के समान अपरिग्रही है, मेरु के समान धैर्यशाली है ऐसे गुणों के समुद्र आचार्य परमेष्ठी है॥३२-३३॥

"उपाध्याय का लक्षण"

संसारज्वरसंतापच्छेदि यद्वचनामृतम्।
पीयते भव्यलोकेन प्रीत्या नित्यं स देशकः।।३४।।

अन्वयार्थ–(संसारज्वरसंतापच्छेदि) संसार रूपी ज्वर के संताप के छेदक (यद्वचनामृतम्) जिनका वचनामृत (प्रीत्या) प्रीति से (भव्यलोकेन) भव्य लोगों के द्वारा (नित्य) हमेशा (पीयते) पीया जाता है (सः) वह (देशकः) उपाध्याय है।

भावार्थ–जिसके समीप जाकर मुनिगण विनय पूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, जिनके संसार ताप छेदक वचनामृत को भव्य लोक अपनी कर्णांजुलि के द्वारा नित्य पीते हैं वह उपाध्याय है॥३४॥

प्रवर्त्तक का लक्षण

प्रभावनाधिकोऽबाधमन्नाद्यैः संघवर्त्तकः।
जगदादेयवाग्मूर्त्तिर्वर्त्तकः कालदेशवित्।।३५।।

अन्वयार्थ–(प्रभावनाधिकः) अधिक प्रभावनाकारी (अन्नाद्यैः) अन्न आदि के द्वारा (अवाधं) अबाधितरूप से (संघवर्त्तकः) संघ का प्रवर्त्तक (कालदेशवित्) देश काल को जानने वाला (जगदादेयवाश्चमूर्ति) जगत में आदेय है वचनमूर्त्ति जिसकी ऐसा (वर्त्तकः) प्रवर्तक साधु होता है।

भावार्थ–जो देशकाल का ज्ञाता है, निर्दोषरूप से अन्न औषधि आदि के द्वारा संघ का पोषण करता है, सारे प्राणियों के द्वारा जिनके वचन माननीय हैं, जो जिन धर्म का प्रभावक है वह प्रवर्त्तक कहलाता है॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"स्थविर और गणी का लक्षण"

समयस्थितिसद्गीतिः स्थविरः स्याद्गुणस्थिरः।

गणरक्षाक्षम सूरिर्गुणी गणधरः स्मृतः।।३६।।

अन्वयार्थ–(समयस्थितिसद्गीतिः) समय की स्थिति को जानने वाला (गुणस्थिरः) स्थिर गुण वाला (स्थविरः) स्थविर (गणरक्षाक्षमः) गण की रक्षा करने में समर्थ (गुणी) गुणी (सूरिः) आचार्य (गणधरः) गणधर (स्मृतः) कहलाते हैं।

भावार्थ–जो दीक्षादि देकर शिष्यों के उपकार करने में चतुर हो वह आचार्य है, जो धर्म का उपदेश देते हैं शास्त्र पढ़ाते हैं वह उपाध्याय है जो चर्या आदि के द्वारा संघ का उपकार करते हैं, वह प्रवर्त्तक है, जो संघ की रीति, स्थिति, प्राचीन परम्परा की मर्यादा को जानते हैं वह स्थविर है और जो गण को पालते हैं, रक्षा करते हैं, वह गणधर कहलाते हैं।।३६।।

संघ में जाकर क्या करें

तं प्राप्य तद्गणाधीशमभ्यायांतं सहात्मनः।

गणेनाऽऽज्ञानतिस्वीकारेच्छावात्सल्यकारणैः।।३७।।

प्रीत्या प्रेक्ष्यातिभक्त्या तं प्रणम्य गणमप्यथ।

मार्गातिचारनियमं निवर्त्यान्याः क्रिया अपि।।३८।।

वंदित्वा गणिनं गणमप्युचितक्रिथया दिनम्।

तद्दिऽश्रम्य द्वितीयेऽह्नि तृतीये वासरेऽथवा।।३९।।

गणिनं गुणिनं संघगुणसंगमवेत्य तम्।

दयादमशमावश्यकक्रियाकरणादिषु।।४०।।

सूरिं संश्रित्य नत्वेष्टं स्वस्य विज्ञापयेच्छनैः।

दत्वाऽस्मै चेतनाचेतनांतरालार्जितोपधिम्।।४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(आत्मनः) अपने (गणेन) गण के (सह) साथ (अभ्यायांतं) सम्मुख आये हुए (तं) उस (तद्गणाधीशं) उस गण के अधीश को (प्राप्य) प्राप्त कर (आज्ञानतिस्वीकारेच्छा–वात्सल्यकारणैः) आज्ञा, नति स्वीकार की इच्छा, वात्सल्य आदि कारणों के द्वारा (प्रीत्या) प्रीति से (प्रेक्ष्य) परीक्षा करके (अतिभक्त्या) अति भक्ति से (तं) उस (गणं) गण को (प्रणम्य) नमस्कार कर (अथ) इसके बाद (मार्गातिचारनियमं) मार्ग के अतिचार के नियम को (अपि) और (अन्या) अन्य भी (क्रियाः) क्रियाओं को (निर्वत्य) निवृत्त कर (उचितक्रियया) योग्य क्रियाओं से (गणिनं) सूरि को (अपि) और (गणं) संघ को (वंदित्वा) नमस्कार कर (तत्) उस (दिनं) दिन को (विश्रम्य) विश्रांति लेकर (द्वितीये) दूसरे (अह्नि) दिन में (अथवा) अथवा (तृतीये) तीसरे (वासरे) दिन में (दयादमशमावश्यक्रियाकरणादिषु) दया, दम, शम, आवश्यकादि क्रिया करण आदि मैं (गुणिनं) गुणशाली (संघगुणसंघं) संघ के गुणों का समूह (तं) उस (गणिनं) आचार्य को (अवेत्य) जानकर (सूरिं) सूरि के (संश्रित्य) समीप में बैठकर (नत्वा) नमस्कार करते हुए (चेतनाचेतनांतरांलार्जितोपधिम्) मार्ग में प्राप्त हुई चेतन, अचेतन उपधि (पुस्तकादि) को (अस्मै) उस आचार्य के लिए (दत्वा) देकर (स्वस्य) अपने (इष्टं) इष्ट को (शनैः) धीरे-धीरे (विज्ञापयेत्) विज्ञापन करे।

भावार्थ–शास्त्रज्ञान का इच्छुक संयमी अपने गुरु की अनुमति लेकर आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर गणी से शोभित पर संघ में जाते हैं पर संघ के साधु उस आगन्तुक मुनि को देखकर सात पैर उसके सम्मुख जाकर तथा परस्पर में नमस्कार करके रत्नत्रय की कुशल पूंछते हैं। तदनन्तर आगन्तुक मुनि और संघ के मुनि परस्पर में एक दूसरे की आज्ञापालन नमस्कार स्वीकार, इच्छा, वात्सल्यादि कारणों के द्वारा परीक्षा करके प्रीति और अतिभक्ति से आचार्य को नमस्कार करके आगन्तुक के मुनिमार्ग के अतिचारों को दूरकर, उचित क्रिया से एक दिन विश्रांति देकर दैनिक सारी आवश्यक क्रियाओं में तथा प्रतिलेखन क्रिया में परस्पर दो तीन दिन तक परीक्षा करते हैं। तदनंतर दूसरे या तीसरे दिन जाकर साधु आचार्य को नमस्कार कर उनके समीप बैठ जाय। तदनंतर मार्ग में शिष्य आदि चेतन, पुस्तक कमण्डलु आदि अचेतन कोई भी वस्तु प्राप्त हुई हो तो आचार्य को अर्पण कर दे। उसके बाद अति विनय भावों से धीरे-धीरे अपने आने के कारण को आचार्य से निवेदन करे।।३७-४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य का कर्त्तव्य और परीक्षा

गुरुसन्तानचारित्रशुद्धो शास्त्रो यदीतरः।

कृत्वा छेदमुपस्थापनादिशुद्धश्च नेतरः।।४२।।

अन्वयार्थ–(गुरुसन्तानचारित्रशुद्धः) गुरु की सन्तान और चारित्र जिसका शुद्ध है ऐसा वह आगन्तुक मुनि (ग्राह्यः) ग्रहण करने योग्य हैं (च) और (यत्) जो (इतरः) गुरुसंतान, चारित्र से शुद्ध नहीं है वह (छेदं) छेद (कृत्वा) करके (उपस्थापनादिशुद्धः) उपस्थापनादि से शुद्ध है वह ग्राह्य है (इतरः) जो प्रायश्चित लेकर शुद्ध नहीं हुआ हो वह (न) ग्राह्य नहीं है।

भावार्थ–आगन्तुक यति की गुरु परम्परा और चारित्र शुद्ध हो तो आचार्य उसको ग्रहण करे। यदि चारित्र आदि में अशुद्धि हुई हो तो प्रायश्चित देकर पुनः व्रतों की उपस्थापना करे। यदि आगन्तुक मुनि प्रायश्चित ग्रहण नहीं करे तो उसे स्वीकार नहीं करे और उसको अपने संघ में आश्रय नहीं दे।।४२।।

शिलाभग्नघटाजाविडालमृच्चालिनीशुक्रैः।

मशका चाहिमहिषैरपि श्रोतान् समान् प्यजेत्।।४३।।

अन्वयार्थ–(शिलाभग्नघटाजाविडालमृच्चालिनीशुकैः) शिला, भग्नघट, अजा (बकरी) विडाल (बिल्ली) मिट्टी, चालनी, तोता (मशका चाहिमहिषैरपि) मशक, सर्प, भैंसा के (समान्) (श्रोतान्) श्रोताओं को (त्यजेत्) छोड़ देवे।

भावार्थ–शिला, भग्नघट, बकरी, विडाल, मिट्टी, चालनी, तोता, मशक, सर्प, भैंसा आदि के समान श्रोताओं को छोड़ दे। अर्थात् उनको समझाने की चेष्टा नहीं करे।

मिट्टी = सुनते समय ही प्रभावित होने वाले, बाद में जो सुने और समझकर उस पर आचरण नहीं करने वाले। झाड़ू = सार ग्राहक असार को छोड़ने वाला। भैंसा = सुना ना सुना दोनों बराबर। हंस = विवेकशाली। शुक्र = जितना सुना उतना ही बिना समझे याद रखने के समान होता है। बिल्ली = चालाक पाखण्डी। बगुला = अर्थात् सुनने का ढोंग करने वाले। मशक = वक्ता तथा सभा को परेशान करने में प्रवीण। बकरा = देर में समझने वाले तथा कामी। जौंक = दोषग्राही। अन्य कुछ श्रोताओं के उदाहरण, सैकड़ों छेद युक्त घड़े या फूटे घड़े=इस कान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुना उस कान निकाल दिया। पशु = किसी का जोर पड़ा तो कुछ सुन समझ लिया। सर्प = कुटिल। शिला = प्रभावशाली से दिये जा सकते हैं। इस प्रकार संसार के सभी श्रोता चौदह प्रकार के होते हैं।

जो विवेकी श्रोता सांसारिक भोग विलासरूपी फलों की स्वप्न में इच्छा नहीं करता, तथा मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति करने का अडिग तथा अकम्प निर्णय करके प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारिणी जिनधर्म की विशाल कथा को सुनता है, उस मनुष्य के सब ही पापों का निसन्देह समूल नाश हो जाता है।।४३।।

मोहादिना निषिद्धस्य श्रोतुर्मन्दमतेरपि।
सति प्राज्ञैर्विनीतेऽस्मिन् यो व्याख्याति नराधमः।।४४।।

भिन्नरत्नत्रयीयानपात्रोऽसौ भूरिगौरवात्।
विघृतबोधि संसारवारिराशौ निमज्जति।।४५।। युग्मम्।

अन्वयार्थ–(यः) जो (नराधमः) नीच (अस्मिन्) इस (विनीते) विनीत शिष्य होने पर भी (मोहादिना) मोहादि के कारण (प्राज्ञैः) विद्वानों के द्वारा (निषिद्धस्य) निषिद्ध (मन्दमतेः) मन्दमति (श्रोतुः) श्रोता को (अपि) भी (व्याख्याति) उपदेश देता है। (भिन्नरत्नत्रयीयानपात्रः) नष्ट हो गया है रत्नत्रयरूपी यानपात्र जिसका और (विघूतबोधिः) नष्ट हो गया है ज्ञान जिसका ऐसा (असौ) वह आचार्य (भूरिगौरवात्) महान गौरव होने से (संसारवारिराशौ) संसाररूपी समुद्र में (निमज्जति) डूब जाता है।

भावार्थ–जो आचार्य विद्वानों के द्वारा निषिद्ध श्रोता को धर्म का उपदेश देता है, अध्ययन कराता है, उसकी रत्नत्रय रूपी नौका नष्ट हो जाती है और वह संसार समुद्र में डूब जाता है।।४४-४५।।

आचार्य द्वारा पूंछना और संघ में रहने की अनुमति

संचिंत्येति स्थितस्थानं तपः कालं गुरुं कुलम्।
पृष्ट्वा श्रुतं नाम एवं प्रतिक्रमणादिकम्।।४६।।

शयनासनयनादौ प्रेक्ष्य वृतं दिनत्रयम्।
निश्चित्य गुरुश्चारित्रशुद्धिं तत्सूरिसम्मतः।।४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वशक्तिमुक्त्वा व्याख्यादौ तद्व्याख्यातं पठेच्छ्रुतम्।
स्वस्येष्टं प्रश्रयादेतत्पठनं सूत्रसंश्रय।।४८।।त्रिकम्।।

अन्वयार्थ–(इति) इस प्रकार (संचित्य) विचार कर (स्थितस्थानं) रहने के स्थान (कालं) काल (तपः) तप (गुरुं) गुरु (कुलं) कुल (श्रुतं) श्रुत (स्वं) अपने (श्रुतं) सुने हुए (नाम) नाम और (प्रतिक्रमणादिकम) प्रतिक्रणादि को (पृष्ट्वा) पूछकर (दिनत्रयं) तीन दिन तक (शयनासनयानादौ) शयन आसनादि में (वृतं) आचरण की (प्रेक्ष्य) परीक्षा करके (चारित्रशुद्धिं) चारित्र की शुद्धि को (निश्चित्य) निश्चय कर (गुरुः) (तत्सूरिसम्मतः) उसके आचार्य की सम्मति से (स्वशक्तिं) अपनी शक्ति को (उक्त्वा) कहकर (व्याख्यादौ) व्याख्यान आदि में (व्याख्यातं) कहे गये (श्रुतं) श्रुत को (पठनं) पढ़े। (प्रश्रयात्) विनय से (स्वस्येष्टं) अपने इष्ट को (पठनं) पढ़ना (एतत्) यह (सूत्रसंश्रयः) सूत्र संश्रय है।

भावार्थ–सर्व प्रथम आचार्य आगन्तुक मुनि के रहने के स्थान और गुरु के कुल को पूछे तथा तुमको दीक्षा लिये कितने दिन हुए हैं, तुमने प्रतिक्रमण कहाँ-कहाँ किये हैं, तुम्हारे गुरु का क्या नाम है आदि सभी क्रिया पूंछकर तीन दिन तक उसकी सामयिक आदि क्रियाओं का निरीक्षण करे। पीछे सूक्ष्म सूक्ष्म दृष्टि से उसके चारित्र और गुरु की शुद्धि का निर्णय करें, तथा आगन्तुक व्रती भी तीन दिन नूतन संघ के आचार्य वा संघस्थ साधुओं की चारित्र शुद्धि व कुल का निर्णय करे। तदन्तर आचार्य की अनुमति से व्याख्यानादि में कथित श्रुत का अध्ययन करे। इस प्रकार विनयपूर्वक उस संघ में जाकर विधिपूर्वक आचार्य के समीप शास्त्रों का अध्ययन करना सूत्र संश्रय है।।४६-४८।।

विस्तारनीति का कथन

सविस्तारसमाचारनैकभेदोऽत्र वर्ण्यते।
उदाहरणमात्रेण विश्वं को वक्तुमीश्वरः।।४९।।
रात्रिं दिवं यमिष्वार्ये यत्कर्माचर्यते वरम्।
तद्विस्तारसमाचार इति येन जिनोदितः।।५०।।युग्मम्।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(सविस्तारसमाचारनैकभेदः) विस्तार सहित समाचार के अनेक भेद हैं। (अत्र) इस ग्रन्थ में (उदाहरणमात्रेण) उदाहरण मात्र से (वर्ण्यते) वर्णन किया जाता है। क्योंकि (विश्वं) सम्पूर्ण समाचार विधि को (वक्तुम्) कहने के लिए (कः) कौन (ईश्वरः) समर्थ हैं। (येन) जिसके द्वारा (यमिषु) साधुओं में (आर्ये) आर्यिकाओं में (यत्) जो (वरं) श्रेष्ठ (कर्म) क्रिया (रात्रिदिनं) रातदिन (आचार्यते) आचरण की जाती है (इति) इस प्रकार (जिनोदितः) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित (तद्विस्तारसमाचारः) विस्तार समाचार है।

भावार्थ–पूर्व में संक्षेप में समाचार विधि कही है। इस समय भेद वाले विस्तार समाचार विधि का उदाहरणमात्र कथन करते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण समाचार विधि का कथन करने के लिए कौन समर्थ है। मुनि आर्यिकाओं को जो रात्रि और दैवसिक क्रिया जिनेन्द्र ने कहीं है, वह विस्तार समाचार विधि है।।४९-५०।।

सिद्धान्तशास्त्रों को पढ़ने की आज्ञा

क्रियाकलापमल्पाल्पसूत्राण्याचारवर्णनम्।
पठदेथ पुराणानि त्रिकलो स्थितिकीर्तनम्।।५१।।

सिद्धांतं तर्कमंगांगवाह्यादेशार्थदेशनम्।
स्वीयशक्त्यनुसारेण भक्त्या मोक्षैककांक्षया।।५२।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(अथ) इसके बाद (स्वीयशक्त्यनसारेण) अपनी शक्ति के अनुसार (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (मोक्षैककांक्षया) मोक्ष की अद्वितीय आकांक्षा से (त्रिकलः) रत्नत्रयधारी (क्रियाकलापं) क्रिया कलाप को (अल्पाल्यसूत्राणि) अल्पाल्य सूत्रों को (आचारवर्णनं) आचरण वर्णन करने वाले शास्त्रों को (पुराणानि) पुराणों को (स्थितिकीर्त्तनम्) स्थितिकीर्तन (तर्क) तर्कशास्त्र (अंगांगबाह्यदेशार्थदेशनम्) अंगबाह्य, अंगप्रविष्ट का कथन करने वाले (सिद्धांत सिद्धान्त) ग्रन्थों को (पठेत्) पढ़े।

भावार्थ–क्रियाकलाप जिसमें श्रावक और मुनियों के क्रियाओं का वर्णन हो। अल्पाल्यसूत्र-जिसमें अल्प अक्षर हों और बहुत विषय का वर्णन हो। आचारवर्णन-जिसमें ग्रहस्थ और मुनियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के चारित्र का वर्णन हो। पुराण-जिसमें त्रेषठ शलाका पुरुषों का वर्णन हो। स्थितिकीर्तन-जिसमें मोहनीय आदि सारे कर्मों की सर्व प्रकृतियों का जघन्य उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का वर्णन हो। सिद्धान्त ग्रन्थ-षट्खंड आदि सिद्धान्तग्रन्थ जिनमें गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग आदि सारे सिद्धान्तों का वर्णन हो। प्रमाण, नय के द्वारा जिसमें वस्तु की सिद्धि की जाती है वह तर्क शास्त्र है। गणधर के द्वारा पदों में रचित बारह अंग हैं। दशवैकालिक आदि अंगबाह्य ग्रन्थ है। साधु अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि पूर्वक उन शास्त्रों का अध्ययन करे।।५१-५२।।

प्रायश्चित्त शास्त्रों पढ़ने के अधिकारी

रुचिश्चार्वी चरित्राणां शरणं शरणं सताम्।
महत्वसत्वगांभीर्यधैर्यादिगुणभूषणः।।५३।।
चिरप्रव्रजितो दांतः प्रव्यक्तसमयस्थितिः।
दयावात्सल्यसाकल्यः शांतोऽयं गणितोचितः।।५४।।

अन्वयार्थ–(सतां) समीचीन (चरित्राणि) चारित्रों की (शरणं) रक्षा करने वाला (शरणं) शरणभूत (चार्वी) श्रेष्ठ (रुचिः) श्रद्धानवाला (महत्वसत्वगांभीर्यधैर्यादिगुणभूषणः) महानता, सत्व, गंभीरता, धैर्यादि गुणों से भूषित (चिरप्रव्रजितः) चिरकाल का दीक्षित (दांतः) इन्द्रियविजयी (प्रव्यक्तसमयस्थितिः) लोकस्थिति का ज्ञाता (दयावात्सल्यसाकल्यः) दया, वात्सल्यादि से परिपूर्ण (शांत) क्षमाशील (अयं) यह साधु (गणितोचितः) आचार्य पद के योग्य हैं।

भावार्थ–सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का धारी, सत्वधारी, गंभीर, धीर, वीर, इन्द्रियविजयी, क्षमाशील, लोकव्यवहारक साधु ही आचार्य पद के योग्य होता है।।५३-५४।।

इति सूर्यर्पिताचार्यपदः सन् संघसम्मतः।
प्रायश्चितादिशास्त्राणि रहस्यानि पठदेथ।।५५।।

अन्वयार्थ–(इति) इस प्रकार (अथ) शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर (संघसम्मतः) संघ की सम्मति से (सूर्यर्पिताचार्यपदः) आचार्य के द्वारा अर्पित किया गया है आचार्य पद जिसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा साधु (रहस्यानि) रहस्यभूत (प्रायश्चितादिशास्त्राणि) प्रायश्चित आदि शास्त्रों को (पठेत्) पढ़ें।

भावार्थ–पूर्व में गुरु के समीप पुराण, सिद्धान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन करे तदनन्तर आचार्य के द्वारा आचार्य पद अर्पण करने के बाद रहस्यभूत प्रायश्चित ग्रन्थों का अध्ययन करे।।५५।।

आचार्य पद हेतु योग्य मुनि

यः शिष्यत्वमकृत्वैव सूरितां कर्तुमीहते।
सः स्यादुन्मार्गगस्तीक्ष्णो वाऽशिक्षिततुरंगमः।।५६।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (शिष्यत्वं) शिष्यत्व को (अकृत्वा) नहीं करके (एव) ही (सरितां) आचार्य (कर्तुः) बनना (ईहते) चाहता है (सः) वह (अशिक्षिततुरंगमः) अशिक्षित घोड़े के समान (तीक्ष्णः) तीक्ष्ण (उन्मार्गगः) उन्मार्गगामी (स्यात्) हो जाता है।

भावार्थ–जो साधु शिष्यत्व को स्वीकार नहीं करके आचार्यत्व प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहता है वह अशिक्षित घोड़े के समान उन्मार्गगामी हो जाता है।।५६।।

जीवों के प्रति भावना

सर्वसत्वगुणिक्लेशिनिर्गुणेषु करोत्वलम्।
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि यथाक्रमम्।।५७।।

अन्वयार्थ–(सर्वसत्वगुणिक्लेशिनिर्गुणेषु) वे मुनि सर्वजीव, गुणी, दुखी और निर्गुणियों में (यथाक्रम) यथाक्रम से (मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि) मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, और माध्यम भाव को (अलं) अतिशयरूप से (करोतु) करे।

भावार्थ–साधुओं को सर्व जीवों के साथ मैत्रीभाव, गुणिजनों के साथ प्रमोदभाव, दुखी दीन जनों को प्रति कारुण्यभाव, तथा दुर्जन क्रूर कुमार्ग गामी के प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए।।५७।।

साधु किनको नमस्कार करें

जिनान् सिद्धान गणाधीशानुपाध्याञ्जगद्गुरुन्।
साधून धर्म जगच्छर्मकरं वन्देत नेतरान्।।५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–साधुगण (जिनान्) जिन (सिद्धान्) सिद्ध (गणधीशान्) आचार्य (उपाध्यायान्) उपाध्याय (जगदगुरुन्) जगतगुरु (साधून) साधुओं (जगच्छर्मकरं) जगत में सुखकारी (धर्म) को (वन्देत) नमस्कार करे (इतरान्) दूसरों को (न) नमस्कार नहीं करे।

भावार्थ–दिगम्बर साधु अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन धर्म, जिनविम्ब और जिन शास्त्रों, को ही नमस्कार करें। इनके सिवाय अन्य लोगों को, पाखण्डियों को, नमस्कार नहीं करें।।५८।।

क्षुतार्ती भयजृंभेष्टार्थारंभस्खलने बुधैः।

शयने विस्मयादौ च स्मर्तव्यो बृजिनो जिन।।५९।।

अन्वयार्थ–(क्षुतार्तीभयजृभेष्टार्थारंभस्खलने) भूख, प्यास, पीड़ा, जृंभा और इष्ट अर्थ के आरम्भ में स्खलित होने पर (शयने) शयन में (विस्मयादौ) आश्चर्य आदि के होने पर (बुधैः) बुद्धिमानों को (वृजिनः) कामक्रोधादिकनाशक (जिनः) जिनेन्द्र भगवान का (स्मर्तव्यः) स्मरण करना चाहिये।

भावार्थ–बुद्धिमानों को भूख, प्यास, दुख, भय में जंभाई आदि के आने पर, अपने इष्ट कार्य में स्खलित हो जाने पर, शयन में तथा विस्मयादि के हो जाने पर जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करना चाहिये।।५९।।

मुनि आचार्य वन्दना कैसे करे

सुखेनासीनमव्यग्रं सूरिं वंदेत् सम्मुखम्।

वंदेऽहमिति विज्ञाप्य हस्तमात्रांतरस्थितः।।६०।।

प्रमृज्य कर्तरीस्पर्शात्माष्टांगान्यवनीमपि।

पर्श्वद्वशय्ययाऽऽनम्य सपिच्छांजुलिभालकः।।६१।।

अन्वयार्थ–(हस्तमात्रांतरस्थितः) हस्तमात्र अन्तर में स्थित होकर (अहं) मैं (वन्दे) वन्दना करता हूँ (इति) इस प्रकार (विज्ञाप्य) विज्ञापन करके (सन्मुखं) होकर (कर्तरीस्पर्शात्मात्यंगानि) कर स्पर्श किये हुये अपने अष्ट अंगों को (अपि) और (अवनीं) पृथ्वीतल को (प्रमृज्य) मार्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके (सपिच्छांजुलिभालकः) पिच्छि सहित अजुलि है मस्तक पर जिसके ऐसा मुनि (पश्चर्द्धशय्या) गवासन से (आनभ्य) झुककर (अव्यग्रं) अनाकुल होकर (सुखेन) सुख पूर्वक (आसीनं) बैठे हुये (सूरिं) आचार्य को (वन्देत) नमस्कार करे।

भावार्थ–अनाकुल होकर सुखपूर्वक बैठे हुए आचार्य के सन्मुख एक हाथ दूर गवासन से बैठकर, पिच्छी सहित अंजुलि को मस्तक पर रखकर पूर्व में आचार्य को सूचित करे, कि गुरुदेव मैं वन्दना करता हूँ, तदनन्तर अपने आठों अंगों को स्पर्श करे, भूमि आदि को पीछी से मार्जन करे तथा पिच्छिसहित अंजुलि को मस्तक पर रखकर, गवासन से अंगों को झुकाकर भक्ति पूर्वक आचार्य को नमोस्तु करे।।६०-६१।।

प्रतिवन्दना का रूप

विगौरवादिदोषेण सपिच्छांजुलिशालिना।

सदब्जसूर्याऽऽचार्येण कर्तव्यं प्रतिवंदनम्।।६२।।

अन्वयार्थ–(विगौरवादिदोषेण) ऋद्धि, गौरव, आदि दोष रहित (सपिच्छांजुलिशालिना) पिच्छि सहित हैं अंजुलि जिसकी ऐसे (सदब्जसूर्याऽऽचार्येण) सज्जनरूपी कमल के लिए सूर्य के समान आचार्य के द्वारा (प्रतिवंदनम्) प्रतिवन्दना (कर्तव्यं) करना चाहिए।

भावार्थ–जब मुनिराज आचार्य को वन्दना करते हैं तब सज्जनकमलवनदिवाकर आचार्य, ऋद्धिगौरव, रस गौरव, ज्ञान गौरव से रहित होकर हाथ में पिच्छि लेकर नमोस्तु कहकर प्रतिवन्दना करें।।६२।।

पारस्परिक शुद्धिविचार

ये दोषान्वेषिणोऽन्येषां सद्गुणावर्णवर्णनाः।

तपस्विनोऽपि पार्श्वस्था ये च वंद्या न ते यतेः।।६३।।

अन्वयार्थ–(ये) जो (अन्येषां) दूसरों के (दोषाचेषिणः) दोषों का अन्वेषण करने वाले हैं (च) और (सद्गुणवर्णवर्णानाः) सद्गुणों को आच्छादन करने वाले तथा (ये) जो (पार्श्वस्था) पार्श्वस्थ हैं (ते) वे (तपस्विनः) तपस्वी होते हुए (अपि) भी (यतेः) यति के (वंद्याः) वन्दनीय (न) नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जो मुनि दूसरों के दोषों का कथन करता है तथा उनके सद्गुणों का आच्छादन करता है अथवा जो पार्श्वस्थ मुनि है वे साधुओं के द्वारा वंदनीय नहीं है।।६३।।

पुरो गुरुणां स्थातव्यं न यथेष्टमकोपयन्।

तानापृच्छेद्वचस्तेषां प्रतीच्छेत्तत्परो भवेत्।।६४।।

अन्वयार्थ–(गुरुणां) गुरुओं के (पुरा) सामने (न स्थातव्यं) नहीं बैठना चाहिए (तान्) उनको (अकोपयन्) कुपित नहीं करके (यथेष्टं) अपनी इच्छित बात को (पृच्छेत्) पूंछना चाहिए (तेषां) उनके (वचः) वचनों को (प्रतीच्छेत्) स्वीकार करते हुए (तत्परोभवेत्) उसमें लीन होना चाहिए।

भावार्थ–गुरु के सामने बैठना नहीं चाहिए, आचार्य को कुपित नहीं करते हुए अपनी इच्छा को पूछे तथा उनकी बात को तत्पर होकर स्वीकार करे।।६४।।

हस्तद्वयेन दातव्यं ज्येष्ठेभ्यः पुस्तकादिकम्।

तत्तद्देयं करद्वन्द्वे नादेयं विनयानतैः।।६५।।

अन्वयार्थ–(ज्येष्ठेभ्यः) अपने बड़े गुरु आदि को (हस्तद्वयेन) दोनों हाथों से (पुस्तकादिकम्) पुस्तकादि (दातव्यं) देना चाहिए (तत्रद्देयं) उनके द्वारा दी हुई पुस्तकादि (विनयानतैः) विनयशील पुरुष के द्वारा (करद्वयेन) दोनों हाथों से (आदेयं) लेनी चाहिये।

भावार्थ–अपने गुरु आदि को विनयपूर्वक दोनों हाथों से पुस्तक देना चाहिए और उनके द्वारा दी हुई पुस्तक आदि को भी महान आदर से दोनों हाथों से ही ग्रहण करना चाहिये।।६५।।

आर्शीवाद वचन

नमोऽस्विति नतिः शस्ता समस्तमतसंमता।

कर्मक्षयः समाधितेस्त्वित्यार्याजने नते।।६६।।

धर्मवृद्धिः शुभं शांतिरस्त्वित्याशीरगारिणि।

पापक्षयोऽस्त्विति प्राज्ञैश्चाण्डालादिषु दीयताम्।।६७।।

अन्वयार्थ–(नमोऽस्तु) नमस्कार हो (इति) इस प्रकार की (नतिः) नमस्कार मुनियों में (समस्तमत संमता) सबने माना है (आर्याजने) आर्यिकाओं के (नते) नमस्कार करने पर (ते) तेरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कर्मक्षयः) कर्मक्षय हो (समाधिः) तेरी समाधि (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार कहना चाहिये। (अगारिणि) जिनधर्मावलम्बी गृहस्थों के नमस्कार करने पर (धर्मवृद्धिः) धर्मवृद्धि हो (शुभं) शुभ हो (शांतिः) शांति (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार (आशीः) आशीर्वाद (दीयतां) देना चाहिए (चाण्डालादिषु) चांडाल आदि के नमस्कार करने पर (प्राज्ञैः) बुद्धिमानों के द्वारा (पापक्षयः) तेरा पापक्षय (अस्तु) हो इति। इस प्रकार आशीर्वाद देना चाहिए।

भावार्थ–दिगम्बर साधु परस्पर में नमोऽस्तु ऐसा व्यवहार करें। यदि दिगम्बर साधु को आर्यिका नमस्कार करे तो तेरा कर्म क्षय हो। तुम्हारी समाधि हो ऐसा आशीर्वाद दे तथा जिन धर्मावलम्बी गृहस्थ के नमस्कार करने पर तेरे धर्म की वृद्धि हो, तुम्हारा कल्याण हो, शांति हो, मन प्रसन्न हो इत्यादि आशीर्वाद देना चाहिए तथा चांडालादि के नमस्कार करने पर तेरा पाप क्षय हो ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए।।६६-६७।।

सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा

मान्यः सद्दर्शनी ज्ञानो हीनोऽप्यपरसद्गुणैः।
वरं रत्नमनिष्पन्नशोभं किं नार्घ्यर्हति।।६८।।

अन्वयार्थ–(अपरसद्गुणैः) उतरगुणों से (हीनः) हीन (अपि) भी (सद्दर्शनी) सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) ज्ञान वान मुनि (मान्यः) माननीय हैं (अनिष्पन्नशोभं) जिसकी शोभा निष्पन्न नहीं है ऐसा (वरं) श्रेष्ठ (रत्नं) रत्न (किं) क्या (अर्घ्यं) बहुमूल्य को (न) नहीं (अर्हति) प्राप्त करना है।

भावार्थ–जो मुनि अपर-उत्तर गुणादि सद्गुणों से सम्पन्न नहीं है परन्तु सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी है तो वह श्रेष्ठ है, वंदनीय है। क्योंकि श्रेष्ठरत्न यदि संस्कार आदि से रहित है तो भी बहुमूल्य होता है।।६८।।

पारस्परिक शुद्धि विचार

उक्तिः कार्या सहाचार्यैः कार्यार्थं शेषयोगिभिः।
न मिथ्यादृष्टिभिर्भाज्या श्रावकैः स्वजनैश्च सा।।६९।।

अन्वयार्थ–(आचार्यैः) आचार्य के (सह) साथ (उक्तिः) वार्तालाप (कार्या) करना चाहिए (शेषयोगिभिः) शेष योगियों के साथ (कार्यार्थं) कोई विशिष्ट कार्य होने पर वार्तालाप करना चाहिए (मिथ्यादृष्टिभिः न) मिथ्यादृष्टि के साथ वार्तालाप नहीं करना चाहिए (च) और (स्वजनैः) स्वजन (श्रावकैः) श्रावकों के साथ (सा) वह वार्तालाप (भाज्या) भजनीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–मुनि उन आचार्यों के साथ वार्तालाप करे। शेष मुनिजनों के साथ कोई कार्य विशेष हो तो वार्तालाप करे। मिथ्यादृष्टियों के साथ कभी भी वार्तालाप नहीं करे। जिनधर्मावलम्बी श्रावकों के साथ कभी किसी कार्यवश बात करे और निष्प्रयोजन कभी वार्तालाप न करे।।६९।।

स्पृष्टे कपालिचांडालपुष्पवत्यादिके सति।

जपेदुपोषितो मंत्रं प्रागुप्लुत्याशु दंडवत्।।७०।।

अन्वयार्थ–(कपालिचांडालपुष्पवत्यादिके) कापालिक, चांडाल, पुष्पवती स्त्री आदि के (स्पृष्टे) स्पर्श (सति) हो जाने पर (प्राग्) प्रथम (दंडवत्) दंड के समान (आशु) शीघ्र ही (उप्लुत्य) स्नान कर (उपोषितः) उपवास करता हुआ (मंत्रं) मंत्र को (जपेत्) जपे।

भावार्थ–यदि कापालिक, चांडाल, पुष्पवती (मासिक धर्म वाली) स्त्री का स्पर्श हो जावे तो शीघ्र ही दंडवत् स्नान करे और उपवास करके णमोकारमंत्र का जाप्य करे।।७०।।

संस्तरावासयोः प्रेक्षा कार्या कल्पास्तकालयो।

प्रकाशे सूरिभिः सार्धं वृत्तिश्चावश्यकादिषु।।७१।।

अन्वयार्थ–(कल्पास्तकालयोः) सूर्य के उदय और अस्तकाल में (संस्तरा वासयोः) संस्तर और आवास का (प्रेक्षा) निरीक्षण (कार्या) कार्य करना चाहिए (च) और (प्रकाशे) प्रकाश में (आवश्यकादिषु) आवश्यकादि क्रियाओं में (सूरभिः) आचार्य के (सार्धं) साथ (वृत्तिः) वृत्ति करना चाहिये।

भावार्थ–सूर्य के अस्त और उदयकाल में प्रकाश मैं संस्तर और आवासादि का निरीक्षण करना चाहिए तथा सामायिक आदि आवश्यक क्रिया आचार्य के साथ करनी चाहिए।।।७१।।

आर्यिका कर्त्तव्य

मुनिनैकेन नो वाच्यमेकार्या यदि पृच्छति।

गणमुख्यां पुरस्कृत्य पृष्टं ब्रूयात् तदीक्षितम् ।।७२।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (एका) अकेली (आर्या) आर्यिका (पृच्छति) कोई बात पूछती हो तो (एकेन) एक (मुनिना) मुनि को (न) नहीं (वाच्यं) बोलना चाहिए (यदि गणमुख्यां) यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणनी को (पुरस्कृत्य) आगे करके (पृष्टं) पूछे तो (तदीप्सितं) उसकी इच्छित बात को (ब्रूयात्) मुनि बोले।

भावार्थ–यदि अकेली आर्यिका अकेले मुनि को कोई बात पूछे तो मुनि को उत्तर नहीं देना चाहिये। यदि अपनी गणिनी को साथ में लेकर आवे और कोई बात पूछे तो उत्तर देना चाहिए।।७२।।

मालालापं कथाश्चार्याजनैः सार्द्धं यमी त्यजेत्।

तदाश्रयेऽशनं स्थानं व्याख्यानं शयनादिकम् ।।७३।।

अन्वयार्थ–(यमी) साधु (आर्याजनैः) आर्यिकाओं के साथ (मालालापं) स्पर्श, आलाप (च) और (कथाः) कथा को (त्यजेत्) छोड़ दे (तदाश्रये) आर्यिकाओं के स्थान में (अशनं) भोजन (स्थानं) रहना (व्याख्यानं) व्याख्यान (शयनादिकं) सोना आदि (त्यजेत्) छोड़ दे।

भावार्थ–आर्यिकाओं के साथ वार्तालाप करना, उनके स्थान में बैठना, आवास करना, व्याख्यान देना, सोना, साधुओं को नहीं करना चाहिये।।७३।।

मुनिनैकाकिनैकान्ते न स्थातव्यं कदाचन।

योषिज्जनागमे काले सदाचारयशोऽर्थिना।।७४।।

अन्वयार्थ–(योषिज्जनागमे) स्त्रियों के आगमन (काले) समय में (एकान्ते) एकान्त में (सदाचार-यशोऽर्थिना) सदाचार और यश के इच्छुक (मुनिना) मुनि को (एकाकिना) एकाकी (कदाचन) कभी भी (न) नहीं (स्थातव्यं) रहना चाहिये।

भावार्थ–सदाचार और यश के इच्छुक को स्त्रियों के आगमन के समय एकान्त में एकाकी कभी नहीं रहना चाहिये।।७४।।

नामाऽप्यानन्दनिष्यन्दि "स्त्रीति" लोचनगोचरम्।

तदंगमंगजस्फारशरोग्रं न करोति किम् ।।७५।।

अन्वयार्थ–(स्त्री) "स्त्री" (इति) इस प्रकार का (नाम) नाम (अपि) भी (आनंदनिष्यन्दि) आनन्द दायक है (लोचनगोचरं) तो दृष्टिगोचर हुआ (तदंगं) उसका अंग (किं) क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अंगजस्फारशरोग्रम्) कामदेव के स्फार वाण की उग्रता को नहीं करता है अर्थात् करती है।

भावार्थ–"स्त्री" इस प्रकार का नाम भी आनन्दामृत को वर्षाने वाला है। तो फिर दृष्टिगोचर हुआ स्त्री का शरीर क्या कामोत्पादक नहीं होगा, अवश्य ही होगा इसलिए उसकी संगति नहीं करना चाहिये।।७५।।

स्त्रीणां दर्शनमादरेक्षणमतो वार्तेष्टवार्त्ता मनाङ्।
नर्मोक्तिर्नतिनर्मरत्यनुगवाक् शृंगारसारं वचः।।
खान्तस्योल्लोसनं धृतेः क्षितिरतिप्रीतिर्मतेर्भ्रान्तिता।
तस्यां च स्मरवीरविशिखव्रातस्य लक्षः क्षणात्।।७६।।

अन्वयार्थ–(स्त्रीणां) स्त्रियों के (दर्शनं) सामन्य दर्शन, (आदरेक्षणं) आदरपूर्वक देखना (अतः) इसके बाद (तस्यां वार्त्ता) उसी में वार्त्ता (इष्टवार्त्ता) इष्टवार्ता (मनाक्) थोड़ी-थोड़ी (नर्मोक्ति) हसी मजाक सहित बोलना (नतिनर्मरत्यनुगवाक्) नमस्कार, हँसी, रति पीछे-पीछे चलना उसके अनुसार बोलना (शृंगारसारं) शृंगारसार (वचः) वचन (स्वान्तस्य) चित्त का (उल्लसतां) उल्लसित होना (धृतेः) धैर्य की (क्षितिः) नाश (अतिप्रीतिः) अति प्रीति (मतेः) मति की (भ्रान्तिता) भ्रान्ति (च) और (स्मरवीरविशिखव्रातस्य) कामरूपी वीर के वाण के समूह का (लक्षः) लक्ष्य (क्षणात्) क्षण में जाता है।

भावार्थ–पूर्व में (पुरुष) स्त्रियों को सामान्य रूप से देखता है, पुनः आदर पूर्वक देखता है, तदनन्तर इष्ट वार्तालाप करता है, थोड़ी-थोड़ी हँसी मजाक सहित बोलता है, तदनन्तर नमस्कार, प्रेम सहित अनुगमन एवं उसके अनुसार अति प्रेम शृंगार के वचनादि बोलता है जिससे उसका चित उल्लसित हो जाता है, धैर्य नष्ट हो जाता है, मति भ्रमित हो जाती है इस प्रकार एक क्षण में वह काम वाणो से पीड़ित हो जाता है।।७६।।

चिरप्रव्रजितः सूरिः स्थविरः श्रूतपारगः।
तपस्वीति यतो नास्ति गणना विषमायुधे।।७७।।

अन्वयार्थ–(यतः) क्योंकि (विषमायुधे) कामवासना में (सूरिः) आचार्य हैं (चिरप्रव्रजितः) चिरकाल का दीक्षित है (स्थविरः) स्थविर है (श्रुतपारगः) श्रुत का पारगामी है (तपस्वी) तपस्वी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है (इति) इस प्रकार की (गणना) कोई गणना (नास्ति) नहीं है।

भावार्थ–काम के उत्पन्न होने में आचार्य चिरदीक्षित, स्थविर, श्रुतपारगामी आदि की गणना नहीं है। अर्थात् चिरदीक्षित, तपस्वी, श्रुतपारगामी भी त्यागी काम के वशीभूत हो जाते हैं।।७७।।

विधवी लिंगिनीं कन्यां स्वैरिणीं गणिकादिकाः।

आसजन्नचिराद्भिक्षुरपवादैकमन्दिरम्।।७८।।

अन्वयार्थ–(विधवां) विधवा (लिंगिनीं) स्त्री सामान्य (कन्यां) कन्या (स्वैरिणीं) वैश्या (गणिकादिकाः) गणिनी आदि की (आसजन्) संगति करता हुआ (भिक्षुः) भिक्षु (अचिरात्) शीघ्र ही (अपवादैकमन्दिरम्) अपवाद का स्थान होता है।

भावार्थ–कन्या विधवा, रानी वा विलासिनी, स्वेच्छाचारिणी, दीक्षा धारण करने वाली ऐसी स्त्रियों से क्षणमात्र भी वार्तालाप करता हुआ मुनिराज भी लोकनिंदा का पात्र होता है।।७८।।

संवृतांगोऽतिगंभीरो जिताखिलपरीषहः।

ज्ञानचारित्रवान् सूरिरार्याणां मितभाषणः।।७९।।

अन्वयार्थ–(संवृतांगः) संवृतांग (अतिगंभीरः) अतिगंभीर (जिताखिलपरीषहः) अखिल परीषह को जीतने वाला (ज्ञानचारित्रवान्) ज्ञानचारित्रवान् (मितभाषणः) मितभाषी (आर्याणां) आर्यिकाओं का (सूरिः) आचार्य होता है।

भावार्थ–इन्द्रियविजयी, गंभीर, परीषहजयी, मितभाषी, सम्यग्ज्ञान और उत्कृष्ट चारित्र शील साधु ही आर्यिकाओं का आचार्य हो सकता है।।७९।।

आज्ञाभंगादिदोषार्हः करोति यदि सूरिताम्।

मदोदयाद् गुणव्रातेनैतेन रहितो यतिः।।८०।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (एतेन) इन (गुणव्रातेन) गुणों के समूह से (रहितः) रहित (यतिः) यति (मदोदयात्) मान के उदय से (सूरितां) आचार्यपना (करोति) करता है तो आज्ञाभंगादिदोषर्हः) आज्ञा भंगादि दोषों के योग्य होता है।

भावार्थ–जो मुनि पूर्व कथित गुण सहित नहीं है और मन कषाय के वशीभूत होकर आर्यिकाओं का आचार्यपना करता है तो आज्ञा का भंग, निंदा, गणपोषण, गच्छ आदि की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विराधना होती है।।८०।।

लज्जाविनयवैराग्यसदाचारादिभूषिते।

आर्याव्राते समाचारः संयतेष्विव किन्त्विह।।८१।।

अन्वयार्थ–(लज्जाविनयवैराग्यसदाचारादिभूषिते) लज्जा, विनय, वैराग्य, सदाचार आदि से भूषित (आर्याव्राते) आर्यिकाओं के समूह में (समाचारः) समाचार विधि (संयतेषु) संयतों के (इव) समान ही है (किन्तु) परन्तु (इह) इसमें कुछ अन्तर है।

भावार्थ–जो समाचार विधि संयमियों की कही है वही समाचार विधि आर्यिकाओं की है परन्तु आतापन योगादि कुछ विधि आर्यिकाओं के नहीं है।।८१।।

"आर्यिकाओं का वर्णन"

द्वयाद्याः समं वर्सत्यार्या गृहस्थासंकराश्रये।

तद्गृहानतिदूरातिसमीपेऽवद्यवर्जिते।।८२।।

अन्वयार्थ–(तद्गृहानितदूरातिसमीपे) गृहस्थियों के घर से अत्यन्त निकट भी नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं (अवद्यवर्जिते) सावध रहित (गृहस्थासंकराश्रये) गृहस्थों से अमिश्रित गृह में (द्वयाः) दो आदि के (समं) साथ (आर्याः) आर्यायें (वसंति) रहती हैं।

भावार्थ–जो असंयमी जनों के आवास से रहित हो, श्रावकों के घर से अत्यन्त दूर भी नहीं और अत्यन्त समीप भी नहीं हो, सर्व सावद्य से रहित हो, ऐसे स्थान में दो तीन आदि आर्यिका मिलकर रहें। अकेली नहीं रहें। आर्यिकाओं को अकेली रहना आगम में निषिद्ध है।।८३।।

मौननाटंतिभिक्षार्थं बृद्धार्यान्तरिता गृहान्।

अन्योन्यपरिरक्षानुकूलवृत्तिपरायणाः।।८३।।

अन्वयार्थ–ये आर्यिकाएं (अन्योन्यपरिरक्षानुकूलवृत्तिपरायणः) परस्पर में रक्षा अनुकूल वृत्ति में तत्पर (वृर्द्धार्यान्तरिता) वृद्ध आर्यिकाओं से अन्तरित (मौनेन) मौन पूर्वक (भिक्षार्थं) भिक्षा के लिए (अटंति) भ्रमण करती है।

भावार्थ–जब आर्यिकायें आहार के लिए जाती हैं, तब वृद्ध आर्यिकाओं से अन्तरित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्पर में एक दूसरे की रक्षा करती हुई दो तीन मिलकर मौन पूर्वक भ्रमण करती हैं, आहार के समय भी अकेली आर्यिका नहीं जाती हैं, दो तीन साथ में जावें। आर्यिकाओं का कर्त्तव्य है कि वह परस्पर अनुकूल वृत्ति तथा रक्षा करने में तत्पर रहें।।८३।।

अन्यदावश्यगन्तव्यं धर्मकार्यं गृहेस्ति चेत्।

गणिन्यादेशतो यांति द्वयाद्याः सार्धं न चान्यथा।।८४।।

अन्ववयार्थ–(चेत्) यदि (गृहे) श्रावक के घर में (अन्यदा) भिक्षा के काल से अन्यकाल में (अवश्यगंतव्यं) अवश्य जाने योग्य (धर्मकार्यं) धर्मकार्य (अस्ति) हो तो (गणिन्यादेशतः) गणिनी के आदेश से (द्वयद्याः) दो आदि के (सार्धं) साथ (यांति) जाती है (अन्यथा) अन्यथा (न) नहीं जाती है।

भावार्थ–आर्यिकाओं को बिना प्रयोजन पराये स्थान पर नहीं जाना चाहिये। यदि अवश्य जाना हो तो भिक्षा आदि काल में बड़ी आर्यिका को पूछकर अन्य आर्यिकाओं को साथ लेकर जाना चाहिये।।८४।।

नमन्ति सूर्यपाध्यायसाधूनार्या यथाक्रमम।

पंचषट् सप्तहस्तान्तरालस्थाः पशुशय्या।।८५।।

अन्वयार्थ–(आर्या) आर्यिका (पशुशंय्याः) गवासन से (सूर्यु पाध्यायासाधून्) आचार्य, उपाध्याय और साधू को (यथा) यथाक्रम से (पंचषट्सप्तहस्तान्तरालस्थाः) पांच, छह, सात हाथ के अन्तराल में स्थित होकर (नमंति) नमस्कार।

भावार्थ–आर्यिकायें आचार्यों को पांच हाथ दूर से, उपाध्याय को छह हाथ दूर से और साधुओं को सात हाथ दूर से बैठकर वंदना, आलोचना, अध्ययन, स्तुति करती हैं।।८५।।

कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयम्।

वस्त्रादानाच्चारित्र च तासां मुक्तिकथा वृथा।।८६।।

अन्वयार्थ–(कर्मभूद्रव्यनारीणां) कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाली द्रव्य स्त्रियों को (आद्य) आदि के (संहननत्रयं) तीन संहनन (न) नहीं होते हैं (च) और (वस्त्रादानात्) वस्त्रों का आदान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने से (चारित्रं) चरित्र भी पूर्ण नहीं होता है (तासां) उन स्त्रियों में (मुक्तिकथा) मुक्ति की कथा तो (वृथा) व्यर्थ है।

भावार्थ–कर्मभूमि स्त्रियों के वज्रवृषभनाराच, बज्रनाराच और नाराच, ये आदि के तीन संहनन नहीं होते हैं। इनसे वस्त्रों का पूर्ण त्याग नहीं होता है, इसलिये चरित्र भी पूर्ण नहीं हैं, उन स्त्रियों को मुक्ति होती है ऐसा कहना तो निष्प्रयोजन है।।८६।।

यदि त्रिरत्नमात्रेण सा पुसां नग्नता वृथा।

तिरश्चामपि दुर्वारा निर्वाणाप्तिरलिंगिता।।८७।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (त्रिरत्नमात्रेण) रत्नत्रय मात्र से (सा) वह मुक्ति मिल जाय तो (पुंसां) पुरुषों का (नग्नता) नग्नत्व (वृथा) व्यर्थ है और (तिरश्चां) तिर्यंचों के (अपि) भी (अलिंगिता) विना लिंग ही (निर्वाणाधिः) निर्वाण की प्राप्ति (दुर्वारा) दुर्निवार होगी।

भावार्थ–एक देश रत्नत्रय से स्त्रियों को मुक्ति की प्राप्ति होती है, तो पुरुषों की नग्नता व्यर्थ है, अर्थात् पुरुषों को भी नग्न नहीं होना चाहिये। उनको भी वस्त्र सहित मुक्त हो जायेगी। तथा एक देश रत्नत्रय तो तिर्यंचों को भी होता है, इसलिये उनको तो मुक्ति हो जानी चाहिये।।८७।।

मुक्तिश्चेदस्ति किं नासां प्रतिमाः स्तवनान्यपि।

क्रियन्ते पूज्याश्चेत्तासां मुक्तेर्देत्तो जलांजुलिः।।८८।।

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि (आसां) इन स्त्रियों को (मुक्तिः) मुक्ति (अस्ति) है, तो (तासां) उनकी (प्रतिमाः) प्रतिमा (स्वनान्यपि) स्तवन भी (किं) क्यों (न) नहीं (क्रियन्ते) किये जाते हैं (चेत्) यदि ये (पूज्याः) पूज्य है तो (तासां) उनकी (मुक्तेः) मुक्ति की (जलांजुलिः) जलांजुलि (दत्तः) देदी।

भावार्थ–यदि उन स्त्रियों को मुक्ति होती है तो उनकी प्रतिमा और स्तोंत्र क्यों नहीं है। यदि कहो कि वह पूज्य है तो सत्य है। मुक्ति के लिये तिलांजलि देदी। अर्थात् पूज्य होने मात्र से मुक्ति की पात्र नहीं है।।८८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यन्ते बुधैस्ततः।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः।।८९।।

अन्वयार्थ–(ततः) इसलिये (बुधैः) बुद्धिमानों के द्वारा (तासां) उन आर्यिकाओं के (सज्जातिज्ञाप्त्यर्थम्) सज्जाति की ज्ञप्ति के लिये (उपचारतः) उपचार से (देशव्रतान्वितैः) देश व्रतों से युक्त (महाव्रतानि) महाव्रत (आरोप्यंते) आरोपण किये जाते हैं।

भावार्थ–यद्यपि स्त्रियां पूर्णमहाव्रत को धारण नहीं कर सकती हैं, तथापि उनकी सज्जाति को प्रकट करने के लिये आचार्य आर्यिकाओं में देशव्रत के साथ उपचार से महाव्रतों का आरोपण करते हैं, अर्थात् आर्यिकाओं के वास्तविकता से तो देश संयम है क्योंकि इनके पांचवां गुण स्थान हैं, परन्तु उपचार से महाव्रत कहे जाते हैं।।८९।।

ऋतौ स्नात्वा तु तुर्येह्नि शुद्धयंत्यरसभुक्तयः।
कृत्वा त्रिरात्रमेकान्तरं वा सज्जपसंयुताः।।९०।।

अन्वयार्थ–(ऋतौ) मासिकधर्म के समय आर्यिकायें (सज्जपसंथुता) सज्जफ युक्त (त्रिरात्रं) तीन दिन तक (अरसभुक्तयः) नीरस आहार (वा) अथवा (एकान्तरं) एकान्तर भोजन (कृत्वा) करके (तुर्ये) चौथे (अह्नि) दिन में (स्नात्वा) स्नान करके (शुद्धयंति) शुद्ध होती हैं।

भावार्थ–मासिक धर्म में आर्यिका तीन दिन तक एक स्थान बैठकर अन्तर्जल्प से णमोकार मन्त्र का जाप करती है, तथा नीरस भोजन का एक दिन बाद आहार करती है और चतुर्थ दिन स्नान करके शुद्ध होती है।।९०।।

गानाक्रन्दनसन्मार्जनाद्यवद्यक्रियोज्झिताः।
जातिकीर्त्यश्चिताचाराश्चार्वीक्षान्त्यार्जवान्विताः।।९१।।

अविकारवस्त्रवेषाः स्वकीयकायेऽपि निःस्पृहा नित्यम्।
पठनपरिवर्त्तनाऽऽख्यानादिश्रुतभावनानिरताः।।९२।।

अन्वयार्थ–(गानाक्रन्दनसन्मार्जनाद्यवद्यक्रियोज्झताः) गीत, आक्रन्दन सन्मार्जन आदि सावद्य क्रियाओं से रहित (जातिकीर्त्यश्चिताचाराः) जाति कीर्ति से पूजनीय है चारित्र जिन्हों का ऐसे (क्षान्त्या) क्षमा और आर्जव से युक्त। (अविकारवस्त्रवेषाः) निर्विकार वस्त्रधारी (स्वकाये) अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर में (अपि) भी (निस्पृहः) निस्पृह (नित्य) निरन्तर (पठनपरिवर्त्तनाऽऽख्यानादिश्रुतभावनानिरताः) पठन, परिवर्तन, व्याख्यानादि श्रुत भावना में रत (चार्वी) श्रेष्ठ आर्यिका होती हैं।

भावार्थ–आर्यिकाओं को गीतगाना, रोना, घर को झाड़ू देकर साफ करना और हिंसामय किया करना निषिद्ध है। आर्यिका क्षमा आर्जव आदि गुणों से युक्त होती है। जाति कीर्त्ति में पूज्यनीय होती है। निर्विकार वस्त्र धारण करती है। अपने शरीर में जिनके ममत्व नहीं है।।९१-९२।।

समाचारनीति का फल

चरंति ये चारुचरित्रसंपदः
पदं समाचारमिमं यमीशिनः।
समाश्रयंतेऽभ्युदयप्रमोदिनः
परां श्रियं ते कृतिलोकनंदिनः।।९३।।

अन्वयार्थ–(ये यमीशिनः) जो संयमी (चारुचरित्रसंपदः) चारित्र रूपी संपदा का (पदं) स्थान (इमं) इस (समाचारं) समाचार विधि का (चरंति) आचरण करते हैं (अभ्युदयप्रमोदिनः) अभ्युदय से हर्षित (कृतिलोकनंदिनः) निपुणजनों को संतोषकारी ऐसे (ते) वे मुनिगण (परां) उत्कृष्ट (श्रियं) लक्ष्मी को (समासंश्रयन्ते) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–सज्जन पुरुषों को आनन्दकारक यशस्वी मुनि और आर्यिका, चारित्र रूपी संपदा की स्थान भूत इस समाचार विधि का जो पूर्णरूप से पालन करते हैं, वे स्वर्ग सम्पदा का अनुभवकर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।।९३।।

अरहनाथ स्तुति

श्रीमान् जिनः संभृतधर्मचक्रः
श्रुतैर्युतः सारगुणैरवक्रः।
मनोरथाप्त्यै हतचक्रिचक्रो
भूयादरः पालितधर्मचक्रः।।९४।।

अन्वयार्थ–(श्रीमान्) श्रीमान् (संभृतधर्मचक्रः) धारण किया है धर्मचक्र को जिन्होंने (सारगुणैः) सारगुण वाले (श्रुतैः) श्रुत से (युतः) युक्त (अवक्रः) सरल (हस्तचक्रिचक्रः) छोड़ दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, चक्रवर्ती के चक्र को जिसने (पालित धर्मचक्रः) पालित किया है धर्मचक्र को जिसने ऐसा (अरः) अरनाथ (जिनः) जिन (मनोरथाप्तयै) मनोरथ की प्राप्ति के लिए (भूयात्) कारण हों।

भावार्थ–जिसने चक्रवर्ती के चक्र को छोड़कर धर्मचक्र को स्वीकार किया है। जो सारगुणों से युक्त है, ऐसे अंतरंग, बहिरंग आदि लक्ष्मी से युक्त अरनाथ भगवान मेरे मनोरथ को पूर्ण करें।।९४।।

इति श्रीवीरनंदसिद्धांतिचक्रवर्त्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि ग्रंथे द्वितीयोऽधिकारः।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तृतीयाधिकारः

अनन्तनाथ स्तुतिः

श्रियः प्रियः संगतविश्वरूपः
सुदर्शनच्छिन्नपरावलेपः।
दद्यादनन्तः प्रणतामरेन्द्रो
रमां ममाद्य परमां जिनेन्द्रः।।१।।

अन्वयार्थ–(श्रियः) मोक्ष लक्ष्मी का (प्रियः) पति (संगतविश्वरूपः) जान लिया है विश्व के रूप को जिसने (सुदर्शनच्छिन्नपरावलेपः) सम्यग्दर्शन के द्वारा नष्ट किया है अपर भवलेप (कर्मों का लेप) जिसने (प्रणतामरेन्द्रः) देवों के द्वारा नमस्कृत (अनंतः जिनेन्द्रः) अनन्त जिनेन्द्र भगवान (ममं) मेरे लिए (अद्य) आज (परमां) परम (रमां) मोक्षलक्ष्मी को (दधात्) देवें।

भावार्थ–मोक्षलक्ष्मी के पति, विश्व के ज्ञाता, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित, अविनाशी, देवों से पूज्यनीय अनन्तनाथ जिनेन्द्र भगवान मेरे लिए आज उत्कृष्ट अंतरंग अनन्तचतुष्टयरूप और बहिरंग समवशरणादि विभूति रूप लक्ष्मी को प्रदान करें।।१।।

पंचाचार

दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यविशेषतः।
पंचभेदांचिताचारे तावदाद्यो निगद्यते।।२।।

अन्वयार्थ–(दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यविशेषतः) दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार के विशेष से। (पंचभेदाचिताचारे) पांच भेद से ज्ञापित आचार में (तावत्) पूर्व में (आद्यः) प्रथम दर्शनाचार (निगद्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्रचार, तपाचार और वीर्याचार के भेद से पाँच प्रकार का आचार है। उसमें प्रथम दर्शनाचार का वर्णन किया जाता है।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

रूचिराप्तागमार्थानां दर्शनं मूढ़वर्जितम्।
प्रशमादियुगष्टांगं निसर्गाधिगमोद्भवम्।।३।।

अन्वयार्थ–(आप्तागमार्थानां) आप्त, आगम और पदार्थों का (मूढ़वर्जितं) मूढ़ता रहित (प्रशमादियुगष्टांगं) प्रशमादि गुण और अष्ट अंग सहित (निसर्गाधिगमोद्भवम्) निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न (रूचिः) श्रद्धान (दर्शनम्) सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ–निशंकितादि अष्टअंगसहित, प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और अस्तिक्यादि ८ गुणयुक्त, लोकमूढ़ता, गुरुमूढ़ता, देवमूढ़ता आदि तीन मूढ़ता रहित, आप्त, आगम और जीवादि पदार्थों का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।।३।।

आप्त का स्वरूप

व्यपेताऽशेषदोषो यः शरीरो तत्वदेशकः।
समस्तवस्तुतत्वज्ञः सः स्यादाप्तः सतां पतिः।।४।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (व्यपेताऽशेषदोषः) अठारह दोषों से रहित (शरीरी) शरीरधारी (तत्वदेशकः) तत्वों के उपदेशक (समस्तवस्तुतत्वज्ञः) समस्त वस्तु तत्वों को जानने वाला है (सः) वह (सतां) सज्जन पुरुषों का (पतिः) स्वामी (आप्तः) आप्त (स्यात्) होता है।

भावार्थ–सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी ही आप्त होता है।।४।।

आगम का स्वरूप

आप्तोक्तिजार्थविज्ञानमागमस्तद्वचोऽथ वा।
पूर्वापराविरुद्धार्थं प्रत्यक्षाद्यैरबाधितम्।।५।।

अन्वयार्थ–(आप्तोक्तिजार्थविज्ञानं) आप्त के वचन से उत्पन्न विज्ञान (आगमः) आगम है (अथवा) अथवा (पूर्वापराविरुद्धार्थं) पूर्वापर अविरुद्धार्थ (प्रत्यक्षाद्यैः) प्रत्यक्ष अनुमानादि विज्ञान से (अबाधित) अवाधित (तद्वचः) आप्त के वचन आगम है।

भावार्थ–प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमानज्ञान से अखंडित, पूर्वापरविरोध रहित जो भगवान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन है, वही अज्ञान नाशक, सर्व हितकारी आगम है।।५।।

तत्वार्थ का लक्षण

स्याज्जीवः पुद्गलो धर्मोऽधर्मः कालो नभोऽपि च।
मानेनार्थ्यत् इत्यर्थस्तत्वं चार्थः स्वरूपताः।।६।।

अन्वयार्थ–(जीवः पुद्गलः धर्मः अधर्मः कालः नभः) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह (मानेन) प्रमाण के द्वारा (अर्थ्यते) जाने जाते हैं (इति) इसलिए (अर्थः) और (स्वरूपताः) अपने स्वरूप से युक्त हैं इसलिए (तत्वं) तत्व (स्यात्) है।

भावार्थ–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अपने अपने गुण पर्याय को प्राप्त होते हैं, इसलिए यह द्रव्य है। ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं अर्थात् ज्ञान का विषय है इसलिए अर्थ है तथा अपने स्वरूप में रहते हैं दूसरे द्रव्यों के साथ संयोगी होने पर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं इसलिए इनको तत्व भी कहते हैं।।६।।

द्रव्य का लक्षण

स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मा द्रवति द्रोष्यत्यद्रुद्रुवत्।
स्वपर्यायानिति द्रव्यमर्थस्तान्तान्विवक्षितान्।।७।।

अन्यवार्थ–(तान् लान्) उन उन (विवक्षितान्) विवक्षित (स्वपर्यायानिति) स्वकीय गुण पर्यायों को (द्रवति) प्राप्त हो रहे हैं (द्रोष्यति) भविष्यतकाल में प्राप्त होंगे। (अदुद्रुवत्) भूत काल में प्राप्त हुये थे (इति) इसलिए (स्थित्युत्पत्तिव्पयात्मा) स्थिति व्यय और ध्रौव्यात्मक पदार्थों को (द्रव्यं) द्रव्य कहते हैं।

भावार्थ–जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में अपने अपने गुण पर्यायों को प्राप्त होते हैं, किसी भी काल में अपने गुण पर्यायों को नहीं छोड़ते हैं, इसलिए जीव, पद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को द्रव्य कहते हैं। ये ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं वा ज्ञान का विषय हैं इसलिए इनको प्रेमय या अर्थ कहते हैं। अपने स्वरूप को कभी नहीं छोड़ते हैं इसलिए इनको तत्व कहते हैं। यह अस्ति रूप हैं इसलिए इनको भाव भी कहते हैं। यह द्रव्य स्थिति, व्यय और उत्पत्ति स्वरूप है। पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं। उत्तर पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं और दोनों पर्यायों में अनुस्यूत अखण्ड रूप से रहने वाले को ध्रौव्य कहते हैं।।७।।

गुण पर्याय का लक्षण

गुणपर्ययवद्द्रव्यं स्याद्द्रव्यान्तवयिनो गुणाः।

निर्गुणाश्चेतनाद्यस्ते तद्विशेषास्तु पर्यया।।८।।

अन्वयार्थ–(गुणपर्ययवद्) गुण और पर्याय युक्त (द्रव्यं) द्रव्य (स्यात्) है (द्रव्यान्वयिनः) द्रव्य के साथ अन्वयी (निर्गुणा) स्वयं गुण रहित (चेतनाद्यः) चेतनादि (ते) वे (गुणाः) गुण होते हैं (तु) और (तद्विशेषास्तु) उन गुणों की विशेष (पर्ययाः) पर्याय होती है।

भावार्थ–जो गुण और पर्याय से युक्त हो उसको द्रव्य कहते हैं। जो द्रव्य के साथ अन्वयी होकर सहभागी हों, उनको गुण कहते हैं। जो उन गुणों का विकार है, जो क्रम से उत्पन्न होते हैं उनको पर्याय कहते हैं। उक्तं च-सहभाविनो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायाः सहभागी गुण हैं और क्रमभावी पर्याय हैं।।८।।

जीव का लक्षण

जीवत्यजीवीज्जीविष्यतीति जीवश्चिदात्मना।

ज्ञाता द्रष्टा जगन्मात्रदेशोऽमूर्तश्च निर्वृतः।।९।।

अन्वयार्थ–(चिदात्मना) अपने चैतन्य स्वरूप से (जीवति) वर्तमान में जीवित है (अजीवीत्) भूतकाल में जीवित था (जीविष्यति) भविष्यकाल में जीवित रहेगा (इति) इसलिए (जीवः) जीव है (ज्ञाता) वह जीव ज्ञाता है (दृष्टा) दृष्टा है (जगन्मात्रप्रदेशः) लोक का प्रमाण प्रदेश वाला (अमूर्तिः) अमूर्तिक (च) और (निवृत्तः) निवृत है।

कर्त्ता स्वकर्मणो भोक्ता तत्फलस्योद्ध्वगः क्षयात्।

तस्य स्वगात्रमात्रश्च स्याद्विसर्पणसंहृतेः।।१०।।

अन्वयार्थ–(स्वकर्मणः) अपने कर्मों का (कर्त्ता) करने वाला है (तत्फलस्य) उन कर्मों के फल का (भोक्ता) भोगने वाला है (तस्य) उन कर्मों के (क्षयात्) क्षय हो जाने से (उद्ध्वगः) ऊपर गमन करने वाला है (च) और (विसर्पण संहृतेः) संकोच विस्तार वाला होने से (स्वगात्रमात्रः) अपने शरीर प्रमाण रहने वाला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–यह आत्मा तीनों काल में अपने चैतन्य परिणामों से जीवित रहता है इसलिए जीव है। स्वपर का ज्ञाता, दृष्टा है। लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। अमूर्त है। मुक्त है। अपने कर्मों का कर्त्ता है। किये हुए कर्मों के फल का भोक्ता है। कर्मों का क्षय हो जाने से उर्ध्व गमन करने वाला है और प्रदेशों के संकोच विस्तार शक्ति वाला होने से स्व शरीर प्रमाण रहने वाला है।।१०।।

जीव के भेद

मुक्त संसारिभेदोऽयं मुक्तः कृत्स्नैनसोऽत्ययात्।
हेमोपलो मलोन्मुक्त्या हेम स्यादमलं यथा।।११।।

अन्वयार्थ–यह जीव (मुक्तः संसारिभेदः) मुक्त और संसारी के भेद से दो प्रकार का है (यथा) जैसे (मलोन्मुक्त्या) मल के नाश से (हेमोपलः) सुवर्णपाषाण (अमलं) निर्मल (हेम) सुवर्ण (स्यात्) हो जाता है उसी प्रकार (कृत्सनैनसः) समस्त पाप संयोग के (अत्ययात्) नाश हो जाने से (मुक्तः) मुक्त (स्यात्) होता है।

भावार्थ–जिस प्रकार कीट कालिमा से व्याप्त हेम पाषाण अग्नि के ताप तथा पारा आदि के संयोग से कालिमा को छोड़कर शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार यह अनादि काल से कर्म कालिमा से मलीन आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के संयोग से कर्म कालिमा को नाशकर शुद्ध परमात्मा (मुक्तात्मा) बन जाता है।।११।।

अनादिकर्मसंतानसंश्लेषात् क्लेशभाजनम्।
संसारी स्यात् त्रसस्थावराद्यैभेदैरनेकथा।।१२।।

अन्वयार्थ–(अनादिकर्मसंतानसंश्लेषात्) अनादिकालीन कर्म संतान के संयोग से यह आत्मा (क्लेशभाजनं) क्लेश का भाजन (त्रसस्थावराद्यैः) त्रस स्थावर आदि (भैदैः) भेदों से (अनेकधा) अनेक प्रकार का (संसारी) संसारी (स्यात्) होता है।

भावार्थ–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, बादर, सूक्ष्म की अपेक्षा छह युगल इनमें सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित वनस्पति मिलाने से सात युगल होते हैं। इनको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्धपर्याप्त की अपेक्षा गुणा करने से ४२ भेद होते हैं।

त्रस के भेद–दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय इनको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लब्ध्यपर्याप्त इन तीनों से गुणा करने से ९ भेद होते हैं। कर्मभूमि में होने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यचों के तीन भेद होते हैं। जलचर, स्थलचर, नभचर। ये तीनों ही तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी होते हैं तथा गर्भज और सम्मूर्छन होते हैं, परन्तु गर्भजों में पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त ही होते हैं। इसलिये गर्भज के बारह भेद और सम्मूर्छनों में पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त, तीनों ही भेद होते हैं। इसलिए सम्पूच्छनों के अठारह भेद, ये सब मिलकर पंचेन्द्रिय कर्मभूमिज तिर्यचों के तीस भेद होते हैं। भोगभूमि में पंचेन्द्रिय तिर्यचों के स्थलचर, नभचर दो ही भेद होते हैं और ये दोनों ही पर्याप्त तथा निवृत्यपर्याप्त ही होते हैं। इसलिये भोगभूमिज तिर्यञ्चों के चार भेद और उक्त कर्मभूमि सम्बन्धी तीस भेद, उक्त पूर्व भेदों में मिलाने से तिर्यञ्चगति सम्बन्धी सम्पूर्ण जीवसमास के ८५ भेद होते हैं। भोगभूमि में जलचर, सम्मूर्छन तथा असंज्ञी जीव नहीं होते हैं।

आर्यखण्ड में पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त तीनों ही प्रकार के मनुष्य होते हैं। म्लेच्छखण्ड में लब्ध्यपर्याप्त को छोड़कर दो प्रकार के ही मनुष्य होते हैं। इसी प्रकार भोगभूमि, कुभोगभूमि, देव, नारकियों में भी दो ही भेद होते हैं। इसलिए सब मिलाकर जीवसमास के ९८ भेद होते हैं।

अथवा—शुद्धपृथिवी, स्वरपृथिवी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, इतरगोद इनके बादर सूक्ष्म के भेद से १४ भेद, तृण, बल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल इस तरह प्रत्येक वनस्पति के ५ भेदों के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित के भेद से १० भेद विकलेन्द्रियों के द्वीन्द्रियादिक ३ भेद, इस तरह २७ भेदों का पर्याप्त निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त से गुण करने पर ८१ भेद होते हैं। कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यचों में गर्भजों के १२, सम्मूर्छनों के १८, मध्यम जघन्य भोगभूमिजों के १२, इस तरह ४२ भेद होते हैं। मनुष्यों में आर्यखण्डोद्रभव सम्मूर्छन मनुष्य का १ लब्धपर्याप्त भंग, तथा कर्मभूमि का गर्भज और म्लेच्छखण्ड, उत्तम, मध्यम, जघन्य, भोगभूमि एवं कुभोगभूमि के गर्भज मनुष्यों में प्रत्येक का एक २ भेद। ६ देवों में भवनवासी व्यंतर ८ ज्योतिष्क ५ वैमानिक ६३ और नारकियों के ४९ इस तरह १४१ के पर्याप्त निवृत्यपर्याप्त की अपेक्षा २८२ भेद हैं। इस तरह कुल मिलाकर ८१+४२+१+२८२ = ४०६ जीव समास के भेद होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्यनिगोद सात लाख, इतरनिगोद सात लाख, जल सात लाख, अग्नि सात लाख, वायु सात लाख, वनस्पति की दस लाख, द्वीन्द्रिय की दो लाख, त्रीन्द्रिय की दो लाख, चतुरिन्द्रिय की दो लाख, देव की चार लाख, नारकी की चार लाख, तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार लाख मनुष्य की १४ लाख योनि होती है। सारी मिलाकर ८४ लाख योनि होती है। शरीर के भेद को कारण भूत नोकर्म वर्गणाओं के भेद को कुल कहते हैं। पृथ्वी कायिक के २२ लाख कोटि, जलकायिक के सात लाख कोटि, अग्निकायिक के तीन लाख कोटि और वायु कायिक के सात लाख कोटि द्वीन्द्रिय जीव के कुल सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीव के आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीव के नौ लाख और वनस्पति कायिक जीव के २८ लाख कोटि हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यचों में जलचर जीव के साढ़े बारह लाख कोटि, नभचर के १२ लाख कोटि पशुओं के दस लाख कोटि और छाती के सहारे से चलने वाले दुमुहों आदि के नव लाख कोटि कुल हैं। देव के छब्बीस लाख कोटि, नारकी के पच्चीस लाख कोटि, मनुष्य के १२ लाख कोटि हैं जो सभी संसारी जीवों के लिये ज्ञातव्य है। इस प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवों के समस्त कुलों की संख्या एक कोड़ा कोड़ी तथा सत्तानवे लाख और ५० हजार कोटि होती है। सम्पूर्ण संसारी जीवों के कुलों की संख्या एक करोड़ सत्तानबे लाख पचास हजार को एक करोड़ से गुणने पर जितना प्रमाण लब्ध हो उतना अर्थात् १९७५००००००-००००००० है। ग्रन्थान्तरों में मनुष्यों के १४ लाख कोटि कुल गिनाये हैं। उस हिसाब से सम्पूर्ण कुलों का जोड़ एक करोड़ निन्यानबे लाख पचास हजार कोटि होता है।

इस प्रकार संसारी प्राणियों के एक करोड़ निन्यानबे लाख पचास हजार कोटि कुल है। ये सम्पूर्ण संसारी जीवों के भेद हैं।।१२।।

"पुद्गल के भेद"

अणुश्च पुद्गलोऽभेद्यावयवः प्रचयशक्तितः।
कायश्च स्कन्धभेदोत्थश्चतुरस्रस्त्वतीन्द्रियः।।१३।।

अन्वयार्थ–(अभेयावयवः) अभेद अवयव वाला (प्रचयशक्तितः) प्रचयशक्ति की अपेक्षा (कायश्च) कायवान् (स्कंधभेदोत्थः) स्कन्ध के भेद से उत्पन्न (चतुरस्रः) चतुष्कोण (अतीन्द्रियः) अतीन्द्रिय (पुद्गलः) पुद्गल (अणुः) अणु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिसका दूसरा विभाग नहीं होता है, जो प्रचय शक्ति की अपेक्षा कायवान् है, जो स्कन्ध के भेद से उत्पन्न होता है, जो चतुष्कोण है, अतीन्द्रिय है, वह पुद्गल परमाणु है।।१३।।

विभ्रदेकरसं गन्धं वर्णं शौतचतुष्टये।

स्पर्शे चाबाधकौ स्पर्शाविकदा सर्वदेदृशः।।१४।।

अन्वयार्थ–वह अणु (एकदा) एक समय में (एकं) एक (रस) रस (गंध) एक गंध (वर्ण) एक वर्ण (च) और (शीत चतुष्टये) शीत उष्ण रूखा चिकना (स्पर्शे) स्पर्श में (अबाधकौ) अबाधित (स्पर्शो) दो स्पर्श को (सर्वदा) निरन्तर (विभृत्) धारण करता है वह (ईदृशः) ऐसा पुद्गल परमाणु हैं।

भावार्थ–उस अणु में एक समय में एक साथ एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और शीत उष्ण रूक्ष चिक्कण इस चतुष्टय में से अबाधित अर्थात् शीत उष्ण में से एक और रुक्ष स्निग्ध में से एक ऐसे पांच गुण पाये जाते हैं।।१४।।

परमाणु बंध व्यवस्था

द्वयणुकादिमहास्कंधपर्यन्तानंतपर्ययाः।

परमाणोर्विभावाः स्युर्भेदसंघात संभवाः।।१५।।

अन्वयार्थ–(परमाणोः) परमाणु की (भेदसंघातसंभवाः) भेद और संघात से उत्पन्न होने वाली (द्वयणुकादिमहास्कंधपर्यन्ताः) दो अणु आदि महास्कन्ध पर्यन्त (विभावाः) विभाव (अनंतपर्ययाः) अनंत पर्याय (स्युः) होती है।

भावार्थ–परमाणु की भेद और संघात से उत्पन्न होने वाली द्वि अणु आदि महा स्कन्ध पर्यंत अनंत विभाव पर्यायें होती हैं।।१५।।

स्निग्धरूक्षत्वतो बंधो जघन्यगुणवर्जिते।

गुणे समेऽसमे वाण्वोः सर्वत्र स्निग्धरूक्षयोः।।१६।।

अन्वयार्थ–(सर्वत्र) सर्वत्र (स्निग्धरुक्षयोः) स्निग्ध रूक्ष वाले (अण्वोः) दो अणुओं का (जघन्यगुण) जघन्य गुण से रहित (समे) समान (असमे) विषम (गुणे) दो गुण अधिक होने पर (स्निग्धरुक्षत्वतः) स्निग्ध, रुक्ष वालों से (बंधः) वंध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जघन्य गुण रहित द्विगुण अधिक रुक्ष रुक्ष, स्निग्ध स्निग्ध रुक्ष स्निग्ध आदि परमाणु का बन्ध होता है।।१६।।

पुद्गल-भेद

द्वयविभागप्रतिच्छेंदाविहीनेन तु बंधनम्।

स्निग्धाणुनास्य स्निग्धाणोः स्वजातै रुक्षयोस्तथा।।१७।।

अन्वयार्थ–(अस्य) इस परमाणु का (द्वयविभागप्रतिच्छेदविहीनेन) दो अविभागी प्रतिच्छेद से रहित (स्निग्धाणुना) स्निग्ध अणु के साथ (स्निग्धाणोः) स्निग्ध अणु का (स्वजातैः) अपनी जाति वाले रुक्ष के साथ (रुक्षयोः) रुक्ष दो अणुओं का तथा स्कन्ध रुक्ष का (वंधन) बंध होता है।

भावार्थ–इस परमाणु का द्वि अविभागी प्रतिच्छेद से रहित स्निग्ध अणु के साथ स्निग्ध अणु के साथ स्निग्ध अणु का वा अपनी जाति वाले रुक्ष के साथ रुक्ष का तथा दो गुण अधिक रुक्ष गुण का स्निग्ध के साथ बंध होता है।।१७।।

स्कन्धदेशप्रदेशाणुभेदो वाऽखिलपुद्गलः।

स्कन्धो ज्येष्ठमहास्कन्धः स्यादन्यश्च धरादिकः।।१८।।

अतो हीनाणुतो यावदर्द्धं देशस्ततः क्रमात्।

हीनाणुद्वयणुको यावत्प्रदेशोऽणुपुरोदित।।१९।।

अन्वयार्थ–(अखिलपुद्गलः) सारे पुद्गल (स्कन्धदेशप्रदेशाणुभेदः) स्कन्ध, देश, प्रदेश और अणु भेद वाले हैं (च) और (अन्यः) अन्य पिण्ड रूप (धरादिकः) पृथ्वी आदि (ज्येष्ठमहास्कन्धः) ज्येष्ठ महास्कन्ध है (अतः) इस महास्कन्ध से (अणुतः) अणु तक (यावत्) जब तक (अर्द्ध) अर्द्ध भाग है वह (देशः) देश है (ततः) उस अर्द्ध देश से (यावत् हीनाणुः) दो अणु है वह (प्रदेश) प्रदेश है (च) और (पुरोदितः) पूर्व कथित (अणुः) अणु है।

भावार्थ–जिसमें स्पर्श रस गंध और वर्ण है अथवा जो पूरण गलन स्वभाव वाला है वह पुद्गल है। स्कन्ध और परमाणु के भेद से पुद्गल दो प्रकार है। दो आदि अनंत परमाणुओं का पिण्ड स्कन्ध कहलाता है। निर्विभाग एक प्रदेश वाला स्कन्ध का अन्तिम अंश परमाणु है। स्कन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Instltute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्कन्ध, देश और स्कन्ध प्रदेश यह तीन भेद वाला है। अनन्तानन्त परमाणुओं से निर्मित पृथ्वी आदि महास्कन्ध-स्कन्ध कहलाता है। उस स्कन्ध से एक परमाणु हीन से लेकर आधे स्कन्ध तक स्कन्ध देश है। उसमें एक परमाणु हीन से लेकर द्वि अणु तक के परमाणु स्कन्ध प्रदेश है। स्कन्ध के छह भेद भी हैं। बादर-बादर, बादर, बादरसूक्ष्म, सूक्ष्मबादर, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म। काष्ठपाषाणादिक (स्कन्ध) जो छेदन होने पर स्वयं नहीं जुड़ सकते वे बादर-बादर हैं। दूध, घी, तेल, जल रस आदि स्कन्ध जो छेदन होने पर स्वयं जुड़ जाते हैं वे बादर हैं। छाया, धूप, अंधकार, चांदनी आदि स्कन्ध जो स्थूल होने पर भी जिनका छेदन भेदन अथवा (हस्तादि द्वारा) ग्रहण नहीं किया जा सकता है वे बादरसूक्ष्म हैं। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द जो सूक्ष्म होने पर स्थूल ज्ञात होते हैं वे सूक्ष्मबादर हैं। कर्मवर्गणादि स्कन्ध जिन्हें सूक्ष्मपना है तथा जो इन्द्रियों से ज्ञात न हो वे सूक्ष्म हैं। कर्मवर्गणा से नीचे के द्विअणुक-स्कन्ध तक के स्कन्ध जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।

शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत ये स्कन्ध के भेद हैं। भाषारूप शब्द और अभाषारूप शब्द इस प्रकार शब्दों के दो भेद हैं। भाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं। साक्षर और अनक्षर। जिसमें शास्त्र रचे जाते हैं और जिससे आर्य और म्लेच्छों का व्यवहार चलता है, ऐसे संस्कृत शब्द और इससे विपरीत शब्द ये सब साक्षर शब्द है। जिससे उनके सातिशय ज्ञान के स्वरूप का पता लगता है ऐसे दो इन्द्रिय आदि जीवों के शब्द अनक्षरात्मक शब्द हैं, ये दोनों प्रकार के शब्द प्रायोगिक है। अभाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं। प्रायोगिक और वैस्रसिक। मेघ आदि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे वैस्रसिक शब्द हैं तत्, वितत्, घन, और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं।

चमड़े से मढ़े हुए पुष्कर, भेरी और दर्दुर से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द है। तांत वाले वीणा और सुघोष आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत शब्द है। ताल, घण्टा और लालन आदि के ताड़ने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह घन शब्द है बांसुरी और शंख आदि के फूंकने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह सौबिर शब्द है। बन्ध के दो भेद हैं। १ वैस्रसिक और २. प्रायोगिक। जिसमें पुरुष का प्रयोग अपेक्षितन हीं है वह वैस्रसिक बन्ध है, जैसे स्निग्ध और रुक्ष गुण के निमित्त से होने वाला विजली, उल्का, अग्नि और इन्द्रधनुष आदि का विषयभूत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध वैस्रसिक बन्ध है और जो बंध पुरुष के निर्मित प्रयोग से होता है वह प्रायोगिक बन्ध है।

इसके दो भेद हैं। अजीवसम्बन्धी और जीवाजीव सम्बन्धी। लाख और लकड़ी का अजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है तथा कर्म और नो कर्म का जो जीव से बन्ध होता है वह जीवा-जीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है। सूक्ष्मत्व के दो भेद हैं। अन्त्य और आपेक्षित। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मत्व है तथा बेल आँवला और बैर, केर आदि में आपेक्षिक सूक्ष्मतत्व है।

स्थौल्य भी दो प्रकार का है। अन्त्य और आपेक्षिक। जगत् व्यापी महास्कन्ध में अन्त्य स्थौल्य है तथा बेर, आँवला और बेल आदि में आपेक्षित स्थौल्य है। संस्थान का अर्थ आकृति है। इसके दो भेद है। इत्थंलक्षण। जिसके विषय में यह संस्थान इस प्रकार का है यह निर्देश किया जा सके वह इत्थंलक्षण संस्थान है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, आयात और परिमण्डल आदि ये सब इत्थंलक्षण संस्थान हैं। इससे अतिरिक्त मेघ आदि के आकार अनेक प्रकार के हैं तथा जिनके विषय में यह इस प्रकार का है यह नहीं कहा कहा जा सकता है वह अनित्थंलक्षण संस्थान है।

भेद के छह भेद हैं। उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर और अणुचटन करोंत आदि से जो लकड़ी आदि को चीरा जाता है वह उत्कर नामक भेद है। जौ और गेहूं आदि का जो सत्त् और कनक आदि बनता है वह चूर्ण नाम का भेद है। घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं वह खण्ड नाम का भेद है तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो फुलंगे निकलते हैं वह अणुचटन नाम का भेद है। उडद और मूंग आदि का जो खण्ड किया जाता है वह चूर्णिका नाम का भेद है। मेघ के जो अलग-अलग पटल आदि होते हैं वह प्रतर नाम का भेद है। जिससे दृष्टि में प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है वह तम (अन्धकार) कहलाता है। प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है। उसके दो भेद हैं। एक तो वर्णादि के विकार रूप से परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्ब रूप जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे आतप कहते हैं। तथा चन्द्रमणि और जुगनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश पैदा होता है उसे उद्योत कहते हैं।

ये सब शब्दादिक पुद्गल द्रव्य के विकार (पर्याय) हैं। इसलिए तत्वार्थ सूत्र में पुद्गल को शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत वाला कहा है। सूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में दिये हुए "च" शब्द से नोदन, अभिधात आदिक जो पुद्गल की पर्यायें आगम में प्रसिद्ध हैं उनका संग्रह करना चाहिए।

पूर्वोक्त स्कन्धरूप पर्यायों को जो अन्तिम भेद (छोटा से छोटा अंश) है वह परमाणु है और वह विभाग के अभाव का कारण होने से अविभागी है। निर्विभाग एक प्रदेशी होने से एक है। मूर्तद्रव्यरूप से सदैव अविनाशी होने से नित्य है। अनादि अनन्त रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण मूर्तिप्रभव है और रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण भी अशब्द है ऐसा निश्चित है। क्योंकि शब्द परमाणु का गुण नहीं है, किन्तु स्कन्ध की पर्याय है।

सर्वत्र परमाणु में रस, गंध, वर्ण, स्पर्श, सहभावी गुण होते हैं और वे गुण उसमें क्रमवर्ती जिन पर्यायों सहित रहते हैं। यह इस प्रकार जानना चाहिए। पांच रस पर्यायों में से एक समय कोई एक पर्याय सहित रस वर्तता है। पांच पर्यायों में से किसी एक समय पर्याय सहित एक वर्ण वर्तता है। दो गंध पर्यायों में से एक समय किसी एक पर्याय सहित गंध वर्तता है। शीत-स्निग्ध, शीत-रुक्ष, उष्ण-स्निग्ध और उष्ण रुक्ष इन चार स्पर्श पर्यायों के युगलों में से किसी समय एक युगल सहित स्पर्श वर्तता है। इस प्रकार जिसमें गुणों का वर्तन (अस्तित्व) कहा गया है ऐसा यह परमाणु शब्द स्कन्धरूप से परिणमित होने की शक्तिरूप स्वभाव वाला होने से शब्द का कारण है, एक प्रदेशी होने के कारण शब्द पर्याय परिणमितरूप वृत्ति के अभाव से अशब्द है, और स्निग्धरुक्षत्व के कारण बंध होने से अनेक परमाणुओं की एकत्व परिणतिरूप स्कन्ध के भीतर रहा हो तथापि स्वभाव को न छोड़ता हुआ संख्या को प्राप्त होने से (अर्थात् परिपूर्ण एक की भांति पृथक गिनती में आने से) अकेला ही द्रव्य है। जो परमाणु स्कन्धों का भेत्ता होता है वह कार्य परमाणु है तथा जो स्कन्धों का कर्त्ता है वह कारण परमाणु है। इस प्रकार पुद्गल के बहुत भेद हैं।।१८-१९।।

धर्मद्रव्य स्वरूप

जीवपुद्गलजालस्य व्रजतः स्वेन हेतुना।
धर्मो याननिमित्तं स्याज्जलं वा जलचारिणाम्।।२०।।

अन्वयार्थ–(स्वेन) अपने (हेतुना) कारण से (व्रजतः) गमन करते हुए (जीवपुद्गलजालस्य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव और पुद्गल समूह के (याननिमित्तं) गमन में सहकारी (धर्मः) धर्मद्रव्य (स्यात्) है (वा) जैसे (जलचारिणां) जलचर जीवों के (जलं) जल गमन में सहकारी होता है।

भावार्थ–जैसे चलचर जीवों के गमन में सहकारी जल है वे चलचर जीव जल के बिना गमन नहीं कर सकते उसी प्रकार अपने उपादान से गमन करते हुए जीव और पुद्गल के गमन में सहकारी कारण धर्म द्रव्य है।।२०।।

अधर्मद्रव्यस्वरूप

स्वहेतुस्थितिमज्जीवपुद्गलस्थितिकारणम्।

अधर्मोऽध्वनि खिन्नस्य ग्रीष्मे छायेव शीतला।।२१।।

अन्वयार्थ–(स्वहेतुस्थितिमज्जीवपुद्गलस्थितिकारणम्) अपने उपादान कारण से ठहरने वाले जीव और पुद्गल ठहरने के लिए सहकारी कारण (अधर्मः) अधर्म द्रव्य है। (इव) जैसे (ग्रीष्मे) ग्रीष्म काल में (अध्वनि) मार्ग में (खिन्नस्य) खेद खिन्न हुए के ठहरने में कारण (शीतला) शीतल (छाया) छाया है।

भावार्थ–जैसे ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के ताप से खेद खिन्न हुये पथिक के ठहरने में निमित्त कारण शीतल छाया है उसी प्रकार अपने उपादान से ठहरने वाले जीव पुद्गल के ठहरने के कारण अधर्म द्रव्य है।।२१।।

काल द्रव्यवर्णन

धर्माधर्मो जगद् व्याप्यारूपिणौ सर्वदा स्थितौ।

कालाणवो जगन्मात्राश्चैवं तु मणिराशिवत्।।२२।।

अन्वयार्थ–(अरूपिणौ) अरूपी (धर्माधर्मो) धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य (सर्वदा) सर्व काल में (जगद्व्याप्य) सारे लोककाश में व्याप्त होकर (स्थितौ) स्थित हैं (और) (कालाणवः) कालाणु (तु) तो (मणिराशिवत्) रत्नराशि के समान (जगन्मात्राः) लोके के प्रदेशमात्र है।

भावार्थ–धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अरूपी है और सदा लोकाकाश में व्याप्त होकर स्थित है, जैसे तिलों में तैल होता है तथा एक-एक आकाश प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान एक-एक कालाणु स्थित है।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते प्रत्येकं विवर्त्ताप्तिहेतवः सर्ववस्तुनः।

गौणकालस्तु पर्यायस्थितिः स्यात्समयादिका।।२३।।

भावार्थ–(ते) वह (प्रत्येकं) प्रत्येक कालाणु (सर्ववस्तुनः) सारी वस्तुओं के (विवर्त्ताप्तिहेतवः) वर्तना की प्राप्ति के कारण है (तु) और (समयादिका) समय, घटिका आदि (पर्यायस्थितिः) पर्यायस्थिति (गौणकालः) गौणकाल है।

भावार्थ–प्रत्येक आकाश प्रदेश में स्थित कालाणु सारे द्रव्यों के वर्तना में कारण होते हैं वह मुख्य काल है और जो समय, आवलि, घटिकादि परिमाण क्रिया, परत्वापरत्व में कारण है वह व्यवहार काल (गौणकाल) है।।२३।।

आकाश द्रव्यवर्णन

व्योमामूर्तं स्थितं नित्यं चतुरस्त्रं समं घनम्।

भावावगाहहेतुश्चानंतानंतप्रदेशकम्।।२४।।

अन्वयार्थ–(व्योम) आकाश (अमूर्त) अमूर्तिक है (नित्यं) नित्य है (स्थितं) स्थित है (चुतरस्त्रं) चतुष्कोण है (घनं) घन है (समं) प्रमाण है (भावावगाहहेतुः) पदार्थों के अवहगाहन में कारण है (च) और (अनंतानंतप्रदेशकम्) अनंतानंत प्रदेशात्मक है।

भावार्थ–पदार्थों को अवगाहना देने में कारण भूत आकाश है। वह अमूर्तिक है, नित्य है, चतुष्कोण है और अनंत प्रदेशी है। उस आकाश के मध्य में तीन सौ तेतालिस राजू घन प्रमाण लोकाकाश है। जितने आकाश में जीवादि पदार्थ स्थित हैं उतने आकाश को लोकाकाश कहते हैं। जिसमें जीवादि पदार्थ नहीं है, केवल शुद्ध आकाश हैं उसको अलोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश नीचे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में सात राजू है अर्थात् चतुष्कोण है। ऊपर क्रम से घटते-घटते सात राजू की ऊँचाई पर पूर्व पश्चिम में एक राजू हैं। तदनन्तर ऊपर बढ़ते-बढ़ते पांचवें स्वर्ग की ऊँचाई पर पूर्व पश्चिम में पाँच राजू है तथा अन्त में एक राजू है। दक्षिण उत्तर में आदि मध्य अन्त तक सात राजू है ऐसा यह तीन सौ तैतालीस राजू घनाकार लोकाकाश है।।२४।।

पंचास्तिकाय

अस्तिकाया इमे कालं विना संतः प्रदेशिनः।

कायवद्येन कालो प्रदेशप्रचयशक्तिमान्।।२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(कालं) काल के (विना) विना (इमे) यह पाँच द्रव्य (कायवत्) काय के समान (प्रदेशिनः) बहुप्रदेशी (संतः) होने से (अस्तिकायाः) अस्तिकाय है (कालः) काल (प्रदेशप्रचयशक्तिमान्) प्रदेश प्रचय शक्ति शक्तिमान है (येन) जिससे अस्तिकाय नहीं है।

भावार्थ–काय के समान बहुप्रदेशी होने से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य अस्तिकाय है तथा प्रदेश प्रचय शक्तिवाला होने से काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।।२५।।

नौ पदार्थ वर्णन

जीवाजीवौ तयोः पुण्यं पापमास्त्रवसंवरौ।

निर्जराबन्धमोक्षाश्चेत्यर्था नवविधाश्च ते।।२६।।

अन्वयार्थ–(जीवाजीवौ) जीव अजीव (तयोः) जीव और अजीव में (पुण्यं) पुण्य (पापं) पाप (आस्त्रवसंवरौ) आस्त्रव, संवर (निर्जराबन्धमोक्षाः) निर्जरा, बन्ध और मोक्ष (इति) इस प्रकार (ते) वे (नवविधाः) नव प्रकार के (अर्था) पदार्थ कहे हैं।

भावार्थ–जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष यह नौ पदार्थ है।।२६।।

पुण्य पाप वर्णन

जीवाजीवौ पुरा प्रोक्तौ सम्यक्त्ववृत्तज्ञानवान्।

जीवः पुण्यं तु पापं स्यान्मिथ्यात्वादिकलंकवान्।।२७।।

अन्वयार्थ–(जीवाजीवौ) जीव और अजीव तो (पुरा) पहिले (प्रोक्तौ) कह दिये हैं (सम्यक्त्ववृतज्ञानवान्) सम्यदर्शन, ज्ञान और चारित्र सहित (जीवः) (पुण्यं) पुण्य जीव है (तु) और (मिथ्यात्वादिकलंकवान्) मिथ्यात्वादि से कलंकित जीव (पापं) पाप रूप है।

भावार्थ–जीवादि सात तत्व पुण्य और पाप रूप हैं इसलिए तत्व सात है, और पदार्थ नव हैं। उसमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित जीव पुण्य रूप है। एवं मिथ्यात्व से कलंकित जीव पुण्य रूप नहीं हैं अर्थात् पाप रूप है।।२७।।

स्यादजीवात्मकं पुण्यं पापं चाणुकदम्बकम्।

शुभानामशुभानां च कर्मणां सुखदुःखदम् ।।२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(शुभानां) शुभ (च) और (अशुभानां) अशुभ (कर्मणां) कर्मों का (सुखदुःखदम्) सुख दुःख देने वाला (अजीवात्मकं) अजीवात्मक (अणुकदम्बकं) अणुओं का समूह (पुण्यं) पुण्य (च) और (पापं) पाप अजीव है।

भावार्थ–सुखोत्पादक और दुःखोत्पादक कार्माण वर्गणादि अजीवात्मकं पुण्य पाप है। अर्थात् जीव को इन्द्रिय जन्य सुखोत्पादक कार्माण वर्गणायें पुण्य अजीव है और इन्द्रिय जन्य दुखोत्पादक कार्माण वर्गणायें पाप अजीव हैं।।२८।।

आश्रव वर्णन

मिथ्याविरतिकषाय योगाः स्युरशुभास्त्रवाः।

दयादमयमाद्यास्तु जीवात्मानः शुभास्त्रवाः।।२९।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगः) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग (अशुभास्त्रवाः) वे अशुभ (पाप) आस्त्रव हैं (तु) और (जीवात्मकं) जीवात्मा के (दयादमयाद्याः) दया, दम, यम आदि (शुभास्त्रवाः) शुभ (पुण्य) आस्त्रव हैं।

भावार्थ–अतत्व के श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। पाँच इन्द्रिय और मन को वश में नहीं करना, छह काय के जीवों की रक्षा नहीं करना, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, और परिग्रह मय पाप में प्रवृत्ति करना अवरति है। आत्मा को कर्मों से कसने वाली क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय हैं। मन वचन काय की प्रवृत्ति से जीवों पर अनुकम्पा करना दया है। इन्द्रियों का निरोध दम है। अहिंसादि व्रत यम है। दया, दम, यम, नियमादि के द्वारा जो आश्रव होता है। वह शुभास्त्रव है।।२९।।

उदयोदीरणाकर्म द्रव्यास्त्रवो यतः।

स्यान्नूत्नद्रव्यभावैर्नो भावद्रव्यास्त्रवाः क्रमात्।।३०।।

अन्वयार्थ–(उदयोदीरणाकर्मद्रव्यास्त्रवः) उदय, उदीरणा को प्राप्त कर्म द्रव्यास्त्रव है। (यतः) क्योंकि (नः) हमारे (नूत्नद्रव्य भावैः) नवीन द्रव्य और भावों से (क्रमात्) कर्म से (भावद्रव्यास्त्रवाः) द्रव्य और भाव आस्त्रव (स्यात्) होता है।

भावार्थ–अपनी स्थिति पूर्ण होने के बाद कर्म फल देते हैं वह उदय है। स्थिति पूर्ण होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पूर्व ही किसी कारण से कर्म उदय में आकर फल देते हैं वह उदीरणा है। उदय और उदीरणा को प्राप्त हुये कर्म द्रव्यास्रव हैं। क्योंकि हमारे नवीन द्रव्यास्रव से भावास्रव होता है और भावास्रव से द्रव्यास्रव होता है अर्थात् द्रव्यकर्म का उदय, भावास्रव का कारणभूत रागद्वेषमय परिणति का कारण है और रागद्वेषमय परिणति नवीन द्रव्यास्रव की कारण है। यह दोनों का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।।३०।।

संवर

भावद्रव्यास्रवानल्पविकल्पेषु यदाऽऽत्मनि।

यस्य यस्य निरोधः स्यात्तत्तत्संवरणं तदा।।३१।।

अन्वया–(यदा) जिस समय (आत्मनि) आत्मा में (भावद्रव्यास्रवानल्पविकल्पेषु) द्रव्य भावास्रव रूप बहुत से विकल्पों में (यस्य यस्य) जिस जिस का निरोध होता है (तदा) उस समय (तत्तत्) वह वह (संवरणं) संवर (स्यात्) होता है।

भावार्थ–द्रव्य और भावास्रवों में अनेक विकल्प हैं। इसलिए जिस जिस काल में जिस आस्रव का निरोध होता है उस उस काल में उस कर्मों का संवर जानना चाहिये। जैसे मिथ्यात्वकर्म के उदय से मिथ्यात्वादि १९ प्रकृतियों का आस्रव होता है और मित्यात्व के नाश हो जाने से उन प्रकृतियों का संवर हो जाता है।।३१।।

भावद्रव्यास्रवद्वन्द्वरोधात्संवरणं मतम्।

द्रव्यभावास्रवद्वन्द्वस्यैतद्यत्तेन जन्यते।।३२।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (द्रव्यभावास्रवद्वन्द्वस्य) द्रव्यभाव आश्रव द्वन्द का (तेन) उसके द्वारा (जन्यते) उत्पाद होता है। (भावद्रव्यास्रवद्वन्द्वोरोधात्) भाव द्रव्याश्रवद्वन्द्व का निरोध होने से (एतत्) यह (संवरणं) संवर (मतं) माना है।

भावार्थ–जिन द्रव्यभावास्रव से कर्म उत्पन्न होते हैं उन भावद्रव्य आस्रवों का निरोध हो जाना ही संवर है। अर्थात् द्रव्यास्रव का निरोध द्रव्यसंवर और भावास्रव का निरोध भावसंवर है।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्जरा

गलनं निर्जरांशस्य स्याच्चिरंतनकर्मणः।

सविपाकाऽविपाका च प्राप्तकाला विपाकजा।।३३।।

परिणामविशेषोत्थाऽप्राप्तकालाऽविपाकजा।

कालेनोपायाजालैर्वा फलपाको वनस्पतेः।।३४।।

अन्वयार्थ–(चिरंतनकर्मणः) चिरकाल के संचित कर्मों के (अंशस्य) एक अंश का (गलनं) नष्ट होना (निर्जरा) निर्जरा (स्यात्) है (सविपाकाऽविपाका) वह सविपाक और अविपाक भेद वाली है (प्राप्तकाला) प्राप्तकाल वाली (विपाकजा) सविपाक निर्जरा है (परिमाणविशेषोत्था) परिमाणविशेष से उत्पन्न (अप्राप्तकाला) अप्राप्तकाल वाली (अविपाकजा) अविपाक निर्जरा है जैसे (कालेन) काल से (वा) अथवा (उपायजालैः) उपायों के द्वारा (वनस्पतेः) वनस्पति का (फलपाक) फल पाक होता है।

भावार्थ–पूर्व संचित कर्मों का एक देश क्षय होना ही निर्जरा है। वह निर्जरा सविपाक और अविपाक के भेद से दो प्रकार की होती है। अपनी स्थिति को पूर्ण करके जो कर्म अपने फल देकर नष्ट होते हैं वह सविपाक निर्जरा है तथा जो कर्म स्थिति पूर्ण किये बिना ही उदय में आकर नष्ट होते हैं, उसको अविपाक निर्जरा कहते हैं। जिस प्रकार कुछ वनस्पति समय पाकर फल देती है और कुछ प्रयोग द्वारा असमय में ही पक जाते हैं।।३३-३४।।

रागादीनां विभावानां विश्लेषो भावनिर्जरा।

आत्मनो गलनं द्रव्यकर्मणां द्रव्यनिर्जरा।।३५।।

अन्वयार्थ–(रागादीनां) रागादि (विभावानां) विभाव भावों का (विश्लेषः) अलग होना (भावनिर्जरा) भाव निर्जरा है। (आत्मनः) आत्मा के (द्रव्यकर्मणां) द्रव्य कर्मों का (गलनं) नाश होना (द्रव्यनिर्जरा) द्रव्य निर्जरा है।

भावार्थ–भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जराओं के भेद से निर्जरा दो प्रकार की है। जिन रागादि भावों से कर्म बंधते हैं उन रागादि भावों का एक देश नाश होना भाव निर्जरा है। अनादि काल से आत्मा के एक क्षेत्रावगाह क्षेत्र में रहने वाले द्रव्य कर्मों का एक देश नाश होना द्रव्य निर्जरा है।।३५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवर निर्जरा के कारण

सम्यक्त्वदेशचारित्र संयमाऽयोगवृतयः।

कारणं निर्जरायाः स्यु संवरस्यापि कर्मणः।।३६।।

अन्वयार्थ–(सम्यक्त्वदेश, चारित्रसंयमाऽयोगवृत्तयः) सम्यक्त्व, देश चारित्र, संयम, अयोगवृत्ति (निर्जरायाः) निर्जरा का (कारण) कारण (स्युः) हैं (अपि) और (कर्मणः) कर्म के (संवरस्यापि) संवर का भी कारण है।

भावार्थ–सम्यग्दर्शन, देश चारित्र, संयम और योग का अभाव निर्जरा और संवर का कारण है।।३६।।

भावबंध

द्रव्यास्त्रवजमिथ्यात्वयोगाविरमणादिभिः।

नूतनेनैरात्मनः श्लेषो भाववन्धस्तदात्मनः।।३७।।

अन्वयार्थ–(द्रव्यास्त्रवजमिथ्यात्वयोगाविरमणादिभिः) द्रव्य आस्त्रव से उत्पन्न मिथ्यात्व, योग, अविरति आदि के द्वारा (नूतनैः) नवीन कर्मों के साथ (आत्मनः) आत्मा का (तदात्मता) एक क्षेत्रावगाही (श्लेषः) सम्बन्ध होता है वह (भावबंधः) भावबन्ध है।

भावार्थ–कर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्व, अविरति, कषाय योगादि भावों से नूतन कर्म के साथ आत्मा सम्बन्ध होता है। वह भावबंध है।।३७।।

भावास्त्रवातितायात्मलोहस्वात्मैकदेहगम्।

आदत्ते सर्वतोऽनंतानंतकर्माणुजीवनम्।।३८।।

आत्मनस्तेन संश्लेषो द्रव्यवन्धश्चतुर्विधः।

सः स्यात्मप्रकृति प्रदेशानुभाग स्थिति भेदतः।।३९।।

अन्वयार्थ–(भावास्त्रवातितापात्मलोहस्वात्मैकदेहगं) भावास्त्रव से अति तप्तायमान आत्म रूपी लोहा स्वात्म देहगत (सर्वतः) चारो तरफ से (अनंतानतकर्माणु जीवनम्) अनंतानंत कर्माणु जीवन को (आदत्ते) ग्रहण करता है (आत्मनः) आत्मा का (तेन) उन कर्मों के साथ (संश्लेषः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध (द्रव्यवंधः) है (सः) वह द्रव्य वन्ध (प्रकृतिप्रदेशानुभाग स्थितिभेदतः) प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति के भेद से (चतुर्विधः) चार प्रकार का है।

भावार्थ–रागद्वेषादि भावों से संतप्त यह आत्मा सर्वांग में अनन्तानन्त कर्म परमाणुओं को ग्रहण करता है। जैसे–अग्नि से तप्तायमान लोहा का गोला चारों तरफ से जल को ग्रहण करता है। रागादि भाव कर्म निर्मित आत्म प्रदेशों के साथ कार्माण वर्गणाओं का एक क्षेत्रावगाही होना द्रव्य वंध है। वह द्रव्य वंध, प्रकृति वंध, स्थिति वंध, प्रदेश वंध और अनुभाग वंध के भेद से चार प्रकार का है। कर्म स्वभाव का नाम प्रकृति है, जैसे ज्ञानादि गुणों का आच्छादन करने वाली प्रकृति ज्ञानावरण है। योग के निमित्त से सिद्धों के अनन्तवें भाग और अभव्य जीवों से अनन्त गुणी पुद्गल वर्गणायें एक समय में आत्म प्रदेशों के साथ एक क्षेत्रवगाही होती है वह प्रदेश वंधी है। आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ रहने की मर्यादा का नाम स्थिति वंध है। कर्मों के फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग वंध है।।३८-३९।।

प्रकृति प्रदेशयोः स्याद्योगात् स्थित्यनुभागयोः।

वंधः कषायतो योगे चाकषाये यतो न तौ।।४०।।

अन्वयार्थ–(प्रकृति प्रदेशयोः) प्रकृति और प्रदेश का (वंध) वंध (योगात्) योग से (स्थित्यनुभागयोः) और स्थिति अनुभाग वंध (कषायतः) कषाय से होता है (यतः) क्योंकि (अयोगे) अयोग में (च) और (अकषाये) अकषाय अवस्था में (वंधः) वंध (न) नहीं है।

भावार्थ–प्रकृति वंध और प्रदेश वंध योग के निमित्त से होते हैं। तथा स्थिति वंध और अनुभाग वंध कषाय के निमित्त से होते हैं। क्योंकि अकषाय और अयोग अवस्था में बंध नहीं होता है।।४०।।

मोक्ष

भावद्रव्यात्मकाशेषकर्मनोकर्मणां क्षयात्।

भावद्रव्यात्मको मोक्षश्चारुचारित्रसम्पदा।।४१।।

अन्वयार्थ–(चारुचारित्रसम्पदा) सम्यक्त्वचारित्र की सम्पदा से (भावद्रव्यात्मकाशेषकर्मनोकर्मणां) भाव द्रव्यात्मक अशेष कर्मों के (क्षयात्) क्षय हो जाने से (भावद्रव्यात्मकः) भावद्रव्यात्मक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मोक्ष) होता है।

भावार्थ–रागद्वेष विभाव परिणति भाव कर्म है। ज्ञानवरणादि कर्म द्रव्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्त्वचारित्र के द्वारा रागद्वेष भावों से छूटना भाव मोक्ष है। और ज्ञानवरणादि कर्म से छूटना द्रव्यमोक्ष है।।४१।।

अनंतज्ञानदृग्वीर्यसौख्यात्मस्वात्म लंभनम्।

सिद्धिर्नाभावचिन्मात्रणिः शेषात्मगुणक्षयाः।।४२।।

अन्वयार्थ–(अनंतज्ञानदृग्वीर्यसौख्यात्मस्वात्मलंभनम्) अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंत वीर्यात्मक स्वात्मोपलब्धि की प्राप्ति (सिद्धिः) है (अभावचिन्तात्रणि शेषात्मगुणक्षया) अभावचिंतमात्र विशेष गुणों का क्षयरूप (न) सिद्धि नहीं है।

भावार्थ–अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य रूप आत्मीय गुणों का विकास ही सिद्धि है। आत्मा के चैतन्यादि विशेष गुणों का अभाव सिद्धि नहीं है।

विशेषार्थः-समस्त कर्ममलों से रहित आत्मा की शुद्ध अवस्था का नाम मोक्ष है। इस अवस्था में आत्मा स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों से रहित हो अशरीर हो जाता है। अपने स्वाभाविक अनन्तज्ञान, निर्वाध अनन्तसुख आदि गुणों से परिपूर्ण हो चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। यह आत्मा की अन्तिम विलक्षण अवस्था है। यह शुद्ध दशा सदा एक सी बनी रहती है। इसका कभी विनाश नहीं होता है। यह दशा इन्द्रिय ज्ञान का विषय न होने से अत्यन्त परोक्ष है। इसलिए विभिन्नवादि मोक्ष के स्वरूप की अनेक प्रकार से कल्पना करते हैं।

(१) **साँख्य का मत** है कि–पुरुष का स्वरूप चैतन्य है। ज्ञान चैतन्य से पृथक वस्तु है। ज्ञान प्रकृति का धर्म है। यही ज्ञेय अर्थात् पदार्थों को जानता है। चैतन्य पदार्थों को नहीं जानता। मोक्ष अवस्था में चैतन्य स्वरूप रहता है। ज्ञान स्वरूप नहीं। इस मत में दूषण हैं ज्ञान से भिन्न चैतन्य कोई वस्तु नहीं है। चैतन्य, ज्ञान, बुद्धि आदि पर्यायवाची है इनमें अर्थ भेद नहीं है। स्व तथा पर पदार्थों का जानना चैतन्य का स्वरूप है। यदि चैतन्य अपने स्वरूप तथा पर पदार्थों को नहीं जानता तो वह गधे के सींग की तरह असत् ही हो जायेगा। निराकार अर्थात् ज्ञेय को न जानने वाले चैतन्य की कोई सत्ता नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) वैशेषिक बुद्धि सुख, दुःख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन आत्मा के नव विशेष गुणों के उच्छेद होने को मोक्ष कहते हैं। ये विशेष गुण आत्मा और मन के संयोग से उत्पन्न होते हैं। चूँकि मोक्ष में आत्मा का मन अत्यन्त संयोग नहीं रहता है अतः इन गुणों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है। इस मत में सबसे बड़ा दूषण यह है कि–यदि आत्मा के बुद्धि आदि विशेष गुण नष्ट हो जाते हैं तो आत्मा का स्वरूप ही क्या बचता है। अपने विशेष लक्षणों से रहित वस्तु अवस्तु हो जायेगी।

बौद्ध मानते हैं कि जिस प्रकार तैल न रहने से दीपक बुझ जाता है। उसी प्रकार राग स्नेह के क्षय हो जाने से आत्मा के ज्ञान सन्तान शान्त हो जाना मोक्ष है। इनकी यह प्रदीप निर्वाण की तरह आत्म निर्वाण की कल्पना भी उचित नहीं है। कारण आत्मा का अत्यन्त अभाव न हो सकता वह सत् पदार्थ है।।४२।।

सात तत्व

सप्त तत्वानि चैतेऽर्थाः पुण्यपापद्वयं विना।
तज्जीवाजीवद्रव्यान्तर्भूतं यन्नैगमन्नयात्।।४३।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (पापपुण्यद्वयं) पाप पुण्य के (विना) बिना (एते) ये (अर्थाः) पदार्थ (सप्ततत्वानि) सात तत्व है (तत्) वह (नैगमनयात्) नैगमनय की अपेक्षा से (जीवाजीवद्रव्यान्तर्भूतं) जीव और अजीव इन दो द्रव्यों में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

भावार्थ–जीव, अजीव, आस्त्रव, वंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्व पुण्य और पाप मिलाने से नौ पदार्थ है। यह सब जीव, अजीव दो द्रव्यों में गर्भित होते हैं इसलिए नैगमनय की अपेक्षा जीव और अजीव यह दो ही तत्व हैं।।४३।।

"मूढ़ता वर्णन"

लोकान्यदेवपाखंडिवेदोद्यासादितादलम् ।
मूढ़ादपोढं सम्यक्त्वं बाढ़ं दृढ़मिदंभवेत्।।४४।।

अन्वयार्थ–(लोकान्यदेवपाखंडिवेदाद्यासादितादनं) अन्यदेव, पाखंडि, वेद आदि से उत्पन्न। (मूढ़ात्) मूर्खता से (अपोढं) रहित (अलं) निश्चय से (बाढं) अत्यन्त (इदं) यह (सम्यक्त्वं) सम्यत्त्व (दृढ) (भवेत्) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, पाखंड मूढ़ता, वेद मूढ़ता, आदि से रहित होने से सम्यग्दर्शन अत्यन्त निर्मल और दृढ़ होता है।।४४।।

लोकमूप्ता लक्षण

गेहभक्ताग्नि भूस्वर्णरत्नास्त्राञ्चपकारकम्।

जनस्य वस्तु यत्तत्र बंद्यधीर्लोकमूढ़ता।।४५।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (जनस्य) मानव की (गेहभक्ताग्निभूस्वर्णरत्नास्त्राद्यपकारकम्) घर, भात, अग्नि, भूमि, सोना, रत्न, शस्त्र आदि अपकारक (वस्तु) वस्तु है। (तत्र) उस वस्तु में (बंद्यधीः) पूज्य बुद्धि होना (लोकमूढ़ता) लोकमूढ़ता है।

भावार्थ–घर, भात, अग्नि, सोना, रत्न, शस्त्रादि वस्तुयें जीवों की अपकारक है आर्त, रौद्र ध्यान का कारण है, ऐसी घर आदि वस्तु को पूजना लोकमूढ़ता है। अथवा नदी में स्नान करके अपने को पवित्र मानना, अग्नि में जलकर धर्म मानना, लोकमूढ़ता है। जिसमें हेयोपादेय का विचार नहीं होता और जो अन्धानुकरण किया जाता है वह सब लोकमूढ़ता है।।४५।।

देवमूढ़ता लक्षण

ब्रह्मोमापति गोबिन्द शाक्येन्दुतपनादिषु।

मोहकादम्बरीमत्तेष्वाप्तधीर्देवमूढ़ता।।४६।।

अन्वयार्थ–(मोहकादम्बरीमत्तेषु) मोहरूपी मदिरा से उन्मत्त (ब्रह्मोमापतिगोविन्दशाक्येन्दु तपनादिषु) ब्रह्मा, उमापति, गोविन्द, शाक्य, (बौद्ध) चन्द्र, सूर्य आदि में (आप्तधी) देवबुद्धि होना (देवमूढ़ता) देवमूढ़ता है।

भावार्थ–अज्ञानता के कारण मोहरूपी मदिरा से मदोन्मत्त ब्रह्मा, महादेव, गोविन्द, बुद्ध, चन्द्रमा, सूर्य आदि को देव मानकर जो पूजा की जाती है वह देवमूढ़ता है।।४६।।

पाखण्डिमूढ़ता

पाखंडिमूढ़ता दंडपात्रामत्रदिसंगिषु।

सन्मतिः स्वागमाभासभ्रान्तस्वान्तान्यलिंगिषु।।४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(दंडपात्रामत्रादिसंगिषु) दंडपात्र आदि अमर्यादित परिग्रह के धारी (स्वागमाभासभ्रान्तस्वान्तान्यलिंगिषु) अपने आगमाभास से भ्रान्त चित्त वाले अन्य कुलिंगियों में (संन्मतिः) सत्कार बुद्धि होना (पाखंडिमूढ़ता) पाखंडि मूढ़ता है।

भावार्थ–जो दण्डपात्र आदि अमर्यादित परिग्रह के धारी हैं और अपने आगमभास से मोहित हैं ऐसे पाखंडि साधुओं का सत्कार करना पाखंडि मूढ़ता है।।४७।।

वेद मूढ़ता

पापोपदेशवेदान्यपुराणादिषु सन्मतिः।
स्याद्वेदमूढ़ता जतोः संसृतिभ्रान्तिकारणम्।।४८।।

अन्वयार्थ–(पापोपदेशवेदान्यपुराणादिषु) हिंसादि पाप के उपदेशक, वेद, अन्य पुराणादि में (सन्मतिः) जो सत्कार की बुद्धि है। वह (जंतोः) प्राणियों के (संसृतिभ्रान्तिकारणम्) संसार में परिभ्रमण का कारण (वेदमूढ़ता) वेद मूढ़ता (स्यात्) है।

भावार्थ–जिनमें हिंसादि पापों का उपदेश है, ऐसे ऋग्वेद, सामवेद, आदि और अग्निपुराण, वायुपुराण, आदि पुराण जीवों को संसार में भ्रमण कराने में कारण हैं उनमें जो सत्कार, पूजा बुद्धि है वह वेद मूढ़ता है।।४८।।

"सम्यक्त्व के गुणों का वर्णन"

गुणाः प्रशमनिर्वेग संवेगास्तिकतादयः
स्वदोषगर्हानिन्दाद्याः सम्यक्त्वमणिरश्मयः।।४९।।

अन्वयार्थ–(प्रशमनिर्वेगसंवेगास्तिकतादयः) प्रशम, निर्वेग, संवेग, आस्तिकता आदि (स्वदोषगर्हानिन्दाद्याः) अपने दोषों की निन्दा गर्हा आदि (गुणाः गुण) (सम्यक्त्वमणिरश्मयः) सम्यत्त्वरूपी मणि की किरणें हैं।

भावार्थ–प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से पहिचाना जाने वाला सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन है। रागादि दोषों के उपशम को प्रशम कहते हैं। विविध दुःखमय संसार से डरना संवेग है। प्राणी मात्र के दुःख दूर करने की इच्छा से चित्त का दयामय होना अनुकम्पा है। देव, शास्त्र, व्रत और तत्वों में दृढ़ प्रतीति को आस्तिक्य कहते हैं। वीतराग सम्यग्दर्शन आत्म विशुद्धि रूप होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा

संवेग = रत्नत्रय रूप धर्म, अभ्युदयनिश्रेयसादि प्राप्ति रूप धर्मफल, जिनेश्वर कथित तथा गणधरादि प्रणीत शास्त्र, परिग्रह रहित रत्नत्रयाराधक मुनिवर्ग इनमें जो स्थिर अनुराग उत्पन्न होता है। उसे संवेग कहते हैं।

निर्वेग = रत्नत्रय रहित पुरुषों को उन्मत्तमित्र, पुत्र और स्त्री आदिक सर्व सामग्री मिथ्या कर्म के संयोग से प्राप्त होती है, सिर्फ रत्नत्रय ही आत्मा का स्वभाव है ऐसा चिन्तन करना निर्वेग है।

निन्दा = जब आत्मा कषाय से व्याकुल होता है। तब वह सज्जननिन्द्य कार्य करता है, परन्तु जब कषाय का वेग कम होता है तब मैंने अयोग्य कार्य किया है, ऐसा जो मन में अनुताप होता है उसे निन्दा कहते हैं। यह निन्दा नामक सम्यत्त्वगुण निन्द्य पाप का नाश करने वाला है।

गर्हा = रागद्वेषादि दोषों के अधीन होकर जब घोर पाप उत्पन्न होता है तब गुरु के आगे आलोचना करना, यह सम्यक्त्व का गर्हा नामक गुण है। अपने दोषों का स्वयं अनुताप करना निन्दा है तथा गुरु के आगे अपने दोषों का पश्चाताप पूर्वक वर्णन करना गर्हा है।

प्रशम = कोई दुर्निवार तथा महान कालुषता का कारण उत्पन्न हो पर जिसका मन क्षुब्ध नहीं होता वह भव्यजीव प्रशम गुण का धारक होता है।

भक्तिगुण–दोष रहित जिनदेव, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकारूप चार प्रकार का संघ, रत्नत्रय धारक मुनि, तथा गर्भजन्मादि कल्याणों का महोत्सव इत्यादि प्रसंगों में सम्यग्दृष्टि अंतः करणपूर्वक इच्छा और कपट रहित हो आराधना करता है वह उसका भक्ति नामक गुण कहा जाता है। वह गुण भव्य के अर्थ की अर्थात् पुण्यफल रूप संपत्ति की प्राप्ति कराने वाला है। परिणामों की निर्मलता से जो देवादिकों पर अनुराग किया जाता है। उसे भक्ति कहते हैं।

वात्सल्यगुण–अन्न औषध आदि के द्वारा मन, वचन, काय से चार प्रकार के संघ की जो प्रशंसनीय सेवा सुश्रुषा की जाती है उसको वात्सल्य गुण कहते हैं।

अनुकम्पा गुण-असाता वेदनीय और अंतरायादि अशुभ कर्मों के उदय से प्रकट हुए दारिद्र, रोग, चिन्ता वगैरह दुःखों से पीड़ित हुये जीवों पर जो दयार्द्र भाव उत्पन्न होता है उसे जिनेश्वर अनुकम्पा भाव कहते हैं। पर पीड़ा को देखकर मानों वह पीड़ा अपने को ही हो रही है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा समझ कर उसे दूर करना अनुकम्पागुण है।

ये आठ गुण सम्यक्त्वरूपी मणि की किरणें हैं। इन आठ गुण रूपी अंजन से सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र जब निर्मल होता है तब वह जीव को अभिलाषित स्थान को प्राप्त करा देता है।।४९।।

"सम्यक्त्व के आठ अंग"

निः शंकत्वमकांक्षत्वं नैर्जुगुप्सयममूढ़ता
उपगूहः स्थितिकारो वात्सल्य च प्रभावना।।५०।।

इत्यष्टांगानि पुष्टानी सम्यक्त्वगुण
यद्वदंगानि सप्त स्युः प्राज्यसाम्राज्यसंपदे।।५१।।

अन्वयार्थ–(निःशंकत्वमकांक्षत्वं नैर्जुगुप्स्यपममूढ़ता) निशंकत्व, निकांक्षत्व, नैर्जुगुप्सयत्व, अमूढ़ता (उपगूहः) उपगूहन (स्थितिकारः) स्थितिकरण (वात्सल्यं) वात्सल्य (च) और (प्रभावना) प्रभावना (इति) इस प्रकार (पुष्टानि) पुष्ट करने वाले (अष्टागानि) आठ अंग (सम्यक्त्वगुणसम्पदे) सम्यक्त्व गुण सम्पदाओं के लिए (स्युः) होते हैं (यद्वत्) जैसे (प्राज्यसाम्राज्यसंपदे) उत्कृष्ट साम्राज्य सम्पदा के लिए (सप्त) सात (अंगनि) अंग (स्युः) होते हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार साम्राज्य को पुष्ट करने के लिए सात प्रकार की सेना होती है। उसी प्रकार निःशंकित निःकांक्षित (निर्जुगुप्सा, अमूढ़ दृष्टित्व, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग सम्यक्त्व की वृद्धि के कारण हैं।।५०-५१।।

निः शंकित अंग

हेतुद्वयोत्कार्यानुमेयेयं भवितव्यता।
दुर्लघ्येति भयाऽभावो निःशंकत्वं भयोदये।।५२।।

अन्वयार्थ–(भयोदये) भय का उदय होने पर (इयं) यह (भावितव्यता) भवितव्यता (हेतुद्वयोत्कार्यानुमेया) दो हेतु से उत्पन्न कार्य के द्वारा अनुमेय है, (दुर्लघ्या) दुर्लघ्य है (इति) इस प्रकार (भयाभावः) भाव का अभाव होना (निशंकितत्वं) निशंकित्व अंग है।

भावार्थ–भय के कारणों के उपस्थित होने पर भी वस्तु के स्वरूप का विचार कर निर्भय रहना, आकुल व्याकुल नहीं होना निशंकित अंग है।।५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भयमाकस्मिकं पारलौकिकं चेहलौकिकम्।
मृत्युगुप्तिरूजात्राणैः संजातमिति सप्तधा।।५३।।
किं स्यात्सत्यमिदं नो वेत्याप्तोक्ते संसयोज्झिता।
मतिस्तत्त्वा चलप्रीतिः परा निःशंकिता मता।।५४।।

अन्वयार्थ–(आकस्मिकं) आकस्मिक (पारलौकिकं) पारलौकिक (इहलौकिकं) इहलौकिक (मृत्युगुप्ति रूजात्राणैः) मरणगुप्ति, रोग, अत्राण से (संजातं) उत्पन्न (भयं) भय (सप्त) सात प्रकार का है। (किं) क्या (इदं) यह (सत्यं) सत्य है (नवा) अथवा सत्य नहीं है (इति) इस प्रकार (आप्तोक्ते) जिनेन्द्र भगवान के वचनों में (संशयोज्झिता) संशय रहित (मतिः) बुद्धि तथा (तत्वाचलप्रीतिः) तत्व में अचल प्रीति होना (पर) उत्कृष्ट (निःशंकिता) निःशंकित अंग (मता) माना गया है।

भावार्थ–इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, अगुप्ति भय, वेदना भय, आकस्मिकभय, अनरक्षभय यह सात प्रकार के भय है। वर्तमान पर्याय में मुझे दुःख न हो इस प्रकार का भय करना इहलोक भय है। पर भव में मेरी दुर्गति न हो ऐसा भय होना परलोक भय है। मरण से भयभीत होना मरण भय है। शारीरिक रोगों से भयभीत होना वेदना भय है मेरे रहने का कोई गुप्त स्थान नहीं क्या करूँ, कहाँ रहूँ ऐसी आकुलता अगुप्ति भय है। मेरा कोई रक्षक नहीं है ऐसा भय अरक्षक भय है।

अकस्मात यह घर गिर नहीं जाय, कोई चोर न आ जाय आदि की आशंका होना आकस्मिक भय है। इन सात प्रकार के भयों का कारण उपस्थित होने पर भी उपादान और निमित्त इन दोनों कारणों से अनुभेय भवितव्यता अलंघ्य है उसको दूर करने के लिए कोई समर्थ नहीं है, तब आकुलता से क्या होने वाला है, ऐसा विचार कर निर्भर होना निशंकित अंग है।

अथवा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित तत्व सत्य है कि असत्य है इस प्रकार संशयवृत्ति रहित अचल तत्व की प्रतीति होना वा जिनेन्द्र भगवान के वचन सत्य ही है ऐसा दृढ़ विश्वास हो निशंकित अंग है।।५३-५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःकाक्षित अंग

वांछाऽभावोऽन्यदृग्ज्ञान वृत्तोत्कर्षेष्वाकांक्षता।

अत्राऽमुत्र च जाते वाऽनश्वरेन्द्रियजे सुखे।।५५।।

अन्वयार्थ–(अन्यदृग्ज्ञानवृत्तोत्कर्षेषु) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के उत्कर्ष में (वा) अथवा (अत्र) इस लोक (च) और (अमुत्र) परलोक में (जाते) प्राप्त होने वाले (अनश्वरेन्द्रियजे) नाशवंत इन्द्रियजन्य (सुखे) सुख में (वांछा भावः) वाँछा का अभाव होना (आकांक्षता) निष्कांक्षित अंग है।।५५।।

देवेन्द्रादिश्रियो यस्मिन्सत्यायान्ति स्वय सताम्।

सम्यक्त्वेऽनुपमें तस्मिन् किं तथा परचिन्तया।।५६।।

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिस (अनुपमे) अनुपम (सम्यक्त्वे) सम्यक्त्व के (सति) होने पर (सतां) सज्जन पुरुषों को (देवेन्द्रादिश्रियः) इन्द्र आदि की सम्पदा (स्वयं) स्वयं (आपाति) आ जाती है। (तस्मिन्) उस सांसारिक सम्पदा के लिए (तथा) उस (परचित्तया) चिन्ता से (किं) क्या प्रयोजन है।

भावार्थ–इस लोक में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का उत्कर्ष देखकर मिथ्याधर्म की भावना नहीं करना अथवा इह लोक में मुझे सम्पदा प्राप्त हो जाय, वा परलोक में चक्रवर्ती आदि पद की प्राप्ति हो जाय इस प्रकार की वांछा का अभाव निष्कांक्षित अंग है। इस प्रकार की चिन्ता से क्या प्रयोजन है, जिसके पास अमूल्य सम्यक्त्व रूपी रत्न है उसको सांसारिक अभ्युदव स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं।।५६।।

निर्जुगुप्सा

तीव्रं जैनतपस्तत्र निंद्य चामज्जनादिकम्।

सम्यगव्यदिति स्वांतत्यागः स्यान्निर्जुगुप्सता।।५७।।

अन्वयार्थ–(जैनतपः) जैनतप (तीव्रं) तीव्र है (च) और (तत्र) उस जैनतप में (अमज्जनादिकम्) स्नानादि नहीं करना (निंद्य) निन्दनीय है (अन्यत्) अन्य सब क्रिया (सम्यग्) समीचीन है (इति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार के (स्वांतत्यागः) मानसिक भावना का त्याग करना (निर्जुगुप्सा) निर्जुगुप्सा (स्यात) होती है।

भावार्थ–जिनेन्द्र कथित तप सर्वोत्कृष्ट है। इसमें और सब क्रिया तो उत्तम है, परन्तु स्नान नहीं करना यह योग्य नहीं है। इस प्रकार का विचार मन में उत्पन्न नहीं होने देना ही निर्जुगुप्सा अंग है।।५७।।

रत्नत्रयपवित्राणां छर्दिलालद्यपोहने।
विचिकित्सात्यो वा सा ज्ञात्वा गात्रापवित्रताम्।।५८।।

अन्वयार्थ–(वा) अथवा (गात्रापवित्रताम्) शरीर की अपवित्रता को (ज्ञात्वा) जानकर (रत्नत्रय पवित्राणां) रत्नत्रय धारियों के (छार्दिलालद्यापोहने) छर्दि (वमन) लार, कफ आदि को दूर करने में (विचिकित्सात्यः) ग्लानि का अभाव होना निर्जुगुप्सा अंग है।

अमूढदृष्टि अंग

भावार्थ–यह शरीर स्वभाव से अपवित्र है ऐसा विचार कर रत्नत्रय धारियों के मल, मूत्र, वमन आदि को दूर करने में ग्लनि नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है।।५८।।

वहिराचारचारुणि सौगतादिमतान्यलम्।
क्लेशादिमोहदान्येव स्युः किंपाकवदंगिनाम्।।५९।।

अन्वयार्थ–(अंगिनाम्) प्राणियों के (किंपाकवत्) किंपाक फल के समान (वहिराचारचारुणि) बाह्य के आचरण में मनोज्ञ (सौगतादि मतानि) सुगतादि के धर्म (क्लेशमोहदानि) मोह क्लेश को देने वाले (एव) ही (स्युः) है (अलं) इसलिए इससे क्या प्रयोजन है।

भावार्थ–जिस प्रकार किंपाल फल दिखने में सुन्दर दिखता हैं। परन्तु भक्षण करने के बाद प्राणों को हरण करने वाला है। उसी प्रकार बाह्य में मनोज्ञ प्रतीत होने वाले सौगतादि गत धर्म अंत में मोह क्लेश को देने वाले हैं।।५९।।

तदन्यज्ञानविज्ञानप्रशंसाविस्मययोज्झिता।
युक्तियुक्तजिनोक्ते या रुचिः साऽमूढता मता।।६०।।

अन्वयार्थ–(तत्) इसलिए (अन्यज्ञानविज्ञानप्रशंसाविस्मयोज्झिता) मिथ्यादृष्टियों के ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञान की प्रशंसा व आश्चर्य को छोड़ना तथा (युक्तियुक्तजिनोक्ते) युक्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान के कथित धर्म में (या) जो (रुचि) रुचि है (सा अमूढ़ता) वह अमूढ़ता है।

भावार्थ–मिथ्यादृष्टियों के ज्ञानादि की प्रशंसा को छोड़कर अनुमान और प्रत्यक्ष ज्ञान से अवाचित जिनेन्द्र कथित धर्म में रुचि होना अमूढ़ दृष्टि अंग है।।६०।।

उपगूहन अंग

यद्वत्पुत्रकृतं दोषं यत्नान्माता निगूहति।

तद्वत्सद्धर्मदोषोपगूहः स्यादुपगूहनम्।।६१।।

अन्वयार्थ–(यद्वत) जिस प्रकार (पुत्रकृतं) पुत्र के द्वारा किये हुये (दोषं) दोष को (माता) माता (यत्नात्) प्रयत्न पूर्वक (निगूहति) ढंक देती है (तद्वत्) उसी प्रकार (सद्धर्मदोषोपगूहः) सद्धर्म के दोषों को ढंकना (उपगूहनम्) उपगूहन अंग (स्यात्) है।

भावार्थ–जैसे अपने पुत्र के द्वारा किये हुए दोषों को माता ढँक देती है बाहर प्रकट नहीं करती है। उसी प्रकार सद्धर्मों के दोषों को ढँकना, उन्हें बाहर प्रकट नहीं करना उपगूहन अंग है।।६१।।

स्थितिकरण

आत्मनोऽन्यस्य वा चेतो धर्मोद्विग्नं परीषहैः।

संबोध्य तत्र तच्चित्तस्थापनं स्यात्स्थितिक्रिया।।६२।।

अन्वयार्थ–(आत्मनः) अपना (वा) अथवा (अन्यस्य) दूसरे का (परीषहैः) परिषहों के द्वारा (धर्मोद्विग्नं) धर्म से उद्विग्न हुये (चेतः) चित्त को (संबोध्य) संबोधन करके (तत्र) धर्म में (तच्चित्तस्थापनं) उस चित्त को स्थापन करना (स्थितिक्रिया) स्थितिकरण अंग (स्यात्) है।

भावार्थ–क्षुधा पिपासादि परिषहों के द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप धर्म से उद्विग्न हुए अपने तथा साधर्मों के चित्त को पुनः सन्मार्ग में स्थिर करना स्थितिकरण अंग है।।६२।।

तन्नियोज्य यथाशक्ति धर्मे नूत्नेतरान्नरान्।

धर्मोपवृंहणं कार्यं न धर्मो धार्मिकैर्विना।।६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(नूत्नेतरान्) नूतन और पुरातन (नरान्) मानवों को (यथाशक्ति) शक्ति अनुसार (धर्मे) धर्म में (नियोज्य) नियुक्त करके (धर्मोपवृंहणं) धर्मोवृहंण कार्य करना चाहिये। क्योंकि (धार्मिकैः) धर्मात्माओं के (विना) विना (धर्मः) धर्म (न) नहीं है।

भावार्थ–प्राचीन जिन धर्मावलम्बियों को वा अन्य नवीन मानवों को धर्म का उपदेश देकर नित्य धर्म में संलग्न कर उपवृंहण करना चाहिये। क्योंकि धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रहता है। यह भी उपवृंहण रूप उपगूहन अंग है।।६३।।

वात्सल्य अंग

प्रीतिर्जिनागमे वत्सलत्वं संघे चतुर्विधे।

प्रमोदितोपकरित्वं चोपकारानपेक्षया।।६४।।

अन्वयार्थ–(जिनागमे) जिनागम में (चतुर्विधे संघे) चतुर्विध संघ में (उपकारानपेक्षया) उपकार की अपेक्षा के बिना (प्रमोदिता) प्रमोदकारिणी (प्रीतिः) प्रीति (च) और (उपकारित्वं) उपकारित्व होना (वत्सलत्वं) वात्सल्य अंग है।

भावार्थ–जिन धर्म में और चतुर्विध धर्म में प्रमोदकारिणी प्रीति और उपकार की अपेक्षा के बिना उपकार करना वात्सल्य अंग है क्योंकि साधर्मियों और शिव के कारण भूत अहिंसामय जिन धर्म में परमप्रीति सम्यग्दर्शन को निर्मल करती है।।६४।।

जैनानापद्वतांस्तस्मादुपकुर्वन्तु सर्वथा।

यः समर्थोऽप्युपेक्षेत सः कथं समयी भवेत्।।६५।।

अन्वयार्थ–(आपद्वतान्) आपत्ति को प्राप्त (जैनान्) जिन धर्मावलम्बियों का (सर्वथा) सर्वथा (उपकुर्वन्तु) उपकार करे (तस्मात्) क्योंकि (यः) जो (समर्थ) समर्थ होता हुआ (अपि) भी (उपेक्षेत) उपेक्षा करता है (सः) वह (समयी) सम्यग्दृष्टि (कथं) कैसे (स्यात्) हो सकता है।

भावार्थ–जो आपत्तिगत हैं ऐसे जैन धर्मावलम्बियों की प्रयत्न पूर्वक आन्तरिक अनुराग से उपकार तथा उनकी आपत्तियों को दूर करना चाहिये। क्योंकि जो समर्थशाली होकर भी साधर्मियों की आपत्तियों को दूर नहीं करता है वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है। इसलिए अपनी शक्तिनुसार पुनः उपकार की अपेक्षा नहीं करके धर्म और धर्मात्माओं की रक्षा करना भी वात्सल्य अंग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आंतरिक वात्सल्य बिना जिन धर्म की रक्षा नहीं हो सकती है।।६५।।

प्रभावनाअंग

त्रिरत्नैरात्मनः सम्यग्भावनं स्यात्प्रभावना।

सद्धर्मस्य प्रकाशो वा सम्यग्ज्ञानादिभिर्गुणैः।।६६।।

अन्वयार्थ–(त्रिरत्नैः) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र रूपी तीन रत्नों के द्वारा (आत्मनः) अपने आत्मा का (सम्यग्भावनं) समीचीन भाव से उद्योत करना (वा) अथवा (सम्यग्ज्ञानादिभिः) सम्यग्ज्ञानादि (गुणैः) गुणों के द्वारा (सद्धर्मस्य) सद्धर्म का (प्रकाशः) प्रकाशन करना (प्रभावना) प्रभावना अंग (स्यात्) होता है।

भावार्थ–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्कचारित्र के द्वारा अपनी आत्मा को उद्योतित करना प्रभावना अंग है अथवा सम्यग्दर्शनादि गुणों के द्वारा जिन धर्म का उद्योत करना प्रभावना अंग है।।६६।।

तेनज्ञानप्रभावेन महताऽनशनादिना।

महापूजादिभिश्चोच्चैः कर्तव्या समयोन्नतिः।।६७।।

अन्वयार्थ–(तेन) उस (ज्ञानप्रभावेन) ज्ञान के प्रभाव से (महता) महान (अनशनादिना) अनशनादि (गुणैः) गुणों के द्वारा (च) और (महापूजादिभिः) महापूजादि के द्वारा (उच्चैः) ऊँचे रूप से (समयोन्नतिः) जिनधर्म की उन्नति (कर्तव्या) करनी चाहिये।

भावार्थ–अज्ञान अंधकार नाशक ज्ञान के द्वारा तथा अनशन आदि काय क्लेशों के द्वारा और इन्द्रध्वज, महामह, कल्पद्रुभ आदि महापूजाओं के द्वारा जगत्पूज्य पवित्र जगद्बंधु, जिन धर्म की महान प्रभावना करनी चाहिये।।६७।।

जडात्मा शक्तियुक्तोऽपि यः सद्धर्मप्रकाशनम्।

कुर्यान्न चेदसौ रिक्तो महीभारो नराधमः।।६८।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (जडात्मा) मूर्ख (शक्तियुक्तः) शक्ति युक्त होता हुआ (अपि) भी (सद्धर्मप्रकाशनम्) सधर्म का प्रकाशन (न) नहीं (कुर्यात्) करता है (चेत्) तो (असौ) वह मानव (रिक्तः) सम्यग्दर्शन से रहित है (महीभारः) केवल पृथ्वी का भार स्वरूप है (नराधमः) अधम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—जो अज्ञानी जन शक्ति सम्पन्न होता हुआ भी ज्ञान, दान, पूजा अनशन आदि के द्वारा जिन धर्म की प्रभावना नहीं करता है वह नराधर्म सम्यग्दर्शन से रहित है, केवल पृथ्वी का भार स्वरूप है।।६८।।

सम्यग्दर्शन के निःसर्गज आदि दो भेद और स्वरूप

जिनविंबावलोकादिनिसर्गोऽल्पप्रयासतः।

ज्ञेयश्चाधिगमस्तत्वविचारचुतरा मतिः।।६९।।

अन्वयार्थ—(अल्पप्रयासतः) थोड़े प्रयास से (जिनविम्बाबलोकादिनिसर्गः) जिनविम्ब अवलोकनादि से निसर्ग सम्यक्त्व (च) और (तत्वविचारचतुरा) तत्व के विचार से चतुर (मतिः) बुद्धि (अधिगमः) अधिगमन सम्यग्दर्शन (ज्ञेयः) जानना चाहिये।

भावार्थ—वह सम्यग्दर्शन निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का है। जिनबिम्ब आदि के दर्शन से वा गुरु कें अल्प प्रयांस से जो तत्व श्रद्धान होता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है और जिसमें गुरु को विशेष प्रयत्न करना पड़ता है वा शास्त्रादि के विशेष विचार से तत्वरूचि सम्पन्न होती है उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के जो कारण हैं इनमें धर्मोपदेश को छोड़कर शेष कारणों से जो तत्वरूचि होती है वा धर्मोपदेश में भी गुरुओं को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है।।६९।।

सम्यत्त्व का अधिकारी

संज्ञिपर्याप्तभव्यस्य लब्धियुक्तस्य जागृतः।

ज्ञानोपयोगिनो हेतू सम्यक्त्वाप्तेर्मताविमौ।।७०।।

अन्वयार्थ—(संज्ञिपर्याप्तभव्यस्य) संज्ञि, पर्याप्त, भव्य (लब्धियुक्तस्य) पाँच लब्धियुक्त (जागृतः) जागृत अवस्था वाले (ज्ञानोपयोगिनः) साकार उपयोग के (सम्यत्त्वाप्तेः) सम्यक्त्व के प्राप्ति के (इमौ) यह निसर्गज और अधिगमज (हेतु) कारण (मतौ) माने हैं।

भावार्थ—जो संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त हो, पाँच लब्धि जिसको हो गई हों, जो साकार उपयोगी है, जागृत अवस्था से युक्त है उसके सम्यक्त्व की प्राप्ति में निसर्गज और अधिगमज कारण होते हैं।।७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व के तीन भेद

दृङ्मोहोपशमध्वंसक्षयोपशमकारणैः।
भवच्छेदनिदानाद्यं दर्शनं त्रिविधं विदुः।।७१।।

अन्वयार्थ–(दर्शनमोहोपशमध्वंसक्षयोपशमकारणैः) दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम कारण के द्वारा (भवच्छेदनिदानाद्यं) संसार संतति के छेदने का प्रथम कारण (दर्शनं) सम्यग्दर्शन (त्रिविधं) तीन प्रकार का (विदुः) माना है।

भावार्थ–सम्यक्त्व तीन प्रकार का है उपशमसम्यक्त्व, क्षायिक और क्षायोपशमिक। औपशमिक सम्यक्त्व अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृति के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है। उसको औपशमिक सम्यत्त्व कहते हैं। क्षायिकसम्यत्त्व–जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियों के क्षय से होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। क्षायोपशमिक-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन सर्वघाति प्रकृतियों के वर्तमान काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी का दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व संसार संतति के छेद का कारण है।।७१।।

दर्शने निर्मलावृत्तिर्ज्ञानचारित्रसंपदः।
पदे मुक्तिरमादर्श दर्शनाचार ईरितः।।७२।।

अन्वयवार्थ–(ज्ञानचारित्रसंपदः) ज्ञान, चारित्र रूपी सम्पत्ति के (पदे) स्थान (मुक्तिरमादश) मुक्ति रूपी वनिता का दर्पण (दर्शने) ऐसे सम्यग्दर्शन में (निर्मला) निरतिचार (वृत्तिः) परिणति (दर्शनाचारः) दर्शनाचार (ईरितः) कहा है।

भावार्थ–सम्यग्ज्ञान और चारित्र की सम्पदा का कारण, मुंक्ति रूपी स्त्री के मुख का अवलोकन करने में दर्पण के समान सम्यग्दर्शन में निरतिचार प्रवृत्ति करना दर्शनाचार है। अर्थात निरतिचार सम्यग्दर्शन का पालन करना दर्शनाचार है।।७२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनाचार की महिमा

एतद्देवनरेश्वरामृतपदश्रीवश्यकुद्दर्शनं।
किं चानंतभवान्तकृत्परमतत्प्रोन्मेषपूतात्मनः।
कांतासु त्रिषु भावनादिषु महीषट्के च वंशादिके।
नोत्पत्तिर्विकलेन्द्रियैककरणे बद्धायुषोऽप्यंगिनः।।७३।।

अन्वयार्थ–(देवनरेश्वरामृतपदश्रीवश्यकृद्दर्शनं) इन्द्र, चक्रवर्ती और मुक्ति पद की लक्ष्मी को करने वाला (एतत्) यह (दर्शनं) सम्यग्दर्शन है (किं) विशेष वचन क्या कहें (अनंतभवान्तकृत) अनंत संसार का नाश करने वाला (परमतत्प्रोन्मेषपूतात्मनः) उस सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति से पवित्र है, आत्मा जिसकी ऐसे (अंगिनः) प्राणियों के (बद्धायुषः) वद्धायुष्क होने पर (अपि) भी (कान्तासु) सर्व स्त्रियों और (त्रिषु) तीन (भवनादिषु) भवनवासी आदि में (वंशादिके) वंशादिक (महीषट्के) छह नारकीय पृथ्वियों में (विकलेन्द्रियैककरणे) विकलत्रय और एकेन्द्रिय में (उत्पत्तिः) उत्पत्ति (न) नहीं होती है।

भावार्थ–वद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव, नरक की द्वितीयादि छह पृथ्वियों में, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, देवों में, सर्व प्रकार की स्त्रियों में, एक इन्द्रिय, द्वीइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, पचेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। यदि मिथ्यात्व अवस्था में पूर्व भव की आयु नहीं बांधी हो तो मानव और तिर्यंच तो कल्पवासी देवों में ही उत्पन्न होंगे और देव, नारकी, मानव, पर्याय में ही उत्पन्न होंगे और पर्याय में उत्पन्न नहीं होंगे। जिन्होंने मिथ्यात्व में नरक और तिर्यंच का बंध किया है, वे प्रथम नरक और भोगभूमि तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं उपशम और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाले नहीं होते। इस सम्यग्दर्शन की महिमा कहां तक कहें। एक बार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण भी आत्मा के लिए सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाय, तो यह प्राणी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करता। अनन्त संसार नाशन सम्यग्दर्शन से पवित्रात्मा जीव इन्द्रपद, चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद आदि के संसार सम्बन्धी उत्तमोत्तम इन्द्रिय जन्म सुखों को भोगकर निर्वाण पद प्राप्त करता है।।७३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानं येन समस्तवस्तुविषयं चारित्रमेनोलता।

दात्रं येन पवित्रिताः सुकृतिनो येनाऽस्तु तद्दर्शनम्।।

मच्चेतः शरणप्रकाशनमणियंन्नूत्नचिन्तामणि-

र्भव्यानां यदचिन्तितामितफलैर्नित्यप्रमोदोदयम्।।७४।।

अन्वयार्थ–(येन) जिससे (समस्तवस्तुविषयं) समस्त वस्तु का विषय करने वाला (ज्ञानं) ज्ञान उत्पन्न होता है (येन) जिससे (एनोलतादात्रं) पाप रूपी लता को भेदने के लिए दात्री समान ऐसा (चारित्रं) चारित्र होता है (येन) जिससे (सुकृतिनः) पुण्यात्माओं की (पवित्रता) पवित्रता होती है (यत्) जो (मच्चेतशरणप्रकाशनमणिः) मेरे चित्त रूपी घर को प्रकाशित करने के लिए मणि है (तत्) वह (भव्यानां) भव्यों की (यन्नूत्नचिन्तामणिः) नवीन चिन्तामणि (अचिन्तितार्मितफलै) अचिन्तित अप्रमित फल के द्वारा (नित्यप्रमोदोदयम्) नित्य हर्ष के उदयरूप (अस्तु) हो।

भावार्थ–जिसके होने पर ही समस्त पदार्थों का विषय करने वाला सम्यग्ज्ञान होता है अर्थात् जिसके होने पर ही पांच सम्यग्ज्ञान होते हैं। जिसके होने पर ही सम्यक्चारित्र होता है, जो चारित्र पाप रूपी लता उखाड़ने के लिए कुठार के समान है। जिससे मानव पवित्र और पुण्यात्मा बनता है वह मेरे चित्तरूपी घर को प्रकाशित करने के लिए मणि, भव्य जीवों की नूतन चिंतामणि सम्यग्दर्शन अचिंत्य और अप्रमित फल के द्वारा हमेशा उदित रहे अर्थात् हमेशा अचिंत्य फल को देता रहे।।७४।।

पुष्पदन्तस्वामी स्तुति

श्रियं त्रिलोकीपतिपुष्पदन्तः

पुष्यादनन्तः प्रियमुक्तिकान्त.

दुरंतमिथ्यात्वतमस्तमोरि

जिंनो मनोजद्विरदद्विपारिः।।७५।।

अन्वयार्थ–(प्रियमुक्तिकान्तः) प्यारी मुक्ति रमा के पति (दुरंतमिथ्यात्वतमस्तमोरिः) दुरन्त मिथ्यात्वरूपी अन्धकार के समूह का शत्रु (मनोजद्विरदद्विपारिः) कामरूपी हाथी के लिए सिंह (अनंत) परम ब्रह्म (त्रिलोकीपतिपुष्पदंतः) तीन लोक का पति श्री पुष्पदन्त (जिनः) जिनराज (श्रियं) लक्ष्मी को (पुष्पात्) देवे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–परमसुखदायिनी, मुक्तिरमा के वल्लभ, दुरंतमिथ्यात्वरूपी अन्धकार के नाशक, मनोजरूपी गजराज के शत्रु, तीन लोक के पति, परमब्रह्म परमात्मा, श्री पुष्पदन्त भगवान मेरे लिए अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, और अनन्तवीर्य, रूप अन्तरंग लक्ष्मी तथा समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी प्रदान करें।।७५।।

इति श्रीमद्वीरनंदिसिद्धातिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि शास्त्रे दर्शनाचारवर्णनात्मकस्तृतीयोऽधिकारः।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चतुर्थाधिकारः

अजितनाथ स्तुति

जयत्यनंताप्रतिभप्रबोध
प्रद्योतबिद्योतितबिश्वतत्त्वः।
प्रत्यस्तकर्मोरूतमः प्रतानः
प्रोद्बुद्धभव्याब्जवनोऽजितेनः।।१।।

अन्वयार्थ–(अनंतप्रतिमप्रबोधप्रद्योतविद्योतितविश्वतत्वः) अनंत अप्रमित बोध के प्रकाश से प्रकाशित किया है विश्व के तत्व को जिसने (प्रत्यस्तकर्मोरुतमः प्रतानः) नष्ट कर दिया है कर्मरूपी महान अन्धकार के समूह को जिसने (प्रोद्बुद्धभव्याब्जवनः) प्रबुद्ध किया है भव्यरूपी कमलवन को जिसने ऐसे (अजितेनः) अजितनाथ भगवान रूपी सूर्य (जयति) जयवन्त रहे।

भावार्थ–अप्रमित, अनन्त, केवलज्ञानरूपी किरणों के द्वारा तीन जगत के प्रकाशक, ज्ञानवारणी आदि कर्म रूपी महा अन्धकार के भेदक, भव्य कमलवन के प्रबोधक, श्री अजितनाथ भगवान रूपी सूर्य जयवंत रहे।।१।।

ज्ञान का लक्षण

जानाति ज्ञास्यत्यज्ञासौदनेन "ज्ञ" इति स्मृतम्।
ज्ञानं स्यान्नूतनात्मार्थव्यवसायनिराकृतिः।।२।।

अन्वयार्थ–(अनेन) इससे (जानाति) जानता है (ज्ञास्यति) जानेगा (अज्ञासीत्) जाना था (इति) इस प्रकार जिसे (ज्ञ) ज्ञाता (स्मृतं) माना है (नूतनात्मार्थव्यवसायनिराकृतिः) नवीन आत्मार्थ के व्यवसाय का निराकरण करने वाला (ज्ञानं) वह ज्ञान (स्यात्) है।

भावार्थ–इसके द्वारा वर्तमान में जानता है, भविष्यत्काल में जानेगा और भूतकाल में जाना था इसलिए "ज्ञ" कहा जाता है। वह नूतन आत्मार्थ के व्यवसाय का निराकरण करने वाला ज्ञान कहलाता है।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञेयं हि वस्तु सामान्यविशेषात्मकमत्र यत्।
सामान्यमूर्ध्वता तिर्यक् चेति भेदव्यं मतम्।।३।।

अन्वयार्थ–(अब) इस लोक में (हि) निश्चय से (ज्ञेयं) ज्ञेय (वस्तु) वस्तु (सामान्यविशेषात्मकं) सामान्य विशेषात्मक है। (यत्) जो (सामान्यं) सामान्य है। (तत्) वह (उर्ध्वता) उर्ध्वता (च) और (तिर्यक) तिर्यक् (इति) इस प्रकार (भेदद्वयं) दो भेद रूप (मतं) माना है।

भावार्थ–इस लोक में ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। उसमें उर्ध्वतासामान्य और तिर्यंग सामान्य, ये सामान्य के दो भेद हैं।।३।।

उर्ध्वता सामान्य का लक्षण

यत्परापरपर्यायव्यापि द्रव्यं तदूर्ध्वता।
मृद्यथा स्थासकोशादि विवर्तपरिवर्तिनौ।।४।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (परापरपर्यायव्यापि) परापरपर्यायव्यापि (द्रव्यं) द्रव्य है (तत्) वह (उर्ध्वता) उर्ध्वता सामान्य है। (यथा) जैसे (स्थासकोशादिविवर्तपरिवर्तिनी) स्थास, कोश आदि पर्यायों में परिवर्तन होने वाली (मृत्) मिट्टी।

भावार्थ–पूर्व और उत्तर पर्याय में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं जैसे स्थास और कुशूल आदि पर्यायों में मिट्टी रहती है। यहाँ यह मिट्टी ही ऊर्ध्वता सामान्य मानी जावेगी।।४।।

तिर्यग्सामान्य का लक्षण

परिणामः समस्तिर्यग् खंडमुंडादिगोषु वा।
गोत्वं विशेषः पर्यायव्यतिरेकद्विभेदवान्।।५।।

अन्वयार्थ–(समः) समान (वा) अथवा (परिणामः) परिणाम (तिर्यंग्) तिर्यक् सामान्य है जैसे (खंडमुंडादिगोषु) खंडी मुंडी आदि गायों में (गोत्वं) गायपना है (पर्यायव्यतिरेकद्विभेदर्यवान्) पर्याय और व्यतिरेक से दो भेद वाला (विशेषः) विशेष है।

भावार्थ–समान परिणमन को तिर्यक्सामान्य कहते हैं जैसे–खंडी, मुण्डी और काली आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गायों में गोत्व सदृशपरिणमन है। सब गायों का परिणमन समान होता है इसलिए सब ही को गोशब्द से व्यवहृत करते हैं। यहाँ गोत्व का अर्थ सदृश परिणामं लिया है और वह प्रत्येक गाय में भिन्नता से रहता है। व्यक्तियों के समान ही संख्या वाला है परन्तु एक नहीं है। विशेष के दो भेद हैं, एक पर्याय और दूसरा व्यतिरेक।।५।।

विशेष के भेद

एकस्य वस्तुनो भाषाः पर्यायाः क्रमभाविनः।

तोषरोषादयो भावा जीवे वा क्रमभाविनः।।६।।

अन्वयार्थ–(एकस्य) एक (वस्तुनः) वस्तु के (क्रमभाविनः) क्रम क्रम से होने वाले (भावः) भाव (पर्यायाः) पर्याय हैं (वा) जैसे (जीवे) जीव में (क्रमभाविनः) क्रम से होने वाले (तोषरोषादयः) तोष रोषादि (भावाः) भाव हैं।

भावार्थ–एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं जैसे–आत्मा में हर्ष, विषाद।।६।।

व्यतिरेको भवेद्भावो वस्त्वंतरगतोऽसमः।

गोमहिष्यादिभावो यो यथा तद्व्यतिरेचकः।।७।।

अन्वयार्थ–(वस्त्वंतरगतः) दूसरी वस्तु के अन्तर्गत (असमः) असमान (भावः) भाव (व्यतिरेकः) व्यतिरेक (भवेत्) होता है (यथा) जैसे (तद्व्यतिरेचकः) उनसे व्यतिरिक्त (गोमहिष्यादिभावः) गौ, भैंस आदि भाव।

भावार्थ–एक पदार्थ की अपेक्षा दूसरे पदार्थ में रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं जैसे गौ से महिष (भैंसा) में एक विलक्षण (भिन्न) ही परिणमन होता है।।७।।

ज्ञान के भेद

ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनपर्ययकेवलैः।

भिन्नहेतुस्वरूपार्थै भेदैः पंचविधं च तत्।।८।।

अन्वयार्थ–(भिन्नहेतुस्वरूपार्थैः) भिन्न हेतु, भिन्न स्वरूप और भिन्न अर्थ वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मतिश्रुतावधिमनपर्ययकेवलैः) मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल (भेदैः) भेदों से (तत्) वह (ज्ञानं) (पंचविधें) पाँच प्रकार का है।

भावार्थ–स्वरूप, कारण और प्रयोजन भिन्न-भिन्न होने से ज्ञान के भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच भेद हैं।।८।।

मतिज्ञान का लक्षण व भेद

स्वस्यार्थंव्यंजनावग्रहेहनाऽवायधारणाः।

मननं मतिरर्थस्य यत्तदिन्द्रियमानसैः।।९।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (इन्द्रियमानसैः) इन्द्रिय और मन के द्वारा (स्वस्य अर्थस्य) अपने पदार्थों का (मननं) मनन किया जाता है (तत्) वह मतिज्ञान (अर्थव्यंजनावग्रहेहनावायधारणाः) अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह ईहा, अवाय, धारणा है।

भावार्थ–मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाध, धारणा के भेद से चार प्रकार का है। अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह के भेद से अवग्रह दो प्रकार का है। ईहा, अवाय, धारणा केवल अर्थ की होती है। इन्द्रिय और मन के द्वारा स्व पदार्थों का मनन किया जाता है वह मति है मतिज्ञान स्वार्थ है। इसलिए इसे स्वार्थ कहा है।।९।।

व्यंजनावग्रहश्चक्षुर्मनसोर्नास्त्यषग्रहः।

विषयाक्षसन्निपातानंतराद्यग्रहः स्मृतः।।१०।।

अन्वयार्थ–(चक्षुर्मनसः) चक्षु और मन के (व्यंजनाषग्रहा) व्यंजनावग्रह (नास्ति) नहीं है (विषयाक्षसन्निपातानंतराद्यग्रहः) पदार्थ और इन्द्रियों के सन्निपातानन्तर आदि ग्रहण (अवग्रहः) अवग्रह (स्मृतः) माना गया है।

भावार्थ–विषय विषयी के सन्निपातानन्तर वस्तु का जो सामान्य अवलोकन रूप दर्शन होता है उसमें घंट पटादि प्रतिभासित नहीं होते हैं। दर्शन के बाद कुछ वस्तु है ऐसा जो ज्ञान होता है उसे अवग्रह ज्ञान कहते हैं। अवग्रह दो प्रकार का है। व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह। अन्य के अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते हैं।।१०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ताप्राप्तार्थबोर्वोधोवग्रहो व्यंजनार्थयोः।

रसरूपपरिज्ञाने रसनानेत्रयोर्यथा।।११।।

अन्वयार्थ–(व्यंजनार्थयोः) व्यंजन और अर्थ में (प्राप्ताप्राप्तार्थबोधः) प्राप्तअर्थ और अप्राप्तअर्थ का ज्ञान (अवग्रहः) अवग्रह है (यथा) जैसे (रसनानेत्रयोः) रसना और नेत्र के (रसरूपपरिज्ञाने) रस और रूप का परिज्ञान।

भावार्थ–व्यंजना प्राप्त अर्थ का बोधक है और अर्थावग्रह प्राप्त अर्थ और अप्राप्त अर्थ में भी होता है। क्योंकि अर्थावग्रह पाँचों इन्द्रिय और मन में होता है और चक्षु मन अप्राप्त अर्थ ग्राहक हैं। तथा शेष चार इन्द्रिय प्राप्तार्थ ग्राहक हैं, इसलिए अर्थावग्रह प्राप्ताप्राप्त अर्थ ग्राहक है और व्यंजनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता है इसलिए प्राप्तार्थ ग्राहक है।।११।।

अवग्रहगृहीतार्थविशेषे हीहनं मतम्।

संशयांशविनाशोद्यन्निर्णयावयवं यथा।।१२।।

नरस्यावगृहीतस्य कर्णाटादिविशेषणैः।

भवितव्यमनेनेति विज्ञानं निर्णयावधिः।।१३।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(हि) निश्चय से (अवग्रहगृहीतार्थविशेषे) अवग्रह से गृहीतार्थ को विशेष जानने में (ईहनं) प्रयत्न होना (मतम्) ईहा ज्ञान है (संशयांशविनाशोद्यन्निर्णयावयवं) यह संशय के अर्थ का निरसन करने के लिए प्रयत्न तथा निर्णय अवयव है। (यथा) जैसे (अवग्रहीतस्य) अवग्रही (नरस्य) मानव के (कर्णाटादि विशेषणैः) कर्णाटक भाषा आदि विशेषण द्वारा (अनेन) इसे ऐसा (भवितव्यं) होना चाहिए (इति) इस प्रकार (निणयावधिः) निर्णय पर्यन्त (ज्ञानं) ज्ञान ईहा है।

भावार्थ–जाने हुए अर्थ को विशेषण से जानने की इच्छा के बाद "ऐसा होना चाहिये" इस प्रकार भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञान को ईहा कहते हैं। जैसे अवग्रहीत मानव को कर्णाटक आदि भाषा के द्वारा कि यह दक्षिण का मानव होना चाहिए यह निर्णय होता है।।१२-१३।।

ईहितार्थस्थलिंगैर्यस्तद्विशेषविनिश्चयः।

अषायो लाट एवायमिति भाषादिभिर्यता।।१४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ईहितार्थस्थलिंगैः) ईहतार्थस्थ लिंगों के द्वारा (यः) जो (तद्विशेषनिश्चयः) उसका विशेष निर्णय होता है वह (अवायः) अवाय है (यथा) जैसे (भाषादिभिः) भाषादि के द्वारा (अयं) यह (लाट एव) लाट देश का ही है (इति) ऐसा निश्चय होता है।

भावार्थ–ईहा से जाने हुए पदार्थों का भाषादि के द्वारा निर्णय कर लेना अवाय है जैसे किसी मानव को देखकर ऐसी शंका उत्पन्न हुई थी कि यह कहाँ का है, दक्षिण का था या उत्तर देश का। तब उसकी भाषा वेश भूषाओं द्वारा निश्चय होता है कि यह लाट देश का ही है इस निर्णय को अवाय ज्ञान कहते हैं।।१४।।

कालान्तरे परिज्ञातवस्तुस्मरणकारकः।

संस्कारों यस्तदुत्पत्तिकारणं धारणाह्वयम् ।।१५।।

अन्वयार्थ–(कालान्तरे) कालान्तर में (परिज्ञातवस्तुस्मरणकारकः) परिज्ञात वस्तु के स्मरण का कारक (यः) जो (संस्कार) संस्कार है (तदुत्पत्तिकारणं) उस संस्कार के उत्पत्ति का कारण (धारणाद्वयं) धारणा नामक ज्ञान है।

भावार्थ–अवाय के द्वारा निर्णीत वस्तु के कालान्तर में स्मृति का कारण धारणा नामक ज्ञान है। इसी ज्ञान के बल पर ज्ञान के द्वारा गृहीत वस्तु का कालान्तर में स्मरण होता है। स्मृति ज्ञान का मूल भूत ज्ञान धारणा है।।१५।।

ते बहुबहुविधक्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः।

प्रत्येकं सेतराश्चेति द्वादशावग्रहादयः।।१६।।

अन्वयार्थ–(बहुबहुविधक्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव (च) और (प्रत्येकं) प्रत्येक (सेतराः) इतर सहित (इति) इस प्रकार (ते) वे (अवग्रहादयः) अवग्रहादि (द्वादश) बारह प्रकार के हैं।

भावार्थ–बहु, बहुबिध, क्षिप्र, अनिः सृत, अनुक्त, और ध्रुव तथा इनसे उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव व इन बारह प्रकार के अर्थों का अवग्रह आदि ज्ञान होता है।।१६।।

बह्वेकव्यक्तिविज्ञानं बह्वेकं च क्रमाद्यथा।

बहवस्तरवः सूपो बहुश्चैकं बनं नरः।।१७।।

अन्वयार्थ–(क्रमात्) क्रम से (बह्वेक व्यक्तिविज्ञानं) बहु, एक, व्यक्ति ज्ञान (बह्वेकं) बहु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ज्ञान है (यथा) जैसे (बहवः) बहुत से (तरवः) वृक्ष (बहुः) बहुत (सूपः) दाल (च) और (एकं) एक (बनं) वन (नरः) एक मानव।

भावार्थ–एक ही प्रकार के बहुत पदार्थों का नाम बहु है। वह बहु शब्द संख्या और परिमाण को बताता है जैसे–बहुत से वृक्ष इस वाक्य में बहु शब्द दो से अधिक संख्या को बतलाता है और बहुत सूप "यह बहु शब्द परिमाण बाची है, एक शब्द भी परिमाण और संख्यावाची है, जैसे "एकं" "वनं" इसमें एक वचन संख्यावाची है और 'नर' यह परिमाण वाची है।।१७।।

बहे वकजातिविज्ञानं स्याद्बहवेकविधं यथा।
वर्णा नृणां बहुविधा गौर्जात्यैकविधेति च।।१८।।

अन्वयार्थ–(बह्वेकजातिविज्ञानं) बहु एक जाति विज्ञान (बह्वेकविधं) बहु एक विध है (यथा) जैसे (नृणां) मनुष्यों के (वर्णाः) वर्ण (बहुविधाः) बहुत प्रकार के हैं (च) और (गौः) गाय (जात्या) जाति से (एकविधा) एक प्रकार (इति) की है।

भावार्थ–बहु जाति के विज्ञान को बहुवधि कहते हैं। जैसे मनुष्यों के बहुत से वर्ण हैं और एक प्रकार के जाति के विज्ञान को एकविध कहते हैं जैसे गौ जाति एक प्रकार है।।१८।।

आश्वर्थस्य ग्रहः क्षिप्रं स्यादक्षिप्रं शनैर्ग्रहः।
मृत्पात्रं यद्वदादत्ते नूत्नं चानूतनं जलम्।।१९।।

अन्वयार्थ–(अर्थस्य) अर्थ का (आशु) शीघ्र (ग्रहः) ग्रहण होना (क्षिप्रं) क्षिप्र (स्यात्) है (शनैः) धीरे धीरे (ग्रहः) ग्रहण (अक्षिप्रं) अक्षिप है (यद्वत्) जैसे (नूत्नं) नवीन (मृत्पात्रं) मिट्टी का घड़ा (जलं) जल को शीघ्र (आदत्ते) ग्रहण करता है (च) और (अनूतनं) पुराना (मृत्पात्रं) मिट्टी का घड़ा (शनैः) धीरे-धीरे ग्रहण करता है।

भावार्थ–जो पदार्थों को शीघ्र ग्रहण करता है वह क्षिप्रज्ञान है। जैसे नवीन घट पानी शीघ्र ग्रहण करता है। नवीन के घट के पानी को शीघ्र शोषण करने की शक्ति है अर्थात् जो वस्तु को शीघ्र ग्रहण करता है वह क्षिप्र ज्ञान है। जो ज्ञान वस्तु को धीरे-धीरे ग्रहण करता है वह अक्षिप्त ज्ञान है, जैसे पुरातन घट पानी को धीरे-धीरे ग्रहण करता है।।१९।।

वस्त्वंशाद्वस्तुनस्तस्य वस्त्वंशाद्वस्तुनोऽथवा।
तत्रासन्निहितान्यस्याऽनिसृतं मननं यथा।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घटार्वाग्भागकन्यास्यगवग्रहणक्षणे।

स्फुटं घटेन्दुगोज्ञानमभ्याससमयान्विते।।२१।।

DeJeÛsLe& (वस्त्वंशात्) वस्तु के एक अंश के देखने से (तस्य) उस (वस्तुनः) वस्तु का (अथवा) अथवा (वस्त्वंशात्) वस्तु के अंश से (वा) वा (वस्तुनः) पूर्ण वस्तु के देखने से (तत्र) वहाँ पर (असन्निहितान्यस्य) असन्निहित दूसरी वस्तु का (मननं) ज्ञान (अनिसृतं) अनिसृत है (यथा) जैसे (घटार्वाग्भागकन्यास्यगवयग्रहणक्षणे) घट के एक भाग, कन्या का मुख तथा गवय को देखकर पुनः उसी समय ग्रहण काल में (स्कुटं) स्पष्ट (घटेंदुगोज्ञानं) घट, चन्द्रमा और गाय का ज्ञान होना।

भावार्थ—वस्तु के एक देश को देखकर समस्त वस्ता का ज्ञान होना अथवा वस्तु के एक देश या पूर्ण वस्तु का ग्रहण करके उसके निमित्त से किसी दूसरी वस्तु के होने वाले ज्ञान को भी अनिसृत कहते हैं।

जैसे घट के एक भाग को देखकर पूर्ण घट का ज्ञान होना अथवा किसी कन्या के मुख को देखकर उस ही समय उससे भिन्न किन्तु उसके सदृश चन्द्रमा का ज्ञान होना, अथवा गवंय को देखकर उसके सदृश गौ का ज्ञान होता है इनको अनिसृत ज्ञान कहते हैं।।२०-२१।।

वस्त्वेकदेशमात्रस्य विज्ञानं निसृतं मतम्।

घटार्वाग्भागमात्रेऽपि क्वचिज्ज्ञानं हि दृश्यते।

अन्वयार्थ—(वस्त्वेकदेशमात्रस्य) वस्तु के एक देश मात्र (ज्ञानं) ज्ञान को (निसृतं) निसृत (मतम्) माना है (हि) क्योंकि (घटार्वाग्भागमात्रे) घट के संमुख के भाग मात्र में (अपि) भी (क्वचित्) कहीं (ज्ञानं) ज्ञान (दृश्यते) देखा जाता है।

भावार्थ—वस्तु के एक देशमात्र का ज्ञान होना, अर्थात् प्रकट पदार्थों का होना निसृत है जैसे घट के एक भाषा को देखकर एक भाग का ज्ञान होना।।२२।।

प्रत्यक्षनियताऽन्यादृग्गुणार्थैकाक्षबोधनम्।

अनुक्तमेकदैवोक्तं प्रत्यक्षनियतग्रहः।।२३।।

चक्षुषा दीपरूपावलोकाबसर एव यत्।

तदुष्णस्पर्शविज्ञानं यथोक्तार्थः प्ररुप्यते।।२४।।

अन्वयार्थ—(एकदा) एक काल में (एव) ही (प्रत्यनियतग्रहः) प्रत्यक्षनियत ग्रह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रत्यक्षनियतान्यादृग्गुणार्थैकाक्षबोधनं) प्रत्यक्षनियत अन्य के सदृश गुणों के अर्थ का इन्द्रियज्ञान (अनुक्तं) अनुक्त (उक्तं) कहा है (यथा) जैसे (चक्षुषा) चक्षु के द्वारा (रूपावलोकावसरे) रूप के देखने के समय में (एव) ही (यत्) जो (तदुष्णस्पर्शविज्ञानं) उसके उष्णता के स्पर्श का विज्ञान होता है। (उक्तार्थः) अब उत्कार्थ का (प्ररूप्यते) निरूपण किया जाता है।

भावार्थ–प्रत्यक्ष नियत अन्य के सदृश गुणों के अर्थ का इन्द्रिय ज्ञान है वह प्रत्यक्ष नियतग्रह अनुक्त है। जैसे चक्षु के द्वारा दीपक के रूप के अवलोकन के समय में जो उस दीप के उष्ण स्पर्श का विज्ञान होता है वह अनुक्त है, अर्थात् किसी वस्तु को देखकर दूसरे के कहे बिना इशारे मात्र से ज्ञान हो जाना, अथवा प्रत्यक्ष इन्द्रियों के विषय का जो स्वयमेव ज्ञान होता है वह अनुक्त है। आगे उक्तार्थ का प्ररूपण करते हैं॥२३-२४॥

स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनश्च खम्।

अर्थः स्पर्शा रसो गंधा रूपं शब्दः श्रुतादयः॥२५॥

अन्वयार्थ–(स्पर्शनं) स्पर्श (रसनं) रसना (घ्राणं) घ्राण (चक्षुः) चक्षु (श्रोत्रं) कर्ण (च) और (मनः) मन (एवं) ये इन्द्रियाँ हैं और (स्पर्शाः) स्पर्श (रसः) रस (गंधाः) गंध (रूपं) रूप (शब्दः) शब्द और (श्रुतादयः) श्रुतादि (अर्थः) इनके विषय है।

भावार्थ–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण और मन का विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द और श्रुत है। अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। रसना इन्द्रिय का विषय रस है। घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध है। चक्षुइन्द्रिय का विषय वर्ण है और कर्णइन्द्रिय का विषय शब्द है मन का विषय श्रुत है, उसमें पाँचों इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने विषय में अपने आप होती है वह अनुक्त है और जो दूसरे के कहने पर विषयो में प्रवृत्ति होती है वह उक्त है॥२५॥

स्यान्नित्यत्वविशिष्टस्य स्तंभादेर्ग्रहणं ध्रुवः।

विद्युदादेरनित्यत्वेनान्वितस्याध्रुवो ग्रहः॥२६॥

अन्वयार्थ–(नित्यत्वविशिष्टस्य) नित्यत्व से विशिष्ट (स्तंभादेः) स्तंभादिका (ग्रहणं) ग्रहण (ध्रुवं) ध्रुव है। (अनित्यत्वेन) अनित्यत्व से (अन्वितस्य) अन्वित (विद्युदादेः) विद्युत आदि का (अध्रूवं) अध्रुव (ग्रहः) ग्रहण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–नित्यत्व से विशिष्ट स्तंभादि का ग्रहण ध्रुव ज्ञान है और अनित्यत्व से अन्वित विद्युत आदि का ज्ञान अध्रुव ज्ञान है।।२६।।

लब्धिः सदोपयोगश्च स्याद्भावेन्द्रियमात्मनः।
निवृत्युपकरणे द्वे स्तो द्रव्येन्द्रियमत्र तु।।२७।।

अन्वयार्थ–(आत्मनः) आत्मा की (सदा) सदाकाल रहने वाली (लब्धिः) लब्धि (च) और (उपयोगः) उपयोग (भावेन्द्रियं) भावेन्द्रिय (स्यात्) है। (तु) और (अत्र) आत्मा में (निवृत्युपकरणे) निवृत्ति और उपकरण (द्वे) ये दोनों (द्रव्येन्द्रियं) द्रव्येन्द्रिय (स्तः) है।

भावार्थ–निवृति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इनमें से प्रत्येक के अभ्यन्तर और बाह्य के भेद से दो भेद हैं। लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं। आत्मा में ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अर्थ ग्रहण करने की शक्ति का नाम लब्धि है और तज्जन्य व्यापार का नाम उपयोग है।।२७।।

चित्रार्धेंद्वतिमुक्तकमसूरियवनालिकाः।
अनुकुर्वती च वाह्या निबृतिः स्पर्शनादिषु।।२८।।

अन्वयार्थ–(स्पर्शनादिषु) स्पर्शनादि इन्द्रियों में (अनुकुर्वती) अनुकरण करने वाली (चित्रार्धेंद्वतिमुक्तकम सूरियवनालिकाः) चित्र, अर्ध इन्दु, अतिमुक्तक, मसूरिका, यवनालिका (बाह्याः) बाह्य (निवृत्तिः) निवृत्ति है।

भावार्थ–स्पर्शन इन्द्रिय अनेक प्रकार की है, रसना अर्धचन्द्रमा के समान है, घ्राण इन्द्रिय अतिमुक्तक (तिल के पुष्प) के समान, चक्षुइन्द्रिय मसूरिका के दाने के समान और कर्णइन्द्रिवनालिका के समान है। यह इन्द्रियों की बाह्य निवृत्ति आकार है।।२८।।

चतुः शतानि चापानां चपः षष्टिः शतं क्रमात्।
योजनत्रिसहस्राणि षट्चत्वारिंशता विना।।२९।।
धनुरष्टसहस्राणि क्षेत्रात्मा द्विगुणो वरः।
एकेन्द्रियाद्यसंज्ञ्यन्ते विषयः स्पर्शनादिषु।।३०।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(एकेन्द्रियाद्यसंज्ञ्यन्ते) एकेन्द्रियादि से लेकर असंज्ञि पर्यंत (स्पर्शनादिषु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पर्शनादि का (विषयः) विषय (क्रमात) क्रम से (चापानां) धनुष का (चक्षुःशतानि) चार सौ (चतुःषष्टिः) चौसठ धनुष (शतं) सौ धनुष (षट्चत्वारिंशता) छियालीस के (विना) बिना (योजनत्रिसहस्राणि) तीन हजार योजन (अष्टसहस्राणि) आठ हजार (धनुः) धनुष है (वरः) उत्कृष्ट (क्षेत्रात्मा) क्षेत्र (द्विगुणः) दुगुणा दुगुणा है।।२९-३०।।

योजनानि त्रिषु नव श्रेष्ठोंऽकस्थानकक्रमात्।

त्रिषट् द्विसप्तचत्वारि चासौ द्वादश संज्ञिषु।।३१।।

अन्वयार्थ–(संज्ञिषु) संज्ञी जीवों में (असौ) यह (अंकस्थानक्रमात्) अंकस्थान क्रम से (त्रिषु) तीन इन्द्रियों में (नव) नौ नौ योजन (च) (त्रिषट्द्विसप्तचत्वारि) तीन, छह, दो, सात और चार $47263\frac{7}{20}$ योजन (द्वादश) बारह (योजनानि) योजन (श्रेष्ठः) उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ–एकेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चार सौ धनुष है और द्वीन्द्रियादि के वह दूना-दूना होता गया है। अर्थात् द्वीन्द्रिय के आठ सौ, त्रीन्द्रिय के सोलह सौ, चतुरिन्द्रिय के बत्तीस सौ असंज्ञीपचेन्द्रिय के चौसठ सौ धनुष स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र है। द्वीन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चौसठ धनुष है और वह भी त्रीन्द्रियादिक के स्पर्शनेन्द्रिय के विषय क्षेत्र की तरह दूना-दूना होता गया है। अर्थात् त्रीन्द्रिय के १२८ चतुरिन्द्रिय के २५६ और असंज्ञीपंचेन्द्रिय के रसना का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ५१२ धनुष प्रमाण है। इसी प्रकार घ्राण, चक्षु और श्रोत्र का विषय क्षेत्र भी समझ लेना चाहिए। अर्थात् घ्राणेन्द्रिय का विषय क्षेत्र त्रीन्द्रिय के १००, चतुरिन्द्रिय के २०० और असंज्ञीपंचेन्द्रिय के ४०० धनुष प्रमाण है। चक्षुरिन्द्रिय का विषय क्षेत्र चतुरिन्द्रिय के २९५४ और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के ५९०८ योजन है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के श्रोत्र का विषय ८००० धनुष है।

संज्ञी जीव के स्पर्शन, रसना घ्राण इन तीन इन्द्रियों में से विषयभूत क्षेत्र नौ-नौ योजन है और श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र बारह योजन है। तथा चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है। एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्यंत जीवों के पाई जाने वाली इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कितना है, तथा प्रत्येक इन्द्रिय का नियत विषय, उसको ग्रहण करने की योग्यता तथा उनका आकार किस प्रकार का है यह आगे दिये गये यन्त्र द्वारा जाना जा सकता है।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकेन्द्रिय आदि जीवों के पाई जाने वाली इन्द्रियों के उत्कृष्ट विषयादि का दर्शक यन्त्र

इन्द्रिय	एकेन्द्रिय धनुष वि. से.	द्वीन्द्रिय धनुष वि.क्षे.	त्रीन्द्रिय धनुष वि. क्षे.	चतुरिन्द्रिय		असं. बि. धनुष	पं. क्षे. योजन	सं. पंचे योजन वि. क्षे.	विषय	योग्यता	आकृति
				धनुष वि.	योजन क्षे.						
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	९	८ प्रकार का स्पर्श	अबद्ध स्पष्ट	अनेक अनियत
रसना	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	९	५ विध रस	,,	खुरपा
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	९	द्विविध गंध	,,	तिलपुष्प
चक्षु	०	०	०	०	२९५४	०	५९०८	$47263\frac{7}{20}$	पंच प्रकार रूप	अस्पृष्ट	मसूर अन्न
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२	शब्द तथा ७ स्वर	स्पृष्ट	यवनाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थूलवाग्गोचरानंतरार्थस्प स्थायिनश्चिरम्।

प्रत्यक्षं नियतस्यैतद्बोधाभिनिबोधनम् ।।३२।।

अन्वयार्थ–(स्थायिनः) स्थायी (नियतस्य) नियत (स्थूलवाग्गोचरानंतरार्थस्य) स्थूल वचन के गोचर, अनन्तर अर्थ का (बोधात्) ज्ञान होने से (एतत्) यह (अभिनिबोधनं) अभिनिबोध होता है।

भावार्थ–स्थूल, वर्त्तमान, योग्य क्षेत्र में अवस्थित पदार्थं को अभिमुख कहते हैं। अथवा स्थायी, नियत, स्थूल, वचनगोचर, अनन्तर अर्थ के बोध को अभिनिबोध कहते हैं। मन और इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न अभिमुख और नियमित पदार्थ के ज्ञान को अभिनिबोधक ज्ञान कहते हैं।।३२।।

स्पर्शनादिमतिज्ञानावृत्तिवीर्यान्तराययो।

क्षयोपशमजं नाना भेदमेतदुदाहृतम्।।३३।।

अन्वयार्थ–(स्पर्शनादिमतिज्ञानावृत्तिवीर्यान्तराययोः) स्पर्शनादि मतिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के (क्षयोपशमजं) क्षयोपशम से उत्पन्न (एतत्) यह ज्ञान (नाना) नाना (भेदं) भेद रूप (उदाहृतं) कहा गया है।

भावार्थ–स्पर्शनादि मतिज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न मतिज्ञान अनेक प्रकार का है।।३३।।

श्रुतज्ञान का लक्षण व भेद

श्रुतं मतिगृहीतार्थशब्दैरन्यार्थबोधनम्।

धूमादेः पापकादेर्वा बोधोऽग्नेरग्निशब्दतः।।३४।।

अन्वयार्थ–(मतिगृहीतार्थशब्दैः) मतिज्ञान के द्वारा गृहीत अर्थ शब्दों के द्वारा (अन्यार्थबोधनम्) अन्य अर्थ का ज्ञान होना (श्रुतं) श्रुतज्ञान है। (वा) अथवा (धूमादेः) धूमादि से (पावकादेः) अग्नि आदिक (वा) अथवा (अग्नि शब्दतः) अग्नि शब्द से (अग्नेः) अग्नि का (बोधः) ज्ञान श्रुतज्ञान है।

भावार्थ–मतिज्ञान के द्वारा गृहीतार्थ शब्दों से अन्य पदार्थ का ज्ञान होना श्रुतज्ञान है। जैसे धूँएं को देखकर अग्नि का ज्ञान वा अग्नि शब्द से अग्नि का ज्ञान होता है। अथवा मतिज्ञान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान के द्वारा जाने हुये पदार्थ का अवलम्बन लेकर उससे भिन्न ही अर्थ का श्रुतज्ञान विषय करता है।।३४।।

तत्पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिका।

अनुयोगः प्राभृतप्राभृतं च प्राभृतं क्रमात्।।३५।।

वस्तुपूर्व समासाश्चामीषामिति समन्वितम्।

श्रुतं विकल्पविंशत्या स्वान्तस्थान्यविकल्पया।।३६।।[1]

अन्वयार्थ–(तत्) वह श्रुतज्ञान (क्रमात्) क्रम से (पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिका) पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिका (अनुयोगः) अनुयोग (प्राभृतप्राभृतं) प्राभृतप्राभृत (च) और (प्राभृतं) प्राभृत (वस्तुपूर्वैः) वस्तु पूर्व (अभीषां) इनके (समासाः) समास (इति) इस प्रकार (श्रुतं) श्रुत (स्वांतस्थान्यविकल्पया) स्वान्तस्थ अन्य विकल्प से (विकल्पविंशत्या) विकल्प विशंति से (समन्वितं) युक्त है।

भावार्थ–वह श्रुतज्ञान क्रम से, पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्वसमास, इन २० भेद वाला है।।३५-३६।।

श्रुतावरणवीर्यान्तरायमन्दोदयाच्छ्रुतम्

स्यादसंख्यजगन्मात्रं पर्यायादिप्रभेदतः।।३७।।

अन्वयार्थ–(श्रुतावरणवीर्यान्तरायभन्दोदयात्) श्रुतज्ञानावरणीय और वीर्यान्तराय के मन्दोदय, से (पर्यायादिप्रभेदतः) पर्याय आदि के भेद से (श्रुतं) श्रुतज्ञान (असंख्यजगन्मात्रं) असंख्यात लोकप्रमाण है।

भावार्थ–श्रुतज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के मन्दोदय के श्रुतज्ञान होता है और उस श्रुतज्ञान के अवान्तर भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं।।३७।।

---

१. पर्यायादीनां विंशतिभेदेन स्वस्वान्तः स्थिता अपरभेदा यस्याः सा तया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिज्ञान का लक्षण व भेद

मूर्तमर्थं मितं क्षेत्रकालभावेरवस्फुटम्।
मितैर्दधात्यवधिर्बोधो भवगुणोद्भवः।।३८।।

अन्वयार्थ–(मितैः) प्रमित (क्षेत्रकालभावैः) क्षेत्र, काल, भाव के द्वारा (मितं) प्रमित (मूर्त) मूर्त (अर्थ) अर्थ को (अवस्फुटं) स्फुट रूप से (दधाति) धारण करता है, जानता है यह (अवधिः) अवधि (बोधः) ज्ञान (भवगुणोद्भवः) भव प्रत्यय और गुण प्रत्यय दो रूप है।

भावार्थ–जो प्रमित (मर्यादित) द्रव्यक्षेत्रकालभाव से प्रमित मूर्तिक पदार्थ को स्फुट (प्रत्यक्ष) जानता है। उसको अवधिज्ञान कहते हैं और उस अवधिज्ञान के दो भेद हैं। गुणप्रत्यय अवधि और भवप्रत्यय अवधि।।३८।।

सुरनारकपर्याप्तभवजः प्रथमोऽपरः।
मर्त्यतिर्यक्षु सम्यक्त्वगुणादीनां विशेषजः।।३९।।

अन्वयार्थ–(सुरनारकपर्याप्तभवजः) देवनारकियों के पर्याप्त पूर्ण होने के बाद भव से उत्पन्न होने वाला अवधि (प्रथमः) भवप्रत्यय है। (मर्त्यतिर्यक्षु) मनुष्य और तिर्यंचों में (सम्यक्त्वगुणादीनां) सम्यक्त्वाद्वि गुणों के (विशेषजः) विशेष से उत्पन्न होने वाला अवधि (अपरः) गुणप्रत्यय है।

भावार्थ–देव नारकियों के अवधि भवप्रत्यय है, क्योंकि उसमें देव नारकी का भव कारण है। यद्यपि देव नारकियों में भी अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही अवधिज्ञान होता है तथापि उसमें भव विशेष कारण है। उस भव में नियम से अवधिज्ञान होता है। मनुष्य और तिर्यचों में सम्यक्त्वादि गुणों के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान गृणप्रत्यय है और उसमें गुणों की प्रधानता ही मुख्य कारण है।।३९।।

स्याद्देशपरमसर्वावधिभेदत्रयोऽवधिः।
सामान्यस्तत्र देशावधिः स्याद्गुणभवोद्भवः।।४०।।

अन्वयार्थ–(देशपरमसर्वावधिभेदत्रयः) देशावधि, परमावधि, सर्वाविधि के भेद से तीन प्रकार का (अवधिः) अवधिज्ञान (स्यात्) होता है। (तत्र) उनमें (सामान्यः) सामान्य (गुणभवोद्भवः) गुण और भव से उत्पन्न (देशावधिः) देशावधि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–देशावधि, परमावधि और सर्वावधि के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। उसमें सामान्यतः गुणप्रत्यय और भवप्रत्यय अवधि देशावधि है अर्थात् भवप्रत्यय अवधिज्ञान तो देशावधि ही है, परन्तु गुणप्रत्यय अवधि के तीन भेद है।।४०।।

शेषो चरमांगमुनेर्गुणजौ प्रतिपात्यपि।

तत्र देशावधिर्बोधो शेषावप्रतिपातिजौ।।४१।।

अन्वयार्थ–(शेषौ) शेष परमावधि और सर्वावधि (गुणजौ) गुण प्रत्यय है और (चरमांगमुनेः) ये चरम शरीरी मुनि के ही होते हैं। (तत्र) उनमें (देशावधिः) देशावधि (बोधः) ज्ञान (प्रतिपात्यपि) प्रतिपाति "अपि" शब्द से अप्रतिपाति भी है। (शेषौ) शेष परमावधि, सर्वावधिज्ञान (अप्रतिपातिनौ) प्रतिपाति नहीं है।

भावार्थ–परमावधिज्ञान और सर्वावधिज्ञान गुणप्रत्यय ही हैं और चरम शरीरी मुनियों के ही होते हैं। देशावधि प्रतिपाति भी है और अप्रतिपाति भी है। प्रतिपाति अवधि छूट जाता है और केवलज्ञान पर्यंत नहीं भी छूटता है। परन्तु परमावधिज्ञान और सर्वावधि ज्ञान तो अप्रतिपाति ही हैं। नियम से इन ज्ञान वाले मुनिगण उसी भव में मुक्ति श्री को प्राप्त करते हैं।।४१।।

वर्द्धमानानुगावस्थितेतरप्रबिकल्पतः।

षट्प्रकारोऽप्यसंख्यातलोकमात्रो विशेषतः।।४२।।

अन्वयार्थ–(वर्द्धमानानुगावस्थितेतरप्रविकल्पतः) वर्द्धमान, अनुगामी, अवस्थित, इतर हीयमान, अननुगामी, अनवस्थित विकल्प से (षट्प्रकारः) छह प्रकार का अवधिज्ञान है (विशेषतः) विशेष से (असंख्यातलोकमात्रः) असंख्यात लोकप्रमाण अवधिज्ञान के भेद हैं।

भावार्थ–अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित विकल्प से छह प्रकार का अवधि ज्ञान है। विशेष रूप से असंख्यात लोकमात्र से अवधिज्ञान के भेद है। अनुगामी-जो अवधिज्ञान सूर्य के प्रकाश की तरह जीव के साथ जावे उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी। अननुगामी-जो अवधिज्ञान साथ न जावे उसे अननुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी और उभयाननुगामी। वर्द्धमान जो शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की तरह बढ़ता रहे उसको वर्द्धमान कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीयमान-जो कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की तरह घटता रहे उसे हीयमान कहते हैं। अवस्थित-जो अवधिज्ञान सदा एक सा रहे, न घटे न बढ़े उसे अवस्थित कहते हैं जैसे सूर्य तिल आदि के चिह्न। अनवस्थित-जो हवा से प्रेरित जल की तरङ्ग की तरह घटता बढ़ता रहे एक सा न रहे, उसको अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।।४२।।

सुरनारकतीर्थेश्वरादौ सर्वांगसंभवः।

अन्येष्वंगप्रशस्ताप्रशस्तचिह्नभवोऽवधिः।।४३।।

अन्वयार्थ–(सुरनारकतीर्थेश्वरादौ) देव, नारकी, तीर्थकर आदि में (सर्वांगसंभवः) सर्वांग से उत्पन्न (अवधिः) अवधि है। (अन्येषु) अन्यों में (प्रशस्ताप्रशस्तचिह्नभवः) शरीर के प्रशस्त, अप्रशस्त चिह्नों से उत्पन्न अवधि होता है।

भावार्थ–देव नारकी और तीर्थंकरों के अवधि ज्ञान सर्वांग और आदि शब्द से किसी संयमी जनों में सर्वांग से उत्पन्न होता है। शेष तिर्यंच और मनुष्यों के शरीर में होने वाले स्वस्तिकादि प्रशस्त और मेंढ़क आदि अप्रशस्त चिह्नों से अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।।४३।।

धर्मायां योजनं क्रोशार्द्धीनं तत्क्रमशोऽन्तिमा।

यावत्पृथ्वी मतं क्षेत्रमवधिर्निरयेष्विति।।४४।।

अन्वयार्थ–(निरयेषु) नारकियों में (धर्मायां) प्रथम धर्मानामक नर में (योजनं) एक योजन (क्षेत्रं) क्षेत्र तक (अवधिः) अवधिज्ञान है। (तत्क्रमशः) उसके बाद क्रम से (यावत्) जब तक (अन्तिमा) अन्तिम (पृथ्वी) पृथ्वी तब तक (क्रोशार्धहीनं) आधा-आधा कोश हीन (क्षेत्रं) क्षेत्र (मतं) माना है (इति) इस प्रकार आगमानुसार जानना चाहिये।

भावार्थ–प्रथम नरक में नारकियों के एक योजन के क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञान है अर्थात् प्रथम नरक के नारकी अवधिज्ञान के द्वारा एक योजन के क्षेत्र को जान सकते हैं। उसके आगे क्रम से आधा आधा योजन कम है अर्थात् दूसरे नरक के नारकी साढ़े तीन कोश तक क्षेत्र की बात को जानते हैं। तीसरे नरक के नारकी तीन कोश तक की बात जानते हैं। चौथे नरक के नारकी ढ़ाई कोश तक क्षेत्र को जानते हैं। पांचवें नरक के नारकी दो कोश की बात को जानते। छट्ठे नरक के नारकी डेढ़ कोश तक क्षेत्र को जानते हैं। सातवें नरक के नारकी एक कोश के क्षेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को जानते हैं। इस प्रकार आगमानुसार नारकियों के अवधिज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जानना चाहिये।।४४।।

तिर्यक्ष्वोधजघन्यादातेजोलंभान्मतोऽवधिः।

नरेष्वोधविकल्पौधो यथायोग्यं भवेदयम्।।४५।।

अन्वयार्थ–(तिर्यक्षु) तिर्यञ्चों में (अवधिः) (ओघजघन्यात्) सामान्य अवधि के जघन्य से लेकर (तेजोलंभात्) तेजस्कंधपर्यंत (मतः) माना है। नरेषु) मनुष्यों में (ओघविकल्पौधः) सामान्य के विकल्पों का समूह (अयं) यह अवधि (यथायोग्यं) यथायोग्य (भवेत्) होता है।

भावार्थ–तिर्यञ्चों में अवधिज्ञान सामान्य जघन्य अवधि से लेकर तैजस शरीर के स्कंधपर्यन्त जानता है। मनुष्यों में सर्वजघन्य से लेकर उत्कृष्ट अवधिज्ञान पर्यन्त यथायोग्य जानना चाहिये।।४५।।

भौमभावनयोर्योजनानि स्युः पंचविंशतिः।

जघन्यक्षेत्रं ज्योतिष्के ततः संख्यातसंगुणम्।।४६।।

अवन्यार्थ–(भौमभावनयोः) भवनवासी और व्यंतर देवों में (जघन्यक्षेत्रं) जघन्य अवधि का क्षेत्र (पंचविंशतिः) पच्चीस (योजनानि) योजन का है। (ज्योतिष्के) ज्योतिषी देवों में जघन्य क्षेत्र (ततः) भवनवासी व्यंतरों की अपेक्षा (संख्यातसंगुणं) संख्यात गुण अधिक (स्युः) है।

भावार्थ–भवनवासी और व्यंतर देवों में जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र पच्चीस योजन है, अर्थात् वे अवधिज्ञान के द्वारा पच्चीस योजन तक के क्षेत्र को जानते हैं। ज्योतिष्कों के अवधिज्ञान का क्षेत्र भवनवासी और व्यंतरों से संख्यात गुणित क्रम है अर्थात् ज्योतिष्क देव संख्यात योजन क्षेत्र को जानते हैं।।४६।।

असुरेष्वसंख्यकोट्यः स्युरुत्कृष्टमपरेषु तु।

ज्योतिष्कान्तेष्वसंख्यातसहस्राणि ततः क्रमात्।।४७।।

द्विद्विश्चतुश्चतुर्द्विर्द्विर्नवचतुर्दशस्वपि।

कल्पेषु स्याद्विमानेषु कल्पातीतेषु चावधेः।।४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधो धर्मादिलोकान्तादारभ्य त्रसनालिकम्।
क्षेत्रमूर्ध्वं वरक्षेत्रं स्वस्वलोकान्तसंस्थितम्।।४९।।

अन्वयार्थ–(असुरेषु) असुरों में (उत्कृष्टं) उत्कृष्ट अवधि का क्षेत्र (असंख्यकोट्यः) असंख्यात कोटि योजन है (तु) और (अपरेषु) नव भेद वाले नव प्रकार के भवनवासियों में (ज्योतिष्कान्तेषु) ज्योतिषी देवों तक (असंख्यात-सहस्राणि) असंख्यात हजार योजन है (ततः) उसके आगे (क्रमात्) क्रम से (द्विद्विचतुश्चतुर्द्विर्द्विनवचतुर्दशसु) सौधर्म, ऐशान आदि २, २, ४, ४, २, २ (कप्लेषु) कल्पों में (च) और (कल्पातीतेषु) कल्पातीत ९, ९, ५ (विमानेषु) विमानों में (अवधेः) अवधिज्ञान का (बरं) उत्कृष्ट (अधः) नीचे का क्षेत्र (धर्मादिलोकान्तात्) धर्मा पृथ्वी से लेकर (त्रसनालिकं) त्रस नाली पर्यन्त है और (ऊर्ध्वं) ऊपर (वरक्षेत्रं) उत्कृष्ट क्षेत्र (स्वस्वलोकांतसंस्थितम्) अपने अपने लोकांत तक है।

भावार्थ–असुरकुमारों की अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है। असुरों को छोड़कर बाकी के ज्योतिषी देवों तक के सभी भवनत्रिक अर्थात् नौ प्रकार के भवनवासी तथा सम्पूर्ण व्यंतर और ज्योतिषी इनकी अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात हजार योजन है। असुरकुमारों की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असंख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी इनकी अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से संख्यातवें भागमात्र है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देव अवधि के द्वारा प्रथम भूमिपर्यंत देखते हैं। सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देव दूसरी पृथ्वी तक देखते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग वाले देव तीसरी भूमि तक देखते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार स्वर्ग के देव चौथी भूमि तक देखते हैं। आणत,-प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्ग के देव पांचवीं पृथ्वी तक और नव ग्रैवेयक विमानवासी देव छठी पृथ्वी तक देखते हैं। नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तरवासी देव सम्पूर्ण लोकनाली को अवधि द्वारा देखते हैं। ऊपर में सर्व देव अपने अपने विमानों की ध्वजा तक के क्षेत्र को जानते हैं।।४७-४९।।

अयं स्यादवधिबोधावृतिवीर्यान्तराययोः।
क्षयोपशमतो बोधोऽसंख्यलोकविकल्पकः।।५०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अवधिबोधावृतिवीर्यान्तराययोः) अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के (क्षयोपशमतः), क्षयोपशम से (अयं) यह (बोधः) अवधिज्ञान (असंख्यातलोकविकल्पकः) अंख्यातलोकविकल्प वाला (स्यात्) है।

भावार्थ–अवधिज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से यह अवधि ज्ञान होता है और इसके असंख्यात लोकप्रमाण विकल्प है।।५०।।

स्यादेतत्त्रयमज्ञानं मिथ्यानंतानुबन्धिनाम्।

उदयेनाऽऽशु कटु वा कट्वलाबुगत पयः।।५१।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यानंतानुबन्धिनाम्) मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के (उदयेन) उदय से (एतत्) यह (त्रयं) तीनों ज्ञान (अज्ञानं) अज्ञान (स्यात्) होते हैं (वा) जैसे (कद्वलावुगतं) कड़बी तुम्बी में (गतं) गया हुआ (पयः) दूध (कटु) कड़वा (स्यात्) होता है।

भावार्थ–जिस प्रकार कड़वी तुम्बी में गया हुआ दूध कड़वा हो जाता है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व के उदय से यह मति, श्रुत, और अवधिज्ञान विपरीत अर्थात् कुज्ञान हो जाते हैं।।५१।।

मनःपर्यय का लक्षण व भेद

मनोदेशावधेर्ज्ञेयं मध्यमं चिन्तितादिकम्।

परैः पर्येतितद्यत्तन्मनः पर्ययबोधनम्।।५२।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (परैः) दूसरों के द्वारा (चिन्तितादिकम्) चिन्तित, अर्धचिन्तित (देशावधेः) देशावधि के (मध्यमम्) मध्यम (ज्ञेयं) विषयों को (मनः) मन (पर्येति) जानता है (तत्) वह (मनः पर्ययबोधनम्) मनः पर्ययज्ञान है।

भावार्थ–अवधिज्ञान के द्वारा जाने हुए विषय के अनन्तवें भाग सूक्ष्म जो दूसरे के मन में चिंतित अर्धचिंतित द्रव्य को जानता है वह मनः पर्ययज्ञान है।।५२।।

ऋजुविपुलमती तद्भेदावाद्या त्रिभेदगा।

ऋजुकायवाक्यचेतोगतार्थविषयत्वता।।५३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ऋजुविपुलमती) ऋजुमति और विपुलमति (तद्भेदौ) उस मनः पर्ययज्ञान के दो भेद हैं (आद्या) पहला ऋजुमतिज्ञान (ऋजुकायवाक्यचेतोगतार्थविषयत्वता) सरल काय, वचन और चित्तगत अर्थ का विषय करने वाला होने से (त्रिभेदगा) तीन भेद वाला है।

भावार्थ–मनः पर्यययज्ञान के दो भेद हैं ऋजुमति और विपुलमति। उसमें ऋजुमती सरल काय, वचन और चित्तगत अर्थ का विषय करने वाला होने से तीन भेद वाला है।

ऋज्वऋष्वदेहवाक्यस्वान्तस्वार्थावबोधनात्।

विपुलमतिः षड्भेदाऽसंख्यकल्पमिता च सा।।५४।।

अन्वयार्थ–(ऋग्वऋजुदेहावाक्यस्वान्तस्वार्थावबोधनात्) सरल और कुटिल काय, वचन, मनोगत, स्व अर्थ का विषय करने वाला होने से (विपुलमतिः) विपुलमति (षड्भेदा) छह प्रकार (च) और (असंख्यकल्पं) असंख्य लोक प्रमाण (इता) मानी गई है।

भावार्थ–सरल और कुटिल चिंतित अर्धचिंतित दूसरे के मनवचनकाय में स्थित पदार्थ का ज्ञान करने वाला विपुलमति मनः पर्ययज्ञान है। उसके सरल मन, वचन, कायगत पदार्थ का, तथा कुटिल मन, वचन, कायगत पदार्थ का विषय करने से छह भेद हैं तथा असंख्यात कल्प (समय) प्रमाण भेद हैं। कल्प शब्द से यहीं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोनों लेना चाहिये। तदुक्तं लोकविभागे-लोक विभाग में कहा है। कालो-एक अवसर्पिणी काल और दूसरा उत्सर्पिणी काल है। उन दोनों के मिलने से जितने समय होते हैं उतने विपुलमति मनः पर्ययज्ञान के भेद हैं।।५४।।

मनः पर्ययविज्ञानावृतिवीर्यान्तराययोः।

जातं मन्दोदयादेतत्क्षायोपशमिकं ततः।।५५।।

अन्वयार्थ–(मनः पर्ययविज्ञानावृतिवीर्यान्तराययोः) क्योंकि यह मनः पर्यय ज्ञान, मनः पर्ययज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के (मन्दोदयात्) मन्दोदय से (जातं) उत्पन्न हुआ है (ततः) इसलिए (एतत्) यह मन पर्ययज्ञान (क्षायोपशमिकं) क्षायोपशमिक है, क्षायिक नहीं है।

भावार्थ–मनः पर्यय ज्ञानावारणी और वीर्यान्तरण कर्म के मन्द उदय से उत्पन्न होने वाला होने से मनः पर्ययज्ञान क्षायोपशमिक हैं।।५५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलज्ञान का लक्षण

त्रिकालानन्तधर्मात्मानन्तवस्तुप्रकाशकम्।

युगपत्केवलं ज्योतिः करणावरणातिगम्।।५६।।

अन्वयार्थ–(युगपत्) एक साथ (त्रिकालानन्तधर्मात्मानन्तवस्तुप्रकाशकम्) त्रिकाल सम्बन्धी, अनन्तधर्मात्मक अनन्त वस्तु का प्रकाशक (करणावरणातिगम्) इन्द्रिय और आवरण से रहित (केवलं ज्योतिः) केवल ज्ञान है।

भावार्थ–जो एक समय में एक साथ त्रिकालवर्ती अनन्तधर्मात्मक सकल पदार्थों को जानता है वह अतीन्द्रिय निरावरण क्षायिक केवल ज्ञान है।।५६।।

क्षणं प्रत्यक्षरं ज्ञेयैः समं बिपरिवर्तते।

तदेकमुपमातीतं परमानन्दमन्दिरम्।।५७।।

अन्वयार्थ–(ज्ञेयैः) ज्ञेय के (समं) साथ (क्षणं) क्षण (प्रत्यक्षरं) प्रत्यक्ष (विपरिवर्त्तते) उन ज्ञेयों को अपने ज्ञान स्वरूप से जानता है (तत्) वह (उपमातीतं) उपमातीत (परमानन्दमन्दिरम्) परमानन्द का मन्दिर केवलज्ञान है।

भावार्थ–जो प्रतिक्षण समस्त ज्ञेयों को एक साथ जानता है। वह अक्षय, अनुपम, परमआनन्द का मन्दिर प्रत्यक्षज्ञान केवल ज्ञान है।।५७।।

ज्ञान के भेद

परद्रव्येन्द्रियानेकप्रकाशादिवशीकृते।

मतिश्रुते परोक्षे स्तः प्रत्यक्षमवधित्रयम्।।५८।।

अन्वयार्थ–(परद्रव्येन्द्रियानेकप्रकाशादिवशीकृते) पर पदार्थ, इन्द्रिय अनेक प्रकाशादि के वशीकृत (मतिश्रुते) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (परोक्षे) परोक्ष (स्तः) हैं। (अवधित्रयं), अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान ये तीन (प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष हैं।

भावार्थ–परद्रव्य, इन्द्रिय, प्रकाशादि अनेक कारणों के आधीन होने से मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। तथैवोक्तं श्लोकवार्तिके-इन्द्रिय और मन की प्रधानता से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। उपात्त इन्द्रिय और मन और अनुपात्त प्रकाशोपदेशादि की प्रधानता से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष है। जिस प्रकार शक्ति की विकलता होने से स्वयमेव चलने में असमर्थ मानव को लाठी का अवलम्बन गमन का प्रधान कारण है, उसी प्रकार मतिश्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर भी स्वयमेव अर्थ के उपलब्ध करने में असमर्थ आत्मा के इन्द्रिय मन प्रकाशादि कारण की प्रधानता होने से ये परायत्त है इसलिए यह दोनों ज्ञान परोक्ष हैं। अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं।।५८।।

प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण

ज्ञानेनाक्ष्णोति व्याप्नोतीत्यक्ष आत्मा स्वगोचरम्।
तमेवाक्षं प्रति गतं प्रत्यक्षमिति वर्ण्यते।।५९।।

अन्वयार्थ–(ज्ञानेन) ज्ञान से (अक्ष्णोति) जानता है। (व्याप्नोति) व्याप्त है (इति) इस प्रकार (अक्षं) अक्ष (आत्मा) आत्मा है (तं) उस (स्वगोचरम्) स्वानुभव गोचर (अक्षं) आत्मा के (प्रति) प्रति (गतं) गत है (इति) इसलिए (प्रत्यक्षं) प्रत्यक्ष (उच्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–ज्ञान के द्वारा जानने वाला वा ज्ञान से व्याप्त होने से आत्मा को अक्ष कहते हैं। उस आत्मा से उत्पन्न "पर" इन्द्रिय प्रकाशादि जिसमें निमित्त नहीं है वह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।।५९।।

परोक्ष ज्ञान का लक्षण

केवलं वा श्रुतं तत्राशेषवस्तुप्रकाशकम्।
द्वादशांगांगबाह्यात्माऽस्पष्टं तु केवलम्।।६०।।

अन्वयार्थ–(तत्र) उन मत्यादिज्ञानों में (केवलम्) केवल ज्ञान (वा) और (श्रुतं) श्रूतज्ञान (अशेषवस्तु प्रकाशकं) समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है। (द्वादशांगांगवाह्यात्मास्पष्टं) द्वादशांग और अंग वाह्यात्मक श्रुतज्ञान अस्पष्ट परोक्ष है (तु) और (केवलं) केवलज्ञान (स्पष्टं) प्रत्यक्ष है।

भावार्थ–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सर्वद्रव्यों को जानते हैं परन्तु उनकी सर्व पर्यायों को नहीं जानते हैं। जो द्वादशांगात्मक सर्व शास्त्रों को जानता है परोक्षरूप से वह श्रुत केवली है और जो साक्षात् सर्व द्रव्य पर्यायों को जानता है वह केवली है।।६०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानाचार का स्वरूप

वाचना पृच्छना चानुप्रेक्षाऽम्नायो यथाविधि।

धर्मोपदेश इत्यादि ज्ञानाचारः श्रुते मतः।।६१।।

अन्वायर्थ–(वाचना) वाचना (पृच्छना) प्रच्छना (अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षा (आम्नायः) आम्नाय (च) और (यथाविधि) विधि के अनुसार (धर्मोपदेशः) धर्मोपदेश (इत्यादि) इत्यादि को (श्रुते) श्रुतज्ञान में (ज्ञानाचारः) ज्ञानाचार (मतः) माना है।

भावार्थ–वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और विधि के अनुसार धर्मोपदेश इत्यादिरूप श्रुत ज्ञान में ज्ञानाचार है।।६१।।

वाचना का लक्षण

यत्सूत्रार्थोभयाऽऽख्यानं शिष्याणां विनयान्वितम्।

मोक्षार्थं वाचना प्रोक्ता कृत्वा शुद्धिं चतुर्विधाम्।।६२।।

अन्वयार्थ–(शिष्याणां) शिष्यों के लिए (विनयान्वितम्) विनय से युक्त (मोक्षार्थ) मोक्ष के लिए (चतुर्विधाम्) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव स्वरूप चार प्रकार की (शुद्धिं) शुद्धि (कृत्वा) करके (यत्) जो (सूत्रार्थोभयाख्यानं) सूत्र, अर्थ और उभय का व्याख्यान करना है वह (वाचना) वाचना (प्रोक्ता) है।

भावार्थ–शिष्यों के लिए ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि पूर्वक जो सूत्र, अर्थ और उभय का व्याख्यान किया जाता है वह वाचना है।

"द्रव्यशुद्धि का वर्णन"

स्वांगे ज्वराक्षिकुक्षादिवेदनापूयशोणित

स्त्रावविण्मूत्रलेपादेर्द्रव्यशुद्धिरसंभवः।।६३।।

अन्वयार्थ–(स्वांगे) अपने अंग में (ज्वराक्षिकुक्षादिवेदनापूयशोणितविण्मूत्रलेपादेः) ज्वर, नेत्र, उदर आदि की वेदना, पीव और रक्त का निकलना तथा मल मूत्र के लेपादि के होते हुए (द्रव्यशुद्धि) द्रव्यशुद्धि (असंभवः) असंभव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिसके शरीर में ज्वर है, आँख, उदर आदि में पीड़ा है, पूय रक्त आदि बह रहा है, मलमूत्र से लिप्त है, उसके द्रव्यशुद्धि नहीं होती है।।६३।।

सा भवेदन्नपानादेः सुस्निग्धस्य सुगन्धितः।
मोदकापूपपृथुकप्रभृतेरप्यसेवनम्।।६४।।

अन्वयार्थ–(सा) वह द्रव्यशुद्धि (सुस्निग्धस्य) सुस्निग्ध (सुगन्धिनः) सुगन्धित (मोदकापूपप्तथुकप्रभृतेः) मोदक पूवा, बड़े-बड़े लड्डू आदि (अन्नपानादेः) अन्न पानी के (असेवनं) सेवन नहीं करने से (अपि) भी (भवेत्) होती है।

भावार्थ–मोदक पूए आदि गरिष्ठ पदार्थों को सेवन नहीं करने से भी द्रव्यशुद्धि होती है।।६४।।

"क्षेत्र शुद्धि का वर्णन"

व्याख्यानस्थानकात्सर्वदिक्षु पंचेन्द्रियांगिनाम्।
शवार्द्र चर्ममांसास्थिशोणितादेरसंगमः।।६५।।

गतात्तृतीयस्वाध्यायादाराद्यः स निगद्यते।
क्षेत्रशुद्धिरिति क्षेत्रे द्वात्रिंशद्दण्डमात्रके।।६६।।

नृतिर्यक्शुष्कचर्मादिर्हस्तद्वयेकशते तदा।
विण्मूत्रयोः क्रमाद्धस्तशतपंचाशत्करायते।।६७।।

अन्वयार्थ–(गतात्तृतीयस्वाध्यायात्) पूर्व रात्रि के स्वाध्याय से (आरात्) अपर रात्रि की स्वाध्याय में (व्याख्यानस्थानात्) व्याख्यान स्थान से (सर्वदिक्षु) सभी दिशाओं में (द्वाविंशद्दण्डमात्रके) बत्तीस धनुष प्रमाण (क्षेत्रे) क्षेत्र में (पंचेन्द्रियांगिनां) पंचेन्द्रिय प्राणियों का (शवार्द्रचर्ममांसास्थिशोणितादेः) मृत शरीर, आर्द्र चर्म, मास, अस्थि, शोणित आदि का (असंगमः) संगम नहीं होना (तदा) उस स्वाध्याय काल में (क्रमात्) क्रम से (हस्तद्वयेकशते) दो सौ हाथ, एक सौ हाथ प्रमाणक्षेत्र में (नृतिर्यक्शुष्कचर्मादेः) मनुष्य का शुष्क चर्म और तिर्यंच का शुष्क चर्म आदि तथा (हस्तशतपंचाशत् करायते) सौ हाथ पच्चास हाथ लम्बे क्षेत्र में (विण्मूत्रयोः) मलमूत्र का (असंगमः) संगम नहीं होना (स) वह (क्षेत्रशुद्धिः) क्षेत्रशुद्धि (इति) इस प्रकार (निगद्यते) कही जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पूर्व रात्रि और अपर रात्रि में जिस स्थान पर शास्त्र वाचना करते हैं उस स्थान से दशोदिशाओं में बत्तीस धनुष प्रमाण क्षेत्र में पंचेन्द्रिय प्राणियों का शव (मृत शरीर) चर्म, मांस, अस्थि, खून आदि नहीं होना चाहिये तथा दो सौ हाथ प्रमाण तक मनुष्य का शुष्कचर्म, खून, अस्थि, आदि एवं एक सौ हाथ प्रमाण क्षेत्र में तिर्यंचों का शुष्कचर्म आदि नहीं होना चाहिए। सौ हाथ प्रमाण क्षेत्र में मल (मनुष्य की विष्टा) और पच्चास हाथ प्रमाण क्षेत्र में मूत्र नहीं होना चाहिए। यह रात्रिक स्वाध्याय की क्षेत्र शुद्धि है।।६५-६७।।

पंचाक्षे क्लिश्यमानेऽर्त्या म्रियमाणे च कर्मसु।

त्रसस्थावरघातेषु सत्त्वेकस्मिन्निवर्त्तते।।६८।।

आसन्ने बालचाण्डालजलदीपाग्निलुंचने।

दवादिधूमे दुर्गन्धे वाति दुरान्न सा भवेत्।।६९।।

अन्वयार्थ–(अर्त्या) पीड़ा से (क्लिश्यमाने) क्लिश्यमान (पंचाक्षे) पंचेन्द्रिय प्राणियों के (म्रियमाणे) मर जाने पर (च) और (त्रयस्थावरघातेषु) त्रस, स्थावर, जीवों के घात (कर्मसु) कर्म के (सत्सु) होने पर (आसन्ने) निकट में (बालचाण्डालजलदीपाग्निलुंचने) बालक, चाण्डाल, जलदीप, अग्नि का लुंचन होने पर (दवादिधूर्मे) दवाग्नि धूम होने पर (दुर्गन्धेवाति) दुर्गन्ध पवन के चलने पर (एकस्मिन्) इनमें से किसी एक के होने पर (सा) वह क्षेत्र शुद्धि (न) नहीं (भवेत्) होती है इसलिए (दूरात्) दूर से (निवर्तते) निवृत होना चाहिए।

भावार्थ–जहाँ पर पीड़ा से दुःखी होकर पंचेन्द्रिय प्राणी मर रहा हो, त्रस, स्थावर में किसी प्राणी का घात हो रहा हो, निकट में बालक, चांडाल बैठा हो, दवाग्नि का धूम हो रहा हो कोई अग्नि, पानी दीपक आदि का बुझाना, जल का बिडोलना आदि कर रहा हो, दुर्गन्ध हवा चल रहा हो, वहाँ पर क्षेत्र शुद्धि नहीं होती है। इसलिए उस क्षेत्र को दूर से ही छोड़ देना चाहिये।।६८-६९।।

"काल शुद्धि वर्णन"

नन्दीश्वरमहापूजाराध्यागमनयोजन

प्रमाणक्षेत्रसन्यासमहानशनवासरैः।।७०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वपर्वक्रियावश्यकक्रियावसरादिभिः।

व्यपेतता भवेत्काले कालशुद्धिर्विशुद्धिदा।।७१।।

अन्वयार्थ–(नन्दीश्वरमहापूजाराध्यागमनयोजनप्रमाणक्षेत्रसन्यासमहानशनवासरैः) नन्दीश्वरमहापूजा, आराध्य पुरुषों का आगमन, योजनप्रमाण क्षेत्र में सन्यास, महान उपवास आदि दिनों से (सर्वपर्वक्रियावश्यकक्रियावसरादिभिः) सर्व पर्व की क्रिया, आवश्यक क्रियाओं के अवसर से (व्ययेतता) रहित (विशुद्धिदा) विशुद्धि को देने वाली (काले) शास्त्रोक्त काल में शास्त्र पढ़ना (कालशुद्धिः) कालशुद्धि (भवेत्) होती है।

भावार्थ–नन्दीश्वरमहापूजा, आराध्य पुरुषों का आगमन, योजन प्रमाण क्षेत्र में सन्यास, महान उपवासादि के दिनों में, षट् आवश्यक क्रियाओं के समय में, वाचना स्वाध्याय नहीं करना विशुद्धि को देने वाली कालशुद्धि है।।७०-७१।।

सप्तत्र्येकदिनान्यत्र स्वग्रामे योजनप्रमें।

क्षेत्रे दूरे च वर्ज्यानि स्वर्गते श्रमणाधिपे।।७२।।

अन्वयार्थ–(अत्र) इस वाचना स्वाध्याय में (स्वग्रामे) अपने ग्राम में (योजनप्रमे) योजन प्रमाण (दूरे) दूर (क्षेत्रे) क्षेत्र में (श्रमणाधिपे) श्रमणाधिप के (स्वर्गते) स्वर्ग में चले जाने पर (सप्तत्र्येकदिनानि) क्रम से सात दिन, तीन दिन और एक दिन (वर्ज्यानि) वर्जनीय है।

भावार्थ–अपने ग्राम में श्रमणाधिप के स्वर्गवास हो जाने पर सात दिन और एक योजन दूर प्रमाण क्षेत्र में आचार्य का स्वर्गवास हो जाने पर तीन दिन और एक योजन से दूर क्षेत्र में आचार्य का स्वर्गवास होने पर एक दिन वाचना स्वाध्याय वर्जनीय है। अर्थात् उतने दिन तक शास्त्र नहीं पढ़ना चाहिये।।७२।।

निष्ठाप्य पश्चिमश्यामास्वाध्यायं शुद्धभूस्थितः।

वयुत्सर्गेणेन्द्रकौनाशप्रचेतोधनिनां दिशः।।७३।।

नवार्यापाठकालेन प्रत्येकं शोधयेदयं।

पूर्वाह्नवाचनाहेतो कालशुद्धिविधिस्त्वयम्।।७४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्युदिन्द्रधनुः क्षोणीकं पाशादाहसंगर

ग्रहणाकालवृष्टयभ्रगर्जनादिविवर्जितः।।७५।। त्रिकम्।

अन्वयार्थ–(पश्चिमश्यामास्वाध्यायं) पश्चिम रात्रि के स्वाध्याय को (निष्ठाप्य) निष्ठापन करके (शुद्धि-भूस्थितः) शुद्ध भूमि में स्थित होकर (व्युत्सर्गेण) कार्योत्सर्ग से (इन्द्रकीनाशप्रचेतोधनिनां) इन्द्र, यमराज, वरुण और कुवेर की (दिशः) दिशाओं की (प्रत्येकं) प्रत्येक दिशा में (नवार्यपाठकालेन) नवार्य पाठ (नौवार) णमोकार मन्त्र पाठ से (शोधयेत) शुद्धि करे (अयं) यह नवार्यपाठ (पूर्वाह्नवाचनाहेतोः) पूर्वाह्नकाल के स्वाध्याय ग्रहण की (कालशुद्धिविधिः) कालशुद्धि विधि है (तु) परन्तु (विद्यु दिन्द्रधनुक्षोणीकंपाशादाहसंगरग्रहणकालवृष्ट्यभ्रगर्जनादिवविर्जितः) यह विजली, इन्द्रधनुष, पृथ्वी का कम्पन, दिग्दाह, युद्ध, ग्रहणकाल, वृष्टि अभ्र गर्जन से रहित होना चाहिये।

भावार्थ–पश्चिम रात्रि वाचना काल की समाप्ति और पूर्वाह्न वाचना के ग्रहण काल में नौ-नौ वार णमोकार मंत्र का जाप करे। परन्तु उत्पात से दिशा का अग्नि वर्ण (लाल) होना, तारा के आकार पुद्गल का पड़ना, विजली का चमकना, मेघों के संघट्ट से उत्पन्न बज्रपात, ओले वरसना, धनुष के आकार पंच वर्ण पुद्गलों का दीखना, दुर्गंध लाल पीले वर्ण के आकार सांझ का समय, बादलों से आच्छादित दिन, चन्द्रमा, ग्रह, सूर्य राहु के विमानों का आपस में टकराना, लड़ाई के वचन, लकड़ी आदि से झगड़ा, आकाश में धुंआ के आकार रेखा का दीखना, धरती कंप, बादलों का गर्जना, महापवन का चलना अग्निदाह-इत्यादि बहुत से दोष स्वाध्याय में वर्जित किये गये हैं अर्थात् ऐसे दोषों के होने पर नवीन पठन पाठन नहीं करना चाहिए।७३-७५।।

पूर्वान्हेऽप्यपरान्हस्य वाचनार्थं विशोधयेत्।

एवमांशाश्चतस्त्रस्तु सप्तार्यापाठकालतः।।७६।।

अन्वयार्थ–(पूर्वाण्हे) पूर्वाण्ह काल के स्वाध्याय की समाप्ति में (अपराह्नस्य) अपराह्ण की (वाचनार्थ) वाचना स्वाध्याय ग्रहण के लिए (एवं) इस प्रकार (चतस्त्रस्तु) चारों (आशाः) दिशाओं को (शोधयेत्) शुद्धि करे (तु) परन्तु मध्याह्न काल के स्वाध्याय में (सप्तार्थपाठकालतः) सप्तार्थ पाठ काल से (विशोधयेत्) शुद्धि करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पूर्वाण्हकाल के स्वाध्याय की समाप्ति में अपराह्न वाचना स्वाध्याय ग्रहण के लिए इस प्रकार चारों दिशा की शुद्धि करे। परन्तु मध्याह्नकाल के स्वाध्याय में सप्तार्थ पाठ काल से शुद्धि करे।।७६।।

कृत्वैवमपराह्णेऽपि पंचार्यापाठकालतः।
दिक्शुद्धिं वाचनां पूर्वरात्रौ कुर्याद्दिवं पुरा।।७७।।

क्षेत्रशुद्धिं विधायैतत्कारणोपायवर्जिते।
निशायां पश्चिमश्यामावाचना नाऽस्ति संयते।।७८।।

व्योमाचलकुलान्तस्थचारणावधिबोधिनाम्।
वाचना परररात्रौ तु क्षेत्रशुद्ध्युपलंमतः।।७९।।

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार सप्तार्य गाथा से (अपराण्हे) अपराह्नकाल में (कृत्वा) शुद्धि करके (पूर्वारात्रौ) पूर्व रात्रि में (पंचार्यपाठकालतः) पंचार्यपाठ काल से (दिक्रशुद्धिं) दिशा शुद्धि को करके (पुरा) पहिले की तरह (दिवं) दिन को (क्षेत्रशुद्धिं) क्षेत्र शुद्धि को करें। (एतत्कारणोपायवर्जिते) इन कारण उपायो से रहित समय में (वाचनां) स्वाध्याय (कुर्यात्) करे परन्तु (संयते) साधारण मुनि के (निशायां) रात्रि में (पश्चिमश्यामावाचना) पश्चिम रात्रि की वाचना (नास्ति) नहीं है (क्षेत्रशुद्ध्युपलंभतः) क्षेत्र शुद्धि के उपलंभ से (व्योमाचलकुलान्तस्थचारणवधिबोधिनां) आकाश पर्वत के तटों पर रहने वाले चारणरिद्धि और अवधिज्ञानी मुनियों के (अपररात्रौ) अपर रात्रि में (वाचना) वाचना है।

भावार्थ–प्रातः काल की स्वाध्याय के ग्रहण और समाप्ति और अपराण्ह काल की स्वाध्याय की समाप्ति और ग्रहण में चारों दिशाओं में नव-नव आर्य गाथा पढ़कर स्वाध्याय ग्रहण और समाप्त करनी चाहिए। मध्याह्नकाल की स्वाध्याय के ग्रहण में सात आर्य गाथा पढ़कर चारों दिशाओं की शुद्धि करना चाहिए तथा सायंकाल के स्वाध्याय ग्रहण में पाँच आर्य गाथा पढ़कर चारों दिशाओं की शुद्धि करना चाहिए। सामान्य साधु को अपररात्रि में स्वाध्याय का निषेध है। परन्तु जो गगन विहारी है, कुलाचल पर्वतों पर रहने वाले हैं, चारण ऋद्धिधारी हैं, अवधिज्ञानी हैं, वे क्षेत्र शुद्धि से पश्चिम रात्रि में स्वाध्याय कर सकते हैं।।७७-७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वमासेषु जंघाया छाया सप्तपदी क्रमात्।

वाचना ग्रहमोक्षेषु स्यात्पूर्वाण्वहापराण्हयो।।८०।।

अन्वयार्थ–(सर्वमासेषु) सर्व महीनों में (पूर्वाण्हापराण्हयोः) पूर्वाण्ह और अपराण्ह काल में (वाचनाग्रहमोक्षेसु) वाचना के प्रतिष्ठापन और निष्ठापन (क्रमात्) क्रम से (जंघायाः) जंघा की (छाया) छाया (सप्तपदी) सप्तपदी (स्यात्) होना चाहिए।

भावार्थ–स्वाध्याय के आरम्भ करने में सूर्य के उदय होने पर दोनों जांघों की छाया सात विलस्त प्रमाण जानना और सूर्य के अस्त होने के काल में ही सात विलस्त छाया रहे तब स्वाध्याय समाप्त करना चाहिए।।८०।।

आषाढ़कृष्णपक्षप्रतिद्येकपदी तु सा।

स्वाध्यायमोक्षादानेषु स्यात्पूर्वाण्हापराह्नयो।।८१।।

अन्वयार्थ–(तु) और (आषाढ़कृष्णपक्षप्रतिद्येकपदी) आषाढ़कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन (पूर्वाण्हा पराण्हयोः) पूर्वाण्ह अपराण्ह के (स्वाध्यायमोक्षादानेषु) स्वाध्यायग्रहण और निष्ठापन में (सा) छाया (एकपदी) एक पदी (स्यात्) है।

भावार्थ–आषाढ़ महीने की कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन एकपाद छाया रहे तब पूर्वाण्ह काल की स्वाध्याय समाप्त करना चाहिए और एक पद छाया में ही मध्याह्न काल की स्वाध्याय का आरंभ करना चाहिए।।८१।।

दिनं प्रत्यंगुलस्यैति यत्पंचदशमांशाकः।

वृद्धिं तच्छ्रावणस्यादौ सा छाया द्वयंगुलाधिका।।८२।।

अंगुलिद्वयवृद्ध्यैवं प्रतिमासं पदद्वयं।

पौषादौ स्यात्ततः पौषोऽज्ज्येष्ठांतं तु हीयते।।८३।।

अन्वयार्थ–(दिनं प्रति) प्रतिदिन (अंगुलस्य) अंगुल के (पंचदशमांशकः) पंचदशमाशक (वृद्धिं) वृद्धि को (क्रमशः ऐति) प्राप्त होती है (सा) वह (छाया) छाया (श्रावणस्य) श्रावण के (आदौ) प्रथम दिन में (द्वयंगुलाधिका) दो दो अंगुल अधिक है। (एवं) इस प्रकार (प्रतिमासं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक महीने में (अंगुलि द्वयवृद्ध्या) दो दो अंगुल की वृद्धि से (पौषादौ) पौष की आदि में (पदद्वयं) दो पाद प्रमाण (स्यात्) होती है। (ततः) इसके बाद (पौषात्) पौष महीने से (ज्येष्ठांतं) ज्येष्ठ मास पर्यन्त (हीयते) हीन होती है।

भावार्थ–तदनन्तर आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा से प्रत्येक दिन एक-एक अंगुल पंचदशांश (एक अंगुल का पन्द्रहवां भाग) बढ़ता है तथा श्रावणकृष्ण प्रतिपदा के दिन दो अंगुल बढ़ जाता है। इस प्रकार प्रतिमास में दो दो अंगुल की वृद्धि से पौष कृष्ण प्रतिपदा के दिन दो पाद छाया हो जाती है। तथा पौष से ज्येष्ठ मास पर्यन्त प्रतिमास में दो दो अंगुल की हीनता होती है।

विशेषार्थ–प्रत्येक महीने की प्रातःकाल की स्वाध्याय के आरम्भ काल सप्त पाद छाया होने पर होता है तथा संध्याकाल के स्वाध्याय का विसर्जन काल भी सप्त पाद छाया होने पर होता है। परन्तु पूर्वाण्ह काल की स्वाध्याय की समाप्ति आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा के दिन एकपदी छाया में होती है और अपराण्ह काल की स्वाध्याय का आरंभ भी एक पाद छाया में होता है। तदनन्तर पौष मास पर्यन्त प्रतिमास में दो दो अंगुल छाया की वृद्धि करने पर पौष मास में दो पाद छाया होती है और पौष मास से ज्येष्ठ मास पर्यन्त दो दो अंगुल हानि करना चाहिए। प्रतिदिन एक अंगुल के पन्द्रहवां अंश बढ़ता है।।८२-८३।।

"भावशुद्धि वर्णन"

यशः पूजापुरस्कारनिःकांक्षा निर्मदा मतिः।
श्रुतामृतकृतानंदा भावशुद्धिर्मुनेर्मता।।८४।।

अन्वयार्थ–(यशःपूजापुरस्कारनिःकांक्षा) यश, पूजा, पुरस्कार की आकांक्षा से रहित (निर्मदा) मद रहित (श्रुतामतकृतानंदा) श्रुत रूपी अमृतकृत आनन्द रूप जो (मतिः) मति है वह (मुनेः) मुनि की (भावशुद्धिः) भाव शुद्धि है।

भावार्थ–यश, पूजा, सत्कार, पुरस्कार की आकांक्षा से रहित श्रुतामृत में लीन निर्मद जो मुनि की मति है वह भाव शुद्धि है।।८४।।

सूत्रग्रन्थ पढ़ने हेतु योग्यता

एवं शुद्धिर्विधायात्महस्तपादं विशोध्य च।
शुद्धदेशास्थितो भक्त्या क्रियां कृत्वा यथाविधि।।८५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पल्यंकासनगः सूरिपादं नत्वा कृताञ्जलिः।

सूत्रस्याध्यमनं कुर्यात् कक्षाद्यं स्वागमल्पृशन्।।८६।।

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार (शुद्धिः) शुद्धि (विधाय) करके (च) और (आत्महस्तपादं) अपने हाथ पैरों को (विशोध्य) विशुद्ध करके (शुद्धदेशस्थितः) शुद्ध देश में स्थित (भक्तया) भक्ति से (यथाविधि) विधि के अनुसार (क्रियां) क्रिया को (कृत्वा) करके (पल्यंकासनगः) पल्यंक आसन गत होकर (कृताञ्जुलिः) अंजुलि पूर्वक (सूरिपादं) आचार्य के चरणों को (नत्वा) नमस्कार करके (कक्षाद्यं) कक्षादि (स्वांगं) अपने अंग को (अस्पृशन्) स्पर्श नहीं करते हुए (सूत्रस्य) सूत्र का (अध्ययमं) अध्ययन (कुर्यात्) करना चाहिये।।८५-८६।।

यथाकालं ततो मुचेद्वाचनामीदृशो विधिः।

पुराणा राधना पंच संग्रहादिश्रुतौ न हि।।८७।।

अन्वयार्थ–(ततः) इसके बाद (यथाकालं) कालानुसार (वाचनां) वाचना की (मुंचेत) छोड़ दे (ईदृशः) यह शास्त्र वाचना की (विधिः) है। (हि) निश्चय से (पुराणाराधना पंच संग्रहादिश्रुतौ) पुराण आराधना पंच संग्रह आदि शास्त्रों के पढ़ने (सुनने) मैं (ईदृशः) ऐसी (विधिः) (न) नहीं है।

भावार्थ–शास्त्रों की वाचना विधि और कालानुसार करे। अकाल में तथा विधि रहित स्वाध्याय नहीं करे। परन्तु पुराण, आराधना, पंचसंग्रह आदि के पढ़ने में यह विधि नहीं हैं।

सूत्र का लक्षण

गणेशोक्तं मतं सूत्रगभिन्न दश पूर्विभिः।

उक्तं प्रत्येकबुद्धैश्च श्रुतकेवलिभिः श्रुतम् ।।८८।।

अन्वयार्थ–(गणेशोक्तं) गणधर कथित (अभिन्नदशपूर्विभिः) अभिन्न दशपूर्वी के द्वारा (प्रत्येक बुद्धैः) प्रत्येक बुद्ध के द्वारा (च) और (श्रुतकेवलिभिः) श्रुत केवलि के द्वारा (उक्तं) कथित श्रुत को (सूत्रं) सूत्र (मतं) माना गया है।

भावार्थ–गणधर, श्रुतकेवली, अभिन्नदशपूर्वी और प्रत्येकबुद्ध के द्वारा कथित श्रुत सूत्र कहलाता है।।८८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

.CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि उल्लंघन का फल

विधिमेनमतिक्रम्य सूत्रं शुश्रूषुराप्नुयात्।
रुजासमाधिस्वाध्यायभंगार्तीन्निष्फलश्च सः।।८९।।

अन्वयार्थ–(एवं) इस (विधिं) विधि का (अतिक्रम्य) उल्लंघन करके (सूत्रं) सूत्र को (शुश्रूषुः) सुनने की इच्छा करने वाला संयमी (रुजासमाधिस्वाध्यायभंगार्तीन्निष्फलश्च) रोग, असमाधि, स्वाध्याय का भंग, आर्ति और निष्फलता को (आप्नुयात्) प्राप्त होता है।

भावार्थ–जो संयमी वाचना की विधि का उल्लंघन करके सूत्र को सुनना चाहता है, वह रोग, असमाधि, स्वाध्याय का भंग, संक्लेश और निष्फलता को प्राप्त होता है।।८९।।

पृच्छना स्वाध्याय का लक्षण

पृच्छना संशयोच्छित्यै प्रश्नः सप्रश्रयो मुनेः।
स्वोन्नत्यख्यापनार्थं वा प्रहासोद्धर्षवर्जितः।।९०।।

अन्वयार्थ–(स्वोन्नत्यख्यापनार्थं) अपनी उन्नति के अख्यापनार्थ (वा) अथवा (प्रहासोद्धर्षवर्जितः) प्रहास और स्पर्द्धा से रहित (संशयोच्छित्यै) संशय का नाश करने के लिए (सप्रश्रयः) विनय पूर्वक (मुनेः) मुनि का प्रश्न पूछना वह (प्रच्छना) प्रच्छना स्वाध्याय है।

भावार्थ–हास्य और स्पर्द्धा से रहित अपने संशय का छेदन करने के लिए जो मुनि का विनयपूर्वक प्रश्न होता है उसको प्रच्छना स्वाध्याय कहते हैं। स्वोन्नति के ख्यापनार्थ प्रच्छना नहीं की जाती है।।९०।।

अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश का लक्षण

अनुप्रेक्षा परिज्ञाते भावना या मुहुर्मुहः।
परिवर्त्तनमाम्नायो घोषदोषविवर्जितम्।।९१।।
द्वादशांगैकदेशोपदेशो धर्मोपदेशनम्।
पंचप्रकार इत्येष ज्ञानाचार उपाहृतः।।९२।।

अन्वयार्थ–(परिज्ञाते) जाने हुए शास्त्र में (यत्) जो (मुहुर्मुहुः) बार-बार भावना करना (अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षा है तथा परिज्ञात अर्थ में (घोषदोषविवर्जितं) उच्चारण दोष रहित (परिवर्त्तनं) परिवर्तन है (आम्नायः) वह आम्नाय है (द्वादशांगैकदेशोपदेशः) द्वादशांग के एक देश का उपदेश देना (धर्मोपदेशनं) धर्मोपदेश है। (इति) इस प्रकार (एषः) यह (पंचप्रकारः) पांच प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का (ज्ञानाचारः) ज्ञानाचार (उपाहृतः) कहा गया है।

भावार्थ–जाने हुये शास्त्र को बार-बार भावना अनुप्रेक्षा है। तथा परिज्ञात अर्थ में उच्चारण दोष रहित परिवर्त्तन आम्नाय है। द्वादशांग के एक देश का उपदेश देना धर्मोपदेश है इस प्रकार यह पांच प्रकार का ज्ञानाचार कहा गया है।।९१-९२।।

ज्ञानाचार का फल

प्रज्ञोन्मेषः प्रशस्तान्तरंगता कर्मनिर्जरा।
संख्यातीतगुणश्रेण्या चेत्यादि स्यादितो यतेः।।९३।।

अन्वयार्थ–(इतः) ज्ञानाचार से (यतेः) मुनि के (प्रज्ञोन्मेषः) बुद्धि का विकास होता है। (च) और (प्रशस्तान्तरंगता) शुभ परिणाम से (संख्यातीतगुणश्रेण्या) संख्यातीत गुण श्रेणी से (कर्मनिर्जरा) कर्मों की निर्जरा (इत्यादि) इत्यादि (स्यात्) होती है।

भावार्थ–ज्ञानाचार से मुनियों के प्रज्ञा का विकास होता है और शुभ परिणामों से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है। शिष्य प्रतिशिष्य के द्वारा पूजादि की प्राप्ति होती है।।९३।।

वन्दे श्रीजिनमंजुलास्यकमलामोदं श्रुंत विश्रुतं।
चार्वी चारुचरित्रपात्रमुनिवृन्देन्दिन्दिरानन्दिनम्।।
यत्पुष्णाति भवेभवेऽप्यमलिनं ज्ञानं समासेवितम्।
कैवल्यं च समस्तवस्तुविषयं तद्विस्मृतं यद्यपि।।९४।।

अन्वयार्थ–(श्रीजिनमंजुलास्यकमलामोदं) श्री जिनेन्द्र भगवान के मुख रूपी कमल की सुगन्धि (चारुचरित्र पात्रमुनिवृन्देन्दिरानन्दिनं) श्रेष्ठ चरित्र के पात्र मुनियों के समूह रूपी भ्रमर को आनन्ददायक (विश्रुतं) विख्यात (चार्वी) श्रेष्ठ (श्रुतं) श्रुतज्ञान को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ। (यत्) इस (अमलिनं) निर्मल (भवभवे) भव भव में (समासेवितम्) आराधित (ज्ञानं) ज्ञान को (यद्यपि) यद्यपि (तद्विस्मृतं) जीव भूल जाते हैं तथापि (तत्) वह आराधित ज्ञान (समस्तवस्तुविषयं) समस्त वस्तु का विषय करने वाले (कैवल्यं) केवलज्ञान को (पुष्णाति) पुष्ट करता है।

भावार्थ–जिनेन्द्र भगवान के मुख रूपी कमल से सुवासित उत्तम चारित्र धारी संयमीजनरूपी भ्रमर को संतोष दायक भव भव में आराधित निर्मल, जगतप्रसिद्ध, श्रुतज्ञान यद्यपि विस्मृत हो जाता है अर्थात् दूसरे भव में प्राणी इसको भूल जाते हैं तथापि सम्यग्दर्शन सहित यह श्रुतज्ञान समस्त वस्तु के विषय करने वाले केवल ज्ञान को उत्पन्न करता है।।९४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतज्ञान पढ़ने का फल

गंभीरं मुधरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं।
कंठौष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतम्।
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं
दूरासन्नसमं निरूपमं जैन वचः वातु वः।।९५।।

अन्वयार्थ–(गंभीरं) गंभीर (मधुरं) कर्णप्रिय (मनोहरतरम्) मनोहरतर (दोषव्यपेतं) दोष रहित (हितं) हितकारी (कंठौष्ठादिवचोनिमित्तरहितं) कंठ और तालु आदि वचन के निमित्त से रहित (नोवातरोधोद्गतम्) वातरोधजनित नहीं है (स्पष्टम्) स्पष्ट है (ततदभीष्टवस्तुकथकं) उस उस अभीष्ट वस्तु का कहने वाला है (निःशेषभाषात्मकं) निःशेष भाषात्मक है (दूरासन्नसमं) एक योजनान्तर में स्थित दूर और निकट को समान श्रवण गोचर होने वाले (निरूपमम्) उपमातीत उपमातीत (जैनं) जिनेन्द्र भगवान के (वचनं) स्वरनाम कर्म वर्गणा जनित वचन (वः) तुम्हारी (पातु) रक्षा करे।

भावार्थ–वह जिनेन्द्र का वचन जो गंभीर है, मीठा है अतिमनहरण करने वाला है, हितकारी है, कंठ ओठ आदि वचन के कारणों से रहित है, पवन के रोकने से प्रकट है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहने वाला है, सर्व भाषामयी है दूर व निकट में समान सुनाई देता है, व उपमा रहित है सो वह श्रुत हमारी रक्षा करे।।९५।।

येनाऽज्ञानतमस्ततिर्विघटिता ज्ञेये हिते चाहिते।
हानादानमुपेक्षणं च समभूत्तस्मिन्पुनः प्राणिनाम्।।
येनेयं दृगुपैति ताँ परमतां भूतं च येनानिशं।
तज्ज्ञानं मम मानसांबुजमुधे स्तास्सूर्यवर्योदयम्।।९६।।

अन्वयार्थ–(येन) जिसने (अज्ञानतमस्ततिर्विघटिता) अज्ञान रूपी अन्धकार की पंक्ति का नाश किया है (च) और (येन) जिससे (हिते) हित (च) और (अहिते) अहित रूप (ज्ञेये) ज्ञेय में (हानादानं) त्याग ग्रहण (च) और (उपेक्षणं) उपेक्षा (समभूत्) उत्पन्न हुई है (येन) जिससे (तस्मिन्) उस ज्ञान में (पुनः) पुनः (प्राणिनां) प्राणियों को (इयं) यह (दृग) सम्यग्दर्शन (च) और (वृतं) चारित्र (अनिशं) रात्रिदिन (तां) उस (परमतां) उत्कृष्टता को (उपैति) प्राप्त होता है (तत्) वह (ज्ञानं) ज्ञान (मम) मेरे (मानसाम्बुजमुदे) मन रूपी कमल को हर्षित करने के लिए (सूर्यवर्योदयम्) श्रेष्ठ सूर्य का उदय स्वरूप (स्यात्) होवे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिससे अज्ञान अंधकार का प्रसार दूर हो जाता है तथा जिससे जानने योग्य हितकारी और अहितकारी पदार्थों को जान लेने पर अहित का त्याग, हित का ग्रहण तथा परम वैराग्य भाव प्राप्त होता है। जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, परमत की श्रद्धा दूर हटती है व जिसके द्वारा रात्रिदिन मिथ्याचारित्र दूर रहता है ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य का उदय मेरे मन रूपी कमल को विकसित करे।।९६।।

मल्लिनाथ स्तुति

ज्ञानं यदीयं विगतोपमानं
सर्व यदन्त परमाणुखर्वम् ।
पायात्स सर्वावृतिजादपाया
न्नाथस्त्रिलोक्या वरमल्लिनाथः।।९७।।

अन्वयार्थ–(यदीयं) जिसका (ज्ञानं) ज्ञान (विगतोपमानं) उपमा रहित है (यदन्तः) जिसके अन्तर्गत (सर्वं) सारे तीन लोक (परमाणुखर्वम्) परमाणु के समान लघु हैं (सः) वह (त्रिकोल्याः) तीन लोक के स्वामी (वरमल्लिनाथः) श्रेष्ठ मल्लिनाथ (सर्वावृतिजात्) सर्व आवरण से उत्पन्न (अपायात्) अपाय से मेरी (हमारी) (पायात्) रक्षा करे।

भावार्थ–जिसका ज्ञान उपमा रहित है जिसके अन्तर्गत सारे तीन लोक के पदार्थ परमाणु समान लघु है। वह तीन लोक के स्वामी श्रेष्ठ मल्लिनाथ भगवान सर्व आवरण से उत्पन्न अपाय से मेरी (हमारी) रक्षा करे।।९७।।

इति श्री वीरनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिते श्री आचारसार नाम्नि शास्त्रे

ज्ञानाचारवर्णनात्मकश्चतुर्थोऽधिकारः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमोऽधिकारः

संभवनाथ स्तुति

श्री संभवं भजत संचितपुण्यराशे
र्नुर्येन भीकरतरस्य भवांबुराशेः।
लीलासमुत्तरणकारणयानपात्रं
प्रोक्तं गुणोत्करनिराश्रवणं चरित्रम्।।१।।

अन्वयार्थ–(येन) जिसने (संचितपुण्यराशेः) संचित पुण्य राशि वाले (भवांबूराशेः) संसार समुद्र से (भीकरतरस्य) भयभीत (नुः) मानव के लिए (लीलासमुत्तरणकारणयानपात्रं) लीला मात्र से समुत्तरणकारणभूत यानपात्र (गुणोत्करनिराश्रवणं) गुणोत्कर और निरास्रव (चारित्रं) चारित्र (प्रोक्तं) कहा है (श्रीसंभवं) उस संभवनाथ को (भजत) भजो।

भावार्थ–जिसने पुण्यराशि का संचय किया है और जिसने संसार से भयभीत मानव को संसार समुद्र पार करने के लिए निश्छिद्र नौका के समान, गुणोत्कर, निराश्रव, चारित्र का वर्णन किया है। भव्यजन उस श्री संभवनाथ की सेवा करो। संचित पुण्यराशि का अर्थ है सम्यग्दृष्टि, क्योंकि सम्यग्दृष्टि ही सम्यग्चारित्र का पात्र होता है।।१।।

चारित्र का लक्षण

मनोवचनकायानां पापरूपक्रियात्ययात्।
पंचप्रकारं चारित्रं स्वस्वरूपमुपैत्यलम्।।२।।

अन्वयार्थ–(मनोवचनकायानां) मन, वचन, काय की (पापरूपक्रियात्यात्) पापरूपी क्रियाओं के नाश हो जाने से (अलं) शीघ्र ही (पंचप्रकारं) पंच प्रकार का (चारित्रं) चारित्र अपने स्वरूप को (उपैति) प्राप्त होता है।

भावार्थ–पंचेन्द्रिय विषय वासनाओं में कर्कश प्रवृत्ति मानसिक पापक्रिया है। कर्कश, सावद्य, निन्दनीय असत्य वचनों में प्रवृत्ति वाचनिक पापक्रिया है। जीवघात आदि में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्ति कायिक पापक्रिया है। इन मन, वचन, काय की पाप क्रियाओं का नाश होना ही चारित्र है।।२।।

चारित्र के भेद

तत्सामायिकं छेदोपस्थापनं तद्द्वयात्मिका।

परिहारर्द्धिः स्यात्सूक्ष्मसांपरायश्च संयमः।।३।।

यथाख्यातमितीदानीमेषां रूपं निरुप्यते।

संसारगरलोदारलतोन्मूलनकारिणाम् ।।४।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(तत्) वह चारित्र (सामायिकं) सामायिक (छेदोपस्थापनं) छेदोपस्थापना-(तद्वयायित्मका) उन दोनों के साथ (परिहारर्द्धिः) परिहारविशुद्धि (सूक्ष्मसांपरायः) सूक्ष्मसाम्परायिक (च) और (यथाख्यातं) यथाख्यात (इति) इस प्रकार पांच का (संयमः) संयम है (इदानीं) इस समय (संसारगरलोदारलतोन्मूलनकारिणाम्) संसार रूपी विष की लता को मूल से उखाड़ने में कारण (एषां) इन चारित्रों का (रूपं) स्वरूप (निरूप्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है। उसमें परिहारविशुद्धिसंयम, सामायिक छेदोपस्थापना के साथ ही होता है और सामायिक, छेदोपस्थापना ये दोनों संयम एक साथ रहते हैं। सूक्ष्म सांपराय और यथाख्यात यह अकेले रहते हैं। यह पाँचों प्रकार के संयम संसार रूपी विष की बेल को उखाड़ने के लिए समर्थ हैं अर्थात् संसार का नाश चारित्र से ही होता है। आगे चारित्र के स्वरूप का निरूपण करते हैं।।३-४।।

सामायिक चारित्र का लक्षण

समभेदेन त्यागेनाऽयोऽयनं मतेः।

समयः स एव चारित्रं सामायिकमुत्तमम्।।५।।

अन्वयार्थ–(अभेदेन सप्) अर्थात् अभेद रूप (त्यागेन) त्याग से (मतेः) मति का (अयनं) गमन (अयः) अय है (समयः) समय (स) वह (एव) ही (उत्तमं) उत्तम (सामायिकं) सामायिक (चारित्रं) चारित्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–सम् का अर्थ है अभेद रूप अर्थात् जिसमें हिंसा, झूठ चोरी आदि भेद रूप त्याग नहीं है उसको सम् कहते हैं। अभेदरूप त्याग से अयनं प्रवृत्ति हो उसे समय कहते हैं और अभेदरूप से सर्व सावद्य योग का त्याग करना उत्तम सामायिक चारित्र है। अथवा सम्पूर्ण संयमों का जिसमें अन्तर्भाव होता है उसको सामायिक चारित्र कहते हैं। वह सामायिक दो प्रकार का है। नियतकाल और अनियतकाल। स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक है और ईर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है। यह सामायिक चरित्र ही सर्वोत्कृष्ट चारित्र है।।५।।

छेदोपस्थापना चारित्र का लक्षण

व्रतसमितिगुप्तिगैः पंचपंचत्रिभिर्मतैः।
छेदैर्भेदैरूपात्यर्थ स्थापनं स्वस्थितिक्रिया।।६।।
छेदोपस्थापनं प्रोक्तं सर्वसावद्यवर्जने।
व्रतं हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मसंगेष्वसंगमः।।७।।

अन्वयार्थ–(पंचपंचत्रिभिः) पांच, पांच, तीन (व्रतसमितिगुप्तगैः) व्रत, समिति गुप्तिगत (छेदैः) छेदों के द्वारा (स्वस्थितिक्रिया) स्वस्थितिक्रिया (अर्थ) अर्थ (स्थापनं) स्थापना को (उपाति) प्राप्त होता है वह (छेदोपस्थानं) छेदोपस्थापना है (हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मसंगेषु) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह में (असंगमः) संगम रहित (सर्वसावद्य-वर्जने) सर्व सावद्य प्रवृत्ति नहीं होना (व्रतं) व्रत (प्रोक्तं) कहा है।

भावार्थ–प्रमाद के वश से अहिंसा आदि व्रतों में दूषण लग जाने पर आगमोक्त विधि से उस दोष का प्रायश्चित करके पुनः व्रतों का ग्रहण करना छेदोपस्थापना चारित्र है। व्रतों में दोष लग जाने पर पक्ष, मास आदि दीक्षा का छेद (नाश) करके पुनः व्रतों का ग्रहण करना छेदोपस्थापना चारित्र है। व्रतों में दोष लग जाने पर पक्ष, मास आदि दीक्षा का छेद (नाश) करके पुनः व्रतों में स्थापना करना अथवा सङ्कल्प और विकल्पों का त्याग करना भी छेदोपस्थापना चारित्र है। हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुनसेवन और परिग्रहाभिलाष इनसे विरक्त होना व्रत है।।७-८।।

"हिंसा अहिंसा का स्वरूप और फल"

हिंसाया हिंस्यतां हिस्रः प्राप्नोति बहुजन्मसु।
प्राणिहिंसात्महिंसैव सातस्त्याज्या हितैषिणा।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(हिस्रः) हिंसकप्राणी (बहुजन्मसु) बहुत जन्मों से (हिंसायाः) हिंसा के (हिंस्यतां) हिंस्यता को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है (प्राणिहिंसा) प्राणियों का घात करना (आत्महिंसा एवं) आत्मि हिंसा ही है (अतः) इसलिए (हितैषिणा) हितवांच्छक पुरुषों के द्वारा (सा) वह (त्याज्या) छोड़ने योग्य है।

भावार्थ–जो दूसरे प्राणियों का घात करता है वह घातक अनेक योनियों में दूसरों के द्वारा मारा जाता है, अनेक दुःखों को भोगता है। क्योंकि पर प्राणियों की हिंसा करना आत्महिंसा है इसलिए दुःखभीरू ज्ञानियों को हिंसा करना छोड़ देना चाहिये।।८।।

कषायपरिणामः स्यात्प्राणिप्राणवियोजकः

हिंसाहिंसकपापानुबंधबन्धादिकारणम्।।९।।

अन्वयार्थ–(प्राणिप्राणवियोजकः) प्राणियों के प्राणों का वियोजक (कषायपरिणामः) कषाय परिणाम (हिंसाहिंसकपापानुबंधबन्धादिकारणं) हिंसा, हिंसक पापानुबंध वन्धादि कारण (स्यात्) है।

भावार्थ–प्राणियों के प्राण विघातक कषाय परिणाम ही हिंसा, हिंसक, पाप के अनुबन्ध का कारण हैं अर्थात् प्राणियों के द्रव्य प्राणों का घात हो अथवा नहीं हो, परन्तु हमारे मारने के परिणाम हैं, वही कर्म बंध के कारण हैं।।९।।

उक्तं च सिद्धान्ते

स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं न तत्पराधीनमिह द्वयं भवेत्।

प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः प्रमादयुक्तस्तुसदैव हिंसकः।।१०।।

अन्वयार्थ–(स्वयं) स्वयं ही (अहिंसा) अहिंसा है (स्वयं) (एवं) ही (हिंसनं) हिंसा है (हि) क्योंकि (इह) इस लोक में (तत्) वह (द्वयं) हिंसा अहिंसा दोनों (पराधीनं) पराधीन (न) नहीं है (अत्र) इसमें (प्रमादहीनः) प्रमादहीन (अहिंसकः) अहिंसक (भवति) होता है (तु) और (प्रमादयुक्तः) प्रमादयुक्त (सदा) हमेशा (हिंसकः) हिंसक (एव) ही है।

भावार्थ–इस जगत में हिंसा और अहिंसा पराधीन है। स्वयं ही प्राणी अपने परिणामों से हिंसक बनता है और अपने परिणामों से ही अहिंसक बनता है। क्योंकि जो राग द्वेषादि प्रमाद युक्त भावों से रहित है वह अहिंसक और जो कषाध्यावसायों से युक्त है वह सदैव हिंसक है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् रागद्वेष की उत्पत्ति होना ही हिंसा है, और रागद्वेष का उत्पन्न नहीं होना अहिंसा है।।१०।।

पापों के १०८ भंग

संरंभसमारंभारंभैः कायवाङ्मनोयोगैः।
कृतकारितानुमतिभिः क्रोधाद्यैश्च कारणैः।।११।।
पूर्वपूर्वैर्युतैः सर्वैः प्रत्येकं सोत्तरोत्तरैः।
स्यादुपर्युपर्यन्योन्याभ्यासेऽष्टोत्तरं शतम् ।।१२।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(संरंभसमारंभारंभैः) संरंभ, समारंभ, आरंभ (कायवाङ्मनोयोगैः) काय, वचन, मनयोग (कृतकारितानुमतिभिः) कृत, कारित, अनुमोदना (च) और (क्रोधाद्यैः) क्रोधादि चार (कारणैः) कारणों से (प्रत्येकं) प्रत्येक (पूर्वेपूर्वै) पूर्व पर्व से (युतैः) युक्त (सर्वैः) सर्व (सोत्तरोत्तरैः) उत्तरोत्तर के साथ (उपर्युपरि) ऊपर २ से (अन्योन्यभ्यासे) परस्पर गुणा कर देने पर (अष्टोत्तरं शतम्) १०८ भेद (स्यात्) होते हैं।

भावार्थ–संरंभ, समारंभ और आरंभ को मन वचन काय से गुणा करने से नौ भेद होते हैं। उन नौ भेदों से कृत, कारित, और अनुमोदना से गुणा करने से सत्ताईस भेद होते हैं। तथा इन सत्ताईस भेदों से चार कषायों को गुणा करने से १०८ भेद होते हैं। संरंभ, संभारंभ और आरंभ = ३ मन, वचन, काय = ३ × ३ = ९ कृत, कारित, अनुमोदना ९ × ३ = २७ क्रोध, मान, माया, लोभ = २७×४ = १०८ ।।११-१२।।

संरंभ १	संभारंभ २	आरंभ ३	
मन ०	वचन ३	काय ६	
कृत ०	कारित ९	अनुमोदना १८	
क्रोध ०	मान २७	माया ५४	लोभ ८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संरंभो हिंसनोक्तत्वं हिंसोपकरणार्जनम्।

समारंभोंऽगिघातादिः स्यादारंभो दयोज्झितः।।१३।।

अन्वयार्थ–(हिंसनोक्तत्वं) हिंसक प्रयत्न (संरंभ;) संरंभ है। (हिंसोपकरणार्जनम्) हिंसा के उपकरणों का अर्जन (सभारंभः) समारंभ है (दयोज्झितः) दया रहित (अंगिघातादिः) प्राणियों का घातादि (आरंभ) आरंभ (स्यात्) है।

भावार्थ–हिंसा करने का प्रयत्न करना संरंभ है। हिंसा के उपकरणों का अर्जन करना सभारंभ है। हिंसा के कार्यों में प्रवृत्ति करना आरंभ है।।१३।।

कायवाङ्मनसां कर्मयोगः स्वेन कृतं कृतम्।

स्वप्रयुक्तान्यनिष्पन्नं हिंसनं कारितं मतम्।।१४।।

अनुमतमनुज्ञातं कषायः कषतीत्यसौ।

क्रोधो मानश्च माया स्याल्लोभः संयमदर्शने।।१५।।

अन्वयार्थ–(कायवाङ्मनसां) काय, वचन, मन की (कर्मयोगः) क्रिया को योग कहते हैं। (स्वेन) अपने द्वारा (कृतं) किये हुए को (कृतं) कृत (मतं) माना है। (स्वप्रयुक्तान्यनिष्पन्नं) स्व के द्वारा प्रेरित अन्य के द्वारा किया हुआ (हिंसनं) हिंसन (कारितं) कारित (मतं) माना है। (अनुज्ञातं) अनुमोदित हिंसा को (अनुमत्तं) अनुमत कहते हैं। (संयमदर्शने) संयम और दर्शन को (कषति) नाश करती है दूषित करती है (इति) इसलिए (क्रोधः) क्रोध (मानः) मान (माया) माया (लोभः) लोभ (कषायः) कषाय (स्यात्) हैं।

भावार्थ–मन, वचन, काय से स्वतः घात करना कृत हिंसा है। दूसरों से करवाना कारित, और करने की अनुमोदना करना अनुमोदित हिंसा है। जो संयम और सम्यक्त्व का घात करती है, दूषित करती है, वह कषाय है। कषाय के क्रोध, मान, माया और लोभ चार भेद हैं।।१४-१५।।

परोपघातकृच्चेतो युक्तायुक्तेक्षणक्षयम्।

क्रोधोंगकंपदाहाक्षिरागवैवर्ण्यलक्षणः।।१६।।

अन्वयार्थ–(युक्तायुक्तेक्षणक्षयम्) युक्तायुक्त विचार से रहित (परोपघातकृच्चेतः) दूसरे के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घात की वृत्ति वाला (अंगकंपदाहाक्षिरागवैवर्ण्यलक्षणः) शरीर में कम्पन दाह, नेत्रों में लालिमा, मुख की विवर्णता, लक्षण क्रोध हैं।

भावार्थ–दूसरे के घात करने के परिणाम होना, युक्तायुक्त के विचार से शून्य हृदय होना, अंगकम्प, दाह, नेत्र की लालिमा आदि क्रोध के चिह्न हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न उचित, अनुचित कार्य का विवेक नष्ट कर देने वाला, प्रज्वनलरूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है। क्रोध का आवेश होते ही शारीरिक स्थिति परिवर्तित हो जाती है।।१६।।

परुषेर्ष्यं मनो मानो निर्दयः परमर्दनः।

स्वोन्नतानत्यहंकारः परासहनलक्षणः।।१७।।

अन्वयार्थ–(मनः) मन की (परुषेर्ष्यं) कठोरता, ईर्ष्या (निर्दयः) दया का अभाव (परमर्दनः) दूसरों के मर्दन के भाव (स्वोन्नतानत्यहंकार;) अपने से बड़ो को नमस्कार नहीं करना, अहंकार (परासहनलक्षणः) दूसरों की उन्नति को सहन नहीं करना लक्षण (मानः) मान है।

भावार्थ–कुल, बल, ऐश्वर्य, बुद्धि, जाति, ज्ञान आदि किसी विशेषता का घमण्ड करना मान है। अभिमानी मनुष्य अपनी अहंवृति का पोषण करता है, उसे अपने से बढ़कर या अपनी बराबरी का गुणी कोई दीखता नहीं। मान = अपने किसी गुण पर झूठी अहंवृत्ति, मद = अहंभाव में तन्मयता, दर्प = उत्तेजनापूर्ण अहंभाव, स्तम्भ = अविनम्रता, गर्व = अहंकार, अत्युत्क्रोश = अपने को दूसरों से श्रेष्ठ कहना, परपरिवाद = परनिन्दा, उत्कर्ष = अपनी उन्नति प्रकट करना, अपकर्ष = दूसरों की हीनता प्रकट करना, उन्नत=दूसरों को तुच्छ समझना, उन्नतनाम = गुणी के सामने न झुकना, दुर्नाम = यथोचित रूप से न झुकना। ये सब मान की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।।१७।।

नानाप्रतारणोपायैर्वचनाऽऽकुलिता मतिः

माया विनयविश्वासाऽऽभासचेतोहराकृतिः।।१८।।

अन्वयार्थ–(नानाप्रतारणोपायैः) नाना प्रकार के प्रतारण के उपायों द्वारा (वंचनाऽऽकुलिता) ठगने के लिए आकुलित (मतिः) मति और (विनयविश्वासाऽभासचेतोहराः) विनय, विश्वासभास से चित्त को हरण करने के लिए (आकृतिः) आकृति (माया) माया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–कपटाचार माया कषाय है। शास्त्र में इसके पन्द्रह रूप गिनाये हैं जो इस प्रकार हैं। माया = कपटाचार, उपाधि = ठगे जाने योग्य व्यक्ति के समीप जाने का विचार, निकृति = छलने के अभिप्राय से अधिक सम्मान करना, वलय = वक्रतापूर्ण वचन, गहन=ठगने के विचार से अत्यन्त गूढ़भाषण करना, नूम=ठगाई के उद्देश्य से निकृष्टतम कार्य करना, कल्क = दूसरे को हिंसा के लिए उभारना, कुरूप = निन्दित व्यवहार, जिह्मता = ठगाई के लिए कार्य मन्द करना, किल्विषिक = भांडों की भांति कुचेष्टा करना, आदरणता = अनिच्छित कार्य भी अपनाना, गूहनता = अपनी करतूत को छिपाने का प्रयत्न करना, वंचकता = ठगी, प्रतिकुंचनता = किसी के सरल रूप से कहे गये वचनों का खंडन करना, सातियोग = उत्तम वस्तु में हीन वस्तु मिश्रित करना, यह सब माया की ही विभिन्न अवस्थाएँ हैं।।१८।।

परिग्रहग्रहातीवलाल संमानसं स्मृतः।

लोभो लाभातिमोदात्तरक्षणार्त्तोपलक्षितः।।१९।।

अन्वयार्थ–(परिग्रहग्रहातीवलालसं) परिग्रह के ग्रहण में अतीव लालायित (मानसं) मानसिक भावना। और (लाभातिमोदात्तरक्षणार्त्तोपलक्षितः) परिग्रह के लाभ से अतिप्रसन्नता, ग्रहण किये हुए परिग्रह का रक्षण से उत्पन्न हुए आर्त्त ध्यान से उपलक्षित भाव (लोभः) लोभ (स्मृतः) कहा गया है।

भावार्थ–मोहनीय कर्म के उदय से चित्त में उत्पन्न होने वाली तृष्णा या लालसा लोभ कहलाती है। लोभ की निम्नलिखित सोलह अवस्थाएँ होती हैं। लोभ = संग्रह करने की वृत्ति, इच्छा = अभिलाषा, मूर्छा = तीव्रतम संग्रहवृत्ति, कांक्षा = प्राप्त करने की आशा, गृद्धि = प्राप्त वस्तु में आसवित होना, तृष्णा = जोड़ने की इच्छा, वितरण की विरोधीवृत्ति, मिथ्या = विषयों का ध्यान, अभिध्या = निश्चय से डिग जाना, आशंसना = इष्टप्राप्ति की इच्छा करना, प्रार्थना = अर्थ आदि की याचना, लालपनता = चाटुकारिता, कामाशा = काम की इच्छा, भोगाशा = भोग्य पदार्थों की इच्छा, जीविताशा = जीवन की कामना, मरणाशा = मरने की कामना, नन्दिराग = प्राप्त सम्पत्ति में अनुराग।।१९।।

दयामृतरसास्वादं मानसं स्यादहिंसनम्।

जनतात्यन्तविश्रं ममैत्रीस्वर्मोक्षकारणम्।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(जनतात्यन्तविश्रंभमैत्रीस्वर्मोक्षकारणं) प्राणियों का अत्यन्त विश्वास, मैत्री, स्वर्ग और मोक्ष का कारण (दयामृतरसास्वादं) दयामृतरस के आस्वादात्मक (मानसं) मानसिक प्रवृत्ति (अहिंसनम्) अहिंसा (स्यात्) है।

भावार्थ–प्राणियों के अत्यन्त विश्वास का कारण मैत्री भाव, कारक, स्वर्ग मोक्ष का देने वाला, दयामृत के रस का आस्वादक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति अहिंसा है।।२०।।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपसमितीर्विदुः।
युक्ताः शुद्धेक्षितान्नादिभुक्त्याऽहिंसनभावनाः।।२१।।

अन्वयार्थ–(शुद्धेक्षितान्नादिभुक्त्या) शुद्ध आलोकित अन्नादि से (युक्तः) (वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपसमितिः) वचन गुप्ति, मनगुप्ति, ईर्या समिति, आदाननिक्षेपसमिति (अहिंसाभावनाः) अहिंसा व्रत की भावना (विदुः) कही है।

भावार्थ–वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपानभोजन ये अहिंसाव्रत की पांच भावनाएँ हैं। वचन को वश में रखना वचनगुप्ति और मन को वश में रखना मनोगुप्ति है। चार हाथ जमीन देखकर चलना ईर्यासमिति है। भूमि को देख और शोधकर किसी वस्तु को रखना या उठाना आदान निक्षैपण समिति है। सूर्य के प्रकाश में देखकर खाना और पीना आलोकितपानभोजन है।।२१।।

सत्यमहाव्रत का वर्णन

वचः सत्यमसत्यं वा स्मृतं जीवाहितोहितम्।
जिह्वाच्छेदादिसर्वस्वहारैनोहेतुरात्मनः।।२२।।

अन्वयार्थ–(आत्मनः) आत्मा के (जिह्वाच्छेदादिसर्वस्वारैनोहेतुः) जिह्वाच्छेदादि, सर्वस्वहरण और पाप कारणभूत (सत्यं) सत्य (वा) अथवा (असत्यं) असत्य (वचः) वचन वह (जीवाहितेहितं) जीव को अहितकारी (स्मृतं) कहा गया है।

भावार्थ–जो आत्मा के जिह्वाच्छेद, सर्वस्वहरण का कारण है, पाप का बीज है, वह सत्य वा असत्य वचन जीवों के अहितकारी कहे हैं। अर्थात् सत्य वचन भी सावद्य युक्त हो, आत्मा का अहितकारी हो तो असत्य ही है।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतं सत्यमसत्यं वा वचः प्राणिहितेहितम्।

येन सम्मानविश्वासयशांसि लभते नरः।।२३।।

अन्वयार्थ–(येन) जिस वचन से (नरः) मानव (सन्मानविश्वासयशांसि) सन्मान, विश्वास और यश को (लभते) प्राप्त करता है वह (सत्यं) सत्य (वा) अथवा (असत्यं) असत्य (वचः) वचन (प्राणिहितोतिम्) प्राणियों के हित के लिए (कृतं) है।

भावार्थ–जिन वचनों से मानव सन्मान, विश्वास और यश को प्राप्त करता है। वह सत्य वा असत्य वचन प्राणियों के हितकारी कहे हैं। अर्थात् जो वचन आत्महितकारी है, रागद्वेष रहित है वह असत्यवचन भी सत्य है जैसे गुरुओं की धर्मानुराग से की हुई विशिष्ट स्तुति। अरतिकारण, वैर कलह का कारण सत्य वचन भी असत्य है। जैसे अंधे को अंधी कहना असत्य है।।२३।।

सत्य के भेद

तन्नामस्थापनारूपभावसंवृतिदेशगम्।

संयोजनाजनपद प्रतीत्यसमयाश्रितम्।।२४।।

संभावनोपमात्रं चेत्यादि सत्यमनेकधा।

सोदाहरणमत्रैषां लक्षणं वक्ष्यतेऽधुना।।२५।।

अन्वयार्थ–(तत्) वह (सत्यं) सत्य (नामस्थापनारूपभावसंवृतिदेशगम्) नाम, स्थापना, रूप, भाव, संबृति, देशज (संयोजनाजनपदप्रतीत्समयाश्रितम्) संयोजना, जनपद, प्रतीत्य, समय, आश्रित (संभावना) संभावना (च) ओर (उपमात्रं) उपमा (इत्यादि) इत्यादि (सत्यं) सत्य (अनेकधा) अनेक प्रकार का है। (अत्र) यहाँ पर (एषां) इन सत्यों का (सोदाहरणं) उदाहरण सहित (लक्षणं) लक्षण (अधुना) इस समय (वक्ष्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–नामसत्य, स्थापनासत्य, रूपसत्य, भावसत्य, संवृतिसत्य, देशजसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, प्रतीत्यसत्य, समयसत्य, आश्रितसत्य, उपमासत्य इत्यादि अनेक प्रकार के सत्य के भेद हैं। यहाँ पर उन भेदों का वर्णन करते हैं।।२४-२५।।

व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थमर्थाभावोऽपि लौकिकैः।

कृतं नाम मतं नामसत्यं चन्द्रादिवन्नृषु।।२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अर्थाभावोऽपि) अर्थ का अभाव होने पर भी (व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं) व्यवहार की प्रसिद्धि के लिये (लौकिकैः) लौकिक जनों के द्वारा (कृतं) किया हुआ (नाम) नाम (नामसत्यं) नामसत्य (मतं) माना है (नृषु) मनुष्यों में (चन्द्रादिवत्) चन्द्रादि नाम के समान।

भावार्थ–अर्थ का अभाव होने पर भी व्यवहार की सिद्धि के लिये लौकिक पुरुषों के द्वारा किया हुआ नाम नामसत्य है। जैसे किसी मनुष्य का नाम चन्द्रराज रख दिया। यद्यपि उसमें चन्द्रमा का गुण नहीं है, फिर भी नाम रूप से सत्य है। क्योंकि चन्द्रराज नाम से लोकव्यवहार होता है यह नाम सत्य है॥२६॥

धर्मोऽन्यवस्तुनः स्थाप्यतेऽन्यस्मिन्ननुरुपिणि।

अन्यस्मिन्वा यया मत्या स्थापना सा तया वचः।।२७।।

सत्यं स्यात्स्थापनासत्यं प्रतिविंवाक्षतादिषु।

चन्द्रप्रभजिनेन्द्रोऽयमित्यादि वचनं यथा।।२८।।

अन्वयार्थ–(यथा) जिस (मत्या) मति से (अन्यवस्तुनः) अन्यवस्तु का (धर्मः) धर्म (अनुरुपिणि) अनुरूपिणी (अन्यस्मिन्) अन्य वस्तु में, (वा) अथवा (अन्यस्मिन्) अतदाकार वस्तु में (स्थाप्येत) स्थापित किया जाता है (सः) वह (स्थापना) स्थापना है (तथा) उस स्थापना के द्वारा (वचः) वचन की (सत्यं) सत्यता (स्थापनसत्यं) स्थापनासत्य (स्यात्) है (यथा) जैसे (प्रतिविंबाक्षतादिषु) प्रतिविम्ब और अक्षतादि में (अयं) वह (चन्द्रप्रभजिनेन्द्रः) चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र हैं। (इत्यादि) इत्यदि (वचनं) वचन है।

भावार्थ–जिस बुद्धि से किसी अन्य वस्तु का धर्म, तदाकार अदताकार अन्य बस्तु में आरोपण किया जाता है वह स्थापना सत्य है। अथवा किसी वस्तु में उससे भिन्न वस्तु के साथ सम्बन्ध करने वाला स्थापना सत्य है। जैसे चन्द्रप्रभभगवान आदि की प्रतिमा में यह चन्द्रप्रभ है यह तदाकार स्थापना सत्य है और अक्षत आदि में यह चन्द्रप्रभ हैं, ऐसा कहना अदताकार स्थापना सत्य है॥२७-२८॥

रूप्यते दृश्यते प्रायो यत्तद्रूपं तदर्पणम्।

रुपसत्यं वचः श्वेता वलाकेत्यादिकं यथा।।२९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यत्) जो (प्रायः) प्राय (रुप्यते) बहुलता से (दृश्यते) देखा जाता है (तत्) वह (रूपं) रूप है (तदर्पणं) उसमें अर्पणकारी (वचः) वचन (रूपसत्यं) रूपसत्य हैं। (यथा) जैसे (श्वेता) श्वेत (बलाका) बलाका (इत्यादिकं) इत्यादि शब्द।

भावार्थ–जो चक्षुइन्द्रिय के द्वारा देखा जाता है वह रूप सत्य है। जैसे वगुले श्वेत हैं।।२९।।

छद्मस्थज्ञानिनो वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्।

दृष्टदोषोपहारेण गुणपोषणकृन्मनः।।३०।।

भावस्तेन वचः सत्यं भावसत्यमिदं वयः।

प्रासुकं नेदमित्यादि वचो वा वृत्तिगोचरम् ।।३१।। (युग्मं)

अन्वयार्थ–(वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्) वस्तु के याथात्म्य के अदर्शन में (अपि) भी (छद्मस्थज्ञानिनः) छद्मस्थज्ञानी के (दृष्टदोषोपहारेण) दृष्ट दोष के उपहार में (गुणपोषणकृन्मनः) गुणों को पुष्ट करने वाला जो मन है वह (भावः) भाव है (तेन) उस भाव के द्वारा (वचः) वचन की (सत्यं) सत्यता है (भावसत्यं) वह भाव सत्य है जैसे (इदं) यह (पयः) दूध (प्रासुकं) प्रासुक है (इदं) यह (न) प्रासुक नहीं है (इत्यादि) इत्यादि (वृत्तिगोचरं) वृत्तिगोचर (वचः) वचन भाव सत्य कहते है।।३०-३१।।

भावार्थ–आगमोक्त विधि निषेध के अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थों में संकल्पित परिणामों को भाव कहते हैं। उसके आश्रित जो वचन हो उसको भावसत्य कहते हैं। जैसे शुष्क, पक्व, तप्त और नमक, मिर्च, खटाई आदि से अच्छी तरह मिलाया हुआ द्रव्य प्रासुक होता है। यहाँ पर यद्यपि सूक्ष्म जीवों को इन्द्रियों से देख नहीं सकते तथापि आगम प्रामाण्य से उसकी प्रासुकता का वर्णन किया जाता है। इसलिये इसी तरह के पापवर्जन वचन को भावसत्य हैं।।३०-३१।।

या सा सर्वानुमत्या वाक् ख्याता सवृत्तिसत्यवाक्।

कारणान्तरजत्वेऽपि पकेजमिति वाग्यथा।।३२।।

अन्वयार्थ–(या) जो (सर्वानुमत्या) सबकी अनुमति से (वाक्) वचन (ख्याता) कहे जाते हैं (सा) वह (संवृतिसत्यवाक्) संवृतिसत्यवचन है (यथा) जैसे (कारणान्तरजत्वे) कारणान्तर से उत्पन्न होने पर (अपि) भी कमल को (पंकजं) पंकज कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जो वचन सर्वसज्जनों की अनुमति से कहे जाते हैं वह संवृति सत्य वचन है जैसे अनेक कारणों से उत्पन्न होने पर भी कमल को "पंकज" कहना संवृत्ति कहना संवृति सत्य है॥३२॥

सर्वदेशैकवाग्देशसत्यमोदनपाकवाक्।

यथा वृत्यावृतो ग्राम इति ग्रामादिवर्णनम्।।३३।।

अन्वयार्थ–(सर्वदेशैकवका) सर्वदेश के एक वचंन (देशसत्यं) देश सत्य है (यथा) जैसे (ओदनपाकवाक्) ओदन पाक वचन (वृत्यावृतग्रामः) वृत्यावृत ग्राम (इति) इस प्रकार (ग्रामादिवर्णनम्) ग्रामादि का वर्णन है।

भावार्थ–जिस देश वासी मनुष्यों के व्यवहार में जो शब्द रूढ़ हो रहा है, उसको देश सत्य कहते हैं। जैसे–भक्त, भात, भाटु, भेटु, वंटक, मुकुड़, क्रूलू, चोरु आदि भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही वस्तु कही जाती है, अथवा किसी देश में ग्राम को वृत्ति कहते हैं, कोई वृत्या कहते हैं, यह सब जनपद सत्य हैं॥३३॥

सेनौषधादिविन्यासविभाकक्रमवर्णना।

वाणी संयोजना चक्रव्यूहैलाश्चादिवाग्यथा।।३४।।

अन्वयार्थ–(सेनौषधादिविन्यासविभागक्रमवर्णना) सेना औषधि आदि विन्यास विभाग क्रम की वर्णन करने वाली (वाणी) वाणी (संयोजना) संयोजनासत्य है (यथा) जैसे (चक्रव्यूहैलाद्यादिवाग्यथा) चक्रव्यूह, एलादिचूर्ण आदि वचन।

भावार्थ–जो बहुत सी वस्तु का संयोग करने पर नाम होता है उसको संयोजना सत्य कहते हैं जैसे सेना के समूह की रचना को चक्रव्यूह कहते हैं। और इलायची आदि बहुत सी वस्तुओं का मिश्रण करके जो औषधि तैयार होती है, उसको एलादि चूर्ण कहते हैं यह संयोजना सत्य है॥३४॥

नानाजनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु यद्वचः।

धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरुपोपायदेशकम् ।।३५।।

प्रत्येकं नियतं सत्यं स्यात्तज्जनपदाश्रयम्।

धर्मोदयात्मका राजा राणोत्यादिवचो यथा।।३६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(आर्यानार्यभेदेषु) आर्य, अनार्य भेद वाले (नानाजनपदेषु) नाना जनपदों में (धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरूपोपायदेशकम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि स्वरूप के उपाय के उपदेशक (प्रत्येकं) प्रत्येकं में (नियतं) नियत (यत्) जो (वचः) वचन है (तत्) वह (जनपदाश्रयं) जनपदाश्रय (सत्यं) सत्य (स्यात्) हैं। (यथा) जैसे (धर्मोदयात्मका) धर्मोदयात्मक (राजा) राजा (राणा) राणा (इत्यादिवचः) इत्यादि वचन

भावार्थ–अनायै और आर्य के भेद से भाषा दो प्रकार की है। उसमें जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष पुरुषार्थ के उपदेशात्मक वचन प्रत्येक पदार्थ में नियत हैं उसको जनपदाश्रय सत्य कहते हैं। जैसे धर्म, अधर्म, काल, आकाशादि वा राजा राणादि वचन जनपद सत्य हैं।।३५-३६।।

कञ्चनार्थ प्रतीत्यान्यस्वरूपान्तरभाषणम्।

प्रतीत्यसत्यं वीरोऽयं ज्ञानीत्यादिवचो यथा।।३७।।

अन्वयार्थ–(कंचनार्थ) किसी अर्थ की (प्रतीत्य) प्रतीति का (अन्यस्वरूपान्तरभाषणं) अन्यस्वरूपान्तर से भाषण करना (प्रतीत्यसत्यं) प्रतीति सत्य है (यथा) जैसे (अयं) यह (वीरः) वीर है (ज्ञानी) ज्ञानी है (इत्यादि वचः) इत्यादि वचन।

भावार्थ–किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ के स्वरूप का कथन करना प्रतीत्य सत्य है। जैसे किसी वीर की अपेक्षा से किसी को वीर वा ज्ञानी कहना। अथवा किसी छोटे वा पतले पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थों को बड़ा, लम्बा वा स्थूल कहना। इसका दूसरा नाम आपेक्षिक सत्य भी है।।३७।।

सिद्धान्तः समयस्तेन प्रसिद्धान्तप्ररुपणम्।

वचः समयसत्यं स्यात्प्रमाणसंश्रयम्।।३८।।

अन्वयार्थ–(सिद्धान्तः) सिद्धान्त (समयः) समय है (तेन) उस सिद्धान्त से (प्रमाणनयसंश्रयम्) प्रमाण और नय के आश्रित (प्रसिद्धान्तप्ररूपणम्) सिद्धान्त की प्ररूपणा करने वाले (वचः) वचन (समयसत्यं) समय सत्य है।

भावार्थ–प्रमाण और नय के द्वारा सिद्धान्त की प्ररूपणा करना समय सत्य है। जैसे निश्चय नय की अपेक्षा आत्मा अजर अमर है, और व्यवहार नय की अपेक्षा मरता है जन्मता है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह दोनों ही कथन नय विवक्षा से सत्य हैं क्योंकि समय में ऐसा कथन है इसलिए यह समय सत्य है।।३८।।

संभावनेति सोक्ता वाग्वस्तुसद्भावभावना।

शक्रः शक्नोति तर्ज्जन्योद्धर्त्तुं मेरुमपीति वा।।३९।।

अन्वयार्थ–(वस्तुसद्भावभावना) वस्तु के सद्भाव की संभावना का जो (वाग्) वचन है (सा) उसको (संभावनेति) संभावना सत्य (उक्ता) कहा है (वा) जैसे (शक्रः) इन्द्र (तर्जन्या) अपनी तर्जनी अंगुली से (मेरु) मेरु को (अपि) भी (उद्धर्तुं) उठाने के लिए (शवनोति) समर्थ है (इति) इत्यादि वचन।

भावार्थ–असंभवता का परिहार करते हुए किसी वस्तु के किसी धर्म का निरूपण करने में प्रवृत्त वचन को संभावना कहते हैं। जैसे इन्द्र अपनी तर्जनी अंगुली से मेरु को उठाने में समर्थ है। यद्यपि इन्द्र ने कभी भी मेरु को नहीं उठाया है तथापि उसकी शक्ति का संभावना की अपेक्षा ऐसा कहना संभावना सत्य है।।३९।।

उपमोपमयाऽगुण्यगुण्यादैः परिवर्णना।

आयुः पल्योपमं ग्रीष्मो वह्निरित्यादि वाग्यथा।।४०।।

अन्वयार्थ–(अगुण्यगुण्यादेः) अगुण्य गुण्यादि की (उपमया) उपमा के द्वारा (परिवर्णना) वर्णन करना (उपमा) उपमा सत्य है (यथा) जैसे (आयुः) आयु (पल्योपमं) पल्योपम है (वह्निः) अग्नि (ग्रीष्मः) ग्रीष्म है (इत्यादि) इत्यादि (वाग्) वचन।

भावार्थ–दूसरे प्रसिद्ध वा सदृश पदार्थ को उपमा कहते हैं। उपमा के आश्रय से जो वचन बोला जाता है, उसको उपमा सत्य कहते हैं जैसे आयु पल्योपम है इसमें रोम खण्डों का आधारभूत गड्ढा पल्य अर्थात् खास के सदृश होता है इसलिये इसको पल्य कहते हैं। अग्नि ग्रीष्म ऋतु के समान उष्ण है इसलिये इसमें ग्रीष्म की उपमा दी जाती है यह उपमा सत्य है।।४०।।

क्रोधभयलोभहास्यत्यागाः सत्यस्य भावनाः।

अनुवीची वचश्चेदमागमोचितभाषणम्।।४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(क्रोधभयलोभहास्यत्यागाः सत्यस्य भावनाः) क्रोध, भय, लोभ और हास्य का त्याग (आगमोचितभाषणम्) आगम के अनुसार भाषण (अनुवीची) (वचः) वचन है (इदं) यह (सत्यस्य) सत्यव्रत की (भावनाः) भावना है।

भावार्थ–शास्त्र के अनुसार वचन बोलना अनुवीची भाषण है। क्रोधप्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान भीरुप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान, अनुवीचिभाषण, ये सत्यव्रत की पांच भावना हैं।।४१।।

अचौर्य महाव्रत वर्णन

परैरदत्तस्याऽऽदाने मनः स्तेयं यदेनसाम्।
हेतुरत्राऽपि चौरस्य बन्धबन्धादिदुःखम्।।४२।।

अन्वयार्थ–(परैः) दूसरों के द्वारा (अदत्तस्य) अदत्त के (आदाने) ग्रहण में (यत्) जो (मनः) मानसिक भावना है (तत्) वह (एनसां) पाप का (हेतुः) कारण (स्तेयं) स्तेय है। (अत्र) इस भव में (अपि) भी (चौरस्य) चोर को (बधबन्धादिदुखदं) बधबन्धनादि दुख को देने वाला है।

भावार्थ–दूसरे की विना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने के भाव को स्तेय (चोरी) कहते हैं यह स्तेय पाप का कारण है और इस भव में चोर को बध बन्धनादि दुख को देने वाला है।।४२।।

स्तेयवर्जनमस्तेयं हेतु स्वर्गापवर्गयो।
जनता येन विश्वासप्रीतिख्यातिसुखास्पदम्।।४३।।

अन्वयार्थ–(स्तेयवर्जनं) स्तेय का त्याग करना (स्वर्गापवर्गयोः) स्वर्ग और मोक्ष का (हेतुः) कारण (अस्तेयं) अस्तेय है (येन) जिससे (जनता) जनता (विश्वासप्रीतिख्यातिसुखास्पदं) विश्वास, प्रीति, ख्याति और सुख का भाजन होती है।

भावार्थ–चोरी का त्याग करना स्वर्गमोक्ष का कारण अचौर्य व्रत है। यह अचौर्यव्रत जनता के विश्वास, प्रीति, ख्याति और सुख का कारण है।।४३।।

याञ्चाऽनुज्ञापना पत्युरात्तानात्मीयभावनाः।
योग्याऽन्याऽग्राह्यस्यादानमविवादः सधर्मिभिः।।४४।।

इत्यस्तेयव्रते पंच भावनाः कन्दरादिषु।
स्वभावशून्येष्वावासो मुक्तामोचितसद्मसु।।४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोपरोधाकरणं भैक्ष्यशुद्धिः सधर्मिभिः।

सहाविवाद इत्येवमथ वा पंच भावनाः।।४६।। (त्रिकम्)

अन्वयार्थ–(पत्युः) स्वामी से (यांचा) याचना करके लेना (अनुज्ञापना) अनुज्ञापन करके लेना (आत्तानात्मीयभावना) स्वीकृत वस्तु में आत्मीय भावना का अभाव (योग्यान्याग्राह्यस्य) योग्य दूसरे के अग्राह्य पदार्थ का (आदानं) ग्रहण करना (सधर्मिभिः) साधर्मियों के साथ (अविवादः) विवाद नहीं करना (इति) इस प्रकार (अस्तेयव्रते) अस्तेयव्रत की (पंचभावनाः) पाँच भावना हैं। (अथवा) अथवा (स्वभावशून्येष) स्वभाव से शून्य (कन्दरादि) कन्दरा आदि में (सुक्तामोचित सद्यसु) मुक्त और मोचित घरों में (आवासः) आवास करना (परोपरोधाकरणं) दूसरों को वाधा नहीं करना (भैक्ष्यशुद्धिः) भिक्षा की शुद्धि (सधर्मिमिः) साधर्मियों के (सह) साथ (अविवादः) विवाद नहीं करना (इति) इस प्रकार (पंचभावनाः) के अचौर्यव्रत की पाँच भावना हैं।

भावार्थ–स्वामी से याचना कर लेना, अनुज्ञापलन कर लेना, स्वीकृत वस्तु में आत्मीय भावना का अभाव, दूसरे योग्य अग्राहन को ग्रहण करना, साधर्मियों के साथ विवाद नहीं करना, इस प्रकार अस्तेयव्रत की पाँच भावना हैं। अथवा पर्वत, गुफा, वृक्षकोटर, नदीतट आदि निर्जन स्थानों में निवास करना, शून्यागारावास है। दूसरों के द्वारा छोड़े हुये स्थानों में रहना विमोचितावास है। दूसरों का उपरोध नहीं करना अर्थात् अपने स्थान में ठहरने से नहीं रोकना। परोपरोधाकरण है। आचारशास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि करना भैक्ष्य शुद्धि है और सहधर्मी भाइयों से कलह नहीं करना सधर्मा विसंवाद है। इस प्रकार अचौर्यव्रत की ये पाँच भावना हैं।।४४-४६।।

ब्रह्मचर्यमहाव्रतवर्वन

वेदतीव्रोदयात्कर्म मैथुनं मिथुनस्य यत्।

तदब्राह्मापदामेकं पदं सद्गुणलोपनम्।।४७।।

अन्वयार्थ–(वेदतीव्रोदयात्) वेदकर्म के तीव्र उदय से (यत्) जो (मिथुनस्य) मिथुन का (कर्म) कर्म (मैथुनं) मैथुन है (तत्) वह (आपदां) आपत्तियों का (एकं) एक (पदं) स्थान (सद्गुणलोपनं) सद्गुणों का घातक (अब्रह्म) अब्रह्म है।

भावार्थ–तीव्र वेदकर्म के उदय से जो मिथुन का कर्म है वह मैथुन है। उसको ही अब्रह्म कहते हैं। वह अब्रह्म (कुशील) सद्गुणों का घातक और आपत्तियों का स्थान है।।४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येन बद्धा महादेहा रदिनो मदिनोऽप्यलम्।

करेणुवशगाः क्लेशमाप्नुवन्त्यवशा नरैः।।४८।।

अन्वयार्थ–(येन) जिस अब्रह्म से (मदिनः) मद करने वाले (महादेहाः) महान शरीर के धारी (रदिनः) हाथी (करेणुवशगाः) हथिनी के वशीभूत होकर (बद्धाः) बन्धते हैं और (अवशाः) पराधीन होकर (नरैः) मनुष्यों के द्वारा (क्लेशं) क्लेश को (आप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–जगत में मैथुन के प्रभाव से मदोन्मत्त, स्वच्छन्द विचरने वाले, महाशरीर धारी, हाथी भी हथिनी के वशीभूत होकर गड्ढे में गिर जाते हैं, और परवश होकर क्लेश भोगते हैं।।४८।।

यच्चैवं जनतामान्यबलिनां गुणशालिनाम्।

निदानं मानहान्यादिक्लेशानामिह देहिनाम्।।४९।।

अन्वयार्थ–(च) और (एवं) इस प्रकार (यत्) जो (इह) इसलोक में (जनतामान्यबलिनां) जनता में मान्य बलशाली (गुणशालिनां) गुणशाली (देहिनां) प्राणियों के (मानहान्यादिक्लेशानां) मानहानि आदि क्लेशों का (निदानं) कारण है।

भावार्थ–यह अब्रह्म इस लोक में महानगुणशाली बलवान और मानी पुरुषों के भी मानहानि आदि क्लेशों का कारण है।।४९।।

जिह्मान्तः करणो ब्रह्मा निजपुत्रीमपत्रप;।

जगाम किल येनार्द्धनारीत्त्वं च महेश्वरः।।५०।।

गोविन्दो मन्दधीः प्रीत्या गोपपत्न्या गृहं गतः।

तयाऽपि च किलात्यन्तं चतुरोक्त्या प्रतारितः।।५१।।

अन्वयार्थ–(येन) इसके कारण (जिह्मान्तकरणः) कुटिल है अन्तःकरण जिसका ऐसा ब्रह्मा (अपत्रपः) निर्लज्ज होकर (निजपुत्रीं) अपनी पुत्री को (जगाम) प्राप्त हुआ, सेवन किया (च) और (किल) निश्चय से (महेश्वरः) महेश्वर (अर्द्धनारी त्वं) अर्द्धनारीत्व को (जगाम) प्राप्त हुआ (मन्दधीः) मन्दबुद्धि (गोविन्द) गोविन्द (प्रीत्या) प्रीति से (गोपपत्न्याः) ग्वालिन के (गृहं) घर (गतः) गया (च) और (तया) उस गोपालिन की (चतुरोत्त्या) चतुरोक्ति के द्वारा (प्रतारितः) ठगा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिस काम के वशीभूत हुये निर्लज्ज ब्रह्मा ने अपनी पुत्री का सेवन किया, महेश्वर अर्धनारीश्वर हुआ अर्थात् अपने आधे अंग में दिनरात स्त्री को लिपटाये रहता था, मन्दबुद्धि नारायण प्रीति से गोपपत्नी के घर गया और उनके हास मिश्रित वचनों के वशीभूत होकर ग्वालिनियों द्वारा सेवन किया गया था।।५०-५१।।

ब्रह्मा जिह्वितसन्मतिर्बहुमुखः काष्ठेक्षणाद्भीतितः।
पार्वत्यास्तनुसंप्रवेशविवशश्चार्द्धांगनारी हरः।।५२।।
विष्णुर्वारधिमध्यगो गतधृतिस्तद्दीर्घनिद्रोऽभवत्।
त्रैलोक्योन्मथनोत्थमन्मथविभोर्मन्ये शराद्दुर्धरात्।।५३।।

अन्वयार्थ–(त्रैलोक्योन्मनोत्थमन्मथविभोः) तीन लोक का मथन करने वाले कामदेव के (दुर्धरात्) दुर्धर (शरात्) वाणों से (काष्ठेक्षणात्) दिशाओं के देखने से (भीतितः) भयभीत हुआ (जिह्वितसन्मतिः) नष्ट हो गई है सन्मति जिसकी ऐसा (ब्रह्मा) ब्रह्मा (बहुमुख;) बहुमुखी (च) और (हरः) महादेव (पार्वत्या) पार्वती के (तनुप्रवेशविवशः) शरीर में प्रवेश करने के लिए विवश अर्धनारीश्वर बना (वारिधिमध्यग) वारिधि के मध्य में गया हुआ (गतधृतिः) जिसका धैर्य नष्ट हो गया है ऐसा (विष्णुः) विष्णु (तद्दीर्घनिद्रः) दीर्घनिद्रा वाला (अभवत्) हुआ था (मन्ये) मैं ऐसा मानता हूँ।

भावार्थ–मैं ऐसा मानता हूँ कि, त्रिलोक विजयी काम के दुर्धरवाणों से दिशाओं के देखने से भयभीत कुटिलमति ब्रह्मा बहुमुख वाला हुआ था। कामवाण से पीड़ित महादेव पार्वती के शरीर में प्रवेश के वशीभूत होकर अर्धनारीश्वर हुआ था। मन्मथ की परवशता से ही विष्णु धैर्यहीन होकर समुद्र के मध्य में दीर्घनिद्रा को प्राप्त हुआ था।।५२।।

मारापराभिधानेनाब्रह्मणाऽन्येऽपि तादृशाः।
जाता विडम्बनापात्रमिदं चित्रं हि नो यतः।।५३।।
कादम्बरीरसोन्मादं वा हिताहितमोहितम्।
त्रिवेदोदीरणाभ्रान्तस्वान्तं तद्वदिदं जगत्।।५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(मारापराभिधानेन) मार है दूसरा नाम जिसका ऐसे (अब्रह्मण) अब्रह्म से (अन्ये) और (अपि) भी (तादृशाः) ऐसे (विडम्वनापात्रं) विडम्वनापात्र (जाता;) हुये हैं (इदं) यह (चित्रं) आश्चर्य (न) नहीं है। (हि) क्योंकि (यतः) जिससे (त्रिवेदोदीरशाभ्रान्तस्वान्तं) तीन वेद की उदीरणा से भ्रान्त है मन जिसका ऐसा (हिताहितमोहितं) हिताहित के विषय से मोहित (इदं) यह (जगत्) संसार (कादम्बरीरसोन्मादं) कादम्बरी के रस से उन्मत (तद्वत्) के समान होता है।

भावार्थ–काम का दूसरा नाम मार है। इस मार की चोट से घायल हुए प्राणी मदिरापान से उन्मत्त हुये प्राणी के समान विवेक से शून्य होकर विडम्बना के पात्र होते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।।५४।।

श्रुत्वाऽलोक्य न सीधु माद्यति जनः स्पृष्ट्वा च माद्यत्यदः।
पीत्वैव श्रवणोक्षणानुभवनैः कान्ताजनानां पुनः।
लोको मुह्यति चित्रमत्र तु परं प्रभ्रष्टदृष्टिश्रुति-
स्त्यक्त्वा सत्वगुणं नयं च विनयं स्याद्दुर्मतिर्दुर्गतिः।।५५।।

अन्वयार्थ–(सीधु) मदिरा को (आलोक्य) देखकर (च) और (स्पृष्ट्वा) स्पर्श करके (जनः) जन न नहीं (माद्यति) मदोन्मत होते हैं (अदः) उस मदिरा को (पीत्वा) पीकरके (एव) ही (माद्यति) मदोन्मत्त होते हैं (पुनः) पुनः (तु) परन्तु (अत्र) इसमें (परं) महान (चित्रं) आश्चर्य है कि (कान्ताजनानां स्त्रियों के (श्रवणेक्षणानुभवनैः) श्रवण, दर्शन और मनन के द्वारा (लोकः) लोक (मुह्यति) मोहित होते हैं (प्रभ्रष्टदृष्टिश्रुतिः) प्रभ्रष्ट है श्रवण और नेत्र जिसके ऐसा वह (दुर्मतिः) दुर्मति (सत्वगुणं) सत्वगुण (विनयं) विनय (च) और (नयं) नय को (त्यक्त्वा) छोड़कर (दुर्गति) दुर्गति (स्यात्) होता है–अर्थात् दुर्गति में जाता है।

भावार्थ–मदिरा को देखकर स्पर्शकर और उसका चिंतवन करके मानव मोहित नहीं होता है, केवल मदिरा को पीकर के ही मोहित होता है। परन्तु वनिताजनों को देखकर, उनके वचनों को सुनकर और उनको चिंतवन से मोहित होकर दुर्मति मनुष्य सत्वगुणों, गुरुओं के विनय और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय को छोड़कर दुर्गति में जाता है। इसलिये वनिताजन की संगति मदिरा से भी अधिक हानिकारक है।।५५।।

वेदाऽतुच्छोदयादिच्छा पुंस्त्रीतद्द्वयसंश्रया।

स्त्रीपुंनपुंसकानां स्यादह्मैकाकिनामपि।।५६।।

अन्वयार्थ–(वेदातुच्छोदयात्) वेद के तीव्र उदय से (एकाकिनां) अकेले (अपि) भी (स्त्रीपुंसनपुंसकानां) स्त्री, पुरुष, नपुंसकों के (पुंसस्त्रीतद्द्वयसंश्रया) पुरुष स्त्री और उन दोनों के संश्रय (इच्छा) इच्छा (अब्रह्म) अब्रह्म (स्यात्) हैं।

भावार्थ–वेद कर्म के तीव्र उदय से एकाकी स्त्री, पुरुष, नपुंसकों के स्त्री, पुरुष और दोनों को सेवन की जो अभिलाषा है उसका नाम अब्रह्म हैं।।५६।।

तेनानुन्मथितं चेतो यत्तद् ब्रह्मव्रतं स्मृतम्।

व्रतव्रतालतामूलं मलं स्वर्गापवर्गयोः।।५७।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (तेन) उस अब्रह्म के द्वारा (अनुन्मथितं) मंथन रहित (चेतः) चित्त है (तत्) उसको (व्रतव्रातलतामूलं) व्रतों का समूहरूपी लता का मूल (स्वर्गापवर्गयोः) स्वर्ग और मोक्ष का कारण (ब्रह्मव्रतं) ब्रह्मव्रतं (स्मृतं) माना है।

भावार्थ–जिनका चित काम वाणों से पीड़ित नहीं है वही अहिंसादि व्रतों का मूल स्वर्गमोक्ष का कारण ब्रह्मचर्य व्रत है।।५७।।

यन्माहात्म्यान्महाविद्या सेवोद्या वा वसन्त्यलम्।

जनेऽप्यसंयते यच्च नाम्ना देवव्रतं मतम्।।५८।।

अन्वयार्थ–(यन्माहात्म्यात्) जिसके माहात्म्य से (असंयते) असंयत (जने) मनुष्य में (अपि) भी (महाविद्याः) महाविद्या (सेवोद्या) सेवादि करने में उद्युक्त (वा) अथवा (वसंति) रहती हैं (च) और (यत्) जिसे (नाम्ना) नाम से (देवव्रत) देवव्रत (मतं) कहा गया है वह ब्रह्मचर्य व्रत है।

भावार्थ–जिस महान व्रत के माहात्म्य से असंयमी जनों में भी महाविद्या प्राप्त होती है अथवा गुरुओं की सेवादि की भावना और आज्ञा का पालन आदि इसी व्रत से होता है अतः यह व्रत नाम से देवव्रत है।।५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रीणां रागकथांगावलोकनादरयोः स्मृतिः।

त्यागाः पूर्वं रतस्योच्चैर्वृष्येष्टस्य रसस्य च।।५९।।

स्त्रीसंसक्तवसत्यंगसंस्कारपरिवर्जनम्।

चेति पंच वदन्त्यार्यास्तुरीयव्रतभावनाः।।६०।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(स्त्रीणां) स्त्रियों की (रागकथा) रागकथा (अंगावलोकनादरयोः) अंगों का अवलोकन, आदर का (पूर्वरसस्य) पूर्वानुभूत रस के (स्मृति) स्मरण (च) और (उच्चैः) उच्च (वृष्येष्टस्य) गरिष्ठ (रसस्य) रस का (त्यागाः) त्याग करना (स्त्रीसंसक्तवसत्यंगसंस्कारपरिवर्जनम्) स्त्रियों से संसक्त वसति और अंग के संस्कार का त्याग (इति) इस प्रकार (आर्याः) आचार्य (पंच) पाँच (तुरीयव्रतभावनाः) चौथे व्रत की भावना (वदन्ति) कहते हैं।

भावार्थ–स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, तन्मनोहरांगनिरीक्षणत्याग, पूर्वरतानुस्मरणत्याग, वृष्येष्टरसत्याग और स्वशरीरसंस्कारत्याग ये ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं। स्त्रियों में राग उत्पन्न करने वाली कथाओं के सुनने का त्याग, स्त्री रागकथाश्रवणत्याग है। स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग तन्मनोहरांगनिरीक्षणत्याग हैं। पूर्वकाल में भोगे हुये विषयों का स्मरण नहीं करना पूर्वरतानुस्मरण त्याग है, कामवर्धक, वाजीकरण और मन तथा रसना को अच्छे लगने वाले रसों को नहीं खाना वृष्येष्टरस त्याग है। अपने शरीर का किसी प्रकार का संस्कार नहीं करना स्वशरीरसंस्कारत्याग है। ये चतुर्थव्रत की पाँच भावनाएँ हैं। इनसे ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा होती है।।५९-६०।।

परिग्रह त्याग महाव्रत

"बाह्यान्तरंगसंगेषु मूर्छाशक्तिः परिग्रहः।

हिंसाद्यवद्यमूलं स्यात्पापापायैककारणम्"।।[१]

अन्वयार्थ–(बाह्यान्तरंगसंगेषु) बाह्याभ्यंतर परिग्रह में (मूर्छाशक्तिः) मूर्च्छा और आसक्ति (परिग्रहः) परिग्रह है (हिंसाद्यवद्यमूलं) वह हिंसा आदि सावद्य का मूल (पापापायैककारणं) पाप के आगमन का प्रमुख कारण (स्यात्) है।

---

१. यह श्लोक एक प्रति में अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–वाह्य और आभ्यंतर परिग्रहों में मूर्छा और आसक्ति परिग्रह है। यह परिग्रह हिंसादि दोषों का मूल और सम्पूर्ण पापों के आस्रव का कारण है।

परिग्रह त्याग (अपरिग्रह) महाव्रत

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं द्विपदोंगो चतुःपदः।
यानं शय्याऽऽसनं कुप्यं भांडं चेति बहिर्दश।।६१।।

अन्वयार्थ–(क्षेत्रं) क्षेत्र (वास्तु) वास्तु (धनं) धन (धान्यं) धान्य (द्विपदोंगी) दुपद् (दासीदास) (चतुष्पदः) चतुष्पद पशु (यानं) यान (शय्याऽसनं) शय्या-आसन (कुप्यं) कुप्य (च) और (भांडं) भांड (इति) इस प्रकार (वहिः) वहिरंग परिग्रह (दश) दश प्रकार है।

भावार्थ–क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद (दासीसास) चतुष्पद (हाथी घोड़ा आदि चार पैर वाले पशु) यान (वाहन रथादि) शय्या-आसन, कुप्य वस्त्रादि और भाँड ये दश प्रकार के बहिरंग परिग्रह हैं।।६१।।

मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम्।
रागद्वेषौ च संगाः स्युरन्तरङ्गाश्चतुर्दश।।६२।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम्) मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा आदि (षट्कषाय) क्रोध, मान, माया, लोभ (कषाय) चतुष्ट्य (च) और (रागद्वेषौ) रागद्वेष (चतुर्दश) ये चौदह (अंतरंगाः) अंतरंग (संगाः) परिग्रह हैं।

भावार्थ–मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन वेद, क्रोध, मान, माया और लोभ के चार कषाय ये चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह हैं।।६२।।

सचित्ताचित्तरुपैतत्संगसंगिपराः परैः।
मानासुहान्यतिक्लेशानाप्नुवन्त्यवशाशयाः।।६३।।

अन्वयार्थ–(सचित्ताचित्तरुपैतत्संगिपराः) सचित्त, अचित रूप इस परिग्रह के ग्रहण में तत्पर मानव (परै.) दूसरों के द्वारा (मानासुहान्यतिक्लेशान्) अपमान, प्राणहानि, आदि अतिसंक्लेशों को (प्राप्नुवंति) प्राप्त होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–चेतन स्त्री, दासी, दास, आदि, अचेतन घर, भूषण, वसनादि परिग्रह में आसक्त चित्तवाले मानव दूसरे प्राणियों के द्वारा बध बन्धन मानहानि आदि अनेक क्लेशों को प्राप्त होते हैं।।६३।।

या मूर्च्छाच्छेदिनी संगे चेतोवृत्तिरसंगता।

यया सा आत्यन्तिकी मुक्तिश्रीरुपैति यतिंस्वयम्।।६४।।

अन्वयार्थ–(संगे) परिग्रह में (या) जो (मूर्च्छाक्छेदिनी) मूर्च्छा की नाशक (चेतोवृत्तिः) चित्त की वृति (या) वह (असंगता) अपरिग्रहता है (यया) जिसके द्वारा (आत्यन्तिकी) अविनाशिक (मुत्तिश्रीः) मुक्तिरूपी लक्ष्मी (यतिं) यतिराज को (स्वयं) स्वमेव (उपैति) प्राप्त होती है।

भावार्थ–बाह्य चेतन, अचेतन पदार्थों में मूर्छा का अभाव होना, वा परिग्रह में चित्त की आसक्ति नहीं होना ही अपरिग्रह है। इस अपरिग्रह महाव्रत के प्रभाव से अविनाशी, आत्यन्तिकी मुक्तिरूपी लक्ष्मी अपरिग्रही मुनिराज को स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।।६४।।

स्वात्माऽभ्यन्तररागाद्या यदि त्याज्याः परिग्रहाः।

बाह्यास्तन्वादयः किं नासातासन्ततिकारिणः।।६५।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (स्वात्माऽभ्यन्तररागाद्याः) अपनी आत्मा के अभ्यन्तर में होने वाले रागादि (परिग्रहाः) परिग्रह (त्याज्याः) छोड़ने योग्य हैं तो (असातासन्ततिकारिणः) असाता वेदनीय कर्म के संतति के कारणभूत (तन्वादयः) शरीरादि (बाह्याः) बाह्य परिग्रह (किं) क्या (न त्याज्याः) त्याज्य नहीं है अपितु त्याज्य ही है।

भावार्थ–यदि रोगद्वेषादि आत्मा के अभ्यन्तर परिग्रह छोड़ने योग्य हैं तो क्या असातावेदनीय का कारण भूत, बाह्य शरीर आदि परिग्रह छोड़ने योग्य नहीं है अर्थात् बाह्य परिग्रह भी समाधि और ध्यान के बाधक हैं–इसलिये इनको भी छोड़ना चाहिये।।६५।।

सेवातन्द्राः सुरेन्द्राद्याः क्रूरो मारश्च किंकरः।

यस्यामद्भुतमाहात्म्यसंगताऽसंगता ततः।।६६।।

अन्वयार्थ–(यस्यां) जिस असंगता के होने पर (सुरेन्द्राद्याः) इन्द्र आदि (सेवातन्द्राः) सेवा करने में निरा आलसी होते हैं (च) और (क्रूरः) क्रूर (मारः) कामदेव राक्षस आदि (किंकरः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किंकर हो जाते हैं (ततः) इसलिये (असंगता) अपरिग्रह व्रत (अद्भुतमहात्म्यसंगता) आश्चर्यकारी माहात्म्य संगत है।

भावार्थ–अपरिग्रह महाव्रतधारी के चरणों की निरालसी होकर इन्द्र निरन्तर सेवा करता है। क्रूर, व्यन्तर देव, राक्षस आदि किंकर हो जाते हैं। हिंसक प्राणी शांत हो जाते हैं। इस अपरिग्रह का माहात्म्य आश्चर्यकारी है।।६।।

परिग्रहग्रहोन्मुक्तेरभ्रान्ता स्वांतसंततिः।
निजानन्दामृतामन्दस्यन्दिनी कैर्न वर्ण्यते।।६७।।

अन्वयार्थ–(परिग्रहग्रहोन्मुक्तेः) परिग्रहरूपीपिशाच से उन्मुक्त मानव के (अभ्रान्ता) भ्रांति रहित (निजानन्दामृतामन्दस्यन्दिनी) निज आनन्दरूपी अमृत के अमन्द प्रवाह को बहाने वाली (स्वांतसंततिः) मनकी संतति (कैर्न) किसके द्वारा (वर्ण्यते) वर्णन की जाती है।

भावार्थ–जो परिग्रहरूपी पिशाच से उन्मुक्त है, उस मानव के अभ्रांत निजानन्दरूपी अमृत प्रवाह वाली चित्त संतति का वर्णन करने के लिये कौन समर्थ है। अर्थात् आर्त्त, रौद्र ध्यान का कारण भूत परिग्रह के त्याग करने से जो निजानन्द रस से मानव सुखी होता है–वह निजानन्द चैतन्य विलास का सुख अचिंत्य और वचनातीत है।।६७।।

स्यामनोज्ञामनोज्ञाक्षपञ्चकार्येषु वर्जनम्।
भावनापञ्चकं रागद्वेषयोरपरिग्रहे।।६८।।

अन्वयार्थ–(मनोज्ञामनोज्ञाक्षपंचकार्येषु) मनोज्ञ और अमनोज्ञ पंचेन्द्रियों के विषयों में (रागद्वेषयोः) रागद्वेष का (वर्जनं) त्याग करना (अपरिग्रहे) अपरिग्रह महाव्रती की (भावनापंचकं) पाँच भावना हैं।

भावार्थ–स्पर्शनादि पंचेन्द्रियों के मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों में रागद्वेष का त्याग करना अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावना है।।६८।।

महाव्रत की निरूक्ति

महान्तमर्थमोक्षं यत् साधयन्ति महान्तितत्।
व्रतान्याचारितानीति वा महद्भिःसुधीधनैः।।६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यत्) जो (महान्तं) महान (अर्थ) अयं (मोक्षं) मोक्ष को (साधयंति) सिद्ध करते हैं। (वा) अथवा (महद्भिः) महान (सुधीधनैः) सुबुद्धिरूपी धन वालों के द्वारा (आचरितानि) आचरण किये जाते हैं (इति) इस प्रकार (महान्ति) महान (व्रतानि) महाव्रत (स्युः) होते हैं।

भावार्थ–महान बुद्धिमान ज्ञानी सम्यग्दृष्टि महापुरुषों के द्वारा आचरण किये जाते हैं इसलिये महाव्रत है अथवा इनसे महान अर्थ मोक्ष की सिद्धि की जाती है इसलिये इनको महाव्रत कहते हैं।।६९।।

रात्रि भुक्ति त्याग

व्रतत्राणाय कर्त्तव्यं रात्रिभोजनवर्जनम्।
सर्वथान्नान्निवृत्तिस्तत्प्रोक्तंषष्ठमणुव्रतम्।।७०।।

अन्वयार्थ–(व्रतत्राणाय) व्रतों की रक्षा करने के लिये (रात्रिभोजनवर्जनं) रात्रि भोजन का त्याग (कर्त्तव्यं) करना चाहिए (सर्वथा) सम्पूर्णरूप से (अन्नान्निवृत्तिः) अन्न की निवृत्ति नहीं होती है इसलिये इसे (षष्ठं) षष्ठम (अणुव्रतं) अणुव्रत (प्रोक्तं) कहा है।

भावार्थ–अहिंसादि व्रतों की रक्षा करने के लिये रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिये। सर्वथा आहार मात्र का त्याग नहीं करना है परन्तु रात्रि में भोजन नहीं करना है, इसलिये एकदेश आहार त्याग होने से रात्रि भोजन त्याग व्रत षष्ठम अणुव्रत कहलाता है।

रात्रिभुक्तौ व्रतानां स्यान्नाशः शंका च तत्क्षये।
प्राणितस्याऽऽत्मनो हानिरंगयङ्गविषसंगमात्।।७१।।

अन्वयार्थ–(रात्रिभुक्तौ) रात्रि में भोजन करने में (व्रतानां) व्रतों का (नाशः) नाश (तत्क्षये) व्रतों के क्षय (शंका) शंका (च) और (अंग्यंगविषसंगपात्) प्राणियों के अंग के विष के संयोग से (प्राणितस्य) जीव के (आत्मनोहानि) आत्महानि (स्यात्) होगी।

भावार्थ–रात्रि में भोजन करने से व्रतों का नाश होता है। व्रतों के नाश होने की शंका रहती है तथा रात्रि में भोजन करने से विषैले जीव भोजन में मिल जाते हैं इसलिये प्राणों का नाश भी संभव है।।७१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'पाँच समितियों का वर्णन'

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गकर्मसु।
संयत्नादितयः पञ्चवृत्तयः समितिप्रथाः।।७२।।

अन्वयार्थ–(ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गकर्मसु) गमन, भाषण, आहार, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग क्रियाओं में (संयत्नात्) भले यत्न से (इतयः) प्रवृत्ति करना (पञ्चवृत्तयः) ये पाँच प्रकार की वृत्ति (समितिप्रथाः) समिति प्रसिद्ध हैं।

भावार्थ–"सं" का अर्थ है यत्नपूर्वक। इति का अर्थ है प्रवृत्ति। "सं इति" समिति। अर्थात् गमन में, वचन में, भिक्षा में, आदान निपेक्षण में मलमूत्रक्षेपण में सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना समिति है। यह समिति पाँच प्रकार की है।।७२।।

'ईर्यासमिति'

सार्द्रां कर्दमशेवालजलपुष्पफलाविलाम्।
इलां त्यक्तांकुरानीकप्राणिवीजब्रजाकुलाम्।।७३।।

काष्ठेष्टकाष्मलोष्ठादिकृतवर्त्माऽसमं चलम्।
त्यक्त्वा संशयितं चात्मपातासंयमहेतुकम्।।७४।।

मार्गे रथाश्वगोयूथनरादिचरणाहतिः।
प्रासुकेऽपगताऽऽयातप्राणिप्रालेयजालके।।७५।।

प्रभाकरकरवातस्पष्टज्ञेयार्थसार्थिनी।
योगिनस्तीर्थयात्रात्मगुरुकार्यादिभागिनः।।७६।।

स्थित्वा कार्यवशान्मन्दं मृगवद्दिग्विलोकिनः।
पुरो युगान्तरे प्राणिवीक्षणार्पितचेतसः।।७७।।

मन्दं न्यस्त्पदापास्तद्रुतातीवविलंबिनः।।
द्विपेन्द्रमन्दयानस्य स्यादीर्यासमितिर्गतिः।।७८।।षटकम्।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(सार्द्रां) गीलापन सहित (कर्दमशेवालजलपुष्पफलाविलाम्) कीचड़, शेवाल, जल, पुष्प, फल से व्याप्त (अंकुरानीकप्राणिवीजव्रजाकुलाम्) अंकुर अनेक प्राणी और बीज के समूह से युक्त (इलां) पृथ्वी को (त्यक्त्वा) छोड़कर (असमं) असम (चलं) चलायमान (च) और (आत्मपातासंयमहेतुकं) अपने गिरने और असंयम का कारण भूत (संशयितं) संशयित (काष्ठेष्टकाष्मलोष्ठादिकृतवर्त्म) काष्ट, ईंट, पत्थर, लोष्ठ आदि के बने हुये मार्ग को (त्यक्त्वा) छोड़कर (रथाश्वगोयूथनरादिचरणाहतिः) रथ, घोड़े, गायों का समूह, मनुष्यादि के चरणों से (अपगताऽऽयातप्राणिप्रालेयजालके) नष्ट हो गई है गमनागमन करने वाले प्राणियों से प्रालेय (हिम) का समूह जिसमें (प्रभाकरकरव्रातस्पष्टज्ञेयार्थसार्थिनी) सूर्य की किरणों के समूह से स्पष्ट है ज्ञेयपदार्थों का समूह जिसमें ऐसे (प्रासुके) प्रासुक (मार्गे) मार्ग में (तीर्थयात्रात्मगुरुकार्यादिभागिनम्) तीर्थयात्रा, अपने गुरु के कार्यादि (कार्यवशात्) किसी कारण से (मन्दं) मन्द-मन्द (स्थित्वा) खड़े होकर (मृगवाद्दिग्विलोकिनः) मृग के समान दिशा का अवलोकन करने वाले (पुरः) सामने (युगान्तरे) चार हाथ प्रमाण (प्राणिवीक्षणचेतसः) प्राणियों के देखने में अर्पित है चित्त जिसका (मन्दं) मन्द-मन्द (न्यस्तपदापास्तद्रुतातीवविलंविनः) रखे हुए चरणों से दूर किया है द्रुतगमन और अतीव विलम्ब (गमन) जिसने ऐसे (योगिनः) योगी की (द्विपेन्द्रमन्दयानस्य) द्विपेन्द्र के समान (गतिः) गति (ईयासमितिः) ईयासमिति (स्यात्) होती हैं।

भावार्थ–जो आर्द्र हो, कीचड़, शेवाल, जल, पुष्प आदि से युक्त हो, जिसमें अंकुर, बीज, जीवजन्तु भरे हों उस भूमि पर नहीं चलना चाहिये। असम, चलाचल, आत्मपात और असंयम का कारणभूत ऐसे काष्ठ और ईंट, पत्थर, लोष्ट आदि के बने हुये मार्ग में नहीं चलना चाहिये। और जो मार्ग, रथ, घोड़ा, गायों का समूह, मनुष्य आदि के चरणों से मर्दित हो, जिस मार्ग में प्राणियों का समूह आदि नहीं हो, जहाँ सूर्य की किरणों से पदार्थ स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्रासुक है, ऐसे मार्ग में चार हाथ प्रमाण आगे भूमि का अवलोकन करके गुरु के दर्शन, तीर्थ यात्रादि के निमित्त कार्य के वशीभूत होकर हिरण के समान दशों दिशाओं का अवलोकन करके हाथी के समान जो योगी का मन्द-मन्द गमन करना है वह ईर्यासमिति है।।७४ से ७८।।

''भाषासमिति''

सत्यमोषोभयासत्यमोषभेदा चतुर्विधा।
भाषाद्यां सत्यबोधार्थवाग्घटे घटवाग्यथा।।७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोषभाषा विपार्यासब्यवसायार्थगोचरा।
यथा मरीचिकाचक्रे वार्वाक्साऽनेकभेदगा।।८०।।
धर्मैर्विवक्षितै; सत्यऽसत्ये चार्थविवक्षतैः।
वाक् प्रवृत्तोभयाख्या सा भाषेतीहेष्यते यथा।।८१।।
घटाकृत्तिव्यपेताया धारणाद्भूरिवारिणः।
कुंडिकाया घटाख्यैवं बहुभेदमिदं वचः।।८२।।

अन्वयार्थ–(सत्यमोषोभयासत्यमोषभेदा) सत्य, असत्य, उभय, सत्यामोष के भेद से (भाषा) भाषा (चतुर्विद्या) चार प्रकार की हैं। (सत्यवोधार्थवाग्) सत्य वोधार्थवचन (आद्याभाषा) प्रथम सत्य भाषा है (यथा) जैसे (घटे) घट में (घटवाग्) घटवचन। (विपर्यासव्यबसायार्थगोचरा) विपर्यासव्यवसायात्मक पदार्थ गोचर (मोषभाषा) असत्य वचन है (यथा) जैसे (मरीचिकाचक्रे) मरीचिका के समूह में (वार्वाक्) पानी का वचन (सा) वह असत्यभाषा (अनेकभेदगा) अनेक भेद वाली है। (विवक्षितैः) विवक्षित (धर्मैः) धर्म के द्वारा (च) और (अर्थविवक्षितैः) अर्थ की विवक्षा से (सत्ये) सत्य (असत्ये) असत्य में (प्रवृता) प्रवृत हुये (वाक्) वचन है (सा) वह (उभयाख्या) उभयनाम की (भाषा) भाषा है (यथा) जैसे (इह) इस लोक में (भूरिवारिणः) भूरिजल के (धारणात्) धारण से (घटाकृतिब्यपेतायाः) घटाकार से रहित भी (कुंडिकायाः) कुंडिका में (घटाख्या) घटनाम (एवं) इस प्रकार (इदं) यह (वचः) वचन (अनेकभेदं) अनेक प्रकार का है।

भावार्थ–सत्य असत्य उभय और अनुभव के भेद से भाषा चार प्रकार की हैं। सत्यज्ञान का विषय रूप वस्तु का कथन करने वाली भाषा असत्य है। जैसे घट को घट कहना। विपरीत वस्तु का कथन करने वाली भाषा असत्य है जैसे मरीचिका के समूह को जल कहना। यह असत्य भाषा अनेक प्रकार की है। अर्थ की अविवक्षा और धर्म की विवक्षा से जो वचन की प्रवृत्ति होती है वह उभयभाषा है जैसे कुंडिका को घट कहना। क्योंकि कुंडिका में जलधारण क्रिया होती है, इसलिये इसको घट कहना सत्य है और घटाकृति से रहित है इसलिये उसको घट कहना असत्य है। इसलिये यह भाषा सत्यासत्य हैं।।७९-८२।।

आमंत्रणामाज्ञापनं याञ्चावाक् प्रच्छनावचः।
प्रज्ञापनावचः प्रव्याख्यानसंशयभाषणम्।।८३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छानुलोमवचनमनक्षरमयं वचः।

इत्येवमादयः सत्यमोषभेदाः सहस्रशः।।८४।।

अन्वयार्थ–(आमंत्रणां) आमंत्रण (आज्ञापनं) आज्ञापन (याञ्चावाक्) याचना वचन (प्रच्छनावचः) प्रच्छनावचन (प्रज्ञापनावचः) प्रज्ञापनावचन (प्रव्याख्यानसंशयभाषणं) प्रव्याख्यान और संशय वचन (इच्छानुलोभनवचनं) इच्छानुकूल वचन (इत्येवं) इस प्रकार (सत्यामोषभेदाः) अनुभय वचन (सहस्र): हजारों प्रकार का है।

भावार्थ–आमंत्रण, आज्ञापन, याचनावचन, प्रच्छनावचन, प्रज्ञापनावचन, प्रव्याख्यान और संशयवचन, इच्छानुकूलवचन इसप्रकार अनुभय वचन हजारों प्रकार का है।।८३-८४।।

तत्रामंत्रणमन्यस्य परत्राऽऽसक्तचेतसः।

आभिमुख्यकरं हंहो नरेन्द्रेत्यादिकं वचः।।८५।।

आज्ञापनं प्रभुत्वेनाऽऽदेशो यः स्वोक्तकारिणा।

तत्किंचिदाशु कर्त्तव्यं यन्मया दिश्यते तव।।८८।।

याञ्चा मयाऽर्थितं किंचिद्यत्तद्देयमिति त्वया।

कथ्यतां यन्मया पृष्टं तदित्यप्रच्छना वचः।।८७।।

मत्पृष्टं यत्तदादेश्यमिति प्रज्ञापना गुरौ।

प्रत्याख्यानमहं किंचित्त्यजामीति निवृत्तिवाक्।।८।।

संशीत्यैयात्किमित्यादि वचः संशयवाङ्मता।

तवेष्टं पुष्टं कुर्वेहमित्याद्येच्छानुलोमवाक्।।८९।।

बालादिसंज्ञ्यसंज्ञ्यंगिवागनक्षरवागिमाः।

न सत्यं स्पष्टताऽभावान्नसत्यं वाच्यसंभवात् ।।९०।।

अन्वयार्थ–(तत्र) उसमें (परत्राऽऽसक्तचेतसः) दूसरी जगह में आसक्त चित्त वाले (अन्यस्य) अन्य को (आभिमुख्यकरं) सन्मुख करना (आमंत्रणं) आमंत्रण है (हंहो) हे (नरेन्द्र) नरेन्द्र (इत्यादिकं) इत्यादिक (वचः) वचन। (प्रभुत्वेन) प्रभुत्व से (यः) जो (तव) तेरे लिये (आदेशः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदेश (दिश्यते) दिया जाता है। (तत्) वह (स्वोक्तकारिणः) स्वोक्त करने वाला (मया) मुझे (आशु) शीघ्र ही (कर्त्तव्यं) करना चाहिये (तत्) वह (आज्ञापनं) आज्ञापन है। (यत्) जो (किंचित्;) कुछ (मया) मैंने (अर्थितं) प्रार्थना की है (त्वया) तेरे द्वारा (तत्) वह (देयं) देने योग्य है (इति) इस प्रकार वचन (याञ्चा) याचना है। (यत) जो (मया) मैंने (पृष्ट) पूछा है (तत्) उसको (कथ्यतां) कहो वा उसका उत्तर दो (इति) इस प्रकार (आप्रच्छनावचः) आप्रच्छनावचन हैं। (यत्) जो (मत्पृष्टं) मैंने पूछा है (तदादेश्यं) वह आदेश देने योग्य हैं (इति) इस प्रकार (गुरौ) गुरु में (प्रज्ञापना) प्रज्ञापना है। (अहं) मैं (किंचित्) कुछ (त्यजामि) छोड़ता हूँ (इति) इस प्रकार (निवृत्तिवाक्) निवृत्ति के वचन (प्रत्याख्यानं) प्रत्याख्यान है। (स्यात्) यह (किं) क्या है (इत्यादि) इत्यादि (संशीति) संशय के (वचः) वचन (संशय वाक्) संशयवचन (मता) माने है। (तव) तेरे (इष्टं) इष्ट को (अहं) मैं (कुर्वे) करता हूँ (इत्यादि) इत्यादि (इच्छानुलोभवाक्) इच्छानुलोभवचन है। (बालादिसंज्ञ्य-संज्ञ्यंगिवाग्) बालक को आदि लेकर संज्ञि असंज्ञि के आदि के वचन (अनक्षरवाग्) अनक्षरवचन है (इमाः) यह आमंत्रण आदि दश प्रकार के वचन (स्पष्टताभावात्) स्पष्टता का अभाव होने से (सत्यं) सत्य नहीं है और (वाच्यसंभवात्) वाच्य की संभावना होने से (असत्यं) असत्य भी (न) नहीं है।

भावार्थ—हे देवदत्त! यहाँ आओ इस तरह के बुलाने वाले के वचनों को आमंत्रणी भाषा कहते हैं। यह काम करो, इस तरह के आज्ञा वचनों को आज्ञापनी भाषा कहते हैं। 'यह मुझे दो' इस तरह के प्रार्थना वचनों को याचनी भाषा कहते हैं। 'यह क्या है' इसतरह के प्रश्न वचनों को आप्रच्छनी भाषा कहते हैं। 'मैं क्या करूँ' इस तरह के सूचना वाक्यों को प्रज्ञापना भाषा कहते हैं। 'इसको छोड़ता हूँ' इस तरह के छोड़ने वाले वाक्यों को प्रत्याख्यानी भाषा कहते हैं। 'यह बलाका है' या पताका इस तरह के संदिग्ध वचनों को संशय वचनी भाषा कहते हैं। 'मुझको भी ऐसा ही होना चाहिये' ऐसे इच्छा को प्रगट करे वाले वचनों को इच्छानुलोभी भाषा कहते हैं। बालक को आदि लेकर संज्ञी असंज्ञी आदि जीवों के अनक्षर वचन हैं वह सब, अनुमय वचन हैं। क्योंकि इनमें स्पष्टता का अभाव है इसलिये सत्य भी नहीं है, और इन वचनों में वाच्य की संभवता है, इसलिये असत्य भी नहीं है इसलिये यह भाषा अनुभय है।।८५-९०।।

मितसत्यहितस्योक्तिर्मनः सन्देहभेदिनः।
वचसोऽनुभयस्यापि भाषासमितिरिष्यते।।९१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(मनः) मन के (सन्देहभेदिनः) सन्देह में भेदने वाले (मितसत्यहितस्य) मित, हित और सत्य (वचसः) वचनों की (अनुभयस्य) अनुभय (वचसः) वचन की (उक्तिः) वचन (भाषासमिति) भाषासमिति (इष्यते) कही जाती है।

भावार्थ–मन के संशय का नाशक, हित, मित, प्रिय अनुभय वचन बोलना भाषा समिति है।।९१।।

"एषणासमिति"

अपवित्रमिदं गात्रं विण्मूत्रादिमलाविलम्।
क्षयि न्यक्षोग्ररोगादिपीड़ानीड़ं जडात्मकम्।।९२।।

अन्वयार्थ–(इदं) यह (गात्रं) शरीर (अपवित्रं) अपवित्र हैं (विण्मूत्रादिमलाविलं) मूत्रादि मल का स्थान है (क्षयि) नाशवंत हैं (न्यक्षोग्ररोमादिपीड़ानीड़ं) न्यक्ष, उग्र रोगादि पीडा का घोंसला है (जडात्मकं) जडात्मक है।

भावार्थ–यह शरीर अपवित्र है मलमूत्रादि अमेध्य वस्तु का स्थान है। जलोदरादि उग्र रोगों का घोंसला है। विनाशीक और जड़ात्मक है।।९२।।

साहचर्यमनेनाऽऽर्यः कथं कुर्याद्दुरात्मनः।
अन्यः स्वान्यपरिज्ञानापेतचेतोहतात्मनः।।९३।।

अन्वयार्थ–(स्वान्यपरिज्ञानापेतचेतोहतात्मनः) स्वपर के परिज्ञान से रहित चित्त से नष्ट हुई है आत्मा जिसकी ऐसे (दुरात्मनः) दुरात्मा से (अन्य), (आर्यः) श्रेष्ठ पुरुष (अनेन) इस शरीर के साथ (साहचर्य) सहचरता (कथं) कैसे (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–स्वपर के विज्ञान से रहित अज्ञानी बहिरात्मा को छोड़कर दूसरा कौन ज्ञानी इस जडात्मक नाशवंत शरीर के साथ मित्रता करेगा अर्थात् नहीं करेगा।।९३।।

मिताशनादिदानेन नेयः कायस्तथाप्ययम्।
यथा रथोऽक्षससंभ्रक्षणेन स्तंभैः कुटुंबिनाम्।।९४।।

अन्वयार्थ–(तथापि) नाशवंत जडात्मक शरीर है तो भी (अयं) यह (कायः) काय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मिताशनादिदानेन) योग्य और अल्प आहारादि दान के द्वारा (नेयः) रक्षा करने योग्य है (यथा) जैसे (कुटुम्बिनाम्) कुटुम्बियों के (स्तम्भै.) समूह के द्वारा (अक्षरसम्रक्षणेन) ओंगण के द्वारा (रथः) रथ।

भावार्थ–जिस प्रकार गाड़ीवान अपने धन के इष्ट स्थान पर ले जाने के लिये तेल आदि लगाकर अपनी गाड़ी आदि की रक्षा करता है। उसी प्रकार यह अशुचि शरीर रत्नत्रय का साधन है, इसलिये प्रासुक और अल्प आहार देकर शरीर की रक्षा करना चाहिये।।९४।।

अप्राप्तावसरेणैषा रक्षणीयो मुमुक्षुणा।

कायो वहहि नो लोकः किं मूर्ध्ना दग्धुमिन्धनम्।।९५।।

अन्वयार्थ–(अप्राप्तावसरेण) नहीं प्राप्त है अवसर जिसको ऐसे (मुमुक्षुणा) मुमुक्ष के द्वारा (एषा) यह (कायः) काय (रक्षणीयः) रक्षा करने योग्य है (कि) क्या (दग्धुम्) जलाने के लिये (इन्धनं) इन्धन को (लोकं) लोक (मूर्ध्ना) मस्तक के द्वारा (नो) नहीं (वहति) धारण करते हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार जलाने के लिये लाये हुये इन्धन को लोग मस्तक पर धारण करते हैं। उसी प्रकार यह शरीर भी जलाने योग्य है, परन्तु व्रत के परिपालन का साधन है, इसलिये जब तक समाधि का अवसर नहीं प्राप्त हो तब तक मुमुक्षुओं को इसकी योग्य आहार पानी के द्वारा रक्षा करनी चाहिये।।९५।।

एतद्रत्नत्रयीपात्रं नांगत्यंगं विनाऽशनम्।

पुष्यात्ततेन सिद्ध्यर्थं स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता।।९६।।

अन्वयार्थ–(एतत्) यह (अंगं) शरीर (रत्नत्रयीपात्रं) रत्नत्रय का पात्र हैं (असनं) आहार के (विना) विना (न) नहीं (गच्छति) चलता है (तेन) इसलिये (स्वसिद्ध्यर्थ) अपनी सिद्धि करने के लिये (ततः) उस शरीर का (पुष्यात्) पोषण करे, (हि) क्योंकि (स्वार्थभ्रंशः) स्वप्रयोजन का नाश करना (मूर्खता) मूर्खता है।

भावार्थ–यद्यपि यह शरीर अपवित्र है तथापि रत्नत्रय का पात्र है। आहार के बिना इसकी स्थिति नहीं है, इसलिये स्वरूप प्राप्ति रूप अपनी सिद्धि के लिये प्रयत्नपूर्वक योग्य शास्त्रोक्त प्रासुक आहारादि से इस शरीर की रक्षा करना चाहिये। क्योंकि स्वप्रयोजन का नाश करना ही मूर्खता है।।९५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आहारकाल की योग्यता"

मत्वेति द्रव्यदेशात्मदेहप्रकृतिनिश्चितः।
कालं गवेषणस्यैषणस्य ज्ञात्वाऽर्कचारतः।।९७।।
पूर्णोदरचरत्तोकैरगारबलिकर्मणा।
छायया मुशलध्वानधूमशान्त्यादिकैरपि।।९८।।
शुद्धकायः पुरीषादिमलोत्सर्गविधानतः।
परिमृष्टात्मपूर्वापरांगभागो विलोक्य च।।९९।।
ततः पञ्च गुरुन्नत्वा भूत्वैकाग्रमतिर्यतिः।
कुर्याच्चर्या नगर्यादावदीनाननमानसः।।१००।।

अन्वयार्थ–(इति) आहार के बिना शरीर की स्थिति नहीं है। इसप्रकार (मत्वा) जानकर (द्रव्यदेशात्मदेहप्रकृतिनिश्चितः) द्रव्य, क्षेत्र, निज शरीर की प्रकृति के परिज्ञान से (अर्कचारतः) सूर्य के चार से (पूर्णोदरत्तोर्कः) पेट भर के खेलते हुये बालकों के द्वारा (अगारबलिकर्मणा) गृहस्थियों के बलिकर्म के द्वारा (छायया) छाया के द्वारा (मूशालध्वानधूमशान्त्यादिकैः) मुशल की आवाज, धूम आदि की शांति के द्वारा (अपि) भी (एषणस्य) एषणा (गवेषणस्य) (अन्वेषण के (कालं) काल को (ज्ञात्वा) जानकर (पुरीषादिमलोत्सर्गविधानतः) पुरीषादिमलोत्सर्ग आदि के विधान से (शुद्धकायः) शुद्धकाय वाला होकर (परिमृष्टात्मपूर्वापरांगभागः) स्पर्श किया है अपनेपूर्व अपर शरीर के भाग जिसने (च) और अपने शरीर को (विलोक्य) देखकर (ततः) इसके बाद (पंचगुरुन्) पंचपरमेष्ठी को (नत्वा) नमस्कार करके (एकाग्रमतिः) एकाग्रचित्त (भूत्वा) होकर (अदीनाननमानसः) दीनतारहित मुख और मनवाला (यतिः) मुनि (नगर्यादौ) नगर आदि में (चर्या) चर्या को (कुर्यात्) करें।

भावार्थ–इस पवित्र शरीर से रत्नत्रय की साधना होती है और शरीर की स्थिति आहार के बिना नहीं है, ऐसा जानकर यतिगण द्रव्य, क्षेत्र और अपने शरीर की प्रकृति को जानकर प्रथम सूर्य के गमन से, अथवा पूर्णोदर (भोजन करके) बालकों को खेलते हुये देखकर वा गृहस्थियों के बलिकर्न पूर्ण हुआ है उसे वा उनके घरों में धुआँ या मूशलादि की आवाज शांत हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयी हो, उससे भिक्षा का समय जान लें। तत्पश्चात् ग्राम के बाहर मलमूत्र करके अपने शरीर की शुद्धि करें। एवं अपने शरीर के पूर्वापर भाग को देखकर सम्यक् प्रकार से शरीर को पोंछकर, पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर, एकाग्रचित्त होकर अत्यन्त धैर्य के साथ आधीन होता हुआ अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से नगर ग्राम गली आदि में चर्या के लिये भ्रमण करें।।९७-१००।।

वर्येर्यासमितिर्भीतिभ्रान्तिप्रीत्यादिदर्जितः।
भटकुक्कुटडिंभस्त्रीयुद्धनृत्यादिवीक्षणे।।१०१।।
विहायोल्लंघनं जानुदेशादुन्नतवस्तुनः।
नाभिनीचं च संकीर्णद्वारं मार्ग च दुर्गमम्।।१०२।।
परिहृत्य च दूरेण कासराघुग्रशृङ्गिणः।
कुञ्जरोष्ट्रतुरंगाग्रींश्चोन्मतश्च नृपोत्रिणः।।१०३।।
कुलं तलारकारुणां सूनामैरेयकारिणाम्।
त्यक्त्वा प्रसूतिकाबन्दिवादित्रत्रयजीविनाम् ।।१०४।।
प्रपापण्याङ्गनाऽनाथाऽव्रतिकाऽभक्तमन्दिरम्।
वार्यमाणं विवाहादिमंगलं लोकानिन्दितम्।।१०५।।
यज्ञभोजनशालां च कदर्यमृतकालयम्।
बद्धं गेह कवाटादिस्थगितादिकमीदृशम्।।१०६।।
अतिप्रसंगसंक्लेशावज्ञादुःकीर्त्यसंयमः।
श्रुतलोकविरोधाद्या यत्स्युस्तद्गेहसंश्रयात्।।१०७।।
क्रमेण योग्यागारालिं पर्यटन्प्रांगणं मितम्।
विशेन्मौनी विकारांगसंज्ञायाच्च्योज्झितो यतिः।।१०८।।

अन्वयार्थ–(भटकुक्कुटडिंभस्त्रीयुद्धनृत्यादिवीक्षणे) योद्धा, मुर्गा, बत्तख और स्त्रियों के युद्ध नृत्य आदि के देखने में (भीतिभ्रान्तिप्रीत्यादियर्जितः) भय, भ्रान्ति और प्रीति आदि से रहित (वर्या) श्रेष्ठ (ईर्यासमितिः) ईर्यासमिति से युक्त (जानुदेशात्) जानु देश से (उन्नतवस्तुतः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्नतवस्तु का (उल्लंघनं) उल्लंघन को (च) और (नाभिनीचं) नाभि से नीचे वाले स्थान को (संकीर्णद्वारं) संकीर्ण दरवाजे को (च) और (दुर्गमं) दुर्गम (मार्ग) (च) और (कासराद्युगशृंगिणः) भैंसादि उग्र सींगवालों को (कुञ्जरोष्ट्रतुरंगाग्नीन्) हाथी, ऊँट, घोड़ा और अग्नि को (उन्मत्तः) उन्मत्त को (च) और (नृपोत्रिणः) सूअर को (दूरेण) दूर से (परिहृत्य) छोड़कर (तलारकारूणां) तलार आदि कारु शूद्रों के (सूनामैरेयकारिणाम्) पंचसूना, मदिरा आदि का काम करने वालों के (प्रसूतिकाबन्दिवादित्रत्रयजीविनाम्) प्रसूतिका, वन्दी, वादित्र इन तीन की आजीविका करने वालों के (कुलं) कुल को तथा (प्रपापण्याङ्गनाऽनाथाऽव्रतिकाऽभक्तमन्दिरम्) प्रपा, वेश्या, अनाथ, अव्रती (पाखण्डी) और अभक्त लोगों के घर को (वार्यमाणं) जिसमें जाना निषिद्ध हो (विवाहादिमंगलं) जिसमें विवाहादि मंगल कार्य हो रहे हों (लोकनिन्दितं) लोकनिन्दित हो ऐसे घरों को (च) और (यज्ञभोजनशालां) यज्ञ, भोजनशाला को (कवाटादिस्थगितादिकं) कपाटादि से स्थगितादि (कदर्यमृतकालयम्) खोटा स्वामी और मृतकालय (ईदृशं) ऐसे (वद्धं) बन्द किये हुये घर को और (तद्गेहसंश्रयात्) उस घर के संश्रय से (अतिप्रसंगसंक्लेशावज्ञादुः कीर्त्यसंयमः) अतिप्रसंग, संक्लेश, अवज्ञा, अयशस्कीर्ति, असंयम (श्रु तलोकविरोधाद्या) श्रुत और लोक विरोधादि (स्युः) होवें (तत्) उस (गेहं) घर को (त्यक्त्वा) छोड़कर (विकारांगसंज्ञायाच्ज्योज्झितः) विकार, शरीर का संकेत याचना, आदि से रहित (यतिः) साधु (मौनी) मौनपूर्वक (क्रमेण) क्रम से (योग्यागारालिं) योग्य घरों की पंक्ति में (पर्यटन्) भ्रमण करता हुआ (मितं) प्रमित (प्रांगणं) आंगन में (विशेत्) प्रवेश करें।

भावार्थ—आहार के लिये जाते समय साधु मार्ग में स्त्रियों के नृत्यगान, योद्धाओं का युद्ध, पशुओं के खेलों में हर्ष विषाद नहीं करता हुआ उत्कृष्ट ईर्यासमिति से गमन करे। जानु प्रदेश से उन्नत स्थान का उल्लंघन नहीं करे। नाभि से नीचे प्रदेश में संकीर्णद्वार में प्रवेश नहीं करें। सींग वाले भैंस, गाय आदि से अवरुद्ध, हाथी, घोड़ा, ऊँट, अग्नि, मदोन्मत मानव, सुअर आदि से व्याप्त, मार्ग को दूर से छोड़ देवे। भिक्षा के लिये गमन के समय तलार, कारुलोग, मदिरा आदि के व्यापार करने वाले, प्रसूतिका, वादित्र आदि की आजीविका करने वाले, वेश्या, हीन, दीन, अनाथ, अव्रती, पाखण्डी, अभक्त के घरों में प्रवेश नहीं करना चाहिये। तथा जो यज्ञशाला हो, जिस घर में विवाहादि उत्सव हो रहा हो, जो घर लोक निन्दित हैं, जिसमें सार्वजनिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजनशाला है, जिस घर के कपाट बन्द हों, जिस घर में कोई मरा हुआ हो, जिस घर का स्वामी कृपण हो, तथा जिस में प्रवेश करने से संक्लेश परिणाम, तिरस्कार, अपयश और संयम की विराधना होती हो, उस घर में साधु आहार के लिये प्रवेश नहीं करते हैं। अर्थात् ऐसे घरों को छोड़कर याचना और अंगविकार से रहित साधु योग्य घरों की पंक्ति में भ्रमण करता हुआ शास्त्रोक्त विधि से श्रावक के आंगन में प्रवेश करे॥१०१-१०८॥

इन्दोर्वन्द्या गतिर्यद्वन्नसत्रक्षेत्रचारिणः।

तद्वन्मुनेश्च पुण्यानुग्रह्यगेहानुसारिणः।।१०९।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जिस प्रकार (नक्षत्रक्षेत्रचारिणः) नक्षत्रक्षेत्र में गमन करने वाले (इन्दोः) चन्द्रमा की (गतिः) गति (वन्द्या) वन्दनीय है (तद्वत्) उसी प्रकार (पुण्यानुग्राह्यगेहानुसारिणः) अपने किये हुये पुण्य की अनुकूलता से गृहस्थों के घर में अनुसरण करने वाले (मुनेः) मुनि की गति (गमन) वन्दनीय है।

भावार्थ–जिस प्रकार नक्षत्र क्षेत्र में गमन करने वाले चन्द्रमा की गति वन्दनीय होती है। उसी प्रकार अपने पुण्य के अनुकूल गृहस्थों के घर में संचार करने वाले दिगम्बर साधुओं की गति वन्दनीय होती है॥१०९॥

यथा वाऽदीनता रत्नदर्शकव्यवहारिणः।

गात्रदर्शनमात्राल्पकांक्षाभिक्षोस्तथैवसा।।११०।।

अन्वयार्थ–(वा) अथवा (यथा) जैसे (रत्नदर्शकव्यवहारिणः) रत्नों के दिखाने का व्यवहार करने वाले के (अदीनता) अदीनता होती है (तथैव) उसी प्रकार (गात्रदर्शनमात्राल्पकांक्षाभिक्षोः) शरीर के दिखाने मात्र अल्पकांक्षा भिक्षु के (सा) वह अदीनता होती हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार रत्नों का व्यापारी अदीनतापूर्वक अपने रत्नों को दिखाना है लेशमात्र भी उसके मुखपर दीनता नहीं रहती है, उसी प्रकार आहार को जाते समय दिगम्बर साधु के मुखपर लेशमात्र भी दीनता या मलीनता नहीं होती है। श्रावक के घर द्वार पर अपने शरीर को दिखाकर दिगम्बर साधु शीघ्र आगे बढ़ जाता है॥११०॥

अदीनजैनमार्गस्थ प्राप्त्यप्राप्तिसमाशयः।

कः किं कुत्र कथं मह्यं दास्यतीतीहनोज्झितः।।१११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–अदीनजैनमार्गस्थः) दीनतारहित जैन मार्ग में स्थित (प्राप्त्यप्राप्तिसमाशयः) प्राप्ति और अप्राप्ति में समान आशयवाला साधु (कः) कौन (कुत्र) कहाँ पर (मह्यम्) मेरे लिये (किं) क्या (दास्यति) देगा (इति) इस प्रकार की (ईहनोज्झितः) ईहा से रहित होता है।

भावार्थ–जैन मार्ग में स्थित मुनिगण अदीन होते हैं। लाभ और अलाभ में समभाव वाले होते हैं। मुझे कहाँ पर कैसा आहार मिलेगा आदि के विचार से रहित होते हैं।।१११।।

अस्थापितो निवर्त्तेत प्रविष्टं मन्दिरादिकम्।
पुनर्न प्रविशेदन्यग्रामादींश्चाऽशनाशया।।११२।।

अन्वयार्थ–(प्रविष्टं) प्रविष्ट हुये (मन्दिरादिकं) गृहस्थ के घर में (अस्थापितः) यदि कोई स्थापित नहीं करे तो (निवर्त्तेत) वहां से निकल जाय (च) और (अशनाशया) आहार की इच्छा से (पुनः) फिर (अन्यग्रामादीन्) अन्यग्रामादि में (न) नहीं (प्रविशते) प्रवेश करे।

भावार्थ–दिगम्बर मुनि किसी घर में आहार के लिए प्रवेश करता है और गृहस्थ उसका आदर नहीं करे तो वह उस घर से शीघ्र निकल जाता है और आहार की इच्छा से पुनः दूसरे ग्राम घर आदि में प्रवेश नहीं करता।।११२।।

धारयेन्नैव विण्मूत्रवेगं निर्गत्य तं वहिः।
व्युत्सर्जेन्न विशेत्पश्चात्स्वस्थानं धीरधीर्व्रजेत्।।११३।।

अन्वयार्थ–(धीरधीः) बुद्धिमान (विण्मूत्रवेगं) मलमूत्र के वेग को (न) नहीं (धारयेत्) रोके (वहिः) बाहर (निर्गत्य) जाकर (तं) मलमूत्र को (व्युत्सृजेत्) विसर्जन करे। (पश्चात्) पुनः आहार के लिये (न) नहीं (विशेत्) प्रवेश नहीं करे (स्वस्थानं) अपने स्थान को (व्रजेत) जावे।

भावार्थ–गोचरी के समय जाते समय यदि मलमूत्र की बाधा हो जाय तो उसको रोकना नहीं चाहिए। ग्राम के बाहर जाकर मलमूत्र करके आना चाहिए। पुनः आहार के लिए नहीं जाना चाहिए। धीर वीर साधु को मलमूत्र करके अपने स्थान पर चला जाना चाहिए।।११३।।

कुलं विषण्णव्यग्रोग्रतार्कुकादिकुलाकलम्।
सन्मार्जवाद्यवद्यं च वन्द्यमानोऽपि नो विशेत्।।११४।।

श्रृंगारनृत्यचित्रादिशालामुद्यानमिन्द्रिय-
द्विपेन्द्रक्रीड़नस्थानं स्थानमन्यच्च तादृशम।।११५।।

अन्वयार्थ–(विषण्णव्यग्रोग्रतार्कुकादिकुलाकुलं) विषादी, व्याकुल, क्रुर, वन्दी आदि के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समूह से युक्त (कुलं) कुल में (सन्मार्जनाद्यवद्यं) झाड़ू आदि से सावद्य जिसमें हो रहे हों ऐसे घर में, (शृंगारनृत्यचित्रादिशाला) शृंगार, नृत्य, चित्र आदि शाला में (इन्द्रियद्विपेन्द्र क्रीडन स्थानं) इन्द्रियरूपी हाथी के क्रीड़ा करने का स्थान ऐसे (उद्यानं) उद्यान में (च) और (अन्यत्) दूसरे भी (तादृशं) वैसे (स्थानं) स्थान में (वंद्यमानं) वन्दना करने पर (अपि) भी साधू (नो) नहीं (विशेत्) प्रवेश करे।

भावार्थ—जिस कुल में किसी कारण से विषाद हो रहा है, जहाँ मानव आकुल है, जो क्रूरता से युक्त है, वन्दी आदि का घर है, जहाँ पर झाड़ू देना, चक्की पीसना आदि सावद्य कार्य हो रहे हैं, जहाँ शृंगार नृत्यादि हो रहे हैं, ऐसे घरों में तथा जो इन्द्रियरूपी हाथी को मदोन्मत्त करने वाला हो, ऐसे उद्यान आदि में और भी शास्त्रविरुद्ध कुल या स्थान में बन्दना सत्कार करने पर भी साधु प्रवेश नहीं करे अर्थात् ऐसे स्थान दिगम्बर साधुओं के आहार के योग्य नहीं है॥११४-११५॥

प्रतिग्रहप्रणामाभ्यां स्थापितो योग्यदातृभिः।
तर्णकैलकवालादीननुल्लंघ्य विशेद्गृहम्।।११६।।

अन्वयार्थ—(योग्यदातृभिः) योग्य दाताओं के द्वारा (प्रतिग्रहप्रणामाभ्यां) पड़गाहन, नमस्कार आदि के द्वारा (स्थापितं) ठहराया हुआ साधु (तर्णकैलकवालादीन्) गाय, भैंस तथा बकरी आदि के छोटे बच्चों को (अनुल्लंघ्य) उल्लंघन नहीं करके (गृहं) घर में (विशेत्) प्रवेश करे।

भावार्थ—योग्य दाता के द्वारा भक्तिपूर्वक पडगाहन और नमस्कार करके ठहराया हुआ साधु बालक, छोटा बच्चा, गाय, मेष, भैंस आदि के बच्चों को उल्लंघन करके घर में प्रवेश नहीं करे॥११६॥

प्रकाशजनसंचारवत्यशुच्यङ्गिवर्जिते।
विस्तीर्णे संवृते शस्ते सम्मते तत्र संवृतः।।११७।।
आत्मोचिताऽऽसनाऽऽसीनो दातृप्रक्षालितक्रमः।
ऊर्ध्वाधः पार्श्वदिक्कोणनिक्षेपाद्यनिरीक्षणः।।११८।।
वर्णी पूर्णप्रतिज्ञोऽथ सिद्धभक्तिं विधाय तत्।
प्रत्याख्यानं विनिष्ठाप्य प्रेरितो भक्तदातृभिः।।११९।।
समांगुलचतुष्कांतरांघ्रिः स्थित्वा समुद्धते।
पात्रात्पिंडे करद्वन्दमानाभेद्यौतमुत्क्षिपेत्।।१२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(प्रकाशजननंसचारवति) प्रकाशयुक्तजनसंचारवाले (अशुच्यंगिवर्जिते) अपवित्र वस्तु और प्राणी से रहित (विस्तीर्णे) विस्तृत (संवृते) आच्छादन सहित (शस्ते) प्रशंसनीय (सम्मते) अभीष्ट (तत्र) उस घर में (संवृतः) संकुचित (आत्मोचिताऽऽसनाऽऽसौने) अपने उचित आसन पर बैठा हुआ (दावुप्रक्षालितक्रमः) दाता के द्वारा प्रक्षालित है चरण जिसके (ऊर्ध्वाधः पार्श्वदिक्कोणनिक्षेपाद्यनिरीक्षणः) ऊपर नीचे पसवाड़े में दिशा के कोणादि में रखी हुई वस्तु का किया है निरीक्षण जिसने ऐसा (पूर्णप्रतिज्ञः) पूर्ण हो गई है प्रतिज्ञा जिसकी ऐसा (वर्णी) साधु (अथ) इसके बाद (सिद्धभक्तिं) सिद्ध भक्ति को (विधाय) करके (तत्) उस (प्रत्याख्यानं) प्रत्याख्यान का (विनिष्ठाप्य) निष्ठापन करके (भक्तदातृभिः) भक्त दाता के द्वारा (प्रेरितः) प्रेरित हुआ (समांगुलचतुष्कांतराघ्रिः) सम अंगुल चतुष्क के अन्तर के चरणों से (स्थित्वा) खड़े होकर (पात्रात्) पात्र से (पिंडे) पिंड के (समुद्धते) ग्रहण करने पर (धौतं) धोये हुये (करद्वन्द्वं) दोनों हाथों को (आनाभेः) नाभि के ऊपर (उत्क्षिपेत्) रखे।

भावार्थ–जो घर प्रकाश के संचार युक्त है, अशुचि द्रव्य से रहित है, विस्तृत है, आच्छादन आदि से युक्त है, प्रशंसनीय है, ऐसे घर में अपने उचित आसन पर बैठ जाय। तदनन्तर दाता के द्वारा जिसके चरणों का प्रक्षालन और पूजन की गई है ऐसा साधु ऊपर, नीचे आदि चारों तरफ की दिशाओं का अवलोकन करे कि कोई अशुचि वस्तु तो यहाँ पर नहीं है। तदनन्तर जिसकी पूर्व दिन में ग्रहीत प्रतिज्ञापूर्ण हो चुकी है, ऐसा संयमी दाता के द्वारा प्रेरणा करने पर हे स्वामिन्! आहार जल शुद्ध है, भोजन ग्रहण करो इत्यादि वचनों से प्रेरित होकर सिद्ध भक्ति करके प्रत्याख्यान का निष्ठापन करे तथा हाथों को धोकर चार अंगुल प्रमाण दोनों चरणों के अन्तर से खड़ा होकर पात्र से आहार पिंड ग्रहण करते समय दोनों हाथों को नाभि के ऊपर रखे॥११७-१२०॥

पुटं पाण्योरभित्वाऽन्यक्षिप्तं भुंजीत तं मतम्।
विना विकारवेगार्त्तिमांद्याऽऽसक्तिस्वनादिभिः॥१२१॥

अन्वयार्थ–(पाण्योः) दोनों हाथों के (पुटं) पुट को (अभित्वा) भेद नहीं करके (अन्यक्षिप्तं) दूसरे के द्वारा दिये हुये (मतं) शास्त्रोक्तं (तं) उस आहार पिंड को (विकारवेगार्तिमांद्याऽऽसक्तिस्वनादिभिः) विकार, शीघ्रता, वेदना, मदोन्मतता, आसक्ति के शब्दादि के (बिना) बिना (भुंजीत) आहार करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–आहार करते समय दोनों हाथों की अंजुलि बाँधे अंजुलि नहीं छोड़े। विकार, शीघ्रता, दुःख, शोक, मदोन्मतता, आसक्ति और चुर-चुर आदि शब्द से रहित होकर दूसरे के द्वारा दिये हुए आहार पिंड को शांत भावों से भक्षण करें।।१२१।।

यावदस्ति वलं स्थातुं मिलत्येतत्करद्वयम्।

तावद्भुंजे त्यजाम्यन्यथेति संधा यतेर्यतः।।१२२।।

अन्वयार्थ–(यावत्) जबतक (स्थातुं) खड़े रहने की (बलं) शक्ति (अस्ति) है (एतत्) यह (करद्वयं) दोनों हाथ (मिलति) परस्पर अंजुलि वद्ध होते हैं (तावत्) तब तक (भुंजे) आहार करूँगा (अन्यथा) ऐसा नहीं हुआ तो (त्यजामि) आहार छोड़ता हूँ (यतः) क्योंकि (इति) इस प्रकार की (यतेः) यति की (संधा) प्रतिज्ञा होती है।

भावार्थ–यतिराज के इस प्रकार की प्रतिज्ञा होती है, कि जबतक मेरे पैरों में खड़े रहने की शक्ति है, तथा मेरे हाथों में परस्पर मिलने की, अंजुलि जुड़ने की शक्ति है, तब तक ही मैं आहार ग्रहण करूँगा। इस शक्ति के अभाव में आहार पानी का त्याग है।।१२२।।

पुरा रत्नसुवर्णादिनानाभाजनभाजिनः।

दीनता सज्यते तेभ्यो हीनभाजनभोजने।।१२३।।

अन्वयार्थ–(पुरा) पहिले गृहस्थावस्था में (रत्नसुवर्णादिनानाभोजनभाजिनः) रत्न, सुवर्ण आदि नाना प्रकार के भाजनों में भोजन करने वाले के (तेभ्यः) उन भाजनों से (हीनभाजनभोजने) भाजन में भोजन करने पर (दीनता) दीनता (सज्यते) प्रकट होती हैं।

भावार्थ–पूर्व में अनेक प्रकार के नानारत्न सुवर्ण आदि में भोजन करने वाले के उन पात्रों से हीन पात्रों में भोजन करने पर दीनता प्रगट होती है, इसलिये दिगम्बर साधु पाणिपात्र में भोजन करते हैं।।१२३।।

तत्सन्नविश्वगेहाप्यं तद्गृहक्षालनादिना।

यत्संगाऽसंयमौ च स्तस्तस्मात्पाणिपुटाशनम्।।१२४।।

अन्वयार्थ–(सत्) समीचीन (तत्) वह भाजन (विश्वगेहाप्यं) समस्त देश में प्राप्य (न) नहीं है (तद्ग्रहक्षालनादिना) उस वर्तन के ग्रहण में प्रक्षालनादि के द्वारा (यत्संगाऽसंयमौ) जिसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रहण से दो प्रकार का असंयम (स्तः) होता है (तस्मात्) इसलिये (पाणिपुटाशनं) साधुगण हाथ में भोजन करते हैं।

भावार्थ–समीचीन भाजन समस्त घरों से प्राप्त नहीं होते हैं और उसको पास में रखने से उसके प्रक्षालन रक्षणादि से भाव और द्रव्य दोनों प्रकार का असंयम होता है। इसलिये साधुगण अपने हाथों में भोजन करते हैं।।१२४।।

कान्तातारुण्यलावण्यलीलालोकनजल्पन-।
स्मेरास्याब्जपदन्यासविलासाद्यनिरीक्षणः।।१२५।।

गौर्यथाऽत्ति तृणव्रातं क्षिप्तं भुंजीत यत्नतः।
तथाऽऽन्नाद्यमानस्वाद्यगोचरज्ञोयथोचितम्।।१२६।।

अन्वयार्थ–(कान्तातारुण्यलावण्यलीलालोकनस्मेरास्याब्जपदन्यासविलासाद्यनिरीक्षणः) स्त्रियों के तारुण्य, लावण्य, लीला को देखना, बात करना, हंसीयुक्त मुखरूपी कमल का तथा पदन्यास हाव भाव आदि को नहीं देखती हुयी (यथा) जैसे (गौः) गाय (तृणाव्रातं) घास के समूह को (अत्ति) खाती है (तथा) उसी प्रकार (गोचरज्ञः) गोचरी जाननेवाला साधु (यथोचितं) उचित (क्षिप्तं) हस्तपुट में रखे हुये (अन्नाद्यं) अन्नादि को (अनास्वाद्य) स्वाद नहीं लेकर (यत्नतः) यत्नपूर्वक (भुंजीत) भोजन करे।

भावार्थ–स्त्रियों के तारुण्य, लावण्य, लीला को देखना, बात करना, हंसीयुक्त मुखरूपी कमल तथा हाव भाव विलास विभ्रम आदि को नहीं देखती हुई जैसे गाय घास के समूह को खाती है, उसी प्रकार साधु स्त्रियों की तरुणता, लावण्य, हाव[१] भाव[२] विलास[३] विभ्रम[४] को नहीं देखता हुआ यथोचित श्रावक के द्वारा हस्तपुट में रखे हुये आहार का स्वाद नहीं लेता हुआ समता भाव से खाता है, वह गोचरी वृत्ति कहलाती है।।१२५-१२६।।

---

१. मुख विकार का नाम हाव है।
२. चित्त में उत्पन्न विकार भाव है।
३. नेत्र जन्य विकार विलास है।
४. भ्रूयुगान्त होने वाली विकृति विभ्रम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भृङ्गः पुष्पासवं यद्वत् गृह् णात्येकगृहेऽशनम्।

गृहिबाधां विना तद्वद्भुञ्जीत भ्रमराशनः।।१२७।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (भृङ्गः) भ्रमर (पुष्पासपं) पुष्प के रस को (ग्रह्णाति) ग्रहण करता है (तद्वत्) उसी प्रकार (भ्रमराशनः) भ्रामरीवृत्ति से आहार लेने वाला साधु (गृहवाधां) गृहस्थ की बाधा के (विना) बिना (एकगृहे) एक घर में (अशनं) अशनं (भुञ्जीत) खाते हैं।

भावार्थ–जिसप्रकार पुष्प को बाधा न देकर भ्रमर पुष्प की पराग का आस्वादन करता है उसीप्रकार गृहस्थियों को बाधा न देकर एक घर में साधु आहार करते हैं, उसको भ्रामरीवृत्ति कहते हैं।।१२७।।

यथालब्धेन भक्ते न कुर्यादुदरपूरणम्।

यद्वन्मृदादिनां लौकैः क्रियते श्वभ्रपूरणम्।।१२८।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (लौकैः) लोगों के द्वारा (मृदादिना) मिट्टी आदि से (श्वभ्रूपूरणम्) गढ्ढे का पूरण (क्रियते) किया जाता है उसीप्रकार (यथालब्धेन) जैसे रूखा सूखा अन्न प्राप्त हुआ है उस (भक्तेन) अन्न से (उदरपूरणं) साधु उदर पूर्ति (कुर्यात्) करें यह गर्तपूरणवृत्ति है।

भावार्थ–जिसप्रकार मानव के द्वारा मिट्टी आदि से गढ्ढा भरा जाता है उसीप्रकार साधुगण प्रासुक रूखा सूखा जैसा अन्न प्राप्त हुआ है उससे उदररूपी गर्त को भरता है उसको गर्तपूरणवृत्ति कहते हैं।।१२८।।

तोषरोषव्यपेतस्य ज्ञानध्यानप्रसिद्धये।

इत्येषा यत्नतो भुक्तिरेषणासमितिर्मता।।१२९।।

अन्वयार्थ–(ज्ञानाध्यानप्रसिद्धये) ज्ञान और ध्यान की प्रसिद्धि के लिये (यत्नतः) यत्नपूर्वक (तोषरोषव्यपेतस्य) हर्ष विषाद रहित साधु की (इति) इस प्रकार (भुक्तिः) आहार है (एषा) यह (एषणासमितिः) एषणासमिति (मता) मानी है।

भावार्थ–इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से हर्ष विषाद रहित साधु का यत्नपूर्वक आहार है वह एषणा समिति है।।१२९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आदान निक्षेपण समिति"

विहायाऽऽदाननिक्षेपौ सहसाऽनवलोक्य च।
दुःप्रमार्जनमप्रत्यवेक्षणं चार्द्रमानसः।।१३०।।
विधायोपधितद्देशवीक्षणं प्रतिलेखनैः।
लब्धस्वेदरज; सूक्ष्मलतातिमृदुभिः पुनः।।१३१।।
तौ प्रमृज्योपधेर्यत्नान्निक्षेपाऽऽदानयोः कृतिः।
यतेरादाननिक्षेपणसमितिः परिकीर्त्तिता।।१३२।। त्रिक्रम्।।

अन्वयार्थ–(दुष्प्रमार्जनं) सम्यकप्रकार से मार्जन नहीं करके (अप्रत्यवेक्षणं) वार वार नहीं देखकर (अनवलोक्य) वहाँ के स्थान का अवलोकन नहीं करके (आदाननिक्षैपौ) आदान निक्षेप को (विहाय) छोड़कर (उपधितद्देशवीक्षणं) उपधि और उस देश का निरीक्षण (विधाय) करके (पुनः) फिर (लब्धस्वेदरजः) पसीना और रेत को हटाने वाली (सूक्ष्मलतातिमृदुभिः) सूक्ष्मलता आदि से कोमल (प्रतिलेखनः) पिच्छिका के द्वारा (तौ) उपाधि ओर क्षेत्र को (प्रमृज्य) स्वच्छं करके (यत्नात्) यत्नपूर्वक (उपधेः) उपाधि का (निक्षेपादानयोः) निक्षेप और ग्रहण करने को (कृतिः) पुण्य (यतेः) यतिकी (आदान-निक्षेपणसमितिः) आदाननिक्षेपणसमिति (परीकीर्त्तिता) कहीं है।

भावार्थ–सम्यक्प्रकार से भूमि को देखकर, बार बार भूमिका निरीक्षण करके, कोमल पिच्छिका से भूमिका का मार्जन करके यत्नपूर्वक कमण्डलु पुस्तकादि का रखना, उठाना आदान निक्षेपण समिति है।।१३०-१३२।।

"व्युत्सर्ग समिति"

कृष्टप्लुष्टादिदेशेऽगिंछिद्रहीने घने च यः।
व्युतसर्गोऽङ्गमलादेः स्यांद्व्युतसर्गसमितिर्यतेः।।१३३।।

अन्वयार्थ–(अंगिछिद्रहीने) प्राणियों के छिद्र से रहित (धने) धन (कृष्टप्लुष्टादिदेशे) हल से जोते हुये क्षेत्र में (अंगमलादेः) शरीर के मलादि का (यः) जो (व्युत्सर्गः) त्याग करना है वह (यतेः) यति की (व्युत्सर्गसमितिः) व्युत्सर्गसमिति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–प्राणियों के छिद्र से रहित, कठिन, हलादि से उकेरित, क्षेत्र में शरीर के मलादि का क्षेपण करना व्युत्सर्गसमिति है॥१३३॥

वीक्षितेऽस्मिन्दिने हस्तबाह्यस्पर्शपरीक्षिते।
रात्रौ सत्यंगिनो नो वेत्यंगिहीने तमुत्सृजेत्।।१३४।।

सोंऽग्याढ्यश्चेच्छितीयेऽत्र तृतीये वांगिसंगते।
विवशो विमृजेदल्पप्रायश्चितो यतिस्ततः।।१३५।।

अन्वयार्थ–(रात्रौ) रात्रि के (सति) होने पर (अस्मिन्) इसी पूर्वोक्त (दिने) दिन में (वीक्षिते) देखे हुए (हस्तबाह्यस्पर्शपरीक्षिते) हाथ के बाह्य भाग के स्पर्श से परिरक्षित क्षेत्र में (अंगिनः) प्राणी (नो) नहीं है। (इति) इसप्रकार (अंगित्रहीने) प्राणिरहित क्षेत्र में (तं) मलमूत्र को (उत्सृजेत्) छोड़े (सः) वह क्षेत्र (चेत्) यदि (अंगाढ्यः) प्राणियों से व्याप्त हो तो (द्वितीये) दूसरे क्षेत्र में (अत्र) यहाँ पर (अंगिसंगते) प्राणियों का संग हो तो (तृतीये) तीसरे क्षेत्र में (यदि) यदि (विवशः) विवश होकर (विमृजेत्) मलमूत्र करे तो (यतिः) (अल्पप्रायश्चितः) अल्पप्रायश्चित का भागी होता है।

भावार्थ–यदि एक क्षेत्र प्राणियों से व्याप्त हो तो दूसरे क्षेत्र को देखे, यदि दूसरा क्षेत्र भी प्राणियों से व्याप्त हो तो तीसरे क्षेत्र को देखे यदि वह भी जीवों से व्याप्त हो और विवश होकर साधु को रात्रि में मलमूत्र करना पड़े तो स्वल्प प्रायश्चित ग्रहण करना पड़ता है॥१३४-१३५॥

यद्वद्वज्रतनुत्राणः शराऽऽसाराऽपराजितः।
यतिः समितिगात्रत्रस्तद्वत्पापेषु दुर्जयः।।१३६।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (वज्रतनुत्राणः) वज्र के कवच वाला (शराऽऽसारापराजित;) वाणों की वर्षा से पराजित नहीं होता है (तद्वत्) उसी प्रकार (समितिगात्रत्रः) समिति से रक्षित शरीर वाला (यतिः) यति (पापेषु) पापों में (दुर्जन) दुर्जयी होता है।

भावार्थ–जिस प्रकार वज्र का कवच धारण करने वाला योद्धा रण में वाणों की वर्षा होने पर भी अभेद्य होता है। उसी प्रकार समितिरूपी कवचधारी संयमी महीतल पर विहार करता हुआ भी पापों से लिप्त नहीं होता है॥१३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुप्तियों का स्वरूप

दोषेभ्यो गोपनं रक्षावतानां गुप्तिरिष्यते।
सा मानसवचः कायदंडत्रितयदंडनी।।१३७।।

अन्वयार्थ–(दोषेभ्यः) दोषों से (व्रतानां) व्रतों का (गोपनं) गोपनं (रक्षा) रक्षा करना (गुप्तिः) गुप्ति (इष्यते) कही जाती है। (मानसवचः कायदण्डत्रितयदंडनी) मन वचन काय दण्ड तीनों का विरोध (सा) वह गुप्ति है।

भावार्थ–व्रतों की रक्षा का नाम गुप्ति है। व्रतों के घातक मन, वचन और काय हैं, हैं, इन तीनों का विरोध। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति है।।१३७।।

मनः पंचेन्द्रियेभेन्द्र स्वैराचारनिवारिणी।
स्वगोचरे मनोगुप्तिर्ज्ञानध्यानरतामतिः।।१३८।।

अन्वयार्थ–(स्वगोचरे) अपने विषयों में (मनः पंचेन्द्रियेभेन्द्रस्वैरचारनिवारिणी) मन और पंचेन्द्रियरूपी गज की स्वगोचर प्रवृत्ति रोकना अथवा ज्ञानध्यान में लीन होना (मनोगुप्तिः) मनोगुप्ति है।

भावार्थ–मनोगुप्ति दो प्रकार की है। अपने-अपने विषयों में प्रवृत्ति करने वाले पंचेन्द्रिय और मन को रोकना मनोगुप्ति है। तथा ज्ञानध्यान में लीन होना मनोगुप्ति हैं।।१३८।।

तथैवोक्तमाशाधरैः रागादि का त्याग करना तथा शास्त्रों का अध्ययन करना मनोगुप्ति हैं। पंचेन्द्रिय के विषय रागद्वेष संकल्प विकल्प आदि समस्त बाह्य वस्तुओं में जाते हुये मन को विशुद्धि के द्वारा रोककर सद्ध्यान और अध्याय से मन को स्थिर करना मनोगुप्ति हैं।

जिस प्रकार लोह निर्मित कवच को धारण किया हुआ योद्धा युद्ध में वाणों से छिदता भिदता नहीं है। उसी प्रकार मनोगुप्तिरूप कवच को धारण करनेवाला संयमी असंयम के वाणों से भेदित नहीं होता है।

अतुल सुख की खान स्वर्गमोक्ष की माता, जिन गणधर द्वारा सेवनीय, समस्त कर्मों की नाशक, सकल व्रतों के निर्मबनानेवाली मनोगुप्ति को निरन्तर योगशुद्धि के लिये योगी लोग प्रयत्नपूर्वक सेवन करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गजाश्वशस्त्रशास्त्रादिव्याख्यायाः क्लेशकारिणः।
सत्यस्याऽपि निवृत्तिर्वाग्गुप्तिर्वाचंयमोऽथ वा।।१३९।।
कायावद्यक्रियात्यागः कायगुप्तिर्मताऽथ वा।
कायोत्सर्गः समुत्सर्गः संगस्य द्विविधस्य यः।।१४०।।

अन्वयार्थ–(गजाश्व शस्त्र शास्त्रादि व्याख्यायाः) गज, अश्व, शस्त्र, शास्त्रादि व्याख्या से तथा (संक्लेश कारिणः) संक्लेशकारी (सत्यस्य) सत्य की (अपि) भी (निवृत्तिः) निवृत्ति (वाग्गुप्तिः) वचनगुप्ति है (अथवा) अथवा (वाचंयमः) वचन बोलने का त्याग करना वचनगुप्ति है। (कायवद्यक्रियात्यागः) कायजनित पाप क्रियायो का त्याग करना (कायगुप्तिर्मताऽथ) काय गुप्ति है (अथवा) (द्विविधस्य) दो प्रकार के (संगस्य) परिग्रह का (समुत्सर्गः) भले प्रकार त्याग करना (कायोत्सर्गः) कायोत्सर्ग करना (कायगुप्तिः) यह काय गुप्ति (मता) कही है।

भावार्थ–गज, अश्व, शस्त्र शास्त्रादि व्याख्या से तथा संक्लेशकारी सत्य की निवृत्ति वचनगुप्ति है। अथवा वचन बोलने का त्याग करना वचनगुप्ति है। काय सम्बन्धी सावद्य क्रियाओं का त्याग करना काय गुप्ति है। अथवा बाह्याभ्यन्तर उपधि का त्याग रूप कायोत्सर्ग कायगुप्ति है।

पुरस्य परिखा रक्षा क्षेत्रस्य च वृत्तिर्यथा।
तथा व्रतानामेतास्तु गुप्तयो गुप्तयः स्मृताछ।।१४१।।

अन्वयार्थ–(यथा) जिसप्रकार (पुरस्य) पुर की (रक्षा) रक्षा (परिखा) खाई (च) और (क्षेत्रस्य) क्षेत्र की (रक्षा) रक्षा (वृत्तिः) वाढ़ हैं (तथा) उसी प्रकार (व्रतानां) व्रतों की (गुप्तयः) रक्षिका (एता) ये (गुप्तयः) गुप्तियां (स्मृताः) मानी हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार नगर की रक्षा करने वाली खातिका है, खेत की रक्षिका वाढ़ है उसी प्रकार व्रतों का रक्षिका गुप्तियाँ हैं।।१४१।।

"परिहारविशुद्धि चारित्र का लक्षण"

परिहारेण दोषाणां शुद्धिर्यस्मिन्स संयमः।
परिहारविशुद्धिः स्याद्दद्धिरीहग्विधस्य सा।।१४२।।
भुक्त्वा प्रोज्झितंभोगस्य त्रिंशद्वर्षस्य जन्मनः।
प्रत्याख्यानाख्यपूर्वाम्बुराशिपारगयोगिनः।।१४३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समापृथक्त्वं तीर्थेशपादपार्श्वनिवासिनः।

व्यक्त्वा सन्ध्यात्रयं नित्यं गव्यूतिद्वयगामिनः।।१४४।।त्रिकम्।

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिस चारित्र में (परिहारेण) परिहार से (दोषाणां) दोषों की (शुद्धिः) शुद्धि है (सः) वह (संयमः) संयम (परिहारविशुद्धिः) परिहार विशुद्धि है (साः) वह (परिहारविशुद्धिः) परिहार विशुद्धि (जन्मनः) जन्म से (त्रिंशद्वर्षस्य) तीस वर्ष तक (भुकव्वा) भोगों को भोगकर (प्रोज्झित भोगस्य) छोड़ दिया है भोगों को जिसने (समापृथत्तवं) सात आठ वर्ष तक (तीर्थेशपादापार्श्वनिवासिनः) तीर्थंकर के चरणकमलों में निवास करने वाला (संध्यात्रयं) संध्यातीन को (व्यक्त्वा) छोड़कर (नित्यं) नित्य (गव्यूतिद्वयगामिनः) दो कोश पर्यन्त गमन करने वाले (ईहग्विधस्य) ऐसे (प्रत्याख्यानाख्यपूर्वाम्बुराशिपारगयोगिनः) प्रत्याख्यान पूर्व नामक सागर के पारगामी साधु के (ऋद्धिः) ऋद्धि है।

भावार्थ–जिस चारित्र में दोषों के परिहार से शुद्धि होती है वह परिहार विशुद्ध संयम है। वह परिहार विशुद्धि संयम जन्म से लेकर तीस वर्ष की आयु पर्यन्त गृहस्थावस्था के उत्कृष्ट भोगों को भोगकर तदनंतर सांसारिक भोगों का त्यागकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर आठ वर्ष पर्यन्त तीर्थंकर के चरणमूल में प्रत्याख्यान नामक पूर्व को पढ़ा है तथा तीनों संध्या काल को छोड़कर प्रतिदिन दो कोश नियमित रूप से विहार करता है ऐसे संयमी के परिहारविशुद्धि नामक ऋद्धि उत्पन्न होती है।।१४२-१४४।।

जीवराशो चरंश्चैष पापालेपो यथांभसि।

वसत्सरोजिनीपत्रं पयोलेपविवर्जितम्।।१४५।।

अन्वयार्थ–(एषः) यह परिहार विशुद्धि वाला (जीवराशौ) जीव राशि पर (चरन्) भ्रमण करता हुआ भी (पापालेपः) पाप से लिप्त नहीं होता है। (यथा) जिस प्रकार (अम्बसि) पानी में (वसत्) रहने वाला (सरोजिनीपत्रं) कमल पत्र (पयोलेपविवर्जितं) पानी के लेप से रहित होता है।

भावार्थ–जिस प्रकार पानी में रहता हुआ भी कमलपत्र पानी से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार परिहार विशुद्धि वाला जीवों के समूह में विहार करता हुआ भी पाप समूह से लिप्त नहीं होता है। परिहार विशुद्धि वाला मुनि रात्रि में गमन नहीं करता है। इसके चातुर्मास में एक स्थान में रहने का नियम नही है।।१४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सूक्ष्मसाम्परायिक संयम का लक्षण"

सूक्ष्मोऽल्पः सांपरायः कषायोऽस्मिन्निति संयमः।
स्यात्सूक्ष्मसांपरायसामायिकद्वितयात्मकः।।१४६।।

अन्वयार्थ–(अस्मिन्) इस चारित्र में (सूक्ष्मः) सूक्ष्म (अल्पः) थोड़ी (साम्परायः कषायः) साम्पराय कषाय है (इति) इसप्रकार (सूक्ष्मसांपरायः) सूक्ष्मसांपराय संयम (स्यात्) होता है (सामायिकद्वितयात्मकः) इसके सामायिक और छेदोपस्थापनासंयम दो रूप हैं।

भावार्थ–जिस चारित्र में सूक्ष्म सांपराय (कषाय) हो उसको सूक्ष्म सांपरायिक चारित्र कहते हैं वह सामायिक छेदोपस्थापना संयम दो रूप हैं।।१४६।।

"यथाख्यात चारित्र का लक्षण"

यथा विरागं स्वं रूपं तथैवाऽऽख्यात इत्ययम्।
यथाख्यातो मतोऽघौघघनसंघप्रभंजनः।।१४७।।

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे (विरागं) (स्वं) आत्मा का (स्वरूपं) स्वरूप है (तथैव) उसका उसी प्रकार (आख्यातः) होना (इति) इसप्रकार (अयं) यह (अघौघनसंघप्रभंजनः) पाप के समूह रूपी बादलों के समूह का नाश करने के लिए वायु समान (यथाख्यातः) यथाख्यातचारित्र (मतः) माना है।

भावार्थ–आत्मा का जैसा वीतराग स्वरूप है वैसा ही होना विकारी नहीं होना यथाख्यात चारित्र है और यह चारित्र पाप समूह रूपी बादलों के नाश करने के लिये वायु सदृश हैं।।१४७।।

संयम का अर्थ

सं सम्यग्दर्शनज्ञानपावनः पापघातनः।
यो द्वन्द्वद्वितयस्य स्याद्यामस्त्यागः स संयमः।।१४८।।

अन्वयार्थ–(सं) सं का अर्थ (सम्यग्दर्शनज्ञानपावनः) सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पवित्रता (पापघातनः) पाप का घातक (यः) जो (द्वन्द्वद्वितयस्य) अंतरंग परिग्रह का (यम) यम (त्यागः) त्याग है (सः) वह (संयमः) संयम (स्यात्) है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–संयम "सं" अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से पवित्र "यम" अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग, पाप नाशक संयम कहलाता है।।१४८।।

चारित्र कल्पवृक्ष

सम्यग्दृग्बोधमूलं व्रतसमितिततिस्कन्धशाखानुबन्धं।
शीलस्तोमप्रवालं गुणकुसुमगणं सत्सुखालीफलाविम्।।
गुप्तिव्राताऽऽलवालाऽमृतपरिकलितं सत्वसंतापनोदं।
सम्यक्चारित्रकल्पद्रुम ममहमतुलं संश्रितोऽस्मीष्टपुष्टवै।।१४९।।

अन्वयार्थ–(सम्यग्दृग्बोधमूलं) सम्यग्दर्शन ज्ञान जिसकी जड़ हैं। (व्रतसमितिततिस्कन्ध-शाखानुबंधं) व्रत और समितियों का समूह स्कंध और शाखा का अनुकरण करने वाला है। (शीलस्तोमप्रवालं) शील व्रत जिसका महान प्रवाल हैं (गुणकुसुमगणं) मूल उत्तर गुणादि पुष्पों का समूह है। (सतसुखालीफलाविम्) समीचीन सुखों के समूह फलों की पंक्ति हैं (गुप्तिव्राता) गुप्तियों का समूह (आलवाला) क्यारी हैं (अमृतपरिकलितं) अमृत से व्याप्त हैं (सत्वसंतापनोदं) संसारी प्राणियों के संताप को दूर करने वाला है ऐसे (अतुलं) (सम्यक्त्व चारित्रकल्पद्रुमं) सम्यक्त्वचारित्र रूपी कल्पवृक्ष के (अहं) मैं (अभीष्टपुष्ट्यै) अभीष्ट की सिद्धि के लिए (संश्रितोऽस्मि) आश्रित हुआ हूँ।

भावार्थ–सम्यग्दर्शन व ज्ञान जिसकी जड़ है, व्रत और समितियों का समूह स्कंध और शाखा का अनुकरण करने वाला है, शील व्रत जिसकी महान प्रवाल है, मूल उत्तर गुणादि पुष्पों का समूह है, समीचीन सुखों के समूह फलों की पंक्ति हैं, गुप्तियों का समूहरूप अमृत से व्याप्त है। संसारी प्राणियों के संताप को दूर करने वाला है ऐसे अतुल सम्यक्त्वचारित्ररूपी कल्पवृक्ष को मैं अपनी अभीष्ट की सिद्धि के लिए आश्रित हुआ हूँ।।१४९।।

चारित्र की महिमा

मोहोच्छामतमोघटाविघटनः स्फारैर्विशेषोत्करैः।
दुर्वारापरदुः कृतोत्पलकुलप्लोषी जगद्वन्दितः।।
प्रोन्मीलन्नवकेवलादिकमलः सन्मार्गसन्मंडनः।
स्तान्मच्चितनभ;स्थले स्थिरतमश्चारित्रचण्डद्युतिः।।१५०।।

अन्वयार्थ–(स्फारैः) तीक्ष्ण (विशेषोत्करैः) स्वभाव भेद से उद्दत किरणो के द्वारा (मोहोद्दामतमोघटा विघटनः) मोहरूपी निविड़ अन्धकार का नाशक (दुर्वारापरदुःकृतोत्पलकुलप्लोषी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्वार अवशिष्ट पाप कर्मरूपीरात्रि विकासी कमलों को दाहक (जगद्वन्दितः) तीन जगत में पूजनीय (प्रोन्मीलन्नवकेवलादिकमलः) विकसित किया है नव केवल लब्धि रूपी कमल को जिसने (सन्मार्गसन्मंडनः) सन्मार्ग का मण्डन करने वाला। सूर्य पक्षे "सत्" नक्षत्र मार्ग का मंडन करने वाला वह (स्थिरतमः) स्थिरतम (चारित्रचण्डद्युतिः) चारित्ररूपी सूर्य (मच्चितनभःस्थले) मेरे चित्त रूपी नभस्थल में (स्तात्) वास करें।

भावार्थ–स्वपर भेद विज्ञानरूपी किरणों के द्वारा मोहरूपी निविड अन्धकार का नाशक, दुर्वारपापरूपी रात्रि विकासी कमलों का दाहक, तीन जगत में वन्दनीय, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकचारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिकवीर्य स्वरूप, नव लब्धिरूपी कमल का विकाशक, सन्मार्ग का भूषण ऐसा स्थिरतर चारित्र रूपी सूर्य मेरे चित्तरूपी नभस्थल में वास करे।।१५०।।

नमिनाथ स्तुति

नमिर्वरश्रीः प्रणयैकभूमि
र्जिनः सः नः पातु दयानिधानः।
अलं गलत्यर्जित कर्मजालं
यस्येक्षणन्मंक्षु महोदयस्य।।१५१।।

अन्वयार्थ–(यस्य) जिस (महोदयस्य) महोदय के (ईक्षणात्) दर्शन करने से (अर्जितकर्मजालं) उपार्जित कर्मों का जाल (मंक्षु) शीघ्र ही (गलति) नष्ट हो जाता है (सः) वह (प्रणयैक्भूमिः) पुण्य की अद्वितीय भूमि (दयानिधानः) दया का निधान (वरश्रीः) उत्कृष्ट लक्ष्मी का धारक (नमिः) नमि (जिनः) जिनेश्वर हमारी (अलं) अत्यन्त (पातु) रक्षा करे।

भावार्थ–जिस महोदय के दर्शन करने से उपार्जित कर्मों का समूह शीघ्र ही नाश हो जाता है, वह पुण्य की अद्वितीय भूमि, दया का निधान, उत्कृष्ट लक्ष्मी का धारक, नमि जिनेश्वर हमारी रक्षा करे।।१५१।।

इति श्री वीरनन्दिसिद्धान्तिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि ग्रन्थे
चारित्राचारवर्णनात्मकः पंचमोऽधिकारः।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ षष्ठमोऽधिकारः

अभिनन्दन स्वामी स्तुति

बन्दे मुदा श्रीशजिनाभिनंदनं
शश्वत्पदानम्रसुखाभिनन्दनम्।
तपःस्फुरद्धन्हिनिमग्नं मन्मथं
विनेयसन्दर्शित मुक्ति सत्पथम् ।।१।।

अन्वयार्थ–(शश्वत्पदानम्रसुखाभिनन्दनं) निरंतर चरणों में नम्रों के सुख का अभिवर्द्धक (तपःस्फुरद्वह्निनिमग्नमन्मथं) तपरूपी स्फुराय मान अग्नि में निमग्न किया है कामदेव को जिसने (विनेयसन्दर्शितमुक्तिसत्पथम्) शिष्य जनों को दिखाया है मुक्ति रूपी सन्मार्ग जिसने ऐसे (श्रीशजिनाभिन्दनं) श्री जिनेन्द्र अभिनन्दन भगवान को (मुदा) हर्ष पूर्वक (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ–जिन्होंने तप रूपी स्फुरायमान अग्नि के द्वारा कामदेव को भस्म कर दिया है, जो भक्त जनों के सुख का वर्द्धक है, शिष्य गणों को मुक्ति पथ के दर्शक उस अभिनन्दन भगवान को मैं मुदित हृदय से नमस्कार करता हूँ।

तपाचार कथन प्रतिज्ञा

तपः पोतेन येनासौ संसारोरूसरित्पतिः।
तीर्यते त्वरयेदानीं तत्तपः प्रतिपद्यते।।२।।

भावार्थ–(येन) जिस (तपःपोतेन) तपरूपी नौका से (त्वरया) शीघ्र ही (संसारोरूसरित्पतिः) संसाररूपी विशाल समुद्र (तीर्यते) पार किया जाता है (इदानीं) इस समय (तत्तपः) उस तप को (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है।

भावार्थ–जिसकी सहायता से भव्य प्राणी संसार समुद्र को पार करते हैं। अर्थात् जो संसार समुद्र से तिरने के लिए नौका के समान है आचार्य उस तपाचार का इस समय वर्णन करते हैं।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तप के भेद

तपः प्राहुरनुष्ठानं मानसाक्षनियामकम्।

बाह्याभ्यन्तरभेदं तत्प्रत्येकं षड्विधं मतम्।।३।।

अन्वयार्थ–(मानसाक्षनियामकं) मन और इन्द्रियों का निरोध करने वाले (अनुष्ठानं) अनुष्ठान को (तपः) तप (प्राहुः) कहा है (तत्) वह तप (बाह्याभ्यंतरभेदं) बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार है। और उनमें (प्रत्येकं) प्रत्येक (षड्विधं) छह प्रकार का (मतं) माना गया है।

भावार्थ–इन्द्रिय और मन का निरोध करना तप है। अथवा अपनी इच्छाओं का रोकना तप है। वह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। तथा दोनों प्रकार के तपों में प्रत्येक तप के छह छह भेद होते हैं।।३।।

बाह्य तप के भेद

अनशनावमौदर्ये वृत्तिसंख्या रसोज्झिती।

विविक्तशयनासनं कायक्लेशो बहिस्तपः।।४।।

अन्वयार्थ–(अनशनावमौदर्ये) अनशन, अवमौदर्य (वृत्तिपरिसंख्यान रसोज्झिती) व्रत परिसंख्यान और रस परित्याग (विविक्तशयनासनं) विविक्तशयनासन (कायक्लेशः) काय क्लेश (बहिः) ये बहिरंग (तपः) तप हैं।

भावार्थ–अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शयनासन और कायक्लेश ये छह प्रकार के बहिरंग तप हैं।।५।।

अनशन तप का स्वरूप

अशनत्यागोऽनशनं साकांक्षाकांक्षभेदगम्।

तदाद्यमेकद्वित्र्यादिषण्मासानशनान्तगम्।।५।।

अन्वयार्थ–(अशनत्यागः) भोजन का त्याग करना (साकांक्षाकांक्षभेदं) साकांक्षा और अनाकांक्षा भेद वाला (अनशनं) अनशन तप है (तदाद्यं) उसमें प्रथम साकांक्षा अनशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(एकद्वित्र्यादिषण्मासानशनान्तगम्) एक मास दो मास, तीन मास आदि से लेकर छह मास तक होता है।

भावार्थ–चार प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है। वह अनशन (उपवास) साकांक्षा और अनाकांक्षा के भेद से दो प्रकार का है। साकांक्षा अनशन एक मास दो महीना, तीन महीना, चार महीना, पांच महीना, छह महीना आदि अनेक भेद वाला है। जहाँ एक दो दिन आदि से लेकर छह महीना पर्यंत मर्यादित भोजन का त्याग किया जाता है, वह साकांक्षा नामक अनशन है। यावज्जीव आहार का त्याग करना अनाकांक्षा अनशन है।।५।।

साकांक्षा अनशन के भेद

साकार सर्वतोभद्रसिंह निष्क्रीडितादयः।

साकांक्षस्योपवासस्य भेदाश्चैकांतरोदयः।।६।।

अन्वयार्थ–(साकांक्षस्य) साकांक्षा (उपवासस्य) उपवास के (साकारसर्वतोभद्रसिंह-निष्क्रीड़ितादयः) साकार सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीड़ित आदि (च) और (एकान्तोदयः) एकांतरोदय आदि (भेदाः) अनेक भेद हैं।

भावार्थ–साकार, सर्वतोभद्र, सिंह निष्क्रीड़ित, एकान्तर, आदि साकांक्षा उपवास के अनेक भेद हैं।

विशेषार्थ–नन्दीश्वरपंक्ति, चारित्रशुद्धि, दुःखहरण, सुखकरण, लक्षण पंक्ति, सिंहनिष्क्रीड़ित भद्रावसन्त, त्रिलोकसार, श्रुतस्कंध, विमानपंति, मुरजमध्य, मृदंगमध्य, शातकुम्भ, श्रुतज्ञान, द्वादशव्रत, त्रिपंचाशतव्रत, घातिक्षयव्रत, रत्नत्रय, षोडशकारण, आष्टाह्निक, दशलक्षण, पंचकल्याणक, महापंचकल्याणक, जिनेन्द्र माहात्म्य, ध्यानपंक्ति, परिहार, सम्प्रत्ति संयमपंक्ति, प्रतिष्ठाकरण महोत्सव, सन्यासमहोत्सव, जिनगुणसम्पत्ति, आदि अनेक रूप जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित व्रत हैं। वह सब साकांक्षा अनशन तप है। इन व्रतों में कुछ व्रतों की विधि हरिवंश पुराण में उद्यापनसार में तथा व्रततिथि निर्णय में लिखी है तथा कुछ व्रतों की विधि तो प्राप्य भी नहीं हैं।।६।।

निकांक्ष अनशन का लक्षण

निःकांक्षौऽसौ भवेद्भक्तप्रत्याख्यानेगिनौमृतिः।

प्रायोगमनेष्वायुरन्तसन्यासकर्मसु।।७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(आयुरन्तसंन्यासकर्मसु) आयु के अन्त में समाधि मरण के समय (प्रायोपगमनेषु) प्रायोपगमन में (भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीमृतिः) भक्त प्रत्याख्यान और इंगिनीमरण करना (असौ) यह (निःकांक्ष) निष्कांक्षा नामक अनशन तप है।

भावार्थ–मरण पर्यन्त चतुर्विध आहार का त्याग करना निराकांक्षा अनशन तप है। इस व्रत के मुख्य तीन भेद हैं। भक्तप्रत्याख्यान मरण, इंगिनीमरण, प्रायोपगमनमरण। आयु के अन्त समय में जो चारों प्रकार का आहार का त्याग किया जाता है वह भक्त प्रत्याख्यान मरण है, उसका उत्कृष्ट काल १२ वर्ष है, जघन्यकाल अन्तमूहुर्त है मध्यम के अनेक भेद हैं इस मरण में क्षपक की वैय्यावृत्ति दूसरे साधु कर सकते हैं और आप भी अपनी वैयावृत्ति करता है। इसमें अन्त समय में चतुर्विध आहार के त्याग की मुख्यता है।

इंगिनीमरण–अन्त में चारों प्रकार के आहार का त्याग करके अपनी वैयावृत्ति दूसरे से नहीं कराता है। अपनी शरीर परिचर्या अपने हाथों से ही करता है वह इंगिनी मरण है। जिसमें क्षपक अपनी वैयावृत्ति आप भी नहीं करता है और दूसरे से भी नहीं कराता है वह प्रायोपगमन मरण है।।७।।

देहदर्पविनाशाय संयमद्वयसिद्धये।
कुर्यादनशनं लाभसत्काराद्यनपेक्षया।।८।।

अन्वयार्थ–(लाभसत्काराद्यानपेक्षया) क्षपक लाभ सत्कार आदि की अपेक्षा न करके (देहदर्पविनाशाय) शरीर के दर्प (ममत्व) का विनाश करने के लिए (संयमसिद्धये) और संयम की सिद्धि करने के लिए (अनशनं) उपवास (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–अनशन व्रत से संयम की सिद्धि होती है, शरीर का ममत्व छूटता है इसलिए ख्याति, पूजा, लाभ की इच्छा न करके अपनी शक्ति अनुसार अनशन नामक तप को अवश्य करना चाहिए।।८।।

अवमौदर्य तप का लक्षण

ग्रासहीन निजाहाराद्यूनाहाराशनंव्रतम्।
तपः स्यादवमौदर्यमक्षकक्षदवानलः।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ग्रासहीननिजाहाराद्यू नाहाराशनव्रतं) ग्रासहीन अपने आहार से कम भोजन व्रत (अक्षकक्ष दावानलः) इन्द्रियरूपी अटवी को जलाने के लिए दावानल (अवमौदर्यं) अवमौदर्य (तपः) तप (स्यात्) है।

भावार्थ–पुरुष का स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास प्रमाण है। उनमें से एक ग्रास आदि हीन करके लेना अवमौदर्य तप है। यह अवमौदर्य तप इन्द्रिय रूपी अग्नि को जलाने के लिए दावानल है अर्थात् अवमौदर्य व्रत में इन्द्रियों का निरोध होता है।।९।।

उपवासोऽतिमात्राशनोत्पन्नश्रमदोषहृत्।
ध्यानस्वाध्यायनिद्रार्त्तिजयाद्यर्थमिदं मतम्।।१०।।

अन्वयार्थ–(अतिमात्राशनोत्पन्न श्रमदोषहृत्) अतिमात्र भोजन करने से उत्पन्न हुये श्रम दोष का नाश करने वाला (उपवासः) उपवास है। और (ध्यानस्वाध्यायनिद्रार्तिजयाद्यर्थ) ध्यान, स्वाध्याय के लिए, निद्रा अर्त्ति को जीतने के लिए (इदं) यह अवमौदर्य व्रत (मतं) माना है।

भावार्थ–अतिमात्रा में भोजन करने से अजीर्णादि रोग उत्पन्न होते हैं उन रोगों का नाशक उपवास है। तथा ध्यान स्वाध्याय की वृद्धि के लिए निद्रा और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए अवमौदर्य व्रत करना चाहिए। क्योंकि उदर भरकर नहीं खाने से आलस्य प्रमाद नहीं होता है, परिणामों की विशुद्धि होती है। निद्रा पर विजय होती है। इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती हैं इसलिए ध्यान और स्वाध्याय की वृद्धि होती है। तथा भूख से कम खाने पर अजीर्णादि रोग भी उत्पन्न नहीं होते हैं। यह अवमौदर्य तप इन्द्रियों के स्वैच्छाचार को रोकता है, परिणामों को निर्मल करता है। और इससे प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समता, वन्दना, स्तुति और कायोत्सग इन षट् आवश्यकों की वृद्धि होती है।।१०।।

वृत्ति परिसंख्यान तप का लक्षण

वृत्तिर्वाटगृहाऽऽहारापात्रदातृषुवर्त्तनम्।
संख्या तन्नियमोवृत्तिपरिसंख्या निजेच्छया।।११।।

अन्वयार्थ–(वाटगृहाहारपात्रदातृषु) गली, घर, आहार, पात्र, दाता में (वृत्तिः) वृत्ति (वर्त्तनं) वर्त्तना करना (संख्यानं) संख्या करना (निजेच्छया) अपनी इच्छा से (तन्नियम्) उनका नियम करना (वृत्तिपरिसंख्या) वृत्तिपरिसंख्या है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–आज इस मोहल्ला में आहार मिलेगा तो आहार करेंगे नहीं मिलेगा तो नहीं करेंगे यह वाट परिसंख्यान है। इस गली में इस घर में या इतने घर में आहार मिलेगा तो आहार करूँगा यह गृह परिसंख्यान है।

सर्व प्रथम थाली में दाल, भात, दही, लड्डू आदि किसी वस्तु के विशेष का नियम लेना आहार परिसंख्यान है। आज सुवर्ण, कांसी, पीतल, चांदी, मिट्टी के बर्तन में आहार लूंगा ऐसे पात्र विशेष का नियम लेना भाजन परिसंख्यान है, वृद्ध, युवा, कुमार, कुमारिका या दो स्त्रियाँ, पुरुष विशेष का नियम लेना दातृ विशेष परिसंख्यान है। इस प्रकार अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए, विशेष का नियम करना वृत्ति परिसंख्यान तप है।।११।।

इयंमाशा निराशायादीनताभावनाप्तये।
गात्रयात्रानिमित्तान्नमात्रकांक्षस्य योगिनः।।१२।।

अन्वयार्थ–(गात्रयात्रानिमित्तान्नमात्रकांक्षस्य) शरीर यात्रा के निमित्तमात्र अन्न की आकांक्षा करने वाले (योगिनः) योगी के (आशानिराशाय) तृष्णा का छेद करने के लिए (अदीनताभावनाप्तये) अदीनता भावना की प्राप्ति के लिए (इयं) यह वृत्ति परिसंख्यान होता है।

भावार्थ–शरीर की रक्षा करने के लिए साधु लोग आहार करते हैं। उसमें भी तृष्णा को नाश करने के लिए अदीनताओं की प्राप्ति के लिए यह वृत्ति परिसंख्यान तप किया जाता है।।१२।।

रस परित्याग तप का लक्षण

दक्षिधीराऽऽज्यतैलादे परिहारो रसस्य यः।
तपो रस परित्त्यागो मधुरादिरसस्य वा।।१३।।
कायकांतिमदाक्षेभक्षोभवारणकारणं।
परिहारो रसस्यायं स्याज्जितेन्द्रिययोगिनः।।१४।।

अन्वयार्थ–(दक्षिक्षीराज्यतैलादेः) दधि, दूध, घृत, तेलादि (वा) और (मधुरादिरसस्य) गुड़, चीनी आदि मधुर रस का (परिहारः) परिहार (रस परित्यागः) रस परित्याग (तपः) तप है (अयं) यह (रसस्य) रस का (परिहारः) परित्याग (जितेन्द्रिययोगिनः) जितेन्द्रिय योगी के (काककांतिमदाक्षैभक्षोभवारणकारणं) काय कांति प्रद मद और इन्द्रियरूपी हाथियों के क्षोभ के वारण में वारण (स्यात्) है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–दधि, घृत, दूध, तैल मधुर आदि रसों का त्याग करना रस परित्याग नामक तप है और यह रस परित्याग जितेन्द्रिय योगियों के काय कांति प्रद मद और इन्द्रिय रूपी हाथियों के क्षोभ का निराकरण करने में कारण है।।१३-१४।।

विविक शयनासन तप

विविक्तेऽध्ययनध्यानबाधवोत्करवर्जिते।

शयनं चाऽसनं यत्तद्विविक्तशयनासनम्।।१५।।

तरुकोटरशून्यागाराऽऽरामोर्वीधरादयः।

विविक्ताः कामिनीषण्ढपशुक्षुद्रांगिवर्जिताः।।१६।।

अन्वयार्थ–(अध्ययनध्यानबाधवोत्करवर्जिते) अध्ययन और ध्यान के बाधाओं के समूह से रहित (विविक्ते) एकांत स्थान में (यत्) जो (शयनं) शयन करना (आसनं) बैठना है (तत्) वह (विविक्तशयनासनं) विविक्त शयनासन है (तरुकोटरशून्यागारारामोर्वीधरादयः) तरुकोटर, शून्यागार, उपवन की पृथ्वी पर्वतादि (कामिनी षण्ढ पशु क्षुद्रांगिवर्जिताः) कामिनी, पशु, नपुंसक और क्षुद्रप्राणियों से रहित (विविक्ताः) विविक्तता होती है।

भावार्थ–कामिनी, नपुंसक, पशु, क्षुद्र प्राणियों से रहित, तरुकोटर, शून्यागार, उपवन की भूमि पर्वत आदि विविक्त स्थान है। उस अध्ययन और ध्यान का बाधा के समूह से रहित विविक्त (एकांत) स्थान में शयन करना, बैठना शयनासन तप है।।१५-१६।।

कायक्लेश तप का लक्षण

सुखोपलालितः कायो नालं सद्ध्यानसिद्धये।

तद्देहदमनं काय क्लेशः क्लेशैतोचितैः।।१७।।

अन्वयार्थ–(सुखोपलालितः) सुखपूर्वक उपलालित (कायः) शरीर (सद्ध्यानसिद्धये) सद्ध्यान की सिद्धि के लिए (अलं) समर्थ (न) नहीं हैं इसलिए (मतोचितैः) जिन धर्म में उचित (क्लेशैः) काय क्लेशों के द्वारा (तद्देदहमनं) उस देह का दमन करना (कायक्लेश) तप है।

भावार्थ–सुखपूर्वक लालन पोषण किया हुआ शरीर, सद्ध्यान की सिद्धि के लिए समर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होता है इसलिए जिनेन्द्र कथित उचित क्लेश के द्वारा उस शरीर का दमन करना, अपने आधीन करना, काय क्लेश तप है। यद्वा तद्वा कारणों के द्वारा शरीर का दमन करना काय क्लेश तो है परन्तु तप नहीं है। जिस काय क्लेश में शरीर के ममत्व के नाश के साथ कषायों का दमन होता है, वही कायक्लेश तप है। कषाय के आवेश में आकर शरीर का घात किया जाता है वह तप नहीं है, इसको बताने के लिए आचार्य ने मतोचित कहा है।।१७।।

निर्दयं मर्दनीयोऽयं कायः क्लेशकरः पुरा।
चिरं रिपुरितोवैषः काय क्लेशरतो यतिः।।१८।।

अन्वयार्थ–(अयं) यह (कायः) काय (पुरा) पूर्व में (चिरं) चिरकाल तक (रिपुः) शत्रु के (इव) समान (क्लेशकरः) क्लेश करने वाला है (इति) इसलिए (एषः) यह (कायक्लेशरतः) कायक्लेश में रत (यतिः) साधु के द्वारा (निर्दयं) निर्दय होकर (मर्दनीय) मर्दन करना चाहिए।

भावार्थ–यह शरीर अनादिकाल का शत्रु है इसने पूर्व में मुझे बहुत दुःख दिये हैं, इसलिए यह मर्दनीय है। ऐसा विचार कर काय क्लेश में रत योगी घोर तपश्चरण के द्वारा काय क्लेश तप करते हैं।।१८।।

व्युत्सर्ग तप वर्णन

वीरस्वस्तिकबज्राब्जहस्तिशुण्डाशनादयः।
व्युत्सर्ग शवगोदंडचापशय्यादयश्च ते।।१९।।

अन्वयार्थ–(वीरस्वस्तिकबज्राब्जहस्तिशुण्डासनादयः) वीर, स्वस्तिक, वज्र, कमल, हस्ति शुण्डासन आदि (च) और (शव गोदंडचापशय्यादयः) मृतक, गो, दंड, चाप, शय्यादि हैं (ते) वह (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग हैं।

भावार्थ–वीरासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन, कमलासन, हस्ति शुण्डासन, मृतकशय्या, गवासन, दंडशय्या और धनुः शय्यादि से शरीर को क्लेश देना वा इन आसानों से ध्यान करना व्युत्सर्ग रूप कायक्लेश तप है।

अभ्यन्तर तप का कथन और भेद

तपो बाह्यमिदं बाह्यलोकानन्दैकमन्दिरम्।
आभ्यन्तरतपः क्षीरसागरेन्दुं नमाभ्यहम्।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(बाह्यलोकानन्दैकमन्दिरम्) बाह्य लोकों के आनन्द का एक मन्दिर (इदं) यह (बाह्य) बाह्य (तपः) तप है। (क्षीरसागरेन्दुं) क्षीर सागर और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल (आभ्यन्तर तपः) आभ्यन्तर तप को (अह) मैं (नमामि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ–अनशनादि बाह्य तप बाह्य लोगों के आनन्द का स्थान है। धर्म प्रभावना का कारण है, उसका वर्णन किया। अब क्षीर समुद्र और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल आभ्यन्तर तप को मैं नमस्कार करता हूँ। आन्तरिक मन का नियमन (वशीकरण) होने से और बाह्य जनों के प्रत्यक्ष न होने वाले तप को आभ्यन्तर तप कहते हैं।।२०।।

तत्प्रायश्चितं विनयो वैयावृत्त्यं जगन्नुतम्।
स्वाध्यायो भवेद्व्युत्सर्गो ध्यानं चाभ्यान्तरं तपः।।२१।।

अन्वयार्थ–(प्रायश्चितं) प्रायश्चित (विनयः) विनय (वैयावृत्यं) वैयावृत्य (स्वाध्यायः) स्वाध्याय (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग (च) और (ध्यानं) ध्यान (तत्) वह (जगन्नुतं) जगत् के द्वारा नमस्कृत (आभ्यंतरं) आभ्यन्तर (तपः) तप (भवेत्) होता है।

भावार्थ–प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, और ध्यान, यह तीन जगत में पूज्यनीय आभ्यंतर तप हैं।।२१।।

प्रायश्चित तप का वर्णन

येनागो गलति प्रत्नं प्रायश्चितं तदुच्यते।
कर्म प्रायोजनस्तस्य चित्तं चैतोहरं यतः।।२२।।

अन्वयार्थ–(येन) जिसके द्वारा (प्रत्नं) पुरातन (अंगः) पाप (गलति) नष्ट होता है (तत्) वह (प्रायश्चितं) प्रायश्चित (उच्यते) कहा जाता है अथवा (जन) जन (प्रायः) प्राय है (तस्य) उन जिनका (चित्तः) मन है (यतः) क्योंकि (तस्य) उस जन के (चैतोहरः) चित्त को हरण करने वाला (कर्म) कार्य प्रायश्चित कहा जाता है।

भावार्थ–प्रमाद अथवा अज्ञान जन्य दोषों के निराकरण करने का नाम प्रायश्चित है। उत्कृष्ट चारित्रधारी वा मानवों को "प्रायः" कहते हैं। और मन को चित्त कहते हैं। अतः मन की शुद्धि करने वाले कार्य को प्रायश्चित कहते हैं। अथवा पुरातन कर्मों का क्षेपण, निर्जरा, शोधन, धावन, निराकरण, उत्क्षैपण, छेदन, यह सब प्रायश्चित के नाम हैं।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रायश्चित के भेद

आलोचना प्रतिक्रमणोभयानि विवेचनम्
व्युतसर्गस्तपच्छेद मूलपरिहारदर्शनम्।।२३।।

प्रायश्चित्तस्य भेदाः स्युर्दशैव तत्रसंश्रये।
दोषाणां यत्प्रमादाद्यैराद्यं तेषां निवेदनं।।२४।।

अन्वयार्थ–(आलोचनप्रतिक्रमणोभयानि) आलोचन, प्रतिक्रमण, उभो (विवेचनं) विवेक (व्युत्सर्गः) व्युतसर्ग (तपः) तप (छेदमूलपरिहारदर्शनं) छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान (एवं) इस प्रकार (प्रायश्चित्तस्य) प्रायश्चित के (दश) दश (भेदाः) भेद (स्युः) भेद हैं (यत्) जो (तत्र) उसमें (प्रामादाद्यैः) प्रमाद आदि के द्वारा (तेषां) उन (दोषाणां) दोषों के (संश्रये) संश्रय होने पर (निवेदनं) निवेदन करना (आद्यं) आलोचना प्रायश्चित है।

भावार्थ–आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद मूल परिहार, और श्रद्धान यह दश प्रायश्चित के भेद हैं। प्रामादादि के द्वारा उत्पन्न दोषों का गुरु के समक्ष निवेदन करना आलोचना है।।२३-२४।।

गुरु को दोषों के निवेदन करने की विधि

ज्ञात श्रुतरहस्याय प्रशांतस्वांतवृत्तये।
अपरिस्त्राविणे शस्तैकान्तस्थायैव सूरये।।२५।।

विनयेनोपसृत्योपविश्य पार्श्वे कृतांजुलेः।
वालवद्गर्हतोऽवक्रमित्येतत्स्याद्विशुद्धये।।२६।।

अन्वयार्थ–(विनयेन) विनय से (उपसृत्य) गुरु के समीप जाकर (पार्श्वे) उसके पार्श्व भाग में (उपविश्य) बैठकर (ज्ञातश्रुतरहस्याय) ज्ञात है श्रुत का रहस्य जिसको (प्रशांतस्वांतवृत्तये) प्रशांत है मानसिक वृत्ति जिसकी ऐसे (अपरिस्त्राविणे) अपरिस्त्रावी (शस्तैकान्तस्थाय) प्रशस्त, एकांत स्थान में स्थित (सूरये) आचार्य के लिए (कृतांजुलैः) की है अंजलि जिसने ऐसा (विशुद्धये) विशुद्धि के लिए (बालवत्) बालक के समान (अवक्रं) वक्रता रहित (गर्हतः) गर्हा करने वाले मुनि के (एतत्) यह आलोचना (स्यात्) होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जो श्रुत के रहस्य को जानता है, जिसका मन अत्यन्त प्रशांत है जो अपरिस्त्रावी है, ऐसे एकांत में स्थित आचार्य वर्य के समीप में जाकर उसके बाम पार्श्व में बैठकर अपने दोषों की शुद्धि करने के लिए मायाचार वक्रता का त्याग कर विनय से बालकवत् अपने दोषों की गर्हा करने वाले शिष्य के आलोचना होती है।।२५-२६।।

आलोचना के दश दोषों का वर्णन

आकंपितानुमापितदृष्टवादरसूक्ष्मणम्।
छन्नं शब्दाकुलं बहूव्यक्ततत्सेवितान्यपि।।२७।।
दशेत्पालोचनागांसि त्याज्यान्यात्महितैषिणा।
सदा हि साधयन्त्यार्याः परलोकममायया।।२८।।

अन्वयार्थ–(आकंपितानुमापितदृष्टवादरसूक्ष्मणं) आकंपित, अनुमापित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म गत (छन्नं) छन्न (शब्दाकुलं) शब्दाकुल (अपि) और (बहूव्यक्ततत्सेवितानि) बहु, अव्यक्त, तत्सेवित (इति) इस प्रकार (दश) दश (आलोचनागांसि) आलोचना के दोषों को (आत्महितैषिणा) आत्म कल्याण के इच्छुक को (त्याज्यानि) छोड़ देना चाहिए (हि) क्योंकि (सदा) हमेशा (अमायया) निश्चलता से (आर्याः) सज्जन लोग (परलोकं) परलोक को (साध्यन्ति) सिद्ध करते हैं।

भावार्थ–आकंपित दोष, अनुमापित दोष, दृष्ट दोष, बादर दोष, सूक्ष्म दोष, छन्न दोष शब्दाकुल दोष, बहुदोष, अव्यक्त दोष, तत्सेवी दोष यह दश आलोचना के दोष हैं। आत्महितैषी, मानव इन दोषों को दूर से छोड़ देवे क्योंकि माया रहित आलोचना करने से ही परलोक की सिद्धि होती है।।२७-२८।।

आकंपित दोष

ददात्यल्पं मम प्रायश्चित्तं भीत्येति सूरये।
पुरोपकरणानां यद्दानमाकंपितं मतम्।।२९।।

अन्वयार्थ–(मम) मुझे (अल्पं) अल्प (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित (ददादि) देवें (इति) इस प्रकार के (भीत्या) भय से (सूरये) आचार्य के लिए (पुरा) पहिले (यत्) जो (उपकरणानां) उपकरणों को (दानं) देना (तत्) वह (आकंपितं) आकम्पित दोष (मत) माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–गुरु मुझे अल्प प्रायश्चित देवें, इसलिए महत् प्रायश्चित के भय से गुरु को पूर्व में उपकरण आदि देकर अनुकम्पा उत्पन्न कराना आकंपित दोष है।।२९।।

अनुमापित दोष

ग्लानः क्लेशासहोऽस्म्यल्पं प्रायश्चित्तं ममार्प्यते।
चेद्दोषाख्यां करिष्याभीत्यादि स्यादनुमापितम्।।३०।।

अन्वयार्थ–मैं (ग्लानः) रोगी (क्लेशासहः) क्लेश सहन करने में असमर्थ (अस्मि) हूँ (चेत्) यदि (मम्) मेरे को (अल्पं) अल्प (प्रायश्चितं) प्रायश्चित (अर्प्यते) दिया जाय तो (दोषाख्या) दोषों की आलोचना (करिष्यामि) करूँगा (इत्यादिः) इत्यादि (अनुमापितं) अनुमापित दोष (स्यात्) है।

भावार्थ–मैं रुग्ण हूँ, क्लेश को सहन करने में असमर्थ हूँ, यदि आचार्य मुझे अल्प प्रायश्चित देंगे तो मैं अपने दोषों की आलोचना करूँगा, इत्यादि वचनों से अनुमान करके आलोचना करना अनुमापित दोष (स्यात्) है।

भावार्थ–मैं रुग्ण हूँ, क्लेश को सहन करने में असमर्थ हूँ, यदि आचार्य मुझे अल्प प्रायश्चित देंगे तो मैं अपने दोषों की आलोचना करूँगा, इत्यादि वचनों से अनुमान करके आलोचना अनुमापित दोष है।।३०।।

वाप्त दोष

परेक्षितागः संकीर्त्तिः स्यादृष्टं बादरं स्मृतम्।
स्थूलानामेव दोषाणामालस्याद्यैर्निवेदनम्।।३१।।

अन्वयार्थ–(परेक्षितागः) दूसरों के द्वारा दृष्ट दोषों का (संकीर्त्तिः) कथन करना (दृष्टं) दृष्ट दोष (स्यात्) है। (आलस्याद्यैः) आलस्य आदि से (स्थूलानां) स्थूल (दोषाणां) दोषों का (एव) ही (निवेदनं) निवेदन करना (बादरं) बादर दोष (स्मृतं) कहा गया है।

भावार्थ–लोगों ने जिन दोषों को देख लिया है, उसी की आलोचना करना दृष्ट दोष है। प्रमाद के वशीभूत होकर किये हुए स्थूल दोषों की आलोचना करना स्थूल दोष है।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म दोष

सूक्ष्मागः कीर्त्तनं सूक्ष्म दोषस्यापि विशोधकः।
इति ख्यात्यादि हेतोः स्यात्सूक्ष्मं स्थूलपगूहनम्।।३२।।

अन्वयार्थ–(सूक्ष्मदोषस्य) सूक्ष्म दोष का (अपि) भी (विशोधकः) विशोधक है (इति) इस प्रकार की (ख्यात्यादिहेतोः) ख्याति आदि के लिए (सूक्ष्मागः) सूक्ष्म दोष का (कीर्त्तनं) कथन (स्थलोपगूहनं) स्थूल का उपगूहक (सूक्ष्मं) सूक्ष्म दोष (स्यात्) है।

भावार्थ–यह साधु सूक्ष्म दोषों को भी कहने वाला है, इसप्रकार की ख्याति पूजा की इच्छा से अल्प वा सूक्ष्म दोषों की आलोचना करना यह स्थूल का उपगूहन करने वाला सूक्ष्म दोष है।।३२।।

प्रच्छन्न दोष

दोषे सतीदृशे देयं किं प्रायश्चित्तमित्यलम्।
प्रश्नः स्वच्छादनेन स्याच्छन्नं लज्जाभयादिभिः।।३३।।

अन्वयार्थ–(ईदृशे) ऐसा (दोषेसति) दोष हो जाने पर (किं) क्या (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित (देयं) देना चाहिए (इति) इस प्रकार (लज्जाभयादिभिः) लज्जा भय आदि से (स्वच्छादनेन) अपने दोषों का छादन करते हुए (प्रश्नः) पूछना (छन्नं) छन्न दोष (स्यात्) होता है।

भावार्थ–ऐसा दोष हो जाने पर क्या प्रायश्चित देना चाहिए, इसप्रकार लज्जादि के वशीभूत होकर अपने दोषों को आच्छादन करना छन्न दोष है। किसी के द्वारा अपने दोष प्रकाशित करने पर ऐसा दोष मेरे में भी है ऐसा विचार कर गुप्त रूप से प्रायश्चित लेना, प्रच्छन्न दोष है।।३३।।

शब्दाकूलित दोष

व्रतिव्रातघनध्वाने स्वदोषपरिकीर्त्तनम्।
लज्जाद्यैः पाक्षिकादौ यत्तच्छन्दाकुलितं मतम्।।३४।।

अन्वयार्थ–(लज्जाद्यैः) लज्जादिक के कारण (व्रतिव्रातघनध्वाने) व्रतियों के समूह से आकुल शब्द से युक्त (पाक्षिकादौ) पाक्षिकादि में (यत्) जो (स्वदोषपरिकीर्त्तनं) अपने दोषों का कथन करना (तत्) वह (शब्दाकुलितं) शब्दा कुलित दोष (मतं) माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जिस स्थान में बहुत व्रतियों का कोलाहल हो रहा है ऐसे पाक्षिकादि प्रतिक्रमण के समय में लज्जादि के वशीभूत होकर अपने दोषों का कथन करना, जिससे आचार्य स्पष्ट रूप से सुन नहीं सके, इसको शब्दाकुलित दोष कहते हैं।।३४।।

बहुदोष

प्रायश्चित्तमिदं युक्तं न वेत्यल्पतदाशया।
बहुसूरिपरिप्रश्नो, यावदल्पं स बह्विति।।३५।।

अन्वयार्थ–(इदं) यह (प्रायश्चितं) प्रायश्चित (युक्तं) युक्त है (नवा) वा नहीं है (इति) इसप्रकार (अल्पतदाशया) अल्प प्रायश्चित की आशा से (बहुसूरिपरिप्रश्नः) बहुत से आचार्यों से पूछना (यावत्) जब तक (अल्पं) अल्प प्रायश्चित हो (स) वह (बहुः) बहु दोष है।

भावार्थ–अल्प प्रायश्चित की आशा से बहुत से आचार्यों से पूछना यह बहुजन दोष है।।३५।।

अव्यक्त दोष

स्वसमानज्ञानतपोवालस्यालोचनं भवेत्।
अव्यक्त ह्रीभयप्रायश्चित्तमीत्यादिहेतुतः।।३६।।

अन्वयार्थ–(ह्रीभय प्रायश्चितभीत्यादिहेतुतः) लज्जा, भय, प्रायश्चित्त की भीति आदि कारणों से (स्वसमानज्ञानतपोवालस्य) अपने समान ज्ञान, तप, बालक के समक्ष (आलोचनं) आलोचना करना (अव्यक्तं) अव्यक्त दोष (भवेत्) होता है।

भावार्थ–लज्जा, भय प्रायश्चित्तादि के भय से अपने समान ज्ञान तप वाले के समक्ष दोषों की आलोचना करना अव्यक्त दोष है।।३६।।

तत्सेवी दोष

मादृशो वेत्यसावेव ममागोऽस्मै यदर्पितम्।
तन्ममेति स्वदोषोक्तिरस्मै तत्सेवितं मतम्।।३७।।

अन्वयार्थ–(असौ) यह (मादृशः) मेरे जैसा (एव) ही है (मम) मेरे (आगः) अपराध (अस्मै) इसके लिए (यत्) जो (अर्पितं) अर्पण किया है (तत्) वह (मम) मेरे है (इति) इसलिए (अस्मै) इसके लिए (स्वदोषोक्तिः) अपने दोषों को कहना (तत्सेवितं) तत्सेवी दोष (मतं) माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–ऐसे गुरु के पास जाकर अपने दोषों की आलोचना करना जो अपने समान अपराधी है यह तत्सेवी दोष है। अथवा मेरे दो, इसके अपराध के समान है, इसे यह भी जानता है। इसे जो प्रायश्चित मिलेगा वह मुझे भी युक्त है इसप्रकार अपने दोषों को छिपाना तत्सेवी दोष है।।३७।।

साऽऽमांगसंगतं यद्वन्नौषधं व्याधिबाधकम्।

तथाऽनालोचनाशुद्धं नैनोनाशकरं तपः।।३८।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (सामांगसंगतं) आम सहित अंग को संगत हुई (औषधं) (व्याधिबाधकं) व्यधिबाधक (न) नहीं (तथा) उसी प्रकार (आलोचनाशुद्धं) आलोचना से अशुद्ध (तपः) तप (एनोनाशकरं) पापों का नाशक (न) नहीं है।

भावार्थ–जिसप्रकार आम सहित शरीर को प्राप्त हुई औषधि रोग नाशक नहीं है, अर्थात् जो औषधि अपक्व है वह रोग नाशक नहीं है। उसीप्रकार आलोचना से अशुद्ध तप पापों का नाशक नहीं है। निर्दोष तप ही पापों का नाशक है।

द्वयाश्रयं संयतानां स्यादार्यिकाणां त्रिगोचरम्।

सप्रकाशप्रदेशे तु तच्चारित्रविभूषणम्।।३९।।

अन्वयार्थ–(तत्) वह आलोचना (संयतानां) संयतों की (द्वयाश्रयं) दो के आश्रय होती है (तु) और (आर्यिकाणां) आर्यिकाओं की (चारित्रविभूषणं) चारित्र की भूषण आलोचना (सप्रकाशप्रदेशे) सप्रकाश प्रदेश में (त्रिगोचरं) तीन के गोचर होती है।

भावार्थ–मुनियों की आलोचना (दोषों का कथन) दो के आश्रय होती है। अर्थात् यदि मुनि अपने दोषों की आलोचना एकांत में गुरु और शिष्य दो हों, तब करे। तीसरा समीप नहीं होना चाहिये। आर्यिकाओं की आलोचना आचार्य गणिनी, और आलोचना करने वाली आर्यिका, इन तीन के आश्रित होती है। अर्थात् अकेली आर्यिका एकांकी आचार्य के पास आलोचना नहीं करती है। आर्यिका सूर्य से प्रकाशित में आलोचना करती है। अन्धकारित प्रदेश में नहीं करती है। यह आलोचना चारित्र का भूषण है।।३९।।

आलोच्यार्पित प्रायश्चित्त वृत्तिविवर्जितः।

सन्मंत्रनिश्चयेऽप्युद्योगोनवत्फलवर्जित।।४०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(आलोच्य) आलोचना करके भी जो (अर्पितप्रायश्चितवृत्तिविवर्जितः) अर्पण किये हुये प्रायश्चित्त के आचरण से रहित है। वह (सन्मंत्रनिश्चये) सन्मन्त्र का निश्चय होने पर (अपि) भी (उद्योगोनवत्) उद्योग से रहित के समान (फलवर्जितः) फल से रहित है।

भावार्थ–जो मुनि आलोचना करके भी आचार्य के द्वारा अर्पित प्रायश्चित का आचरण नहीं करता है। वह सन्मंत्र का निश्चय करके भी उद्योग नहीं करने वाले के समान फल रहित होता है। जैसे मंत्र को जान करके भी जो मंत्र की विधि का आचरण नहीं करता है उसको मंत्र के फल की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार आलोचना करके भी आचार्य कथित प्रायश्चित को पालन नहीं करने वाला निर्दोष नहीं होता है।।४०।।

प्रतिक्रमण कथन

मिथ्यामदाऽऽगोऽस्त्वित्याद्यैर्यद्दोषेभ्यो निवर्तनम्।
प्रतिक्रमणमल्पापराधस्यैकाकिनो मुनेः।।४१।।

अन्वयार्थ–(मदागः) मेरे अपराध (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) होवें (इत्याद्यैः) इत्यादि वचनों के द्वारा (यत्) जो (दोषेभ्यः) दोषों से (निवर्त्तनं) निर्वर्त्तनं है वह (अल्पापराधस्य) अल्प अपराधी (एकाकिनः) एकाकी (मुनेः) मुनियों के (प्रतिक्रमणं) प्रतिक्रमण है।

भावार्थ–मेरे अपराध मिथ्या हों इत्यादि वचनों के द्वारा दोषों का निवर्त्तन करना अल्प अपराधी मुनि के प्रतिक्रमण होता है।।४१।।

तद्भय पायश्चित्त

स्यात्तदुभयमालोचनाप्रतिक्रमणद्वयं।
दुःस्वप्नदुष्टचिंतादिमहादोषसमाश्रयम्।।४२।।

अन्वयार्थ–(आलोचनाप्रतिक्रमणद्वयं) आलोचना प्रतिक्रमण दोनों (उभयं) उभय (स्यात्) है यह (दुःस्वप्नदुष्टचिंतादिमहादोषसमाश्रयं) दुःस्वप्न, दुष्टचिंता आदि महादोष के आश्रय हैं।

भावार्थ–आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों किये जाते हैं वह उभय नामक प्रायश्चित है। मुनिराज दुःस्वप्न मानसिक दुष्ट विचार, चिंतादि महादोष उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण और आलोचना दोनों करते हैं।।४२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेकप्रायश्चित्त

परिहर्तु मशक्तस्य दोषं द्रव्यादि संश्रयम्।
तद्द्रव्यादिपरित्यागोविवेकः कथितोऽथवा।।४३।।
अप्रासुकस्य सेवायां त्यक्तस्य प्रासुकस्य च।
प्रमादेन पुनः स्मृत्वा स तदा तद्विसर्जनम्।।४४।।

अन्वयार्थ–(द्रव्यादिसंश्रयं) द्रव्यादि से संश्रित (दोषं) दोष को (परिहर्तु) छोड़ने में (अशक्तस्य) अशक्त के (तद् द्रव्यादिपरित्यागः) उस द्रव्यादि का परित्याग करना (विवेकः) विवेक (कथितः) कहा है (अथवा) अथवा (प्रमादेन) प्रमाद से (अप्रासुकस्य) अप्रासुक का (च) और (त्यक्तस्य) त्याग किये हुये (प्रासुकस्य) प्रासुक द्रव्य का (सेवायां) सेवन करने पर (पुनः) पुनः (स्मृत्वा) स्मरण करके (तद्विसर्जनं) उसका त्याग कर देता है (तदा) तब (सः) वह विवेक नामक प्रायश्चित होता है।।४३-४४।।

भावार्थ–जो वस्तु अप्रासुक वा अभक्ष्य है अथवा जो छोड़ी हुई है, प्रमाद से वा विस्मरण से उस वस्तु का सेवन कर लिया हो तो तदनन्तर स्मरण होने पर उसको छोड़ देना विवेकनामक प्रायश्चित है। अथवा जिस वस्तु के सेवन करने से काम क्रोधादिविकृति उत्पन्न होती है, उस वस्तु का त्याग करना विवेक नामक प्रायश्चित है। अथवा जिस वस्तु में अभक्ष्य वा छोड़ी हुई वस्तु मिली है, उसको पृथक् करना शक्य नहीं है उस वस्तु का त्याग करना भी विवेक है।।४३-४४।।

व्युत्सर्ग

व्युत्सर्गोन्तर्मुहूर्त्तादिकालं कायविसर्जनम्।
सद्ध्यानं तन्मलोत्सर्गनद्याद्युत्तरणादिषु।।४५।।

अन्वयार्थ–(मलोत्सर्गनद्याद्युत्तरणादिषु) मलोत्सर्ग, नदी आदि के उत्तरण आदि में (अन्तर्मुहूत्तादिकालं) अन्तर्मुहूर्त्तादिकालपर्यन्त (कायविसर्जनं) काय का विसर्जन (सद्धयानं) सद्धयान (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग है।

भावार्थ–मल, मूत्र आदि का त्याग करने के बाद, नदी आदि से पार होने के बाद अन्तमुहूर्त्तादिकाल पर्यन्त शरीर के ममत्व का त्याग करके सद्ध्यान करना व्युत्सर्ग है।।४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तप प्रायश्चित्त

तपः स्यादुपवासैक स्थानादि व्यसनादिभिः।
व्रतातिचारे सत्येतत्प्रायश्चितं तु षड्विधम्।।४६।।

अन्वयार्थ–(व्यसनादिभिः) व्यसन आदि के द्वारा (व्रतातिचारे) व्रतों में अतिचार (सति) हो जाने पर (उपवासैकस्थानादिः) उपवास, एकभुक्ति आदि (षड्विधं) छह प्रकार के (तपः) वहिरंग तप करना (एतत्) यह (प्रायश्चितत्तसंस्यात्) तपनामक प्रायश्चित है।

भावार्थ–अहिंसा आदि व्रतों में अतिचार लग जाने पर अनशनादि छह प्रकार के वहिरंग तप के द्वारा आत्मशुद्धि करना तप नामक प्रायश्चित है।।४६।।

छेदप्रायश्चित्त

दिवसादि तपच्छेदश्छेदसंयमपर्यये।
सदर्पकृतदोषस्य चिरदीक्षाहितैषिणः।।४७।।

अन्वयार्थ–(सदर्पकृतदोषस्य) अभिमान में आकर किया है दोष जिसने ऐसे (चिरदीक्षाहितैषिणः) चिरकाल की दीक्षा हितैषी के (संयमपर्यये) संयम की पर्याय में (दिवासादितपच्छेदः) दिवस आदि तप का छेद करना (छेदः) छेद नामक प्रायश्चित है।

भावार्थ–चिरकाल का दीक्षित साधु अभिमानी होकर अपने व्रतों में दूषण लगाता है, तब उसकी पक्ष, मास, दिवसादि, की दीक्षा का छेद कर देना छेद नामक प्रायश्चित है।।४७।।

मूल प्रायश्चित्त

पुनर्दीक्षाग्रहोमूलं सर्वां पूर्वांतपस्थितिम्।
छित्वोन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेत्विदम्।।४८।।

अन्वयार्थ–(सर्वां) सारी (पूर्वा) पूर्व की (तपस्थिति) तपस्थिति को (छित्वा) नष्टकर (पुनः) पुन (दीक्षाग्रहः) दीक्षा का ग्रहण करना (मूलं) मूलनामक प्रायश्चित है (इदं) यह प्रायश्चित (उन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेषु) उन्मार्गगामी, पार्श्वस्य, प्रभृति महादोषी श्रमणों में होता है।

भावार्थ–पूर्व की सम्पूर्ण तपस्थिति का छेद करके पुनः दीक्षा देना मूल नामक प्रायश्चित है। यह प्रायश्चित उन्मार्गगामी, पार्श्वस्थ आदि श्रमणों को ही दिया जाता है।।४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पार्श्वस्थ आदि मुनियों के भेद

सच्चारित्रामृतापात्रं स्युः पार्श्वस्थःकुशीलकः।

संसक्तोऽप्यवसन्नश्च मृगचारीति पंचते।।४९।।

अन्वयार्थ–(पार्श्वस्थः) पार्श्वस्थ (कुशीलकः) कुशील (संसक्तः) संसक्त (अवसन्न) अवसन्न (च) और (मृगचारी) मृगचारी (इति) इसप्रकार (ते) वे (पंच) पांच प्रकार के मुनि (सच्चारित्रामृतापात्रं) सम्यक् चारित्ररूपी अमृत के पात्र नहीं (स्युः) हैं।

भावार्थ–पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न और मृगचारी ये पाँच प्रकार के मुनि सम्यक्चारित्र के पात्र नहीं हैं।।४९।।

वसत्युपधिसंगस्थः पार्श्वस्थः स्यात्कुशीलकः।

संघाहितकरस्तीव्रकषायो व्रतवर्जितः।।५०।।

अन्वयार्थ–(वसत्युपधिसंगस्थः) वसतिका, उपाधि और परिग्रह में लीन साधु (पार्श्वस्थः) पार्श्वस्थ है (संगाहितकरः) संघ का अहितकरनेवाला (तीव्रकषायः) तीव्रकषायी (व्रतवर्जितः) व्रतों से रहित (कुशीलतः) कुशील (स्यात्) होता है।

भावार्थ–जो वसतिका, उपाधि और परिग्रह में स्थित है–वह मुनि पार्श्वस्थ कहलाता है। जो सर्व संघ का अहितकर है, तीव्रकषायी है, व्रतों से रहित है, वह साधु कुशील कहलाता है।।५०।।

संसक्तो वैद्यमन्त्रावनीशसेवनादिजीवनः।

ज्ञानचारित्रहीनोऽवसन्नः स्यात्करणालसः।।५१।।

अन्वयार्थ–(वैद्यमन्त्रावनीशसेवनादिजीवनः) विद्या, मन्त्र, राजा आदि की सेवा से आजीविका करने वाला (संसक्तः) संसक्त है (ज्ञानचारित्रहीनः) ज्ञान और चारित्र से हीन (करणालसः) क्रिया करने में आलसी (अवसन्नः) अवसन्न (स्यात्) हैं।

भावार्थ–जो लोभकषाय के वशीभूत होकर औषधि, मन्त्र, तन्त्रादि बताकर आजीविका करता है और राजा आदि की सेवा करता है वह साधु संसक्त कहलाता है। जो ज्ञान चारित्र से रहित है। साधु की दैनिक क्रियाओं में आलसी है वह अवसन्न कहलाता है।।५१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वच्छंदो यो गणं त्यक्तुं चरत्येकाक्यसंवृतः।

भृगाचारीत्यमी जैनधर्माऽकीर्त्तिकरानराः।।५२।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (गणं) गणको (त्यक्तुंत्यक्त्वा) छोड़कर (एकाकी) अकेला (स्वच्छन्दः) स्वच्छन्द (असंवृत्तः) असंवृत्त (चरति) भ्रमण करता है। वह भृगचारी साधु है। (अमी) ये (मानवाः) नर (जैनधर्माकीर्तिकराः) जैन धर्म को मलीन करने वाले होते हैं।

भावार्थ–जो साधु स्वच्छन्द है, अर्थात् आचार्य की आज्ञा विराधक है, संघ को छोड़कर एकाकी असंवृत्त होकर भ्रमण करता है वह जैन धर्म को मलीन करने वाला साधु भृगचारी है।

परिहार उपस्थापना प्रायश्चित के भेद और लक्षण

परिहारोऽनुपस्थापनपारंत्रिकभेदभाक।

निजान्य गणभेदं तत्राद्यं तत्राद्यमुत्तमम्।।५३।।

अन्वयार्थ–(अनुपस्थापनपारंत्रिकभेदभाक्) अनुपस्थापन और के भेद को धारण करने वाला (परिहारः) परिहार है (तत्र) उसमें (आद्यं) प्रथम (निजान्यगणभेदं) स्वगण और परगण भेद वाला है। (तत्र) उसमें (आद्यं) प्रथम (स्वगणभेद) (उत्तमं) उत्तम है।

भावार्थ–अनुपस्थापन और पारंत्रिक के भेद से परिहार दो प्रकार का है। उसमें अनुपस्थापन, निजगण अनुपस्थापन और अन्यगण अनुपस्थापन के भेद से दो प्रकार का है उसमें निजगण अनुपस्थापन उत्तम मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार का है।।५३।।

द्वादशाब्देषु षण्मासषण्मासानशनं मतम्।

जघन्यं पंच पंचोपवास मध्यन्तु मध्यमम्।।५४।।

अन्वयार्थ–(द्वादशाब्देषु) बारह वर्षों में (षण्णमासषण्मासान्) छह महीने छह महीने का (अनशनं) उपवास करना (उत्तमं) उत्तम है (पंचपंचोपवासं) बारह वर्ष तक पाँच पाँच उपवास करना (जघन्यं) जघन्य है (तु) और (मध्यं) मध्य (मध्यमं) मध्यम है।

भावार्थ–बारह वर्ष तक छह महीने का छह महीने उपवास करना उत्तम है–पांच पांच उपवास करना जघन्य है। और मध्य के मध्यम भेद हैं।।५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वात्रिंशद्दडदूरालयस्थेन वसतेर्यतीन्।
सर्वान् प्रणमताऽपेतप्रतिबन्दनसाधुना।।५५।।
स्वदोष ख्यातये पिच्छं विभ्राणेन पराङ्मुखं।
सूरीतरैः सहोपात्तमौनेनैतद्विधीयते।।५६।।

अन्वयार्थ–(वसतेः) वसतिका के (द्वात्रिंशद्दंडदूरालयस्थेन) बत्तीस धनुष दूर ग्रह में बैठा हुआ (सर्वान्) सम्पूर्ण (यतीन) यतियों का (प्रणमता) नमस्कार करते हुये (अपेतप्रतिबन्दनसाधुना) साधुओं की प्रतिवन्दना से रहित (स्वदोषख्यातये) अपने दोषों की विख्याति के लिए (पराङ्मुखं) पराङ्मुख (पिच्छी) पिच्छिका को (विभ्रमाणेन) धारण करते हुये (सूरीतरैः) आचार्य को छोड़कर दूसरे साधुओं के (सह) साथ (मीनेन) मौन से (तत्) यह प्रायश्चित (विधियते) किया जाता है।

भावार्थ–जो आचार्य वा संघ की बसतिका से बत्तीस धनुष दूर स्थान में रहता है और सर्व मुनियों को नमस्कार करता है, परंतु उसको कोई मुनि प्रति नमस्कार नहीं करते हैं। जो आचार्य के साथ वार्त्तालाप करता है, शेष मुनियों और श्रावकों के साथ नहीं बोलता है, मौन रखता है। अपने दोषों की बिख्याति (प्रगटता) के लिए पिच्छिका को पराङ्मुखी रखता है, छह महीना, पांच महीना आदि का उपवास करता है यह स्वगण अनुपस्थापन नामक प्रायश्चित है।।५५-५६।।

स्वगण अनुपस्थापन प्रायश्चित देने के कारण

प्रमादेनान्यपाखंडिगृहस्थयतिसंश्रितं।
वस्तुस्तेनयतः किंचिच्चेतना चेतनात्मकम्।।५७।।
यतीन्प्रहरतोऽन्यस्त्रीहरणादींश्च कुर्वतः।
दश नव पूर्वज्ञस्य त्र्याद्य संहननष्य यत् ।।५८।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(प्रमादेन) प्रमाद के कारण (अन्यपाखंडिनहस्थयतिसंश्रितं) अन्य पाखंडी गृहस्थ और यतियों से संश्रित (चेतनाचेतनात्मकम्) चेतन-अचेतनात्मक (किंचित्) किंचित् (वस्तु) वस्तु को (स्तेनयत;) चोरी करने वाले (यतीन्) यति को (प्रहरतः) मारने वाले (अन्यस्त्रीहरणादीन्) पर स्त्री हरण आदि पाप (कुर्वतः) करने वाले को (दश नवपूर्वज्ञस्य) नव और दश पूर्व के पाठी तथा (त्र्याद्यसंहननस्य) आदि वज्रवृषभ, वज्र और नारांच वाले को (तत्) वह ऊपरिकथित स्वगणानुपस्थापन प्रायश्चित दिया जाता है।।५७-५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करोति यदि दर्पेण दोषान् पूर्वभाषितान्।

सोयमन्यगणानुपस्थापनेन विशुद्धयति।।५९।।

अन्वयर्थ–(यदि) यदि (अयं) यह मुनि (पूर्वभाषितान्) पूर्वकथित (दोषान्) हिंसादि दोषों को (दर्पेण) दर्प (घमण्ड) से (करोति) करता है (सः) वह (अन्यगणानुपस्थापनेन्) अनुपस्थापन नामक प्रायश्चित से (विशुद्धयति) विशुद्ध करता है।

भावार्थ–जो यति नव या दश पूर्व का पाठी हो, आदि के तीन संहनन (वज्रवृषभनारांच, वज्रनारांच, नारांच) से युक्त हो–परन्तु प्रमाद के वशीभूत होकर पाखण्डी, यति, गृहस्थादि की चेतना चेतनात्मक वस्तु की चोरी की है। क्रोध में आकर किसी यति यति का घात किया हैं, तथा पर स्त्री का सेवन किया है, तो वह मुनि स्वगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित का भागी होता है। हीनसंहनन वाले को यह प्रायश्चित नहीं दिया जाता है।।५९।।

जो यति पूर्वोक्त हिंसादिदोष को अभिमान में आकर करता है तो वह साधु अन्यगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित के द्वारा शुद्ध होता है।।५९।।

अन्यगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित का लक्षण

प्रायश्चित्तं तदेवात्र किन्तुस्वगणसूरिणा।

आलोच्य प्रेषितः सप्तसूरिपार्श्वमनुक्रमात्।।६०।।

आलोच्य तैस्तैरप्राप्त प्रायश्चित्तोऽन्त्य सूरिणा।

तमाद्यं प्रापितस्तेन दत्तं चरित पूर्ववत् ।।६१।। युग्मम्

अन्वयार्थ–(अत्र) इस प्रायश्चित में (तदेव) वहीं (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित है (किन्तु) परन्तु (स्वगणसूरिणा) अपने आचार्य के द्वारा (आलोच्य) आलोचना करके (अनुक्रमात्) अनुक्रम से (सप्तसूरिपार्श्वं) सात आचार्य के समीप भेजा गया (आलोच्य) आलोचना करके (तैः तै) उन उन आचार्यों के द्वारा (अप्राप्तप्रायश्चितः) नहीं प्राप्त हुआ है प्रायश्चित्त (तैः) उस आचार्य के द्वारा (पूर्ववत्) पूर्व के समान (दत्तं) दिये हुये प्रायश्चित का (चरति) आचरण करता है।

भावार्थ–अन्यगणानुपस्थापन नाम प्रायश्चित की विधि स्वगुण अनुपस्थापन के समान ही है। परन्तु यह विशेषता है। अभिमानपूर्वक अपराध करने वाला साधु अपने दोषों की आचार्य के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समक्ष आलोचना करता है। तदनन्तर उसकी आलोचना को सुनकर आचार्य उसको दूसरे आचार्य के समीप भेजता है। वह साधु दूसरे आचार्य के समीप जाकर अपने दोषों की आलोचना करता है, वह आचार्य भी उसकी आलोचना सुनकर तीसरे आचार्य के समीप भेजता है। इसप्रकार सात आचार्य के समीप जाकर आलोचना करता है उसको कोई भी आचार्य प्रायश्चित नहीं देते हैं। पुनः क्रम से सात आचार्यों के पास जाकर अपने आचार्य के समीप आता है। तब आचार्य उसको स्वगणानुपस्थापन विधि के अनुसार प्रायश्चित देते हैं। यह अन्यगणानुस्थापन नामक प्रायश्चित है। स्वगणानुपस्थापन का अर्थ है–अपने गण से बहिष्कृत करना। अपने संघ की वसतिका से ३२ धनुष दूर रखना। अन्यगणानुपस्थापन का अर्थ है–दूसरे आचार्य के संघ में जाकर आलोचना करने पर भी प्रायश्चित देकर वे आचार्य साधु को अपने गण में नहीं रखते हैं इसलिये यह अन्यगणानुपस्थापन है।।६०-६१।।

पारंचिक प्रायश्चित की विधि

स्वधर्मरहिते क्षेत्रे प्रायश्चिते पुरोदिते।
चारः पारंचिकं जैनधर्मात्यन्तरतेर्मतम् ।।६२।।

संघोर्वीशविरोधांतः पुरस्त्रीगमनादिषु।
दोषेष्ववंद्यः पाप्येष पातकीर्ति बहिः कृतः।।६३।।

चतुर्विधेन संघेन देशान्निष्कासितोप्यदः।
चरत्येवाऽर्य वैराग्यसत्त्वज्ञानबलो व्रती।।६४।।

अन्वयार्थ–(स्वधर्मरहिते) अपने धर्म से रहित (क्षेत्रे) में (पुरोदिते) पूर्व में कहे हुये (प्रायश्चिते) प्रायश्चित में (जैनधर्मात्यन्तरतेः) जैन धर्म में अत्यन्त लीन मुनि का (चारः) बिहार (पारंचिक) पारंचिक नामक प्रायश्चित (मतं) माना है (संघोर्वीशविरोधांतः पुरस्त्रीगमनादिषु) संघ का राजा का विरोध, अंतः पुर की स्त्री गमनादि (दोषेषु) दोष हो जाने पर (एषः) यह (अवंद्यः) अवंदनीय है (पापी) है (पातकी) पातकी है (इति) इसप्रकार (बहिस्कृतः) बहिस्कृत तथा (चतुर्विधसंघेन) चतुर्विध संघ के द्वारा (देशात्) देश से (निष्कासितः) निकाला हुआ (अपि) भी (अदः) यह (आर्यवैराग्यसत्त्वज्ञानबलः) श्रेष्ठ वैराग्य, सत्व ज्ञान रूपी बल (शक्ति) से युक्त (व्रती) साधु (चरति) आचरण करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–इस प्रायश्चित्त में उपवासादिं विधि तो अनुपस्थापन प्रायश्चित के समान है परन्तु कुछ विशेषता है। जब कोई साधु संघ का, राजा का विरोधी होकर अंतःपुर की स्त्रियों के साथ दुराचार करता है तब अनेक महापराध करने पर चातुर्वर्ण्य श्रमण संघ से यह महापापी है, जिनमत से बाह्य है 'इसकी वन्दना मत करो' ऐसी घोषणा देकर अनुपस्थापना नाम प्रायश्चित देकर देश से निकाल देते हैं। वह मुनि भी स्वधर्म सहित क्षेत्र में जाकर ज्ञान, वैराग्य, सत्व, बल से युक्त होकर, आचार्य के द्वारा दिये हुए प्रायश्चित का पालन करता हुआ बिहार करता है वह पारंचिक नामक प्रायश्चित है।।६२-६४।।

प्रायश्चित्त तप वर्णन

दर्शनं यत्पुनस्तत्वश्रद्धानं तन्महाव्रतैः।
सार्द्धं यतेः स्थितस्येत्वा मिथ्यात्वं तदुदीरितं।।६५।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यात्वं) मिथ्यात्व को (इत्वा) प्राप्त होकर (पुनः) पुन (तन्महाव्रतैः) उन महाव्रतों के (सार्द्ध) साथ (यत्) जो (तत्वश्रद्धानं) तत्वश्रद्धान में (स्थितस्य) स्थित (यतेः) मुनि के (दर्शनं) दर्शन नामक प्रायश्चित (उदीरतं) कहा है।

भावार्थ–किसी कारण से मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त हुआ मुनि पुनः तत्वश्रद्धान को प्राप्त होता है–वह दर्शन नामक प्रायश्चित है।।६५।।

देशं कालं बलं ज्ञात्वा गणी वैद्यवदंगिनाम्।
अल्पानल्पेषु दोषेषु कुर्यात्तद्विशोधनं।।६६।।

अन्वयार्थ–(गणी) आचार्य (वैद्यवत्) वैद्य के समान (अंगिनां) प्राणियों के (अल्पानल्पेषु) अल्प और अनल्प (दोषेषु) दोषों में (देशं) देश (कालं) काल (बलं) बल को (ज्ञात्वा) जानकर (तद्विशोधनं) उसकी शुद्धि (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–जिस प्रकार वैद्य रोगी के रोग शक्ति आदि को जानकर उसके रोग को दूर करने के लिए औषधि देता है उसी प्रकार आचार्य साधु के अल्प अनल्प दोषों में देश, काल, शक्ति को जानकर प्रायश्चित देकर उसके दोषों की शुद्धि करते हैं।।६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतागसैव कर्त्तव्यं प्रायश्चित्त त्रिशुद्धितः।

ग्लानस्यैव प्रयत्नेन युक्त मौषध सेवनं।।६७।।

अन्वयार्थ–जिसप्रकार (ग्लानस्य) रोगी की (प्रयत्नेन) प्रयत्न पूर्वक (युक्तं) युत्त (औषधसेवनं) औषधि सेवन (कर्त्तव्यं) करना चाहिए उसी प्रकार (कृतागसा) किया है अपराध जिसने ऐसे साधु को (त्रिशुद्धितः) मन वचन काय से (प्रयत्नेन) प्रयत्नपूर्वक (युक्तं) युक्त (प्रायश्चितं) प्रायश्चित (कर्त्तव्यं एव) करना ही चाहिये।

भावार्थ–जिस प्रकार रोगी मानव योग्य औषधि सेवन करके रोग दूर करता है। उसी प्रकार अपराध रूपी रोगों को दूर करने के लिए मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक प्रयत्नशील मुनि को अपने दोषों को गुरु के समक्ष आलोचना करके प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिये। औषधि सेवन किये बिना रोगों का निष्कासन नहीं होता उसी प्रकार प्रायश्चित के बिना पापों का प्रक्षालन नहीं होता है।।६७।।

दोषव्युदासनैः शल्यमर्यादा संयमस्थितिः।

स्वांतप्रशांतिसम्पत्तिप्रमुखार्थमिदं मतम्।।६८।।

अन्वयार्थ–(दोषव्युदासनैः) दोषों के दूर करने के द्वारा (शल्यमर्यादा) शल्य मर्यादा (संयमस्थितिः) संयम की स्थिति (स्वांतप्रशांतिसम्पत्तिप्रमुखार्थ) चित्त की शांति की सम्पत्ति प्रमुखार्थ (इदं) यह प्रायश्चित नामक तप (मतम्) माना है।

भावार्थ–प्रायश्चित नामक तप के द्वारा [1]शल्य का नाश होता है। मर्यादा और संयम की स्थिति होती है। चित्त की शांति और दोष कृत पापों का प्रक्षालन होता है। इसलिए प्रायश्चित नामक तप का वर्णन किया है।।६८।।

विनय तप का वर्णन

विनयं स्याद्विनयनं कषायेन्द्रिय मर्दनं।

स नीचैर्वृति रथवा विनयार्हे यथोचितम्।।६९।।

अन्वयार्थ–(विनयं) विनम्रता होना (कषायेन्द्रियमर्दनं) कषाय और इन्द्रियों का मर्दन

---

१. माया, मिथ्यात्व और निदान यह तीन शल्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना (विनयं) विनय (स्यात्) है (अथवा) (विनयार्हे) विनय के योग्य में (यथोचित्) यथोचित् (नीचैर्वृत्तिः) नम्रता होना (सः) वह विनय तप है।

भावार्थ–विनयते इति विनयनं, विनयन किया जाता है कषाय का और इन्द्रियों का दमन किया जाता है, अथवा पूज्य पुरुषों में यथा योग्य नम्रता होती है उसको विनय कहते हैं।।६९।।

सदृग्ज्ञानतपश्चारित्रोपचार प्रपंचकः।

तत्रदृग्विनयस्त्यागः शंकादीनांममीचते।।७०।।

अन्वयार्थ–(सदृग्ज्ञानतपश्चारित्रोपचारप्रपंचकः) सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यकतप और उपचार प्रपंचक (अमी) ये ५ प्रकार का विनय है (च) और (तत्र) इनमें (शंकादीनां) शंकादि दोषों का (त्यागः) छोड़ना (दृगविनयः) दर्शन विनय है।

भावार्थ–सम्यग्दर्शन विनय, सम्यग्ज्ञान विनय, सम्यक्चारित्र विनय, तपो विनय और उपचार विनय के भेद से पांच प्रकार का विनय है। उसमें शंकादि दोषों को परिहार करना सम्यग्दर्शन विनय है।।७०।।

शंकाऽऽकांक्षा जुगुप्साऽन्यदृक्प्रशंसनसंस्तवा;।

नाम्ना ज्ञेयास्त्रयोन्त्यौ तु मनोवाग्विषये स्तुती।।७१।।

अन्वयार्थ–(शंकाकांक्षाऽऽजुगुप्सान्यदृक्प्रशंसनसंस्तवाः) शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा अन्य दृष्टि संस्तव ये पांच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं (त्रयः) आदि के तीन (नाम्ना) नाम से (ज्ञेया) जानने योग्य हैं (तु) और (अन्त्यदौ) अन्त के दो (मनोवाग्विषये) मन और वचन के विषय में (स्तुती) स्तुति रूप है।

भावार्थ–शंका–जिनेन्द्र कथित तत्त्व में संशय करना शंका है। सांसारिक भोगों की वाँछा, कांक्षा है, रत्नत्रय धारी दिगम्बर तपस्वियों के शरीर को देखकर ग्लानि करना अथवा भूख प्यास से पीड़ित होकर जैन तपश्चरण से निर्विघ्न होना जुगुप्सा है। मन के द्वारा मिथ्यादृष्टियों की स्तुति करना संस्तव है। ये पाँच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं। इनसे सम्यग्दर्शन मलीन होता है–इसलिये इनका त्याग करना चाहिये। इन अतिचारों का त्याग करना सम्यग्दर्शन का विनय है।।७१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यादि शोधनं वस्तु प्रमाणावग्रहादिकं।

बहुमानः श्रुतज्ञेषु श्रुताज्ञासादनोज्जझनं।।७२।।

वयः शीलश्रुतोनादिकाद्युपाध्यायकीर्त्तनं।

चानिन्हवेन येनायंज्ञानावरणकारणं।।७३।।

स्वराक्षरपदग्रन्थार्थाहीनाध्ययनादिकं।

स्याज्ज्ञान विनय; सम्यग्ज्ञानस्वर्मोक्षकारणम्।।७४।।त्रिकं।

अन्वयार्थ–(द्रव्यादिशोधनं) द्रव्यादि का शोधन (वस्तुप्रमाणवग्रहादिकं) वस्तु की संख्यादिका अवग्रहादि (श्रुतज्ञेषु) श्रुतज्ञानियों में (बहुमानः) बहुमान (श्रुतज्ञासादनोज्झनं) श्रुतज्ञानियों के आसादन का त्याग (अनिन्हवेन) निन्हव रहित (वयःशीलंश्रुतोनादिखाद्युपाध्यायकीर्त्तनं) वय से न्यून और शील श्रुत से अधिक उपाध्याय आदि का कीर्त्तन (येन) जिस कारण से (अयं) यह निन्हव (ज्ञानावरणकारणं) ज्ञानावरणकर्मकारण है (स्वराक्षरपदग्रन्थार्थाहीनाध्ययनादिकं) स्वर, अक्षर, पद, ग्रन्थ, अर्थ को हीनाधिक नहीं पढ़ना (अयं) यह (सम्यग्ज्ञानस्वर्मोक्षकारणं) सम्यग्ज्ञान स्वर्ग और मोक्ष का कारणभूत (ज्ञानविनयः) ज्ञान विनय (स्यात्) है।

भावार्थ–ज्ञानाचार अधिकार में कथित द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की शुद्धि से शास्त्र पढ़ना, वस्तुप्रमाणादि का अवग्रह करना, श्रुतज्ञानियों में बहुमान होना, श्रुतज्ञानियों की आसादना नहीं करना, उम्र में हीन होते हुए भी जो शील और श्रुत में अधिक उपाध्याय आदि के गुणों का उत्कीर्तन करना, जिस गुरु से ज्ञानार्जन किया है वह श्रुत आदि में हीन हो तो भी उसका नाम बताना, ज्ञानावरणादि कर्मों के कारणभूत निन्हव का त्याग करना, अर्थात् अपने श्रुतज्ञान को नहीं छिपाना, शब्द शुद्ध पढ़ना, अर्थ शुद्ध पढ़ना, और दोनों शुद्ध पढ़ना, यह ज्ञान के विनय है।।७२-७४।।

आवश्यकक्रियाशक्तिर्नानोत्तरगुणोन्नतिः।

तपस्तद्वत्प्रमोदश्च स्यात्तपोविनयो मुनेः।।७५।।

अन्वयार्थ–(आवश्यकक्रियाशक्तिः) आवश्यक क्रियाओं में आशक्ति (नानोत्तरगुणोन्नतिः) नाना उत्तर गुणों की उन्नति (तपः) तप (च) और (तद्वत्) तपवालों में (प्रमोदः) प्रमोद होना (यतः) जिससे (तपोविनयः) तपोविनय (स्यात्) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–निर्दोष आवश्यक क्रियाओं का पालन करना, नाना प्रकार के उत्तर गुणों की वृद्धि करना, बारह प्रकार के तपश्चरण में और तपस्वियों में प्रमोद भाव रखना तपोविनय है।।७५।।

भक्तिश्चारित्रवत्स्वन्यवृत्ताऽनिन्दनमुद्यमः।
परीषहजयादौ च चारित्रविनयोमुनेः।।७६।।

अन्वयार्थ–(चारित्रवत्सु) चारित्रवान मुनीश्वरों में (भक्तिः) भक्ति (अन्यवृत्तानिन्दनम्) दूसरों के चारित्र की निन्दा नहीं करना (च) और (परीषहजयादौ) परीषहजय आदि में (उद्यमः) तत्परता रखना (मुनेः) मुनिका (चारित्रविनयः) चारित्रविनय है।

भावार्थ–चारित्र शाली मुनिहंसों के प्रति भक्ति करना अन्य व्रतियों अर्थात् जघन्य चारित्र वाले की निन्दा नहीं करना परीषह आने पर उनपर विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर रहना यह चारित्र विनय है।।७६।।

उपोपसृत्य यश्चार "उपचारो" यथोचितः।
स प्रत्यक्षपरोक्षात्मा तत्राद्यः प्रतिपाद्यते।।७७।।

अन्वयार्थ–(यथोचितः) यथोचित (उपोपसृत्य) समीप जाकर (यः) जो (चारः) आचरण (क्रिया) की जाती है। (सः) वह (उपचारः) उपचार है। व उपचार (प्रत्यक्षपरोक्षात्मा) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है (तत्र) उसमें (आद्यः) प्रथम प्रत्यक्ष का (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है।

भावार्थ–समीप में जाकर जो यथोचित सत्कार किया जाता है वह उपचार विनय है। वह उपचार विनय प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है। इसमें सर्व प्रथम प्रत्यक्ष विनय का वर्णन करते हैं।।७७।।

अभ्युत्थानं नतिः सूरावागच्छति सति स्थिते।
स्थानं नीचैर्निविष्टेऽपि शयनोच्चासनोज्झनम्।।७८।।

गच्छत्यनुगमो वक्तर्यनुकूलं वचो मनः।
प्रमोदीत्यादिकं चैव पाठकादि चतुष्टये।।७९।।(युग्मं)

अन्वयार्थ–(सुरौ) आचार्य के (आगच्छतिसति) आने पर (अभ्युत्थानं) उठकर खड़े होना (नतिः) उनको नमस्कार करना (स्थिते) खड़े रहने पर (नीचः) नीचे (स्थानं) खड़े रहना (निविष्टके)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बैठने पर (अपि) भी (शयनोच्चासनोज्झनं) उनके समक्ष शयन न करना, उनसे उच्चासन पर बैठने का त्याग करना (गच्छति) चलने पर (अनुगमः) उसके पीछे पीछे चलना (वक्तरि) आचार्य के बोलने पर (अनुकूलं) अनुकूल (वचः) वचन बोलना (मनः) उनके प्रति चित्त की (प्रमोदी) प्रसन्नता (इत्यादिकं) इत्यादि क्रिया प्रत्यक्ष विनय है (च) और (एवं) इस प्रकार (पाठकादिचतुष्टये) उपाध्याय, स्थविर, गणधर और प्रवर्तक में भी इसी प्रकार विनय करना चाहिये।

भावार्थ–आचार्य के आने पर शीघ्र ही आसन से उठकर खड़े होना चाहिये तथा भक्ति पूर्वक उनको नमस्कार करना चाहिये। आचार्य के बैठ जाने पर आचार्य से नीचे स्थान पर बैठना चाहिये। आचार्य के सामने शयन और उच्चासन को छोड़ना चाहिये। आचार्य के गमन करने पर उनके पीछे-पीछे चलना चाहिये। आचार्य के बोलने पर अनुकूल वचन बोलना चाहिये तथा आचार्य के प्रति मन में प्रमोदभाव, उनके गुणों में अनुराग होना चाहिये। आचार्य के समान ही उपाध्याय, गणधर, स्थविर और प्रवर्त्तक का विनय करना चाहिये।।७९।।

आचार्यादिष्वसत्स्वेवं स्थविरस्य मुने गणे।
प्रतिरूपकालयोग्या क्रिया चान्येषु साधुषु।।८०।।

अन्वयार्थ–(आचार्यादिषु) आचार्यादि के (असत्सु) नहीं होने पर (स्थविरस्य) स्थविर (मुनेः) मुनि के (गणे) गणधर में (च) और (अन्येषु) अन्य (साधुषु) साधुओं में (एवं) इसप्रकार (प्रतिरूपकालयोग्या) प्रतिरूप काल के योग्य (क्रिया) क्रिया करना चाहिये।

भावार्थ–आचार्य की अनुपस्थिति में स्थविर, गणधर और अन्य साधुओं में प्रतिरूप काल योग्य क्रिया नहीं करना चाहिये।।८०।।

आर्यदिशयमाऽसंयतादि षूचितसत्क्रिया।
कर्त्तव्या चेत्यदः प्रत्यक्षोपचारलक्षणम्।।८१।।

अन्वयार्थ–(च) और (आर्यदेशयमासंयतादिषु) आर्यिका, देशसंयम और असंयतादि में (उचितसत्क्रिया) उचित सत्कार (कर्त्तव्या) करना चाहिये (इति) इसप्रकार (अदः) यह (प्रत्यक्षोपचारोपलक्षणं) प्रत्यक्ष उपचार विनय का लक्षण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–आर्यिका, देशसंयमी और असंयतादि में उचित सत्कार करना चाहिये। यह प्रत्यक्ष उपचार लक्षण विनय है।।८१।।

ज्ञानविज्ञान सत्कीर्तिर्नतिराज्ञानुवर्त्तनं।
परोक्षे गणनाथानां परोक्षप्रश्रयः परः।।८२।।

अन्वयार्थ–(गणनाथानां) आचार्य के (परोक्षे) परोक्ष में (ज्ञानविज्ञानसत्कीर्त्तिः) उनके ज्ञान, विज्ञान, सत्कीर्त्ति (नतिः) नमस्कार (आज्ञानुवर्त्तनं) आज्ञा का पालन करना (परः) दूसरा (परोक्षप्रश्रयः) परोक्ष विनय है।

भावार्थ–परोक्ष में आचार्य के ज्ञान विज्ञान का सत्कीर्त्तन, आज्ञा का पालन और नमस्कार यह परोक्ष विनय है।।८२।।

विनयेन विहीनस्य भिक्षोः शिक्षामृतश्रियः।
संश्रयाय निदानं नो तथा चाभ्युदय श्रियः।।८३।।

अन्वयार्थ–(विनयेन) विनय से (विहीनस्य) रहित (भिक्षोः) भिक्षु की (शिक्षा) शिक्षा (अमृतश्रियः) मोक्ष लक्ष्मी का (तथा च) और (अभ्युदयश्रियः) स्वर्ग लक्ष्मी के (संश्रयाय) संश्रय के लिए (निदानं) कारण (न) नहीं है।

भावार्थ–जो तपस्वी विनयहीन है अर्थात् गुरुजनों का विनय नहीं करता है उसका शास्त्राध्ययनादि मुक्ति की प्राप्ति तथा स्वर्ग श्री का कारण नहीं है।।८३।।

जिनाज्ञावर्त्तनं कीर्त्ति मैत्री मानापनोदनम्।
गुणानुरागिता संघसम्पदाद्याश्च तद्गुणाः।।८४।।

अन्वयार्थ–(जिनाज्ञावर्त्तनं) जिनेश्वर की आज्ञा का पालन (कीर्त्तिः) कीर्त्ति (मैत्री) मित्रता (मानापनोदनं) मान कषाय की हानि (गुणानुरागिता) गुणों में अनुराग (च) और (संघसम्पदाद्याः) चतुर्विध संघ को सन्तोषादि (तद्गुणः) विनय के गुण हैं।

भावार्थ–विनय से जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन होता है, जगत में निर्मल सत्कीर्त्ति रूपी लता विस्तरित होती है, सर्वजनों के मैत्री भाव प्रगट होता है, मान क़षाय का नाश होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा चतुर्विध संघ विनयशील मानव पर सन्तुष्ट होते हैं इत्यादि अनेक विनय के गुण हैं।।८४।।

किमत्र बहुनोक्तेन पदं सर्वेष्ट सम्पदाम्।

रत्नत्रयीविभूषायां येन मुक्ति निबन्धनं।।८५।।

अन्वयार्थ–(अत्र) इसमें (बहुना) विशेष (उक्तेन) कथन से (किं) क्या प्रयोजन है (येन) जिससे (रत्नत्रयी विभूषायां) रत्नत्रय की विभूषा में (सर्वेष्टसम्पदां) सर्व इष्ट सम्पदाओं का (पदं) स्थान है और (मुक्तिनिबन्धनं) मुक्ति का कारण है।

भावार्थ–विशेष कहने से क्या प्रयोजन है। विनय सर्व इष्ट सम्पदाओं का स्थान है रत्नत्रय का भूषण है और मुक्ति का कारण है।।८५।।

वैयावृत्त तप वर्णन

व्यापत्प्रतिक्रिया वैयावृत्यं स्यात्सूरिपाठके।

तपस्विशैक्ष्यग्लानेषु गणे संघे कुले यतौ।।८६।।

मनोज्ञे च तपस्व्येषु नानाऽनशनवर्त्तनः।

शैक्षो ज्ञानादिसंशिक्षो ग्लानो नानागदार्त्तितः।।८७।।

गणः स्थविरसन्ताश्चातुर्वर्ण्यकदम्बकम्।

संघः स्याद्दीक्षकाचार्यशिष्याम्नायः कुलं मतम्।।८८।।

चिरप्रव्रजितः साधुर्यतिः शेषो हि संयमी।

दीक्षोन्मुखो मनोज्ञाख्योऽसंयतो वा सुदर्शनः।।८९।।

विद्याजात्यादिविख्यातो मिथ्यादृग्वाऽस्य संग्रहः।

जिन प्रवचनस्यायं लोके गौरवकारकः।।९०।।

अन्वयार्थ–(सूरिपाठके) आचार्य, उपाध्याय में (तपस्विशैक्ष्यग्लानेषु) तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान में (गणे) गण में (संघे) संघ में (कुले) कुल में (यतौ) यति में (मनोज्ञे) मनोज्ञ में (व्यापत्प्रतिक्रिया) आपत्ति को दूर करना (वैयावृत्यं) वैयावृत्ति (स्यात्) है। (एषु) इनमें (नानाशनवर्त्तनः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाना प्रकार के उपवास करने वाला (तपस्वी) तपस्वी है (ज्ञानादि संक्षिक्षः) का शिक्षण करने वाला (शैक्षः) शैक्ष्य है। (नानागदार्दितः) नाना प्रकार के रोगों से कदर्थित (ग्लानः) ग्लान है। (ज्ञानादिग्लान है (स्थविरसन्तानः) स्थविर की संतान (गणः) गण है (चातुर्वर्ण्यकदम्बकं) चार प्रकार के मुनियों के समूह (संघ) संघ (स्यात्) है (दीक्षकाचार्यशिष्याम्नायः) दीक्षा आचार्य के शिष्य की आम्नाय (कुलं) कुल है (चिरप्रव्रजितः) चिरकाल से दीक्षित (साधुः) है (हि) निश्चय से (शेषः) शेष (संयमी) संयमी (यतिः) यति (मतं) है (दीक्षोन्मुखः) दीक्षा के सन्मुख है व (मनोज्ञाख्यः मनोज्ञ नामक साध है (वा) अथवा (सुदर्शनः) सुदर्शन (विद्याजात्यादिविख्यातः) विद्या, जाति आदि में विख्यात (असंयत) असंयत भी मनोज्ञ है (वा) अथवा (लोके) लोक में (जिनंप्रवचनस्य) जिनेश्वर के प्रवचन का (गौरवकारकः) गौरव कारक है (अयं) यह (मिथ्यादृग्) मिथ्यादृष्टि है (अस्य) इसका (संग्रह) संग्रह है।

भावार्थ—सम्यग्यदर्शनादि गुणों के आधारभूत महापुरुषों से भव्य जीव स्वर्ग मोक्ष सुखदायक व्रतों को धारण कर आचरण करते हैं वे आचार्य हैं। जिन व्रतशील भावना शाली महानुभाव के समीप जाकर भव्यजन विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय हैं। मासोपवास आदि नाना तपों को तपने वाले तपस्वी हैं। श्रुतज्ञान के शिक्षण में तत्पर और सतत व्रत भावना में निपुण शैक्ष है। जिनका शरीर रोगों में आक्रांत है वे ग्लान है। स्थविरों की सन्तान गण है। दीक्षा देने वाले आचार्य की शिष्य परम्परा कुल है। चतुर्वर्ण श्रमणों के समूह को संघ कहते हैं। चिरकाल के दीक्षित पुराने साधक साधु है। अभिरूप को मनोज्ञ कहते हैं अथवा लोक में जो विद्वान है वाग्मी है महाकुलीन आदि जाति से प्रसिद्ध है। जिनका संघ में रहना प्रवचन गौरव का कारण है उनको मनोज्ञ कहते हैं। अथवा जो संस्कार सहित सुसंस्कृत असंयत सम्यदृष्टि है वह भी मनोज्ञ है। इस ग्रन्थ में विद्या जाति आदि से विख्यात जिन धर्म की प्रभावना करने वाले भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि को भी मनोज्ञ में ग्रहण किया है। इनकी आपत्ति दूर करना वैयावृत्ति है।।८६-९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परीषह समाश्लेषेऽमीषां यच्छेमुषीमुदः।

संपादनं त्रिरत्नाप्यैः वैयावृत्यं त्रिशुद्धितः।।९१।।

आवासाशन पानाद्यैः प्रासुकैः क्लेशनाशिभिः।

तदभावे स्वकायेन स्वोपकारानपेक्षया।।९२।।

विण्मूत्रश्लेष्म सिंघाणकादेर्देहादपोहनात्।

यत्नेनोत्क्षेपनिक्षेपपरिवर्त्तक्रियादिभिः।।९३।।

अन्वयार्थ–(अमीषां) इन दश प्रकार के संयमी जनों के (परीषहसमाश्लेषे) परीषह आदि के आ जाने पर (यत्) जो (शेमुषीमुदः) चित्त के हर्ष से (त्रिरत्नाप्तयै) तीन रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए (त्रिशुद्धितः) मन, वचन, काय की शुद्धि से (प्रासुकैः) प्रासुक (क्लेशनाशिभिः) क्लेश नाशक (आवासाशनपानाद्यैः) वसतिका, आहार, पानी, औषधि, आदि के द्वारा (वैयावृत्यं) (वैयावृत्यं) वैयावृति (सम्पादनं) करना चाहिए (तदभावे) औषधि आदि के अभाव में (स्वकायेन) अपनी काय से (स्वोपकारानपेक्षया) अपने प्रति उपकार की अपेक्षा न करते हुए (देहात्) शरीर से (विण्मूत्रश्लेष्मसिंघाणकादेः) मल, मूत्र, खंकार, नासिकामल (सिंघाण) आदि का (अपोहनात्) दूर करने से तथा (यत्नेन) यत्नपूर्वक (उत्क्षैपनिक्षैपपरिवर्त्तक्रियादिभिः) उठाना, बिठाना, परिवर्त्तन करना आदि क्रियाओं के द्वारा (वैयावृत्यं) वैयावृत्ति करना चाहिये।

भावार्थ–इन मुनियों पर, व्याधि, परीषह, आदि उपद्रव होने पर उनका प्रासुक औषधि, आहार, पान, आश्रय आसन, आवास धर्मोपकरण आदि से प्रतीकार करना तथा संयम, सम्यत्त्वादि से च्युत होने पर उनको संयम और सम्यत्त्व मार्ग में दृढ़ करना वैयावृत्य है। औषधि आदि के अभाव में प्रति उपकार की अपेक्षा नहीं करके अपने हाथों से मल, मूत्र, खंकार तथा नाकादि के भीतरी मल को दूर करना, उनको यत्नपूर्वक उठाना, बिठाना, परिवर्त्तन कराना, आदि भी वैयावृत्ति है।।९१-९३।।

अस्मिन्निर्विचिकित्सत्व वत्सलत्व सनाथता।

यशोऽभ्युदयनि श्रेयसुखाप्तिप्रमुखा गुणाः।।९४।।

अन्वयार्थ–(अस्मिन्) इस वैयावृत्ति में (निर्विचिकित्सत्ववत्सलत्वसनाथता) निर्विचिकित्सत्व,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वत्सलत्व, सनाथता (पवित्रता) और (यशोऽभ्युदयनिःश्रेयसुखाप्तिप्रमुखा) यश, अभ्युदय और निःश्रेय सुख प्राप्ति आदि प्रमुख (गुणाः) गुण है।

भावार्थ–वैयावृत्ति करने वाले मानव को निर्विचिकित्सत्ता, वात्सल्यत्व सनाथता, यशोभ्युदय, निश्रेयः सुख की प्राप्ति आदि अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। अर्थात् वैयावृत्ति करने वाले में निर्जुगुप्सा गुण होता है क्योंकि निर्जुगुप्सा के बिना वैयावृत्ति नहीं होती है। वात्सल्य भाव प्रकट होता है। वात्सल्य के अभाव में वैयावृत्ति कर नहीं सकते तथा वैयावृत्ति कारक पवित्र यश संसार में फैलता है और वैयावृत्ति का फल स्वर्ग सम्पदा एवं मुक्ति पद प्राप्त होता है।।९४।।

स्वाध्याय तप वर्णन

स्वस्मै योऽसौ हितोऽध्यायः स्वाध्यायो वाचनादिकः।
तपो वर्यमतो नान्यत्तपः सुद्वादशस्वपि।।९५।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (स्वस्मै) अपने लिए (हितः) हितकारी है (असौ) वह (वाचनादिकः) वाचनादि (अध्यायः) अध्याय (स्वाध्यायः) स्वाध्याय है (अपि) और (द्वादशसु) बारह प्रकार के (तपःसु) तपों में (अतः) इस स्वाध्याय तप से (अन्यत्) दूसरा (वर्यं) श्रेष्ठ (तपः) तप (न) नहीं है।

भावार्थ–जो आत्मीय हितकारी शास्त्र वाचनादिक अध्ययन है वह स्वाध्याय है। और बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय के समान दूसरा कोई तप नहीं है।।९५।।

नोर्ध्वमन्तमुहूर्त्तात्सद्ध्यानमध्ययनं पुनः।
सदैनो निर्जराकारि किन्तु न स्यात्कृतात्मनाम्।।९६।।

अन्वयार्थ–(अन्तर्मुहूर्त्तात्) अन्तमुहूर्त्त के (ऊर्ध्वं) (सद्ध्यानं) सद्ध्यान (न) नहीं है (किन्तु) परन्तु (पुनः) पुन (कृतात्मनां) पुण्यात्माओं के (एनः) पाप का (निर्जराकारी) निर्जराकारी (अध्ययनं) स्वाध्याय (सदा) निरन्तर (स्यात्) होता है।

भावार्थ–ध्यान अन्तमुहूर्त्त से अधिक नहीं हो सकता है, परन्तु स्वाध्याय तो निरन्तर कर सकते हैं। जो पुण्यात्माओं के पाप की निर्जरा का कारणभूत है।।९६।।

मनः सदर्थे वाक्पाठे वर्णोऽक्ष्णी तच्छ्रु तौ श्रुती।
प्रसक्ते निष्क्रियेऽक्षेऽन्ये तदैकाग्रय मिहाप्यलम्।।९७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(मनः) मन (सदर्थे) समीचीन अर्थ में (वाक्) वचन (पाठे) पठन में (अक्षणी) आँख (वर्णे) वर्ण में (प्रसक्ते) लीन हो जाने पर (अन्ये) अन्य (अक्षे) इन्द्रियों के (निष्क्रिये) निष्क्रिय हो जाने पर (इह) स्वाध्याय में (अपि) भी (तत्) वह (एकाग्रयं) एकाग्रता है (अलं) विशेष क्या कहें।

भावार्थ–स्वाध्याय परम ध्यान है क्योंकि स्वाध्याय करते समय मन समीचीन अर्थ के विचार करने में लग जाता है, वचन पाठ करने में नेत्र वर्णों को देखने में और कर्ण शब्दों के सुनने में लीन हो जाते हैं तथा सर्व इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं इसलिए स्वाध्याय में पूर्ण एकाग्रता होती है अतः एव स्वाध्याय परम तप है।।९७।।

अस्मात्तत्त्वपराभ्यासः प्रशमश्च विरागता।
भवेत् प्रभावनैकांतवादिमानप्रमर्दनं।।९८।।

अन्वयार्थ–(अस्मात्) इस स्वाध्याय से (तत्त्वपराभ्यासः) तत्त्व का उत्कृष्ट अभ्यास (प्रशमः) प्रशम भाव (विरागता) वैराग्य (प्रभावना) प्रभावना (च) और (एकांतवादिमानप्रमर्दनं) एकांत वादियों के मान का मर्दन (भवेत्) होता है।

भावार्थ–स्वाध्याय से तत्त्वों का अभ्यास होता है, प्रशम भाव वैराग्य की उत्पत्ति होती है, स्वाध्याय के बल से एकांत वादियों के मान के मर्दन करने की शक्ति प्राप्त होती है तथा धर्म की प्रभावना भी होती है।।९८।।

व्युत्सर्ग का लक्षण

शरीरान्तर्बहिः संग संग व्युत्सर्जनं मुनेः।
व्युत्सर्गः स्यात्समीचीनध्यानसंसिद्धिकारणम्।।९९।।

अन्वयार्थ–(शरीरान्तर्बहि; सगसंगव्युत्सर्जनं) शरीरादि अंतरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग (मुनेः) मुनि के (समीचीनध्यान संसिद्धिकारणं) समीचीन ध्यान की सिद्धि का कारण (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग (स्यात्) है।

भावार्थ–अंतरंग और बहिरंग के भेद से परिग्रह दो प्रकार का है। उनमें अंतरंग शरीर का ममत्व क्रोधादि कषायों का त्याग करना अभ्यन्तर व्युत्सर्ग है और क्षेत्र, वस्तु, आदि बहिरंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह का त्याग करना बहिरंग व्युत्सर्ग है। तथा यह व्युत्सर्ग मुनियों के ध्यान की सिद्धि का कारण है।।९९।।

ध्यान का लक्षण

ध्यानं तपः परं चित्तैकार्थलीन प्रवर्त्तनं।
कीर्त्यन्तेऽन्तमुहूर्त्तावस्थानं स्वर्ग मोक्ष साधनं।।१००।।

अन्वयार्थ–(अन्तर्मुहूर्त्तावस्थानं) अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवस्थान जिसका ऐसा (चित्तैकार्थलीनप्रवर्त्तनं) चित्त का एकार्थ में लीन होकर प्रवर्त्त होना (स्वर्मोक्षसाधनं) स्वर्ग मोक्ष का साधन (ध्यानं) नामक (परं) सर्वोत्कृष्ट (तपः) तप (कीर्त्यन्ते) कहा जाता है।

भावार्थ–अन्तर्मुहूर्त्त पर्यंत चित्त का एकाग्र होना ध्यान है। यह ध्यान स्वर्ग मोक्ष का साधन है। यही उत्कृष्ट तप है।।१००।।

तप की महिमा

विशिष्टमिष्टं घटत्युदारं दूरस्थितं वस्त्वति दुर्लभं च।
जैनं तपः किं बहुनोदितेन स्वर्गश्रियं चाक्षयमोक्षलक्ष्मीं।।१०१।।

अन्वयार्थ–(जैनं) जिनेन्द्र कथित (तपः) तप (दुरस्थितं) दुरस्थित (अतिदुर्लभं) अत्यन्त दुर्लभ (विशिष्टं) विशिष्ट (इष्टं) इष्ट (च) और (उदारं) उदार (वस्तु) वस्तु (घटयति) घटित करता है (बहुना) बहुत (उदितेन) कथन करने से (किं) क्या प्रयोजन है (स्वर्गश्रियं) स्वर्ग श्री (च) और (अक्षयमोक्षलक्ष्मीं) अविनाशी मोक्ष लक्ष्मी तप से प्राप्त होती हैं।

भावार्थ–जैन तप के प्रभाव से, अतिदूरस्थ, अतिदुर्लभ, इष्ट विशिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। और तो क्या स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित तप के प्रभाव से होती है।।१०१।।

मुनिसुव्रत स्तुति

नमोऽस्तु तस्मै मुनिसुव्रताय साक्षात्कृतन्यक्षचराचरो यः।।
व्रतानि सत्त्वैकहितानि यस्य सन्ति क्रमप्रह्वजगत्त्रयस्य।।१०२।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (साक्षात्कृतन्यक्षचराचरः) साक्षात किया है समस्त चराचर पदार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसने ऐसा (क्रमप्रह्वजगत्त्रयस्य) चरणों में नत है तीन जगत वाले (यस्य) जिसके (सत्वैकहितानि) प्राणियों के अद्वितीय हितकारी (व्रतानि) व्रत (सन्ति) है (तस्मै) उस (मुनिसुव्रताय) मुनिसुव्रत भगवान के लिए (नमोऽस्तु) नमस्कार है।

भावार्थ–जिसके ज्ञान में तीन लोक के सकल चराचर पदार्थ साक्षात प्रतिफलित होते हैं, तीन जगत के प्राणी जिसके चरणों में नत मस्तक हो रहे हैं, जिसके द्वारा कथित व्रत सर्व जगत का हित करने वाले हैं ऐसे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र के लिए मेरा नमस्कार हो।।१०२।।

इति श्रीमद्वीर नन्दिसिद्धांतिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार नाम्नि ग्रन्थे तप आचार वर्णनात्मकः षष्ठोऽधिकारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सप्तमोऽधिकारः

।।परीषहाधिकार।।

सुमतिनाथ स्तुति

सद्वृत्तिः सुमतिः पति स्त्रिजगतां नेता विमुक्तेः सृतेः[1]
यस्यात्यद्भुत चित्तशक्तिहुतभुग्ज्वालाकलापै रतं।
तन्नमार्गा[2]नुगमार्गबन्धनमहासंघातिनिर्बन्धिनः
प्लु[3]ष्टोदुष्टपरीषहोद्भटभटः सोयं जिनः पातु नः।।१।।

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसके (अत्यद्भुतचित्तशक्तिहुतभुग्ज्वालाकलापैः) अति अद्भुत चित्त शक्ति रूपी अग्नि के ज्वालाओं के समूह के द्वारा (तन्मार्गानुगमार्गबन्धनमहासंघातिनिर्बन्धिनः) मोक्षमार्ग के अनुग मार्ग के बन्धन करने वाले महासंघाति के निर्बन्धी (दुष्टपरीषहोद्भटभटः) दुष्ट परीषह रूपी उद्भटभटों को (प्लुष्टः) जला दिया है जो (विमुक्तेः) मुक्ति के (सृतेः) मार्ग के (नेता) नेता है। (त्रिजगतां) तीन जगत के (पतिः) पति हैं। (सद्वृत्तिः) सद्वृत्ति (सः) वह (अयं) यह (सुमतिः) सुमति (जिनः) जिनेन्द्र (न) हमारी (पातुं) रक्षा करे (अलं) पादपूर्णे।

भावार्थ–जिसकी अत्यन्त अद्भुत चैतन्यशक्ति रूप अग्नि की ज्वाला ने मोक्ष मार्ग के अनुगम मार्ग के बन्धन महासंघात के निर्बन्धी दुष्ट परीषह रूपी उद्भट योद्धाओं को जला दिया है, जो तीन जगत के स्वामी हैं वे समीचीन व्रत के धारी सुमति जिनेन्द्र हमारी रक्षा करो।।१।।

वीर्याचार का लक्षण एवं परीषहों के नाम

क्षुत्तृट् शीतमलोष्णदंशमशकेर्या रोगशय्यातृण-
स्पर्शक्लेशबधानलाभमरतिं निर्दर्शनं स्त्रीक्लमम्।
प्रज्ञाज्ञानभवौ सनाग्न्यशयनान्सत्कारयाञ्चानिष-
द्योद्भूतांश्च परीषहान् विजयते यो वीर्यचर्यो[4] यतिः।।२।।

---

१. मार्गस्य २. तन्मोक्षवर्त्तमबन्धविषये महा प्रतिज्ञायां अतीवा ग्रहवत; ३. दग्धः दर्पितः ४. वीर्याचारवान्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(क्षुत्तृट्) भूख, प्यास (शीतमलोष्णदंशमशकेर्यारोगशय्यातृणस्पर्शक्लेशबधान्) शीत, मल, उष्ण दंशमशक, ईर्या, (चर्या) रोग, शय्या, तृण स्पर्शक्लेश, बध (अलाभं) अलाभ (अरतिं) अरति (निर्दशनं) अदर्शन (स्त्रीक्लमं) स्त्री परीषह (प्रज्ञाज्ञानभवौ) प्रज्ञा और अज्ञान से उत्पन्न प्रज्ञा और अज्ञान परीषह (नाग्न्यशयनान्) नाग्न्य शयन (आक्रोश) (सत्कारयांचानिषधोद्भूतान) सत्कार, याचना, निषधा से उत्पन्न (परीषहान्) परीषहों को (यः) जो (जयते) जीतता है (सः) वह (यतिः) मुनि (वीर्यचर्यः) वीर्याचारवान् है।

भावार्थ–भूख १ प्यास २ शीत ३ उष्ण ४ दंशमशक ५ नाग्न्य ६ अरति ७ स्त्री ८ चर्या ९ निषद्या १० शय्या ११ आक्रोश १२ वध १३ याचना १४ अलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कार पुरस्कार १९ प्रज्ञा २० अज्ञान २१ और अदर्शन २२ इन कारणों से उत्पन्न परीषहों को जो जीतता है वह यतिराज वीर्याचारवान है।

क्षुधा परीषह

क्षुत्तीक्ष्णानशनादिजाक्षतिकरं स्वज्ञेय[1] वीक्षाक्षमं
स्वांन्तं भ्रान्ततरं करोति बल[2] वत्प्राणान्प्रयाणोन्मुखान्।
याऽदीननजनेऽफलाऽति सफला त्या[3]गात्तपः पुष्टये
तस्या धृत्यमृताशनेन शमनं कुर्वन्व्रती क्षुज्जयः।।३।।

अन्वयार्थ–(तीक्ष्णां) तीक्ष्ण (अनशनादिजा) अनशनादि से उत्पन्न (क्षुत) क्षुधा (अक्षनिकरं) इन्द्रियों का समूह को (स्वज्ञेयवीक्षाक्षमं) अपने ज्ञेय विषय को जानने में असमर्थ (स्वान्तं) मन को (भ्रान्ततरं) भ्रान्तर (बलवत्प्राणान्) बलवत् प्राणों को (प्रयाणोन्मुखान्) प्रयाण करने के सन्मुख (करोति) करती है (या) जो (अन्नाधीनजने) अन्न के आधीन जनों में (अफला) निष्फल है (त्यागात्) आहार निवृत्ति से (तपः पुष्टये) तप की पुष्टि के लिए (अतिसफला) अत्यन्त सफल है (तस्याः) उस क्षुधा का (धृत्यमृताशनेन) धैर्य रूपी अमृत के अशंन (भोजन) से (शमनं), शमन (कुर्वन्) करता हुआ (व्रती) मुनि (क्षुज्जयः) क्षुधा परीषह को जीतने वाला होता है।

---

१. स्वीयरूपादीकं ज्ञातुम समर्थं २. बलधी प्राणान् ३. आहार निवृत्तेः ४. शीत परीषह जय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–अत्यन्त तीक्ष्ण उपवास आदि से उत्पन्न क्षुधा इन्द्रियों के समूह को अपने ज्ञेय विषय के जानने में असमर्थ कर देती है। चित्त को भ्रान्त कर देती है। बलवत्प्राणों को प्रयाण के सन्मुख कर देती है। अर्थात् क्षुधा से व्याकुल मानव की इन्द्रियाँ अपने कार्य से विमुख हो जाती हैं। मनः आकुल व्याकुल हो जाता है। मृत्यु सन्मुख आ जाती है। इस क्षुधा को अन्न के आधीन रहने वाले मानव जीत नहीं सकते हैं। उस क्षुधा को जो आहार का त्याग कर धृति रूपी अमृत के अशन से शमन करते हैं वही साधु क्षुधा परीषह जयी होते हैं।।३।।

तृषा परीषह

चंडश्चंडकरः स्थलस्थितपयः संचारिणः प्राणिनः
भ्रष्टप्लुष्ट तनुं स्तनोति नितरां यस्मिंस्त[1]पे तापने।
तस्मिन् स्निग्ध विरुद्धभोजनरुजाऽऽतापादि पुष्यत्तृषां
त्य[2]क्ते निःस्पृहतामृतेन कृ[3]तधीमुष्णाति तृष्णाजयः।।४।।

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिस (तपे) ग्रीष्म काल के (तापने) तप्ताय मान हो जाने पर (चंडः) तीक्ष्ण (चंडकरः) सूर्य (स्थलस्थितपयः संचारिणः) स्थल स्थित और जल में संचार करने वाले (प्राणिनः) प्राणियों को (भ्रष्टप्लुष्टतनून्) भ्रष्टदग्ध शरीर वाले (तनोति) कर देता है (तस्मिन्) उस ग्रीष्म ऋतु में (स्निग्धविरुद्धभोजनरुजाऽऽतापादिपुष्यतृषां) स्निग्ध प्रकृति विरुद्ध भोजन, रोग आतापादि से उत्पन्न तृषा को (तृष्णाजयः) तृष्णा परीषहजयी (कृतधीः) पुण्य बुद्धि वाला यतिराज (त्यक्ते) परित्यक्त वस्तु में (निस्पृहताभृतेन) निस्पृहता रूपी अमृत से (मुष्णाति) नष्ट करता है।

भावार्थ–जिस ग्रीष्म काल में तीक्ष्ण सूर्य की किरणों से तालाब नदी शुष्क हो जाते हैं, जलचर, स्थलचर, नभश्चर, जीवों का शरीर दग्ध हो जाता है, उस ग्रीष्म ऋतु में स्निग्ध, रूक्ष, विरुद्ध, आहार से वा रोगादि से उत्पन्न प्यास को पुण्यात्मा, पवित्र बुद्धि के धारक यतीश्वर परित्यक्त वस्तु में स्पृहा का त्याग कर समतामृत के पान से बुझाते हैं वे तृषा परीषहजयी होते हैं।।४।।

---

१. ग्रीष्म २. परित्यक्त वस्तुनि ३ कृति पुण्ये धीः यस्य सः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीत परीषह

प्रोत्कम्पा हिमभीमशीतपवनस्पर्श प्रभि[१]न्ननांगिनो
य[२]स्मिन्यान्त्यति शीतखेदमवशाः प्रालेयकालेऽगिनः।
तस्मिन्नस्मरतः पुरा प्रियतमाश्लेशादि जात सुखं
योगागारनिरस्तशीत विकृते निर्वास[३]सस्त[४]ज्ययः।।५।।

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिस (प्रालेयकाले) शीत काल में (प्रोत्कम्पाहिम भीमशीतपवनस्पर्श-प्रभिन्नांगिनः) प्रोत्कम्प शीत हिम से भयंकर शीतल पवन के स्पर्श से स्फुटित शरीर के अवयव जिन्हों के ऐसे (अंगिनः) प्राणी (अवशाः) पर वश होकर (अतिशीतखेदं) अत्यन्त शीत के खेद को (यांति) प्राप्त होते हैं (तस्मिन्) उस शीतकाल में (पुरा) पूर्वकाल में (प्रियतमाश्लेषादि जातं) प्रियतमा के आश्लेष (आलिंगिन) से उत्पन्न (सुखं) सुख का (अस्मरतः) स्मरण नहीं करते हुये (योगागारनिरस्त शीतविकृतेः) योगाभ्यास रूपी घर के निवास से दूर किया है शीत की बाधा को जिसने ऐसे (निर्वाससः) दिगम्बर साधु के (तज्जयः) शीत परीषह जय होती है।

भावार्थ–जिस शीतकाल में शरीर में कम्पन उत्पन्न करने वाली शीतल वायु के स्पर्श से शरीर के अवयव फट जाते हैं, तथापि पूर्वकाल में अनुभूत वनिता जन्य सुखों को स्मरण नहीं करते हुये दिगम्बर साधु धीर वीर होकर शुभ ध्यान रूपी घर में निवास करते शीत की बाधा का निवारण करते हैं अर्थात् शीत बाधा से आकुलित नहीं होते हैं, वे शीत परीषह जयी होते हैं।।५।।

मल परीषह

प्रा[५]णाघात विभीतितस्तनुरतित्यागाच्च भोगा[६]स्पृहः
स्नानोद्वर्त्तनलेपनादिविगमात् प्रस्वे[७]द पांसूदितं।
लोकानिष्टमनिष्टमात्मवपुषः पामादिमूलं मलं
गात्र[८]त्राणमिमादधाति वृजिनं[९] जेतु मलक्लेश[१०] जित्।।६।।

---

१. स्फुटितावयवाः, २. शिशिरकाले, ३. निर्ग्रन्थस्य, ४. शीत परिषहजय, ५. प्राणिहिंसा,
६. भोगे अस्पृहा यस्य सः भोगास्पृहः, ७. धर्म धूलि जातं।
१. कवच, २. पाप, ३. मल परीषह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(भोगास्पृहः) भोगों में जिसकी इच्छा नहीं है ऐसा साधु (प्राणाघातविभीतितः) प्राणियों के विघात के भय से (च) और (तनुरतित्यागात्) शरीर सम्बन्धी ममत्व के त्याग से (स्नानोद्वर्त्तनलेपनादिविगमात्) स्नान, उद्वर्त्तन, लेपन, आदि के नहीं करने से (प्रस्वेदपांसूदितं) पसीना और धूलि से उत्पन्न (लोकानिष्टं) लोगों को अप्रिय (आत्मवपुषः) अपने शरीर को भी (अनिष्टं) अनिष्ट (पामादिमूलं) खुजली आदि का मूल ऐसे (मलं) मल को (वृजिनं) पाप को (जेतुं) जीतने के लिए (गात्रत्राणं) कवच के (इव) समान (आदधाति) धारण करता है, वह (मलक्लेशजित्) मल परीषह को जीतने वाला होता है।

भावार्थ–जो संयमी प्राणियों के विघात से भयभीत है, जिसका शरीर के प्रति ममत्व नहीं है, इसलिए प्राणियों के विघातक स्नान, विलेपन नहीं करने वाले साधु के शरीर में पसीना व धूल से मल उत्पन्न हो जाता है, जिससे शरीर में खुजाल उत्पन्न होती है, लौकिक जन को जो अनिष्ट है, देखने में अमनोज्ञ है ऐसे मल को पापभीरू साधु पापपुंज को नाश करने के लिए शरीर रक्षक कवच के समान धारण करता है वह मल परीषह जयी कहलाता है।।६।।

उष्ण परीषह

ग्रीष्मे शुष्यदशेष देहिनिकरे मार्तण्डचंडांशुभिः
संतप्तात्मतनुस्तृषानशनरुक्क्लेशादिजातोष्णनम्।
M&ॅषस्वेदविदाहखेदमवशे[५] नाप्तं पुराऽपिस्मरन्
तन्मुक्त्यै निजभावभावनरतिः स्यादुष्णाजिष्णुर्व्रती।।७।।

अन्वयार्थ–(शुष्यदशेषदेहिनिकरे) शुष्क है समस्त प्राणियों का समूह जिसमें ऐसे (ग्रीष्मे) ग्रीष्मकाल में (मार्तण्डचंडांशुभिः) सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के द्वारा (संतप्तात्मतनुः) संतप्तमान है शरीर जिसका (तृषानशनरूक्लेशादिजातोष्णजं) प्यास, उपवास, रोग, क्लेश आदि से उत्पन्न उष्ण जात (अवशेन) परवश से (आप्तं) प्राप्त (शोषस्वेद विदाह खेदं) तालु शोष स्वेद विदाह खेद को (पुरापि) पूर्व में किये कर्मों का (स्मरन्) स्मरण करता हुआ (तन्मुक्त्यै) उन कर्मों का

---

४. तालु शोष, ५. परवशेन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाश करने के लिए (निजभावभावनरतिः) अपने भावों को भावन में लीन (व्रती) व्रती (उष्णजिष्णुः) उष्णपरीषह जयी (स्यात्) होता है।

भावार्थ–प्राणियों के शरीर को ग्रीष्म काल में कृश करने वाले सारे प्राणी तीक्ष्ण सूर्य के किरणों से संतप्त हो रहे हैं, तृषा, उपवास, विहार, रोग, क्लेशादि से उत्पन्न उष्मता से तालु शुष्क हो रहा है, सारे शरीर में पसीना निकल रहा है, शरीर में दाह उत्पन्न हो रहा तो भी व्रती साधु खेद खिन्नता को प्राप्त नहीं होकर आत्म भावना में लीन रहता है। वह उष्ण परीषह जयी होता है।।७।।

दंश मशक परीषह

शून्यागारदरीगुहादिशुचिनि स्थाने विविक्ते स्थितः
तीक्ष्णैर्मत्कुणकीटदंशमशकाद्यैश्चंडतुन्डैः कृताः।
स्वांगार्ति परदेहजार्त्तिमिवतां यो मन्यमानोमुनिः
निःसंगः स सुखी च दंशमशकक्लेशं क्षमी त नुमः।।८।।

अन्वयार्थ–(शून्यागारदरीगुहादिशुचिनि) शून्य घर, कन्दरा, गुफा आदि पवित्र (विविक्ते) एकांत (स्थाने) स्थान में (स्थितः) स्थित (मुनिः) मुनि (तीक्ष्णैः) तीक्ष्ण (मत्कुणकीटदंशमशकाद्यैः) खटमल, कीट, मच्छर, डांस आदि के द्वारा (चडतुंडै) तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी आदि के द्वारा (कृतां) की हुई (स्वांगार्त्ति) अपने शरीर के पीड़ा को (परद्रेहजार्त्ति) दूसरे के शरीर में उत्पन्न हुई पीड़ा के (इव) समान (तां) उस पीड़ा को (यः) जो (मन्यमानः) मानता है (सः) वह (निःसंगः) निःसंग (सुखी) सुखी (दंशमशक्क्लेशं) दंश मशक क्लेश को (क्षमी) सहन करने वाला है (तं) उसको (नुमः) हम नमस्कार करते हैं।

भावार्थ–जो शून्य गृह पर्वत की कन्दरा, गुफा, वृक्ष के कोटर में रहकर तीक्ष्ण खटमल, कीट, मच्छर, दंश मशकादिका के द्वारा उत्पन्न हुई अपने शरीर के पीड़ा को दूसरे के शरीर में उत्पन्न हुई पीड़ा के समान समझता है वह निस्परिग्रहा, सुखी दिगम्बर साधु दंशमशक परीषहजयी कहलाता है। उसको मैं नमस्कार करता हूँ।।८।।

चर्या परीषह

शार्दूलैर्मिलितेच्छ[1]भल्लभुजगामोगेभयैकास्पदे

---

१. अच्छभल्ल भुजगानामाभोगाः पूर्णता यस्मिन् "आभोगः परिपूर्णता" इत्यमिधानात्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गन्धान्धद्विरदोत्करे करिरपु क्रीडै[१] कनीडे बने।
स्वैरं कण्टक कर्करादि[२] परुषेऽप्यत्राण[३]पादश्चरन्
एकः सिंह इवार्त्तिभीतिविजयी व्रज्यार्त्तिजित्संयमी।।९।।

अन्वयार्थ–(शार्दूलैः) शार्दूलों से (मिलिते) मिलित (अच्छभल्लभुजगामोगे) सबल, भालुक, भुजंग से व्याप्त (भयैकास्पदे) भय का एक स्थान (गन्धान्ध द्विरदोत्करे) गन्ध से अन्ध हुये गजराज का समूह है जिसमें (करिरिपुक्रीडैकनीडे) सिंह की क्रीड़ा का एक स्थान (कण्टककर्करादिपुरुषे) कण्टक कर्करादि से कठोर (वने) वन में (अपि) भी (अत्राणपादः) जूता रहित पैर वाला (स्वैरं) इच्छानुसार (सिंहः) सिंह के (इव) समान (चरन्) भ्रमण करता हुआ (अर्त्तिभीतिविजयी) अर्तिभीतिविजयी (संयमी) संयमी (व्रज्यार्तिजित्) चर्या परीषहजयी होता है।

भावार्थ–जो शार्दूल, व्याघ्र, चीता, रीक्ष, सर्प आदि से भरा हुआ है भयास्पद है, गन्ध से मदोन्मत्त हुये गजराजों के क्रीड़ा का स्थान है, कंकर, पत्थर, कण्टक आदि से व्याप्त है ऐसे वन में सिंह के समान निर्भय होकर अत्राण पाद (जूता रहित) पैरों से भ्रमण करने वाले मुनि चर्या परीषहजयी होते हैं।।९।।

रोग परीषहजय

कण्डूयागलगण्ड[४] पांडुदवथु[५]ग्रन्थिज्वश्लीपद-
श्लेष्मोदुम्बरकुष्ठपवनश्वासादिरोगार्दितः[६]।
भिक्षुः क्षीण बलोऽपि भेषज सुहृन्मंत्रानपेक्षः क्षमी
दुस्कर्मारि विनिर्मितार्ति विजयी स्याद् व्याधिबाधाजयः[७]।।१०।।

अन्वयार्थ–(कण्डूयागलगण्डपाण्डुदवथुग्रन्थिज्वरश्लीपद, श्लेष्मोदुम्बर-कुष्ठपित्तपवनश्वासादिरोगार्दितः) खुजली, कंठमाला, पाण्डु, दाह, ग्रन्थि, ज्वर, वल्मीक पाद, (पैर बहुत मोटा होता है) कफ, उदम्बर, कुष्ट, पित्त, वायु, श्वासादि रोगों से पीड़ित (क्षीणबलः)

---

१. एक गृहे, २. निष्ठुरे ३. पादत्राण रहितः इत्यर्थः।

४. गण्डमाला ५. टु दु उपतापे-दाह, ६. पीड़ित, ७. रोग परीषह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षीण बल वाला (अपि) भी (क्षमी) क्षमाशील (भिक्षुः) साधु (भेषज-सुहृन्मंत्रानपेक्षः) औषधि, मित्र और मन्त्रों की अपेक्षा नहीं करता हुआ (दुष्कर्मारिविनिर्मिता) दुष्कर्म रूपी शत्रुओं के द्वारा विनिर्मित (आर्त्तिविजयी) दुःखों को जीतने वाला (व्याधिबाधाजयः) व्याधि बाधाजयी (स्यात्) होता है।

भावार्थ–खुजाल, गंडमाल, पांडु रोग, दाह, ग्रन्थि, ज्वर, श्लीपद, कफ, उदम्बर, कुष्ठ, वायु, श्वास आदि रोग से पीड़ित, क्षीण शक्ति वाला भी क्षमाशील साधु भैषज, मित्र और मन्त्रों की अपेक्षा नहीं करता है और दुष्कर्म रूपी शत्रु के द्वारा निर्मित रोगों पर विजय प्राप्त करने वाला साधु व्याधि परीषहजयी होता है।।१०।।

शयन परीषह

झंझा[1] वातहतार्तकौशिक[2]शिवा[3]फेत्कारघोरस्वरां
शंपा[4]क्रूररदां स्फुरद्रु चितडिज्जिह्वां क्षपा[5]राक्षसीम्।
यो तां द्राग् गमयत्यसौ[6] शयन[7] जातायासजिद्धीरधी;
[8]ध्वान्तात्यन्तकराल[9]भूधर[10] दरीदेशे प्रसुप्तः क्षणं।।११।।

अन्वयार्थ–(झंझावातहतार्तकौशिकशिवाफेत्कारघोरस्वरां) वृष्टि सहित वायु के ताडित होने से दुःखी, उल्लू और शृंगाल (सियार) पशुओं के फेत्कार (चीत्कार) से घोर शब्द वाली (शंपाक्रू ररदां) अशनि (बिजली का प्रकार) है क्रूर दांत जिसके (स्फुरद्रुचितडिज्जिह्वां) स्फुरति बिजली है जिह्वा जिसकी ऐसी (तां) उस (क्षपाराक्षसीं) रात्रि रूपी राक्षसिनी को (यः) जो (द्राग्) शीघ्र ही (धीरधी) धीर बुद्धि वाला (ध्वान्तात्यन्तकरालभूदरदरीदेशे) अन्धकार से अत्यन्त रौद्र पर्वत की गुफा के प्रदेशों में (सुप्तः) सोया हुआ (क्षणं) क्षण के समान (गमयति) व्यतीत करता है (असौ) वह साधु (शयनजातायासजित्) शयनपरीषह जयी होता है।

भावार्थ–जहाँ वर्षा सहित भयंकर वायु से पीड़ित होकर उल्लू और शृंगार चीत्कार कर रहे हैं, वह तो जिसके शब्द हैं, शंपा जिसके क्रूर दांत हैं, स्फुरायमान कांति वाली विद्युत

---

१. वृष्टि सहिता वागुः झंझावातः सवृष्टि–स्यात् वात्या वातस्तु मंडली इत्यमरः २. उलूकः ३. जम्बुकः ४. अशनि ५. रात्रि ६. अवसानं प्रापयति ७. शय्या परीषह ८. अन्धकार ९. रौद्र १०. पर्वत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसकी जिह्वा है, ऐसी विकराल रात्रि रूपी राक्षसिनी को धीर बुद्धि वाले तपस्वी घोर अन्धकार से पूरित पर्वत की गुफा के प्रदेश में सोये हुए सुख पूर्वक व्यतीत करते हैं वे शयन परीषहजयी होते हैं।।११।।

तृण स्पर्शपरीषह

श्रान्तः सन् श्रुत[१]भावनाऽनशनसद् ध्यानाऽध्व[२]यानादिभिः
स्तोकं कालमतिश्रमापहृतये शय्यानिषधे[३] भजन्।
शुद्धोर्वीतृणपत्र संस्तरशिला पट्टेषुतत्पीड़नः
कंडयादिसहो भवेदिह तृणस्पर्शक्षमी संयमौ।।१२।।

अन्वयार्थ–(श्रुतभावनानशनसद्ध्यानाध्वयानादिभिः) श्रुत की भावना, उपवास, समीचीन ध्यान और मार्ग में गमनादि के द्वारा (श्रान्तःसन्) क्लान्त (थका हुआ) (अतिश्रमापहृतये)ः अति श्रम को दूर करने के लिए (शुद्धोर्वीतृणपत्रसंस्तरशिलापट्टेषु) शुद्ध पृथ्वी, तृण, पत्र, संस्तर और शिलापट्ट पर (स्तोकं) थोड़े (कालं) काल तक (शय्यानिषद्य) शय्या और निषद्या को (भजन) धारण करता हुआ (तत्पीड़नः) उसकी पीड़ा (कंडूयादिसहः) खुजाल आदि को सहन करता हुआ (संयमी) (इह्) इस लोक में (तृणस्पर्शक्षमी) तृणस्पृह परीषहजयी (भवेत्) होता है।

भावार्थ–श्रुत की भावना, उपवास, समीचीन ध्यान और मार्ग में गमनादि के कारणों से क्लान्त संयमी अतिश्रम को दूर करने के लिए शुद्ध पृथ्वी, तृण, पत्र, संस्तर और शिलापट्ट पर स्तोक काल तक शयनासन करते हैं। उस समय तृण आदि से शरीर में खुजाल उत्पन्न होती है उसको आनंदित होकर सहन करते हैं, मन में खेद खिन्न नहीं होते हैं। वे तृण स्पर्श परीषहजयी कहलाते हैं।।१२।।

वध परीषह

रुष्टैः पूर्व भवापकारकलनात्तज्जन्मवैरात्खलैः
म्लेच्छैर्निष्करुणैरकारणगुणाद्वेषैश्च पापात्मकैः।

---

१. स्वाध्याय, २. मार्गगमन, ३. शयनोपवेशन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहच्छेदनभेदनादिविधिना यो मार्यमाणोऽप्यलं
देहात्मात्मविभेदवेदनभवक्षांतिर्वधार्तिक्षमी।।१३।।

अन्वयार्थ–(पूर्वभवापकारकलनात्) पूर्व भव के अपकार के जान लेने से अथवा (तज्जन्मवैरात्) उस जन्म सम्बन्धी वैर से (रुष्टैः) रुष्ट हुये (खलैः) दुष्टों के द्वारा (च) और (निष्करुणः) निर्दया (अकारणगुणद्वेषैः) विना कारण गुणों से द्वेष करने वाले (पापात्मकैः) पापी (म्लेच्छः) म्लेच्छो' के द्वारा (देहच्छेदन भेदनादिविधिना) शरीर के छेदन भेदनादि विधि से (मार्यमाणः) मारने पर (अपि) भी (यः) जो (देहात्मात्मविभेदवेदनभवक्षांति) शरीर और अपने आत्मा के भेद विज्ञान के अनुभव से उत्पन्न क्षमाधारी संयमी (वाधार्त्तिक्षमी) वध वरीषह को सहन करने में (अलं) समर्थ होता है।

भावार्थ–पूर्व भव के अपकार के जान लेने (जातिस्मरण) से अथवा उस जन्म सम्बन्धी वैर भाव से रुष्ट हुये शत्रुओं के द्वारा अथवा निष्कारण गुणों में द्वेष रखने वाले, पापी, निर्दयी म्लेच्छों के द्वारा शरीर के छेदन, भेदन, मारण ताड़न आदि करने पर भी जो शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान से उत्पन्न आत्मानुभव के सामर्थ्य से खेद खिन्न नहीं होता है क्षमाशील वह साधु वध परीषहजयी कहलाता है।।१३।।

अलाभ परीषह

हंहो १ देह १ सहायतां तव समुद्दिश्यैवपोष्यो मया
पूर्त्तो मत्तपसो गृहावलिमतो भ्रान्त्वाप्यनाप्तेऽशने।
दोषः कोपि न विद्यते मम पुनलीभादलाभक्षमा
तां पूर्त्ति प्रतनोत्यतः प्रियतमैषैवेत्यलाभक्षमा।।१४।।

अन्वयार्थ–(हंहो) हे (देह) शरीर (मत्तपसः) मेरे तप की (पूर्त्तौ) वृद्धि में (तव) तेरी (सहायतां) सहायता का (समुद्दिश्य) उद्देश्य लेकर (एव) ही (मया) मेरे द्वारा (तव) तेरा (पोष्यः) पोषण करना योग्य है। (अतः) इसलिये (गृहावलिं) घरों की पंक्तियों में (भ्रान्त्वा) भ्रमण करके भी (अंशने) भोजन के (अनाप्ते) प्राप्त नहीं होने पर (मम) मेरा (कः) कोई (अपि) भी (दोषः) दोष (न) नहीं है (पुनः) पुनः (लाभात्) लाभ की अपेक्षा (अलाभक्षमा) आहार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्राप्ति (तां) उस तप की (पूर्ति) पूर्ति को (प्रतनोति) विस्तरित करती है। (अतः) इसलिये (एषा) यह आहार की अप्राप्ति (तां) उस तप की पूर्ति को (प्रतनोति) विस्तरित करती है। (अतः) इसलिए (एषा) यह आहार की अप्राप्ति (एव) ही (प्रियतमा) प्रियतम है (इति) इस प्रकार (अलाभक्षमी) संयमी अलाभ जयी होता है।

भावार्थ–हे शरीर! तू मेरे तप की वृद्धि का कारण है, इसलिये मैं योग्य आहारादि के द्वारा तेरा पोषण करने के लिए घरों की पंक्ति में भ्रमण करता हूँ। यदि भ्रमण करने पर भी आहार की प्राप्ति नहीं होती है, तो मेरा कोई दोष नहीं है। आहार की प्राप्ति की अपेक्षा आहार की अप्राप्ति मेरे तप की विशेष वृद्धि करती है, इसलिए आहार की अप्राप्ति ही मुझे प्रियतम है। ऐसा विचार करके आहार की अप्राप्ति में जो आनन्द मानता है वह संयमी अलाभ परीषहजयी होता है।।१४।।

अरति परीषह

दुर्वारिन्द्रिय वृन्द रोगनिकर क्रूरादिबाधोत्करै;
प्रोद्भूतामरतिं व्रतोत्करपरित्राणे गुणोत्पोषणे।
मंक्षु क्षीणतरां करोत्यरतिजिद्वीरः स बंद्यः सतां
यो दंडत्रयदंडनाहितमतिः सत्यप्रतिज्ञो व्रती।।१५।।

(यः) जो (व्रती) सयमी (दुर्वारिन्द्रियवृन्दरोगनिकरक्रूरादिबाधोत्करैः) दुर्वार इन्द्रियों के समूह रोगों के समूह, क्रूरपशु आदि की बाधाओं के समूह से (प्रोद्भूतां) प्रोद्भूत (अरतिं) अरति को (व्रतोत्करपरित्राणे) व्रतों के समूह के रक्षा करने में (गुणोत्पोषणे) गुणों के पुष्ट करने में (मंक्षु) शीघ्र ही (क्षीणतरां) क्षीणतर (करोति) करता है (सः) वह (अरतिजित्) अरति परीषहजयी (दंडत्रयदंडनाहितमतिः) मन, वचन, काय इन तीन दंडों के दमन करने के लिए ग्रहण की मति जिसने ऐसा (सत्यप्रतिज्ञा) सत्य प्रतिज्ञा वाला (वीरः) वीर (सतां) सज्जनं पुरुषों के द्वारा (वंद्यः)ः वंदनीय होता है।

भावार्थ–जो संयमी अमनोज्ञ इन्द्रियों के विषय से, रोग आदि के उत्पन्न होने से, क्रूरपशु आदि की बाधाओं के समूह से उत्पन्न अरति को अपने व्रतों की रक्षा करने में एवं गुण समूह को पुष्ट करने के लिए क्षीण कर देता है, मानसिक जुगुप्सा उत्पन्न नहीं होने देता है, वह मन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन, काय का विजयी (त्रिगुप्तिधारक) सत्य प्रतिज्ञ, धीर, वीर, अरति परीषहजयी संयमी सत्पुरुषों के द्वारा वंदनीय होता है।।१५।।

अदर्शन परीषह

वर्ण्यते बहवस्तपोऽतिशयजाः सप्तर्द्धिपूजादयः
प्राप्ताः पूर्वातपोधनैरितिवचोमात्रं तदद्यापियत्।
तत्त्वज्ञस्य ममापि तेषु नहि कोऽपीत्यार्त्त संगोज्झिता
चेतोवृत्तिरदृक् परीषहजयः सम्यक्त्वसंशुद्धितः।।१६।।

अन्वयार्थ–(पूर्वतपोघनैः) पूर्व काल में तपोधनों के द्वारा (बहवः) बहुत से (तपोऽतिशयजाः) तप के अतिशय के उत्पन्न (सप्तर्द्धिपूजादयः) सप्त ऋद्धि पूजा आदि (प्राप्ताः) प्राप्त हुई हैं (इति) इस प्रकार (यत्) जो (अद्यापि) आज भी (वर्ण्यन्ते) वर्णन किया जाता है (तत्) वह कथन (बचोमात्रं) वचन मात्र है (हि) क्योंकि (तेषु) उनमें से (मम) मुझ (तत्त्वज्ञस्य) तत्त्व ज्ञानी के (कः अपि) कोई भी ऋद्धि (न) नहीं हुई है (इति) इस प्रकार (आर्त्तसंगोज्झिता) आर्त्त ध्यान के संग से रहित (चेतोवृत्तिः) मानसिक प्रवृत्ति है। वह (सम्यक्त्वसंशुद्धितः) सम्यक्त्वसंशुद्धि से (अदृक्परीषहजयः) अदृक्परीषहजयी कहलाती है।

भावार्थ–पूर्वकाल में तपोधनों ने बहुत से तपोअतिशय से उत्पन्न सप्त ऋद्धियाँ प्राप्त की हैं, ऐसा आज भी शास्त्रों में सुना जाता है। परन्तु मुझे तो यह वार्त्ता सत्य प्रतीत नहीं होती है। क्योंकि मैं तत्त्वज्ञानी इतना उत्कृष्ट तपश्चरण करता हूँ, परन्तु मुझे तो एक भी ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई है। इस प्रकार मानसिक अश्रद्धा उत्पन्न नहीं होना ही सम्यक्त्व की निर्मलता है और इसी से योगी अदर्शन परीषहजयी होता है।।१६।।

स्त्री परीषह

जेता चित्तभवस्त्रयस्य[1] जगतां यासामपांगेषुभिः[2]
ताभिर्मत्तनितम्बिनीभिरभितः संलोभ्यमानोऽपि[3] यः।
तत्फल्गुत्वभवेत्य[4] नैति विकृतिं तं वर्य्यधै[5] र्येन्दिरं
वन्दे स्त्र्यार्त्तिजयं[6] जयन्तमखिलानर्थं कृतार्थं यतिं।।१७।।

---

१. कामः, २. कटाक्षवाणैः, ३. लोभ उत्पादय मानोऽपि, ४. तासां अन्तः सार रहितं त्वं
५. श्रेष्ठ धैर्येन्द्रिरा लक्ष्मी यस्य स तं, ६. स्त्री परीषहजित् स्यात्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यासां) जिन स्त्रियों के (अपांगेषुभिः) कटाक्ष रूपी वाणों के द्वारा (चित्तभवः) कामदेव (जगतांत्रयस्य) तीनों जगत का (जेता) जीतने वाला हुआ था (ताभिः) उन (मत्तनितम्बिनीभिः) मदोन्मत्त स्त्रियों के द्वारा (अमितः) चारों तरफ से (संलोभ्यमानः) लोभित किया हुआ (अपि) भी (यः) जो (तत्फल्गुत्वं) उन स्त्रियों के कटाक्ष को सार रहित (अवेत्य) जानकर (विकृतिं) विकृति को (न) नहीं (एति) प्राप्त होता है (तं) उस (वर्य्यधैर्येन्दिरं) श्रेष्ठ धैर्य है लक्ष्मी जिसके ऐसे (अखिलनार्थं) समस्त अनर्थों को (जयन्तं) जीतने वाले (कृतार्थं) कृतकृत्य (स्त्र्यर्त्तिजयं) स्त्री परीषहजयी (यतिं) मुनि को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ–जिन स्त्रियों के कटाक्ष रूपी वाणों के द्वारा कामदेव तीन जगत का जीतने वाला हुआ था। उन वनिताओं के द्वारा चारों तरफ से संलोभ्य मान होकर भी जो उन कटाक्षों को निस्सार समझ कर विकृति भाव को प्राप्त नहीं होता है। उस श्रेष्ठ धैर्यधारी कृतकृत्य अखिल अनर्थों को जीतने वाले स्त्रीपरीषहं जयी साधु को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रज्ञा परीषह

प्रत्यक्षाक्रम[१] विश्वस्तुविषयज्ञानात्मनः स्वात्मनो
गर्वः सर्वमतश्रुतज्ञ इति यः प्राप्ते[२] परोक्षे श्रुते।
सर्वस्मिन्नपि नो तनोति हृदये लज्जां स किं[३] तामिति
प्रज्ञोत्कर्षमदापनोदनपरः प्रज्ञार्त्ति[४] जित्तत्त्ववित्।।१८।।

अन्वयार्थ–(प्रत्यक्षाक्रमविश्ववस्तुविषयज्ञानात्मन) प्रत्यक्ष और अक्रम से समस्त वस्तु के विषय का ज्ञान करने वाले (स्वात्मनः) अपने आत्मा के (परोक्षे) परोक्ष (श्रुते) श्रुतज्ञान के (प्राप्ते) प्राप्त हो जाने पर (सर्वमतश्रुतज्ञः) सर्व मत को जानने वाला हूँ (इति) इस प्रकार का (यः) जो संयमी (गर्वः) गर्व युक्त (न) नहीं है (सर्वस्मिन्) सम्पूर्ण ज्ञान हो जाने पर भी (हृदये) हृदय में (किं तां) अनिर्वचनीय (लज्जां) लज्जा को (तनोति) प्राप्त होता है (सः) वह (प्रज्ञोत्कर्षमदानोदनपर;) प्रज्ञा के उत्कर्ष के मद को दूर करने में तत्पर (तत्त्ववित्) तत्व को

---

१. युगपत् २. ज्ञाते, ३. अनिर्वचनीय ४. प्रज्ञापरीषहजित् ५. अत्र तत्रापि इति च शब्दात् लभ्यते ६. सुष्ठुज्ञातवस्तुस्वरूपः ७. प्रयोजनं, ८. अंतरंगबहिरंग कारणे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानने वाला (प्रज्ञार्त्तिजित्) प्रज्ञा परीषहजयी होता है।

भावार्थ–वास्तविक में आत्मा प्रत्यक्ष एवं युगपत् सर्व पदार्थों का जानने वाला है उसके परोक्ष श्रुत के जान लेने पर मैं सर्व मत का ज्ञाता हूँ। यह जानता हुआ भी हृदय में अनिर्वचनीय लज्जा को प्राप्त होता है। वह प्रज्ञा के उत्कर्ष के मद को अपनोदन करने में तत्पर तत्त्वज्ञानी प्रज्ञा परीषहजयी होता है।।१८।।

अज्ञान परीषह

ज्ञानध्यानरता मतिर्ममतपस्तीव्रं न चोत्पद्यते[1]
ज्ञानं पूर्णमयं जडः पशुरिति श्रोतुं वचोऽहं क्षमः।
नेत्यज्ञानपरीषहं स सहते प्रव्यक्त[2]वस्तुस्थितिः
यः कार्य[3] भवति स्वहेतु[4]युगले सत्येव नेत्यत्यथा।।१९।।

अन्वयार्थ–(मम) मेरी (मतिः) मति (ज्ञानध्यानरता) ज्ञान ध्यान में रत है (तपस्तीव्रं) तप भी तीव्र है (तथापि) मेरे (पूर्णमयं) पूर्ण (ज्ञानं) ज्ञान (न) नहीं (उत्पद्यते) उत्पन्न हुआ है (अयं) यह (जडः) मूर्ख है (पशुः) पशु है (इति) इस प्रकार के (वचः) वचनों को (श्रोतुं) सुनने के लिए (अहं) मैं (क्षमः) समर्थ (न) नहीं हूँ (इति) इस प्रकार (अज्ञानपरीषहं) अज्ञान परीषह है (स्वहेतुयुगले) अपने अपने अंतरंग बहिरंग हेतु युगल के (सति) होने पर (एव) ही (कार्यं) कार्य (भवति) होता है (अन्यथा) अन्यथा कार्य (न) नहीं होता है (इति) इस प्रकार (यः) जो (प्रव्यक्तवस्तुस्थितिः) सम्यक्प्रकार से वस्तु के स्वरूप जानने वाला (अज्ञानपरीषहं) अज्ञान परीषह को (सहते) सहन करता है (सः) अज्ञानपरीषहजयी होता है।

भावार्थ–मेरी बुद्धि ज्ञान ध्यान में लीन है, मैं तीव्र तपस्वी हूँ, तथापि मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, यह पशु है, मूर्ख है, अज्ञानी है, इस प्रकार के वचनों को सुनने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ, इसप्रकार की अज्ञान परीषह को जो अंतरंग बहिरंग कारणों के मिलने पर ही कार्य होता है अन्यथा नहीं, इसप्रकार वस्तु की स्थिति को जानने वाला सहन करता है वह अज्ञान परीषह को जीतने वाला होता है।।१९।।

---

१. अत्र तत्रापि इति च शब्दात् लभ्यते, २. सुष्ठुज्ञातवस्तुस्वरूपः, ३. प्रयोजनं, ४. अंतरंगबहिरंग कारणे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाग्न्य परीषह

भूषा[१] वेष[२] विकारशस्त्रनिचय[३] त्यागात्प्रशस्ताकृते[४]-
बालस्येव मनोजजातविकृतिश्चितस्य लज्जेतिताम्।
हित्वा मातृसमानमेव सकलं कान्ताजनं पश्यतः
पूज्यो नाग्न्यं[५] परीषहस्य विजयस्तत्त्वज्ञ तापो[६] दयः[७]।।२०।।

अन्वयार्थ–(चित्तस्य) चित्त की (मनोजजातविकृतिः) मानसिक विकृति (लज्जा) लज्जा है (तां) उस लज्जा को (हित्वा) छोड़कर (बालस्य) बालक के (इव) समान (भूषावेषविकारशस्त्रनिचय-त्यागात्) आभूषण, वेष, विकार और शस्त्र के त्याग होने से (प्रशस्ताकृतेः) प्रशंसनीय आकार वाले के (मातृसमानं) माता के (सकलं) सकल (कान्ताजनं) कान्ताजन को (पश्यत) देखने वाले के (तत्त्वज्ञताप्तोदयः) तत्त्वज्ञान से प्राप्त उदय (पूज्यः) पूज्यनीय (नाग्न्यपरीषहस्य) नाग्न्य परीषह को (विजयः) विजय है।

भावार्थ–जिनका शरीर, भूषा, वेश आदि विकार रहित है जिनकी आकृति अत्यन्त वीतरागता मय है। मनोविकार से उत्पन्न हुई विकृति रूपी लज्जा को छोड़कर बालक के समान निर्भय और निर्विकार होते हैं। समस्त स्त्री समूह को माता के समान देखते हैं। नग्न रहते हुए भी किंचित् मात्र भी मन में विकार नहीं है वह साधु नग्न परीषह विजयी कहलाता है।।२०।।

आक्रोश परीषह

वर्णी कर्णहृदां विदारणकरान् क्रूराशयैः प्रेरिता-
नाक्रोशान् घनगर्जतर्जनखरान् शृण्वन्नशृण्वन्निव।
शक्त्याऽत्युत्तम संपदाऽपि सहितः शान्ताशयश्चिन्तयन्
यो बाल्यं[१] खलसंकुलस्य शयनं[२] क्लेश क्षमी तं स्तुवे।।२१।।

---

१. केशादीनां संस्कार २. लोचनादीनां शृंगार चेष्टा, ३. समूह कस्मिन्नपुस्तके सिचय शब्दस्य प्रयोगोविद्यते। तस्यार्थः सिचयं वस्त्रं "वस्त्रं वसन्तकं वासश्चेलसिचय वस्त्राम्बराख्यामाच्छारदन, ४. प्रशस्ताकारस्य, ५. नाग्न्य परीषहजित्, ६. तत्वज्ञस्योपलक्षणमेतत् तेन दुष्कर तपो नुष्ठायिनो वैराग्य भावनापरस्य चिरन्तनव्रतिन, ७. वस्तु स्वरूप परिज्ञान जाताभिवृद्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(कर्णहृदां) कर्ण और हृदय के (विदारणकरान्) विदारण करने वाले (क्रूराशयैः) क्रूर चित्त वालों के द्वारा प्रेरित (घनगर्जतर्जनखरान्) घन गर्जना की तर्जना से भी अत्यन्त तीक्ष्ण (आक्रोशान्) आक्रोशों को (शृण्वन्) सुनता हुआ भी (अशृण्वन् इव) नहीं सुनने वाले के समान होता हुआ (शक्त्या) शक्ति से (अत्युत्तमसम्पदा) अति उत्तम सम्पदा से भी (सहितः) सहित (अपि) तो भी (यः) जो (वर्णी) संयमी (शांताशयः) शांत आशय वाला (खलसंकुलस्य) खलजन की (बाल्यं) अज्ञानित्व का (चिंतयन्) चिंतवन करता हुआ (शयनक्लेशक्षमा) आक्रोश परीषह को सहन करने वाला होता है (तं) उसकी (स्तुवे) वन्दना (स्तुति) करता हूँ।

भावार्थ–जो संयमी कर्ण और हृदय के विदारक क्रूर चित्त वालों के द्वारा प्रेरित, अत्यन्त तीक्ष्ण आक्रोशकारी वचनों को सुन करके भी नहीं सुनने वाले के समान होता है तथा जो उत्तम शक्ति रूपी सम्पदा से सहित होते हुये भी शान्त चित्त वाला संयमी उन दुष्ट वचनकारी दुष्टों की मूर्खता का चिंतवन करता हुआ, आक्रोश परीषह को सहन करता उसकी हम स्तुति करते हैं।।२१।।

सत्कार पुरस्कार परीषह

ख्यातोऽहं तपसा श्रुतेन च पुरस्कारं प्रशंसां नतिं
भक्त्या में न करोति कोऽपि यतिषु ज्येष्ठोऽहमेवेतियः।
ग्लानिं मानकृतां न याति स मुनिः सत्कार जातार्जित्
दोषा में न गुणा भवन्ति न गुणा दोषाः स्युरित्यन्यतः।।२२।।

अन्वयार्थ–(अहं) मैं (तपसा) तप के द्वारा (श्रुतेन) श्रुत के द्वारा (ख्यातः) विख्यात हूँ (यतिषु) यतियों में (अहं) मैं (एव) ही (ज्येष्ठः) ज्येष्ठ हूँ (भक्त्या) भक्ति से (मे) मेरा (कः) कोई (अपि) भी (पुरस्कारं) पुरस्कार (प्रशंसा) प्रशंसा (नतिं) नमस्कार (न) नहीं (करोति) करता है (इति) इसप्रकार (यः) जो (मानकृतां) मान कषाय से उत्पन्न (ग्लानिं) ग्लानि को (न याति) नहीं प्राप्त होता है वह विचार करता है कि (मे) मेरे (दोषा) दोष (न) नहीं है (गुणा) गुण (भवन्ति) होते हैं (अन्यतः) सत्कार करने से (गुणा) गुण (न) नहीं (दोषा) दोष (स्युः) होते हैं (स) वह (मुनिः) मुनि (सत्काराजातार्त्तिजित्) सत्कार से उत्पन्न अर्त्ति को जीतने वाला होता है।

भावार्थ–मैं तप के द्वारा श्रुत के द्वारा विख्यात हूँ। सर्व यतियों में मैं ही ज्येष्ठ हूँ, तथापि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई मेरा सत्कार पुरस्कार, प्रशंसा, नमस्कार नहीं करता है। इसप्रकार मान कषाय के उदय से उत्पन्न ग्लानि को नहीं प्राप्त होने वाला साधु सत्कार परीषहजयी होता है। सत्कार, पुरस्कार परीषहजयी साधु विचार करता है कि मेरा सत्कार से मेरे दोष गुण नहीं होते हैं मुझे रागीद्वेषी नहीं होना चाहिए।।२२।।

याचना-जय-परिषह

प्राज्यं राज्यमुदस्य शाश्वतपदप्राप्त्यै तपोबृंहणे
देहो हेतुरयं हि भुक्त्यनुगता चास्य स्थितिस्तत्कुतः।
भिक्षायै भ्रमणं ह्रियः पदमिदं यस्मान्महार्यास्पदं
नीचैर्वृत्तिरनिन्दितेति विचरन याञ्चाजयः स्यान्मुनिः।।२३।।

अन्वयार्थ–(शाश्वतपदप्राप्त्यै) शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए (प्राज्यं) उत्कृष्ट (राज्यं) को (उदस्य) छोड़कर (तपोवृंहणे) तप की वृद्धि में (अयं) यह (देहः) शरीर (हेतुः) कारण है (च) और (अस्य) इस शरीर की (स्थितिः) स्थिति (भुक्तनुगता) भुक्ति के अनुसार है (तत्) इसलिए (भिक्षायै) भिक्षा के लिए (भ्रमणं) भ्रमण करना (ह्रियः) लज्जा का (पदं) स्थान (कुतः) कैसे है (यस्मात्) क्योंकि (इदं) भिक्षा के लिए भ्रमण (महार्यास्पदं) महार्थों का आस्पद है (इति) इसप्रकार (नीचैर्वृत्तिः) नम्र वृत्ति वाला (अनिन्दिता) अनिन्दित (विचरन्) चर्या करने वाला (मुनिः) मुनि (याञ्चाजयः) याचना परीषहजयी (स्यात्) होता है।

भावार्थ–मैंने शाश्वतपद-मोक्ष प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट राज्य को छोड़कर तप को स्वीकार किया है। उस तप की वृद्धि में शरीर कारण है और शरीर की स्थिति का कारण आहार है। इसलिए तप की वृद्धि के कारणभूत भिक्षा के लिए भ्रमण करना लज्जा का स्थान नहीं है प्रत्युत महार्थों का स्थान है। लज्जा का स्थान तो याचना है इस प्रकार नम्र वृत्ति से अनिन्दित चर्या के भ्रमण करने वाला संयमी याञ्चा परीषहजयी होता है।।२३।।

निषद्या परीषह

सर्वाशाशमहान्धकारपुरुजाऽऽयामां त्रियामां यमी
योगैर्योगमयत्यवार्यमहिमाऽऽभोगैर्मुहूर्त्तं यथा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्रे स्त्रीजनपश्ववद्यरहिते हृद्ये निषद्यास्थितः
सन्नत्युग्र निशाचराप्रतिहतध्यानो निषद्यांजयी।।२४।।

अन्वयार्थ–(स्त्रीजनपश्ववद्यरहिते) स्त्रीजन, पशु, नपुंसक आदि दोषों से रहित (हृद्ये) मनोज्ञ (क्षेत्रे) क्षेत्र में (अत्युग्रनिशाचराप्रतिहतध्यानः) अति उग्र निशाचरों के द्वारा अप्रतिहत ध्यानी (निषद्यास्थितः) निषद्या से स्थित (अवार्यमहिमा) अवार्य महिमा वाला (यः) जो (यमी) संयमी (सर्वाशाशमहान्धकारपुरुजाऽऽयामां) सर्व दिशाओं को भक्षण करने वाले महान्धकार से व्याप्त दीर्घ (त्रियामां) रात्रियों को (यथा) जैसे (मुहुर्त्त) मुहुर्त्त के समान (आभोगैः) विस्तारित (योगैः) योगो के द्वारा (गमयति) व्यतीत करता है वह (निषद्याजयी) निषद्याजयी होता है।

भावार्थ–स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित शुद्ध प्रशंसनीय क्षेत्र में निषद्या से स्थित अत्यन्त उग्र निशाचरों के द्वारा अप्रतिहत ध्यानी, संयमी, सर्व दिशाओं को भक्षण करने वाले महान्धकार से व्याप्त दीर्घ रात्रियों को एक मुहूर्त्त के समान व्यतीत करता है वह संयमी निषद्या परीषहजयी कहलाता है।।२४।।

परीषह विजय का फल

देशं कालं स्वकीयं बलमपि नृपतिः सम्यगालोच्य यद्व
च्छत्रातस्य जेता भवति यतिरति स्वीयकर्मोदयेन।
जातस्यास्यार्त्तिजातोद्भटभटकटकस्योरुधैर्यस्तथा यः
सोऽयंस्याद्वर्य वीर्याचरणचणजुतो वीरलक्ष्मीनिवासः।।२५।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (देशं) देश (कालं) काल (स्वकीयं) अपने (बलं) सेना का (साम्यगालोच्य) भली प्रकार विचार कर (नृपतिः) राजा (शत्रुव्रातस्य) शत्रु समूह का (जेता) जीतने वाला (भवति) होता है (तथा) उसी प्रकार (उरुधैर्यः) महान धैर्य वाला (यः) जो (यतिः) यति (अपि) भी (स्वीयकर्मोदयेन) अपने कर्मोदय से (जातस्य) उत्पन्न (अस्य)इस (अर्त्तिजातोद्भटकटकस्य)बावीस प्रकार के परीषह रूपी धीर भट की सैन्य का (जेता) जीतने वाला होता है (सः) वह (अयं) यह (वर्यवीर्याचरणचणनुतः) उत्कृष्ट वीर्याचार के आचरण से विख्यात कीर्त्ति वाला (वीरलक्ष्मीनिवासः) वीर की लक्ष्मी का निवास (स्यात्) होता है।

भावार्थ–जैसे अपने देश काल सेना आदि का भली प्रकार विचार करके राजा शत्रुओं के समूह का जीतने वाला होता है, उसी प्रकार महान धैर्यशाली यति भी देश कालादि का विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके अपने कर्मों के उदय से उत्पन्न बाइस प्रकार के परीषह रूपी भट की सैन्य का विजेता होता है उत्कृष्ट वीर्याचरण से विख्यात कीर्त्ति वाला वह संयमी वीर लक्ष्मी का निवास होता है।।२५।।

कुन्थुनाथ स्तुति

चक्रं विक्रममानमर्दनमुरुज्यां प्राज्यराज्यं च यः
कुंथुर्ग्रन्थविरागतातिशयतस्त्यक्त्वारूपाप्तये।
तत्प्राप्तौ तु परं क्षमादिकमरं तद्धर्मचक्रंदधद्
बंद्योऽभूद्भुवनत्रयस्य तदिदं चित्रं चरित्रं मुनेः।।२६।।

अन्वयार्थ–(विक्रममानमर्दनं) पराक्रमियों के मान का मर्दन करने वाले (चक्रं) चक्र को (उरुज्यां) पृथ्वी को (च) और (प्राज्यराज्यं) उत्कृष्ट राज्य को (ग्रन्थविरागतातिशयतः) परिग्रह जनित परम वैराग्य से (आत्मारूपाप्तये) आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए (त्यक्त्वा) छोड़कर (तु) और (तत्प्राप्तौ) उस आत्म स्वरूप की प्राप्ति में (परं) उत्कृष्ट (क्षमादिकं) उत्तम क्षमादि (तद्धर्मचक्रं) उस धर्म चक्र को (कुंथुः) कुंथुनाथने (अरं) शीघ्र ही (दधत्) धारण किया था उस (मुनेः) मुनि का (इदं) यह (चित्रं) विचित्र (चरित्रं) चारित्र (भुवनत्रयस्य) तीन भुवन का (बंद्यः) वन्दनीय (अभूत्) हुआ था।

भावार्थ–जिस कुंथुनाथ ने परिग्रह के त्याग की उत्कृष्टता के अतिशय से आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए शीघ्र ही पराक्रमियों के मान का मर्दन करने वाला उत्कृष्ट चक्र रत्न भूमि को और विशाल षट्खण्ड के राज्य को छोड़कर आत्म स्वरूप की प्राप्ति में कारणभूत उत्तम क्षमादिक धर्म चक्र को स्वीकार किया था, उस प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनि का यह विचित्र चरित्र तीन लोक में वंदनीय हुआ था।

इति श्रीवीरनन्दिसिद्धांति चक्रवर्त्तीप्रणीत श्री आचारसार नामशास्त्र में वीर्याचार का वर्णन करने वाला सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथाष्टमोऽधिकारः

प्रअप्रभुस्तुति

प्रद्मप्रभं कोकनदोदरप्रभं पद्माविनोदायतनं सनातनम्।
सर्वात्मनीनोरुदयं महोदयम् जिनेश्वरं नौमि विशुद्धधीश्वरम् ।।१।।

अन्वयार्थ–(कोकनदोदरप्रभं) लाल कमल के गर्भ के समान वर्णवाले (पद्माविनोदायतनं) लक्ष्मी का क्रीड़ा गृह (सनातनम्) द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अनादि (सर्वात्ममीनोरुदयं:) सकल जीवों के हितकारी (महोदयं) महोदयी (विशुद्धधीश्वरम्) सर्वविशुद्धि के अधीश्वर (जिनेश्वरं) जिनेश्वर (पद्मप्रभं) पद्मप्रभु को (नौमि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ–जो लाल कमल के समान वर्ण वाले हैं, लक्ष्मी के क्रीड़ा स्थान है, सर्व प्राणियों के हितकारक हैं, शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनादि हैं, महान केवलज्ञानादि गुणों का स्थान है, सर्व विशुद्धियों के स्वामी हैं, ऐसे श्री जिनेश्वर पद्म प्रभु भगवान को मैं वीरनन्दि आचार्य नमस्कार करता हूँ।।१।।

शुद्धियों के नाम व प्रयोजन

शुद्धयोष्टौ विधीयन्ते पंचाचारविशुद्धये।
भूषामनोहराऽऽकारस्याऽतिशोभाश्रियेः न किम् ।।२।।

अन्वयार्थ–(पंचाचारविशुद्धये) पंचाचार की विशुद्धि के लिए (अष्टौ) आठ (शुद्धयः) शुद्धियाँ (विधीयंते) कही जाती हैं। (मनोहराकारस्य) मनोहर आकार वाले के (भूषा) आभूषण (किं) क्या (आतिशोभाश्रिये) अत्यन्त शोभा की श्री के लिए (न) नहीं अपितु (अस्त्येव) है ही।

भावार्थ–यहाँ से दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार रूप पंचाचार की शुद्धि के लिए आठ प्रकार की शुद्धि कही जाती हैं। जैसे अत्यन्त सौंदर्य से युक्त मानव के द्वारा धारण किये गये आभूषण शरीर की शोभा को बढ़ाने वाले होते हैं उसी प्रकार पंचाचार की शोभा-कांति को बढ़ाने वाली अष्ट महा शुद्धियाँ होती हैं।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धियों के नाम

स्युर्भाववाक्यकायेर्याभिक्षाविनयसंश्रयाः।

शयनाऽऽसनव्युत्सर्गगेति चेत्यष्टशुद्धयः।।३।।

अन्वयार्थ–(भाववाक्यकार्येयाभिक्षाविनयसंश्रयाः) भाव शुद्धि, वाक्यशुद्धि, कायशुद्धि, ईर्याशुद्धि, भिक्षाशुद्धि विनयसंश्रयशुद्धि, (शयनासनंव्युत्सर्गगा) शयनासनशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि (इति) इसप्रकार (अष्टशुद्धयः) आठ प्रकार की शुद्धियां होती हैं।

भावार्थ–भाव (मन) शुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, विनयशुद्धि, शयनासनशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि इस प्रकार व्रतों को निर्मल करने वाली ये आठ प्रकार की शुद्धियाँ कही जाती हैं।।३।।

भाव शुद्धि

सदाऽपेतप्रमादा या वाचनादिरता मतिः।

शंकादिदृङ्मलापेता मार्दवादिगुणान्विता।।४।।

स्याद्भावशुद्धिराचारः सत्यामस्यांप्रवर्द्धते।

यद्वदुप्तो विशुद्धोर्व्या सम्यग्बीजव्रजस्तथा।।५।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(सदा) हमेशा (अपेतप्रमादा) प्रमादरहित() वाचनादिरता) वाचनादि में लीन (शंकादिदृङ्मलापेता) शंकादि सम्यग्दर्शन के मल दोषों से रहित (मार्दवादिगुणान्विता) मार्दवादिगुणों से युक्त (मतिः) बुद्धि (भाव-शुद्धिः) भावशुद्धि (स्यात्) है (अस्यां) इसके (सत्यां) होने पर (आचारः) चारित्र (प्रवर्द्धते) वृद्धिगत होता है (यद्वत्) जैसे (विशुद्धोर्व्यां) विशुद्धि भूमि में (उप्तं) बोया हुआ। (सम्यग्बीजव्रज;) समीचीन बीज का समूह।

भावार्थ–निरन्तर प्रमाद से रहित शास्त्रध्यान में लीन शंकादि दोषों से रहित मार्दवादिगुणों से शुद्ध जो मानसिक प्रवृत्ति है वह परिणामों की विशुद्धि है, उसको भाव शुद्धि कहते हैं। इस भाव शुद्धि में चारित्र की वृद्धि उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार शुद्ध भूमि में बोया हुआ समीचीन बीज सहज फल को देनेवाला होता है।।४-५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन शुद्धि

कन्या प्रदानयोग्येयं क्षेत्रादिलवनोचितम्।
प्रोत्खाता परिखाः कूपवाप्यः शास्या दुरीहिता।।६।।
गीतवादित्रनृत्यादि हृद्यानीयं वरांगना।
भटेभमल्लयुद्धानि सुकृतानि वनं वरम्।।७।।
रोग्यंधः पंगुरित्यादिव्यवहाराश्रिताप्रिया-
संयतोचितवाक्त्यागाद्देशकालसमोचिता।।८।।
मृदुमधुरगम्भीरा वाङमोक्षमार्गोपदेशना।
वाक्यशुद्धिर्गुणांभोधिविधुदीधितिरीरिता।।९।।चतुष्कम्।।

अन्वयार्थ–(इयं) यह (कन्याप्रदानयोग्या) विवाह योग्य है (क्षेत्रादिलवनोचितं) यह क्षेत्र काटने योग्य है (परिखाः) खाई (कूपवाप्यः) कूवा बावड़ी (प्रोतखाताः) अच्छे खोदे हुये हैं (शास्याः) यह अनुशासन करने योग्य है (दुरीहिताः) दुचेष्टित (गीतावादित्रनृत्यादि) गीतवादित्र नृत्यादि (हृद्यानि) मनोज्ञ है (इयं) यह (वरांगना) श्रेष्ठ स्त्री है (भटेभल्लयुद्धानि) भट, हाथी, योद्धाओं का युद्ध (सुकृतानि) श्रेष्ठ है (वनं) वन (वरं) श्रेष्ठ है (रोग्यधःपंगुः) रोगी, अन्धा, पंगु इत्यादि (व्यवहाराश्रिताप्रियासंयतोचितवाक्त्यागात्) इत्यादि व्यवहाराश्रित, अप्रिय, असंयतोचित वचनों का त्याग कर देने से और (देशकालसोचिताः) देश काल और सभा के उचित (मोक्षमार्गोपदेशना) मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले (मृदुमधुरगम्भीरा) मृदुमधुर गंभीर (वाङ्) वचन (गुणांभोधिविधुदीधितिः) गुण रूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्र के समान (वाक्यशुद्धिः) वाक्य शुद्धि है।

भावार्थ–यह कन्या विवाह योग्य हो गई है, यह क्षेत्र काटने के उचित है, यह परिखा कुँआ बावड़ी सुन्दर खुदी हुई है, वह अनुशासन करने योग्य है, यह दुश्चेष्टा वाला है, यह गीत वादित्र नृत्यादि मनोज्ञ है, यह वरांगना है, भट, हाथी योद्धाओं का युद्ध बहुत अच्छा हुआ है, यह वन श्रेष्ठ है, रोगी, अन्धापंगु इत्यादि व्यवहाराश्रित अप्रिय, असंयत जनों के बोलने योग्य सावद्य वचनों को छोड़कर देश काल और सभा के उचित मोक्षमार्ग का कथन करने वाले मृदु, मधुर, गंभीर, परजन हितकारी सावद्य रहित निर्दोष वचन वाले ना वाक्य शुद्धि है। यह वाक्य शुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा के समान है।।६-९।।

कायशुद्धि

विश्रंभोपादिका लोकस्याऽस्तसंस्कारसंहतिः।
कायशुद्धिः क्षमा मूर्त्तिभूतेवाऽऽभाति निस्पृहा।।१०।।
विरागतालतोद्भूतिभूमिभीर्तिविवर्जिता।
जातरूपमनोहारिण्येषां भूषा तपः श्रियः।।११।।

अन्वयार्थ–(लोकस्य) लोगों के (विश्रंभोपादिका) विश्वास की उत्पादक (अस्तसंस्कारसंहतिः) संस्कार सहित (विरागतालतोद्भूतिभूमिः) विरागता रूपी लता उत्पन्न होने की भूमि (भीतिवर्जिता) भय से रहित (जातरूपमानोहारिणी) यथा जात रूप से मनोहर (निस्पृहा) शरीर की स्पृहा से रहित (तपश्रियः) तपश्री की (भूषाः) भूषण (एषा) यह (कायशुद्धिः) कायशुद्धि (क्षमामूर्तिभूता) क्षमा की मूर्ति के (इव) समान (आभाति) शोभित होती है।

भावार्थ–यह कायशुद्धि आवरण आभूषणों से रहित, शरीर संस्कार से शून्य यथाजात रूप धारण करने वाली, अंग विकार से रहित और सर्वत्र विश्वसनीय रूप है। यह मूर्तिमान प्रशम सुख के समान है। क्षमा की मूर्ति है। वीतरागता रूपी लता के उत्पत्ति के लिए भूमि के समान है इस काय शुद्धि के होने पर न तो दूसरों से अपने को भय होता है और न अपने से दूसरों को भय होता है।।१०-११।।

ईर्यापथ शुद्धि

भयविस्मयविभ्रान्ति लीलाविकृतिलंघन।
प्रधावनाद्यपेतेर्यापथ शुद्धिर्दयान्विता।।१२।।

अन्वयार्थ–(भयविस्मयविभ्रान्ति लीलाविकृति लंघनप्रधावनाद्यपेता) भय, आश्चर्य, विभ्रान्ति, लीला, विकृति, लंघन, प्रधावना-दौड़ना आदि से रहित (दयान्विता) अनुकम्पा सहित (ईर्यापथशुद्धिः) ईर्यापथ शुद्धि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाहितप्रशान्ताङ्गा प्रलंबितकरा वरा।

गतिश्चारित्रसंपत्तिहेतुर्जीतिरिव श्रियः।।१३।।

अन्वयार्थ–(समाहितप्रशान्तांगा) सावधान और प्रशान्त अंग सहित (प्रलंबितकरा) नीचे लटक रहे हैं हाथ जिसमें (श्रियः) लक्ष्मी की कारण (चारित्रसंपत्तिहेतुः) चारित्र रूपी संपत्ति की कारण भूत (नीतिः) नीति (इव) समान (वराः) श्रेष्ठ (गतिः) गमनागमन ईर्यापथ शुद्धि है।

भावार्थ–अनेक प्रकार के जीवस्थान, जीवयोनि, जीवाश्रय, आदि के विशिष्ट ज्ञानपूर्वक प्रयत्न के द्वारा जिसमें जन्तु पीड़ा का बचाव किया जाता है। जिसमें ज्ञान, सूर्यप्रकाश और इंद्रिय प्रकाश से अच्छी तरह देखकर गमन किया जाता है, तथा जो शीघ्र विलम्बित, सम्भ्रात, विस्मित, लीला विकार, अन्य दिशाओं की ओर देखना आदि गमन के दोषों से रहित गति वाली है वह ईयापथ शुद्धि है। इसके होने पर संयम उसी तरह प्रतिष्ठित होता है जैसे कि सुनीति से वैभव।।१३।।

भिक्षाशुद्धि

आरंभः प्राणिनः प्राणव्यपरोप उपद्रवः।

उपद्रवणमंगच्छेदादिविद्रावणं मतम्।।४।।

संतापकरणं तस्य परितापनमेतकैः।

चतुर्भिरन्नं निष्पन्नमधः कर्मातिनिन्दितम्।।१५।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(प्राणिनः) प्राणियों के (प्राणव्यपरोपण) प्राणों का घात (उपद्रवः) उपद्रव (आरंभः) आरंभ (अंगछेदादिः) अंग छेदादि (उपद्रवणं) उपद्रवण (विद्रावणं) विदारण (तस्य) प्राणियों के (संतापकरणं) संताप करने वाला (परितापनं) परितापन (एतकैः) इन (चतुर्भिः) चार कारणों से (निष्पन्नं) निष्पादन किये हुए (अन्नं) आहार को (अतिनिन्दितं) अतिनिन्दित (अधःकर्म) अधः कर्म (मतम्) माना है।

भावार्थ–प्राणियों के प्राण व्यपरोपण रूप, उपद्रवाकीर, आरंभ, विद्रावण, उपद्रवण संतापन आदि चार कारणों से निष्पन्न आहार को निंदनीय अधः कर्म कहते हैं अर्थात् जिस अन्न की मन वचन काय कृतकारित और अनुमोदना है हिंसारूप निष्पत्ति है वह अधःकर्म है।।१४-१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाक्चित्तकायकारितकृतानुमतकर्मणा।

नवभेदं तदेतेन कर्मणा परिवर्जिता।।१६।।

योद् गमोत्पादनैषणैर्दोषै संयोजनेन च।

प्रमाणांगारधूमाख्यैर्व्यपेता कारणान्विता।।१७।।

एषणासमितिप्रोक्तक्रमाप्ताशनसेवना।

भिक्षाशुद्धिर्गुणव्रातरक्षादक्षा स्मृता नुता।।१८त्रिकं।।

अन्वयार्थ–(वाक्चित्तकायकारितकृतानुमतकर्मणा) मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदना रूप क्रिया वाले (एतेन) इस (कर्मणा) कर्म के द्वारा (नवभेदं) नवभेद (परिवर्जिता) रहित (यत्) जो (उद्गमोत्पादनैषणैः) उद्गम उत्पादन एषणा (संयोजनेन) संयोजन (प्रमाणांगारधूमाख्यैः) प्रमाण अंगार धूम नामक (दोषैः) दोषों से (व्यपेता) रहित (कारणान्विता) कारण युक्त (एषणासमितिप्रोक्त क्रमप्राप्ताशनसेवना) एषणा समिति में कथित क्रम से प्राप्त आहार सेवन करना (गुणव्रातरक्षदक्षा) गुणों के समूह की रक्षा करने में निपुण (नुता) पूजनीय (भिक्षाशुद्धिः) भिक्षाशुद्धि (स्मृता) मानी गयी है।

भावार्थ–मन वचन काय, कृताकारित अनुमोदना आदि नवकोटि से विशुद्ध उद्गम, एषणा, संयोजन प्रमाण, अंगार धूम, दोष से रहित स्वाध्याय आदि छह कारणों से युक्त, एषणा समिति में कथित क्रम से प्राप्त आहार को सेवन करना भिक्षाशुद्धि है। यह भिक्षाशुद्धि पूजनीय है और गुणों के समूह की रक्षा करने वाली है।।१६-१८।।

उद्गमदोष के १६ भेद

उदिष्टाध्यवधि पूतिमिश्राणि स्थापितं बलिः।

प्राभृतं च प्राविः कृतं क्रीतप्रामुष्य संज्ञकौ।।१९।।

परिवृतश्चाभिहतं दोष उद्भिन्ननामकः।

मालिकाऽऽरोहण छेद्या निस्पृष्टानीतिचोद्गमाः।।२०।।युग्म।।

अन्वयार्थ–(उद्दिष्टा) औद्देशिक (अध्यवधिपूतिमिश्राणि) अध्यवधि पूति, मिश्र (स्थापितं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापित (बलिं) बलि (प्राभृतं) प्राभृत (प्राविष्कृतं) प्राविष्कृत (क्रीतप्रामुष्यसंज्ञकौ) क्रीत, प्रामुष्य (परिवृतः) परिवर्तक (अभिहितं) अभिहित (उद्भिन्ननामकः) उद्भिन्न (च) और (मालिकारोहऽऽ-णछेद्यानिसृष्टानि) मालिका आरोहण अछेद्य, अनिसृष्ट (इति) इस प्रकार (उद्गमः) उद्गम दोष है।

भावार्थ–औदेशिक दोष, अवध्यवधि दोष, पूतिदोष, मिश्रदोष, स्थापितदोष, बलिदोष, प्राभृतदोष, प्रविष्कृतदोष, क्रीतदोष, प्रामुष्यदोष, परिवर्तकदोष, अभिहितदोष, अभिन्नदोष, मालिका रोहणदोष, अच्छेद, अनिसृष्ट यह उद्गम दोष के १६ भेद हैं।।१९-२०।।

यत्स्वमुद्दिश्य निष्पन्नमन्नमुद्दिष्टमुच्यते।

अथवा यमिपाखंडीदुर्बलानखिलानपि।।२१।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (स्वं) अपने (अथवा) अथवा (यमिपाखंडिदुर्बलान् अखिलान्) संयमी पाखंडी दीन जन कृपण आदि सर्व लोकों के (उद्दिश्य) उद्देश्य को लेकर (निष्पन्नं) निष्पन्न (अन्नं) आहार (उद्दिष्टं) उद्दिष्ट (उच्यते) आहार कहा जाता है।

भावार्थ–जो आहार अपना उद्देश्य लेकर बनाया है, वह उद्दिष्ट है। अथवा संयमी, पाखंडी, भिखारी आदि सबके उद्देश्य से बनाया हुआ आहार भी उद्दिष्ट कहा जाता है।

विशेषार्थ–औदेशिक दोष के चार भेद हैं–१. यावानुद्देश, २ समुद्देश ३ आदेश ४ समादेश। जो कोई आयेगा उन सबको देंगे ऐसे उद्देश्य से बनाया हुआ आहार यावानुद्देश है। पाखंडी अन्य लिंगी के निमित्त से बना हुआ अन्न समुद्देशं है। तापस परिव्राजक आदि के लिए बनाया हुआ आहार आदेश है। निर्ग्रन्थ साधु के लिए बनाया हुआ आहार समादेश दोष है। यह चार औद्देशिक दोष के भेद हैं।।२१।।

प्रगता यस्मादसवस्तत्स्यात्प्रासुकमित्यलम्।

शुद्धमप्यन्नमात्मार्थं कृतं सेव्यं न संयतै।।२२।।

अन्वयार्थ–(यस्मात्) जिससे (प्रगता) निकल गये हैं (असवः) प्राणी (तत्) वह (प्रासुकं) प्रासुक (स्यात्) है (आत्मार्थं) अपने लिए (कृतं) किया हुआ (शुद्धं) शुद्ध (अपि) भी (अन्नं) आहार (संयतैः) संयतों के द्वारा (न) ही (सेव्यं) सेवन करना चाहिये। (इति अलं) विशेष क्या कहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–यद्यपि जिस वस्तु से प्राणी निकल गये हैं, वह वस्तु प्रासुक है तथापि अपने लिये बनाये हुए आहार को संयमीजन सेवन नहीं करते हैं।।२२।।

मत्स्यार्थं वा कृते मत्स्या माद्यन्ति मदनोदके।
नो दर्दुरात्तथा भिक्षुर्दोष्युद्दिष्टान्न सेवकः।।२३।।

अन्वयार्थ–(मत्स्यार्थकृते) मछलियों के लिए किये हुए (मदनोदके) मदकारी (जलेन) जल से (मत्स्याः माद्यन्ति) मछलियां मदोन्मत्त होती हैं। (दर्दुराः) मेंढक मदोन्मत्त (न) नहीं होते हैं (तथा) उसी प्रकार (उद्दिष्टान्नसेवकः) उदिष्ट अन्न का सेवन करने वाला (भिक्षुः) भिक्षुः (दोषी) दोषी है।

भावार्थ–मछलियों के लिए किये हुये मदनकारी जल में मछलियाँ मदोमत्त होती हैं मेंढ़क नहीं? उसीप्रकार साधु अपने लिए बनाये हुये आहार में अत्यन्त मदोन्मत्त होते हैं। दूसरे के लिए बने हुए आहार में गुद्धि नहीं होती इसलिए उद्दिष्ट अन्न का सेवन करने वाला साधु दोषी है।।२३।।

तंदुलांब्वधिकक्षेपः स्वार्थ पाके यतीन्प्रति।
स्यादध्यवधिरोधो वा पाकान्तं तत्तपस्विनाम्।।२४।।

अन्वयार्थ–(स्वार्थं) अपने लिए बने हुए (पाकं) पाक (भोजन) में (यतीन्प्रति) साधुओं के लिए (तंदुलाब्वधिकक्षेपः) तन्दुल जलादि का अधिक क्षेपण करना (वा) अथवा (पाकान्तं) आहार की निष्पत्तिपर्यन्त (तपस्विनां) तपिस्वयों का (रोधः) रोध (रुकावट) करना (अध्यवधिः) अध्यवधि दोष (स्यात्) है।

भावार्थ–संयमी दिगंबर साधु को आता हुआ देखकर अपने निमित्त बने हुये भात, दाल आदि में–भात, दाल आदि का क्षेपण करना अर्थात् पकते हुये चावल आदि में और चावल डालकर पकाना अथवा जब तक आहार निष्पन्न न हो तब तक धर्म प्रश्न के बहाने से साधु को रोककर रखना अध्यवधि दोष है।।२४।।

पूति प्रासुकपात्रादिमिश्रमप्रासुकेन यत्।
मिश्रसंगे हि पाखंडियतिभ्यो यद्वितीर्यते।।२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यत्) जो (अप्रासुकेन) अप्रासुक से (मिश्रं) मिश्र हुये (प्रासुकपात्रादि) प्रासुक पात्रादि (पूति) पूति दोष है (हि) निश्चय से (पाखंडियतिभ्यः) पाखंडि और यतियों के लिए (संगे) एक साथ (यत्) जो (वितीर्यते) वितरण किया जाता है वह मिश्र दोष है।

भावार्थ–प्रासुक पात्रादि वस्तु अप्रासुक से मिश्रित है वह पूति दोष है। अर्थात् चूल्हा, ओखली, कड़छली, बर्तनादि का संकल्प करना कि जब तक इस चूल्हे पर पकाया हुआ साधु को नहीं देंगे तब तक किसी को नहीं देंगे यह पूति दोष है। यद्यपि बर्तनादि प्रासुक है, परन्तु उसमें पकाने का आरंभ जनित संकल्प है, इसलिए ऐसा करने को पूति दोष कहते हैं। पाखंडी दिगम्बर दोनों को एक साथ देना यह मिश्रदोष है।।२५।।

स्वगृहेऽन्यगृहे वा यत् स्थापितं पाकभाजनात्।

अन्यस्मिन् भाजनेऽन्नादि निक्षिप्य स्थापितं मतम्।।२६।।

अन्वयार्थ–(पाकभाजनात्) पाक के बर्तन में से (अन्यस्मिन्) दूसरे (भाजने) भाजन में (अन्नादि) अन्नादिक को (निक्षिप्य) रखकर (यत्) जो (स्वगृहे) अपने घर में (वा) अथवा (अन्यगृहे) अन्य घर में (स्थापितं) स्थापित किया जाता है। (तत्) उसको स्थापित दोष है।

भावार्थ–जिस भाजन में आहार पकाया है, उससे निकालकर दूसरे भाजन में रखकर दूसरे घर में या उसी घर में स्थापित करके साधु को देना स्थापित दोष है।।२६।।

यक्षादेबलिदानावशिष्टाहारो बलिर्भतः।

संयतागमनार्थं वा करणं बलिकर्मणः।।२७।।

अन्वयार्थ–(यक्षादे) यक्षादिकी (बलिदानावशिष्टाहारः) बलिदान से अवशिष्ट आहार (बलिः) बलि दोष (मतः) है (वा) अथवा (संयतागमनार्थं) संयत के आगमन के लिये (बलिकर्मणः) बलिकर्म (करणं) करना भी दोष है।

भावार्थ–जो आहार यक्ष की पूजा के लिये बना हो उनमें से शेष बचे हुए भोजन को साधु को देना बलिदोष है, अथवा आज हमारे घर साधु का आहार होगा तो मैं यक्ष की पूजा करूँगा आदि कहकर आहार देना बलिदोष है।।२७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेलादिवसमासर्तुवर्षादिनियमेन यत्।

यतिभ्यो दीयमानान्नं प्राभृतं परिकीर्तितम्।।२८।।

अन्वयार्थ–(वेलादिवसमासर्तुवर्षादिनियमेन) समय, दिवस, महीना, ऋतु, वर्षा के दिन आदि के नियम से (यतः) जो (यतिभ्यः) यतियों के लिये (दीयमानं) दिया गया (अन्नं) अन्न (प्राभृतं) प्राभृतदोषयुक्त (परिकीर्तितम्) कहा है।

भावार्थ–समय, दिन, महीना, ऋतु, वर्षा, दिवस आदि के नियम से जो आहार दिया जाता है, उसको प्राभृत दोष कहते हैं।

विशेषार्थ–समय का परिवर्तन करके आहार देना उसे प्राभृत दोष कहते हैं।।२८।।

गेहप्रकाशकरणं यत्प्राविष्कृतमीरितम्।

संस्कारो भाजनादीनां वा स्थानान्तर धारणम्।।२९।।

अन्वयार्थ–(गेहप्रकाशकरणं) घर को प्रकाशित करना (वा) अथवा (भाजनादिनां) भाजनादि का (संस्कारं) संस्कार करना (स्थानान्तरधारणं) स्थानान्तर में ले जाना (प्राविष्कृतं) प्राविष्कृत दोष (ईरितं) कहा है।

भावार्थ–प्राविष्कृत दोष के दो भेद हैं। संक्रमण और प्रकाशन। साधु के घर आने पर भोजन भाजनादि को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना संक्रमण प्राविष्कृत दोष है और साधु के घर आने पर भाजन को मिट्टी आदि से स्वच्छ करना, दीपक का प्रकाश करना आदि प्रकाशन प्राविष्कृत दोष है।।२९।।

विद्याद्रव्यादिभिः क्रीतं क्रीतं प्रामृष्यमिष्यते।

स्तोकर्णं वृद्धवृद्धिभ्यां यतिदानार्थमर्जितम्।।३०।।

अन्वयार्थ–(विद्याद्रव्यादिभिः) विद्या और द्रव्यादि के द्वारा (क्रीतं) खरीदा हुआ अन्न (क्रीतं) क्रीत दोष है (वृद्धवृद्धिभ्यां) वृद्धि अवृद्धि के द्वारा (यतिदानार्थं) यतिओं के दान देने के लिए (स्तोकर्णं) स्तोक कर्म (अर्जितं) अर्जित किया जाता है। वह (प्रामृष्यं) प्रामृष्य दोष (इष्यते) कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–क्रीत दोष के दो भेद हैं द्रव्य और भाव। संयमी के घर में प्रवेश करने पर गाय भैंस आदि द्रव्य देकर आहार द्रव्य को खरीदना और साधु को देना द्रव्य क्रीत दोष है। मन्त्र, तन्त्र, विद्या आदि देकर आहार खरीदना और साधु को देना भावक्रीत दोष है। साधु को आहार कराने के लिए उधार लेकर आहार देना प्रामृष्य दोष है। उसके भी दो भेद हैं। सवृद्धिक और अवृद्धिक कर्ज से अधिक आहार देना सवृद्धिक प्रामृष्य दोष है। और जितना कर्ज लिया है उतना ही देना अवृद्धिक प्रामृष्य दोष है।।३०।।

व्रीहिक्रूरादिभिः शालिक्रूरादेः परिवर्तनम्।

यदास्यामीति यतयेपरिवर्त्तः प्रकीर्तितः।।३१।।

अन्वयार्थ–(यतने) यती के लिए (दास्यामिः) देऊँगा (इति) इसलिये (व्रहिक्रू रादिभिः) व्रीहि चावलादि के द्वारा (शालिक्रू रादेः) शालि आदि चावल का (परिवर्तनं) परिवर्तन करना (परिवर्त) परिवर्त दोष (परिकीर्तितः) कहा है।

भावार्थ–साधुओं को आहार देंने के लिये अपने चावलादि को देकर दूसरे उत्तम चावलादि लेना परिवर्त्त दोष है।।३१।।

स्यादायातमभिहतं ग्रामवारगृहान्तरात्।

योग्यमृजुसमासन्नाऽऽसप्तमाग्देहतो यदि।।३२।।

अन्वयार्थ–(ग्रामवारगृहान्तरात्) ग्राम, मोहल्ला गृहान्तर से (आयातं) लाया हुआ आहार देना (अभिहतं) अभिहत दोष (स्यात्) है (यदि) यदि (ऋजुसमासन्नासप्तमात्) सरलपंक्तिबद्धसप्त (गेहात्) घर से (आयातं) लाया गया है वह (योग्यं) योग्य है।

भावार्थ–गामान्तर से एक मोहल्ला से दूसरे मोहल्ला में पंक्तिबद्ध घर को छोड़कर दूसरे घर से दूसरे घर में ले जाकर आहार देना अभिहत दोष है। यदि सरल, निकट, पंक्तिबद्ध सात घर से लाया हुआ है तो दोष नहीं है। मूलाचार में लिखा है (गाथा नं। ४३८-४३९ पिण्डशुद्ध ६) अभिघट दोष के दो भेद हैं। एक देश सर्व देशाभिघट के दो भेद हैं। अचिन्न, अनाचिन्न, पंक्तिबद्ध सीधे तीन अथवा सात घरों से आया भात आदि अन्न आचिन्न अर्थात् गृहण करने योग्य है। और इससे उल्टे सीधे घर न हो ऐसे सात घरों से लाया हुआ भी अन्न अथवा आठवां आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घर से आया हुआ ओदनादि भोजन अनाचिन्न अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं है। क्योंकि इसमें ईर्यापथ का दोष लगता है।

विमुद्रादिकमुद्भिन्नं मालिकाऽऽरोहणं मतम्।

मालिकादिसमारोहणेनातीत घृतादिकम्।।३३।।

अन्वयार्थ–(विमुद्रादिकं) मुद्रादिक की (उद्भिन्नं) उद्भिन्न (मालिकादिसमारोहेणनं) मालिकादि के समारोहण से (आतीतं) लाया हुआ (घृतादिकं) घृतादिक (मालिकारोहणं) मालिका रोहण (मतं) माना है। (मूलाचार गाथा नं ४४७)।

भावार्थ–मिट्टी लाख आदि से ढका हुआ अथवा नाम की मोहर कर चिह्नित जो औषध घी शक्कर आदि द्रव्य है, उसे उघाड़ कर देना वह अद्भिन्न दोष है। चींटी आदि का प्रवेश होने से दोष है। २ काष्ठ आदि की बनी सीढ़ी अथवा पैढ़ी (जीना) से घर के ऊपर के खन (माले) पर चढ़ करके वहाँ रखे हुए पूआ लड्डू आदि अन्न को लाकर साधु को देना वह मालारोहण दोष है।।३३।।

नृपतस्करभीत्यादेर्दत्तमाच्छेद्यमुच्यते।

अनिसृष्टमीशानीशाऽनभिमत्या यदर्प्यते।।३४।।

अन्वयार्थ–(नृपतस्करभीत्यादेः) राजा, चोर आदि के भय से (दत्तं) दिया हुआ दान (आच्छेद्यं) आच्छेद्य (उच्यते) कहा जाता है (ईशानीशानभिमत्या) ईश और अनीश की अनभि मति से (यतः) जो (अर्प्यते) अर्पण किया जाता है वह (अनिसृष्टं) अनिसृष्ट दोष कहा जाता है।

भावार्थ–राजा चोर आदि के भय से जो आहार दिया जाता है वह आच्छेद्य दोष है। मूलाचार में लिखा है। संयमी साधुओं के भिक्षा के परिश्रम को देख राजा और चोर आदिक गृहस्थियों को ऐसा डर दिखाकर कहे कि जो तुम इन साधुओं को भिक्षा नहीं दोगे तो हम तुम्हारा द्रव्य छीन लेंगे, गाँव से निकाल देंगे, ऐसा डर दिखाकर दिया गया जो दान वह आच्छेद्य दोष है ऐसा जानना।।४४३।। स्वामी और अन्य जनों के निषेध किये हुए आहार को देना अनीशर दोष कहलाता है। अनीशार्थ दोष के २ भेद हैं ईश्वर अनीश्वर। इन दोनों के भी मिलकर चार भेद हैं। पहला भेद ईश्वर सारक्ष तथा अनीश्वर के तीन भेद व्यक्त अव्यक्त संघाट दान का स्वामी देने की इच्छा करे और मन्त्री आदि मना करे तो दिया हुआ भी भोजन ईश्वर अशीनार्थ है। स्वामी से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यजनों पर निषेध किया अनीश्वर कहलाता है वह व्यक्त (वृद्ध) अव्यक्त (बाल) संघाट दोनों के भेद से तीन प्रकार है (मू. आ. ४४४)॥३४॥

उत्पादन दोष के भेद

धात्रीदूतभिषग्वृत्तिनिमित्तेच्छाविभाषणम्।
पूर्वपश्चात्सुति; क्रोधचतुष्कं वश्यकर्म च।।३५।।
स्वगुणस्तवनं विद्यामंत्रचूर्णोपजीवनम्।
चेत्येते षोडशोत्पादनाख्यां दोषा विभाषिताः।।३६।।

अन्वयार्थ–(धात्रीदूतभिषग्वृत्तिनिमित्तेच्छाविभाषणं) धात्री दूत, भिषग् वृत्ति, निमित्त, इच्छा, विभाषण, (पूर्व) पूर्व (पश्चात्) पश्चात् (स्तुतिः) स्तुति (क्रोधचतुष्कं) क्रोध चतुष्क (वश्यकर्म) वश्यकर्म (च) और (स्वगुस्तवनं) स्वगुणस्तवन (विद्यामंत्रचूर्णोपिजीवनं) विद्या, मंत्र, चूर्ण, उपजीवन (इति) इसप्रकार (एते) ये (षोडश) सोलह (उत्पादनाख्याः) उत्पादन नामक (दोषाः) दोष (विभाषिता) कहे गये हैं।

भावार्थ–धात्री दोष, दूत, चिकित्सा, निमित्त, आजीव, वनीपक, क्रोध, मानी, मायावी, लोभी ये दस दोष। तथा पूर्व स्तुति, पश्चात् संस्तुति, विद्या, मंत्र, चूर्ण, योग मूल कर्म दोष ये सब मिलकर सोलह उत्पादन दोष हैं।।३५-३६।।

बाललालनशिक्षादिर्धात्रीत्वं दूतता मता।
दूरबन्धुजनानां वाग्नयनानयनक्रिया।।३७।।

अन्वयार्थ–(बाललालनशिक्षादिः) बच्चों के लालन शिक्षादि (धात्रीत्वं) धात्रीत्व दोष है (दूरबंधुजनानां) दूर बन्धुजनों के (वाग्नयना नयनक्रिया) समाचार ले जाना लाना आदि (दूतता) दूतता (मता) मानी है।

भावार्थ–बच्चों को पालन करने वाली धाय कहलाती है। स्नान कराने वाली, आभूषण पहराने वाली, रमाने वाली, दूध पिलाने वाली और माता के समान पास सुलाने वाली के भेद से धाय पांच प्रकार की है। इन पांच प्रकार की धायविद्या का उपदेश देकर साधु आहार लेता है वह धाय दोष है। इससे स्वाध्याय का नाश और साधु मार्ग में दूषण लगता है। एक ग्राम से दूसरे ग्राम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में जाते समय साधु किसी कुटुम्बी के संदेश कहकर आहार लेता है वह दूत दोष है।।३७।।

गजाऽश्वजांगुली बालवैद्याद्यैनीचवृत्तिभिः।
भिषग्वृत्तिर्मता तादृगन्यैरप्यशनाऽर्जनम्।।३८।।

अन्वयार्थ–(गजाश्वजांगुलीबालवैद्याद्यैः) हाथी, घोड़ा, विष, बालक के चिकित्सादि के द्वारा (तादृग्) वैसी (अन्यैः) और भी (नीचवृत्तिभिः) नीच वृत्तियों के द्वारा (अर्जनं) अर्जन किया हुआ (अयनं) आहार (भिषग्वृत्तिः) भिषक वृत्ति (मतः) माना है।

भावार्थ–गज चिकित्सा, अश्व चिकित्सा, विष चिकित्सा, बाल चिकित्सा आदि शब्द से भूततन्त्र, मन्त्र आदि क्रियाओं के द्वारा आहार उत्पादन करना भिषग् दोष है।।३८।।

स्वरान्तरिक्षभौमांगव्यंजनच्छिन्नलक्षण-
स्वप्नाष्टांगनिमित्तैर्यन्निमित्तमशनार्जनम्।।३९।।

अन्वयार्थ–(स्वरान्तरिक्षभौमांगव्यंजनच्छिन्नलक्षणस्वप्नाष्टांगनिमित्तैः) स्वर, अतंरिक्ष, भौम अंग, व्यंजन, छिन्न, लक्षण स्वप्न आदि अष्टांग, निमित्त के द्वारा (यत्) जो (अशनार्जनं) अशन का अर्जन करता है। (निमित्तं) वह निमित दोष है।

भावार्थ–पिंगलादि स्वर से अथवा पक्षी, पशु मानव आदि के शब्द से शुभ कहना स्वर निमित्त है। चंद्र सूर्यादि के गमन के निमित्त से शुभाशुभ कहना अंतरिक्ष निमित्त है। भूमि जनित चिह्नों से शुभाशुभ भौम निमित्त है। शरीर के अवयवो को देखकर शुभाशुभ कहना अंगनिमित्त है। तिल मस्सा आदि चिह्नों से शुभाशुभ कहना व्यंजन निमित्त है। शरीर गत पद्म, चक्र, शंख आदि से शुभाशुभ कहना लक्षण निमित्त है। स्वप्न में विमान तालाब आदि देखने पर शुभाशुभ कहना स्वप्न निमित्त है। वस्त्रादि के छेदने पर चूहे आदि के द्वारा काटने पर शुभाशुभ कहना छिन्न निमित्त है। इन अष्ट निमित्त ज्ञान से शुभाशुभ कहकर आहार लेना निमित्त दोष है।।३९।।

दीनाद्यन्नाद्यदानेन पुण्यं ननु भवेदिति।
पृष्ठेऽभ्युपगमान्नार्थं भवदिच्छाविभाषणम्।।४०।।

अन्वयार्थ–ननुप्रश्नवाची शब्द (दीनाद्यन्नाद्यदानेन) दीन, कृपण, भिखारी आदि को अन्न न देने से (पुण्यं) पुण्य (भवेत्) होता है (इति) इस प्रकार (पृष्ठे) पूँछने पर (अन्नार्थं) आहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए (अभ्युपगमः) उसकी इच्छानुसार (भवेत्) होता है ऐसा कहना (इच्छाविभाषणं) इच्छाविभाषणं दोष है। मूलाचार में कहा है।

भावार्थ–कोई दाता ऐसे पूछे कि कुत्ता, कृपण, भिखारी, असदाचारी ब्राह्मण भेषी साधु तथा त्रिदंडी आदि साधु और कौआ इनको आहारादि देने में पुण्य होता है या नहीं? उसकी रुचि के अनुकूल ऐसा कहे कि पुण्य ही होता है, वहाँ भोजन लेने में वनीपक दोष जानना इनमें दीनता है।।४५१।।४०।।

दाता ख्यातस्त्वमित्याद्यैर्गेह्यानंदनंदनम्।

पूर्वंपश्चाच्च भुक्तेस्तत्पूर्वं पश्चात्स्तवद्वयम्।।४१।।

अन्वयार्थ–(पूर्वं) पूर्व (च) और (पश्चात्) पश्चात् (त्वं) तुम (ख्यातः) प्रसिद्ध दाता हो (इत्याद्यैः) इत्यादि वचनों के द्वारा (भुक्तेः) आहार के (पूर्व) पूर्व (पश्चात्) आहारानंतर (गेह्यानंदनंदनम्) गृहस्थों के संतोषोत्पादक वचन बोलना (स्तवद्वयं) पूर्व स्तुति और पश्चात् स्तुति है।

भावार्थ–आहार करने के बाद स्तुति करना पश्चात् स्तुति और आहार के पूर्व गृहस्थी की स्तुति करना पूर्व स्तुति दोष है।।४१।।

क्रोधाद्यन्नार्जनं क्रोधचतुष्कं वश्यकर्म यत्।

वश्यकृन्मंत्रतंत्रादिदेशनेनाशनार्जनम्।।४२।।

अन्वयार्थ–(क्रोधाद्यन्नार्जनं) क्रोधादिक के वश होकर आहार लेना (क्रोधचतुष्कं) क्रोध चतुष्क दोष हैं (वश्यकृन्मन्त्रतंत्रादिदेशनेन) वशीकरण मंत्रतंत्रादिक के उपदेश से (अशनार्जनं) आहार अर्जन करना (वश्यकर्म) वश्यकर्म है।

भावार्थ–क्रोध के वशीभूत होकर आहार लेना क्रोध दोष हैं। मान कषाय से लेना मान दोष, मायाचार से लेना माया दोष, लोभ से लेना लोभ दोष है। वशीकरण मंत्रतंत्रादि बताकर आहार लेना वश्यकर्म दोष है। उक्तं च मूलाचारे: क्रोध, मान माया लोभ से आहार लेना क्रोध, मान, माया, लोभ रूप उत्पादन दोष होता है ऐसा जानना।।४२।।

स्वतपः श्रुतजात्यादिवर्णनं स्वगुणस्तवः।

विद्यागः सिद्धविद्यादि प्रभावादिप्रदर्शनम्।।४३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(स्वतपः श्रुतजात्यादिवर्णनम्) अपना तप, जाति, आदि का वर्णन करना (स्वगुणस्तवः) स्वगुण स्तव दोष है। (सिद्धविद्यादिप्रभावादिप्रदर्शनम्) सिद्ध विद्यादि का प्रभाव दिखाकर आहार लेना (विद्यागः) विद्या दोष है।

भावार्थ–अपनी जाति, कुल, तपश्चरण आदि की महानता प्रगट करके आहार ग्रहण करना स्वगुण स्तवन दोष है। अपनी सिद्ध विद्यादिक का प्रभाव दिखाकर आहार लेना विद्या दोष है। धर्म प्रभावना के लिए विद्याओं का चमत्कार दिखाना दोष नहीं है। आहार के लोभ से दिखाना दोष है। मूलाचार में कहा है जो साधन से सिद्ध हो वह विद्या है। उस विद्या की आशा देने से हम तुमको विद्या देंगे तथा उस विद्या की महिमा वर्णन करने से जो आहार ले उस साधु को विद्या दोष होता है।।४३।।

पाठसिद्धादिमंत्राणामङ्गशृंगारकारिणः।
चूर्णादिर्देशने स्यातां मंत्रचूर्णोपजीवने।।४४।।

अन्वयार्थ–(पाठसिद्धादिमंत्राणां) पठित सिद्ध मंत्रों का (अंगशृंगारकारिणः) अंगों को विभूषित करने वाले (चूर्णादिः) चूर्णादिक का (देशने) उपदेश देना (मंत्रचूर्णोपजीवने) मंत्र चूर्णोपजीवन दोष है। सो ही मूलाचार में कहा है।

भावार्थ–पढ़ने मात्र से जो मंत्र सिद्ध हो वह पठित सिद्ध मन्त्र होता है उस-मन्त्र की आशा (लोभ) दिखाकर और उसकी महिमा कहकर जो साधु आहार करता है उसके मंत्र दोष होता है। अंगशृंगारादि के चूर्ण आदि का उपदेश देकर आहार लेना चूर्ण दोष है।।४४।।

एषणा समिति के दश भेद

दोषाः शंकितम्रक्षिते निक्षिप्तं पिहितोज्झिते।
व्यवहारो दातृमिश्रापक्वलिप्ता दशैषणाः।।४५।।

अन्वयार्थ–(शंकितम्रक्षिते) शंकित, म्रक्षित (निक्षिप्तं) निक्षिप्त (पिहितोज्झिते) पिहित और उज्झित (व्यवहारः) व्यवहार (दातृमिश्रापक्वलिप्ता) दायक, मिश्र, अपक्व, लिप्त (दशैषणाः) ये दश एषणा के (दोषाः) दोष है।

भावार्थ–शंकित, मृक्षित, पिहित, त्यक्त, संव्यवहरण, दायक, उन्मिश्र, अपरिणत,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिप्त ये दश अनशन (एषणा) दोष है।।४५।।

शंकितं शकितं सेव्यमेतदन्नं न वेति यत्।

सस्नेहहस्तपात्रादिदत्तं यन्म्रक्षितं मतम्।।४६।।

अन्वयार्थ–(एतत्) यह (अन्नं) अन्न (सेव्यं) सेवा करने योग्य है कि (न वा) नहीं (इति) इस प्रकार जो (शंकितं) शंका है वह (शंकितं) शंकित दोष है (यत्) जो (सस्नेहहस्तापात्रादिदत्तं) चिकने हाथ तथा पात्रादि से दिया हुआ अन्न है। (मृक्षितं) वह मृक्षित दोष (मतं) माना है।

भावार्थ–भात, लाडू, दूध, इलायची, लवंग, आदि चार प्रकार के भोजन आगम के अनुसार मेरे लेन योग्य है, या नहीं ऐसी शंका सहित आहार लेना शकित दोष होता है। चिकने हाथ से या पात्र से आहार देना मृक्षित दोष है उसे हमेशा त्याग करना चाहिये।।४६।।

सचित्तपद्मपत्रादौ क्षिप्तं निक्षिप्तसंज्ञितम्।

सचित्तेनाब्जपत्रादिना वृतं पिहिताशनम्।।४७।।

अन्वयार्थ–(सचित्तपद्मपत्रादौ) सचित्त पद्म पत्रादि में (क्षिप्तं) रखे हुये अन्न को लेना (निक्षिप्तं) निक्षिप्त नामकदोष है। (सचित्तेन) सचित्त (अब्जपत्रादिना) कमल पत्रादि से (आवृत्तं) ढका हुआ अन्न (पिहिताशनं) पिहिताशन दोष युक्त है।

भावार्थ–अप्रासुक सचित्त पृथ्वी, जल, तेज, हरितकाय, बीजकाय, जीवों के ऊपर रखा हुआ जो आहार वह छह भेद वाला निक्षिप्त है, ऐसे आहार को निक्षिप्त दोष कहते हैं। अप्रासुक वस्तु से ढका हुआ अथवा उसे उघाड़कर जो दे ऐसे आहार को लेना पिहित दोष होता है।।४७।।

स्यादुज्झितं बहु त्यक्त्वा यच्चूताद्यल्पसेवनम्।

पानादि दीयमानं वाऽनल्पेन गलनेन तत्।।४८।।

अन्वयार्थ–(बहुत्यक्त्वा) बहुत से पदार्थों को छोड़के (यत्) जो (चूताद्यल्पसेवनं) आम आदि को अल्प सेवन करता है (वा) अथवा (दीयमानं) दिये गये (पानादि) पेय आदि पदार्थों को (अनल्पेन) बहुत (गलनेन) झरने से भोजन करना (उज्झितं) उज्झित दोष (स्यात्) है।

भावार्थ–बहुत भोजन को छोड़कर थोड़ा भोजन करे, छाछ आदि से झरते हुये हाथ से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजन करे, अथवा किसी एक आहार को छोड़कर ग्रहण करे उसके उज्झित दोष होता है।।४८।।

यत्यर्थं संभ्रमाच्चेलपात्रादेरसमीक्ष्य यत्।

समाकर्षणमाम्नातं व्यपहार इति श्रुते।।४९।।

अन्वयार्थ–(यत्यर्थं) यतिराज के लिए (संभ्रमात्) शीघ्रता से (चेलपात्रादेः) वस्त्र भाजनादि को (असमीक्ष्य) नहीं देखकर (यत्) जो (समाकर्षणं) भोजनादि को घर्षण कर देना (श्रुते) आगम में (व्यपहारः) व्यपहार (इति) इस प्रकार (दोषाम्नातं) माना है।

भावार्थ–वस्त्र, भाजन, भोजन का अवलोकन नहीं करके शीघ्रता से दिया हुआ अन्न ग्रहण करना व्यपहार (व्यपहार) दोष है।।४९।।

नग्नः शौण्डः पिशाचोन्धः पतितो मृतकाऽनुगः।

तीव्ररोगी व्रणी लिंगी नीच्चोच्चस्थानसंस्थित;।।५०।।

आसन्नगर्भिणी वेश्या दास्यन्तरिताऽशुचिः।

भक्षयन्ति किमप्येवमाद्या दोषास्तु दातृगाः।।५१।।युग्मम्

अन्वयार्थ–(नग्नः) नग्न (शौण्डः) मदिरा पीने वाले या मदिरा का कार्य करने वाला (पिशाचः) पिशाच से गृहीत वा वायुदोष से पीड़ित (अन्धः) अन्धा (पतितः) मूर्च्छा से गिरा हुआ (मृतकाऽनुगः) मुर्दे को श्मशान में जलाकर वा डालकर आया हो (तीव्ररोग) तीव्ररोगी (व्रणी) घाव से युक्त (लिंगी) अन्वेषधारी (नीचोच्चस्थानसंस्थितः) साधु से नीचे और ऊँचे स्थान पर खड़ा हो (आसन्नगर्भिणी) पांच महीने से अधिक गर्भवाली हो (वेश्या) वेश्या (दासी) दासी (अंतरिताः) दीवाल, पर्दा आदि से अन्तरित (अशुचिः) अपवित्र (किमपि) कुछ भी खा रही हो (एवं) इस प्रकार (आद्यः) आदि शब्दों से और भी (दातृगाः) दातागतदोष है।

भावार्थ–जो स्त्री बालक को सजाती हो, मदिरा पीने में लंपट हो, रोगी हो, मुर्दे को जलाकर आया पुरुष हो, नपुंसक हो, वायु आदि से पीड़ित हो, वस्त्रादि ओढ़े हुए न हो, मूत्र आदि करके आया हो, मूर्च्छा से गिर पड़ा है, वमन कर आया हो, सहित हो, दासी हो, अर्जिका रक्तपटिका आदि हो, अंगों का मर्दन करने वाली हो, अतिबालक (भोली) हो, अधिक बूढ़ी हो, भोजन करती झूंठे मुँह हो, पांच महीना आदि के गर्भ से युक्त हो, अन्धी हो, दीवाल आदि के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर से बैठी हो, ऊँची जगह बैठी हो, नीचे जगह पर बैठी हुयी हो, मुंह से फूंककर अग्नि जलाना काठ आदि डालकर आग जलाना, काठ को जलाने के लिए सरकाना, राख से अग्नि को ढकना, जलादि से अग्नि को बुझाना तथा अन्य भी अग्नि के कार्यकर भोजन देना, गोबर आदि से दीवाल का लीपना स्नानादि क्रिया करना, दूध पीते बालक को छोड़कर आहार देना इत्यादि क्रियाओं से आहार दे तो दातागत दोष है।।५०-५१।।

मिश्रं षट्जीवसम्मिश्रमपक्वं पावकादिभिः।

द्रव्यैरत्यक्तपूर्वस्ववर्णगन्धरसंविदुः।।५२।।

अन्वयार्थ–(षट्जीवसंमिश्रं) छह काय के जीवों के मिश्रित आहार लेना (मिश्रं) मिश्रदोष है (पावकादिभिः) अग्नि आदि के द्वारा (द्रव्यैः) हरड़ादि द्रव्यों से (अत्यक्तापूर्वस्ववर्णगंधरसं) नहीं छोड़ा है पूर्व स्ववर्ण, गंध, रस जिसने उसको (अपक्वं) अपक्व (विदुः) कहा है।

भावार्थ–छह काय के जीव से मिश्रित, अप्रासुक आहार लेना मिश्र दोष है। जल का अग्नि द्वारा गरम करने पर भी जिस जल ने अपने रस गंध को नहीं छोड़ा है अर्थात् पूर्ण गरम नहीं हुआ है, अथवा हरड़ आदि के चूर्ण प्रासुक करने पर रूप बदला नहीं हो उसे आहार में लेना अपक्व दोष है।।५२।।

लिप्तमप्रासुकैस्तोयमृत्तिकातालकादिभिः।

लिप्तैर्दर्वीकराद्यैर्थदीयभानाशनादिकम्।।५३।।

अन्वयार्थ–(अप्रासुकैः) अप्रासुक (तोयमृत्तिकातालकादिभिः) पानी, मिट्टी, हरताल आदि के द्वारा (लिप्तैः) लिप्त (दर्वीकराद्यैः) कड़छली हाथ आदि के द्वारा (दीयमानाशनादिकं) दिया गया अनसनादि (लिप्तं) लिप्त दोष है।

भावार्थ–मूलाचार में लिखा है गेरू, हरताल, खड़िया, मैनशिल, चावल आदि का चूर्ण कच्चा शाक, इनसे लिप्त हाथ तथा पात्र अथवा अप्रासुक जल से भीगा हुआ हाथ तथा पात्र इन दोनों से भोजन दे तो लिप्त दोष होता है।।५३।।

संयोगिता दोष

स्वादार्थमन्नपानानां यत्संयोजनकर्म तत्।

प्रोक्तं संयोजनं नानारोगाऽसंयमकारणम्।।५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(स्वादार्थं) स्वाद के लिए (अन्नपानानां) अन्न पानी का (यत्) जो (संयोजनकर्म) संयोग कर्म है (तत्) वह (नानारोगाऽसंयमकारणम्) नाना प्रकार के रोग और असंयम कारण (संयोजनं) संयोजन नामक दोष (प्रोक्तं) कहा है।

भावार्थ–जिह्वा इंद्रिय के वशीभूत होकर स्वाद के लिए गरम अन्न पानादि में शीतल जलादि मिलाकर ग्रहण करना संयोजन दोष हैं यह अनेक प्रकार के रोगों का उत्पादक है और असंयम का कारण है।।५४।।

अन्नेनार्द्धं तृतीयांशं कुक्षेः पानेय पूरयेत्।

वायोः सुखप्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्।।५५।।

अन्वयार्थ–(कुक्षैः) कुक्षि के (अर्द्ध) अर्द्ध भाग को (अनेन) अन्नादिक से (तृतीयांश) तृतीयांश को (पानेन) पानी से (पूरयेत्) पूरित करे। (वायोः) वायु के (सुखप्रचारार्थं) सुख प्रचार के लिए (चतुर्थ) चतुर्थ भाग (अवशेषयेत्) खाली रखे।

भावार्थ–उदर के अर्द्ध भाग को अन्न से भरे, तृतीयांश पेय पदार्थ से भरे और चतुर्थांश सुख पूर्वक वायु संचार के लिए खाली रखे।।५५।।

प्रमाणादतिरेकोऽस्मात्प्रमाणागो भवेद्यतः।

ध्यानाध्ययनभंगार्तिनिद्राऽऽलस्यादयोंऽगिनः।।५६।।

अन्वयार्थ–(अस्मात्) इस, (प्रमाणात्) प्रमाण से (अतिरेकः) उल्लंघन करना (प्रमाणागः) प्रमाण दोष (भवेत्) होता है (यतः) जिससे (अंगिनः) प्राणियों के (ध्यानाध्ययनभंगार्तिनिद्राऽऽ-लस्यादयः) ध्यान, अध्ययन का भंग अर्ति, निद्रा, आलस्यादि उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–शास्त्रों के प्रमाण से अधिक आहार करने से ध्यानाध्ययन का भंग, रोग, निद्रा, आलस्य आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं, इसलिए प्रमाण से अधिक आहार करना प्रमाण दोष है।

रागेणेष्टान्नपानाप्ती सेवांगारो निगद्यते।

धूमोऽनिष्टान्नपानादौ यद्द्वेषेण निषेवनम्।।५७।।

अन्वयार्थ–(इष्टान्नपानाप्तौ) इष्ट अन्न पानादि प्राप्ति होने पर (रागेण) रागपूर्वक (सेवा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेवा करना (अंगारः) अंगार दोष है। (अनिष्टान्नपानादौ) अनिष्ट अन्न पान की प्राप्ति होने पर (यत्) जो (द्वेषेणा) द्वेष पूर्वक (निषेवनं) सेवन किया जाता है वह धूम दोष (निगद्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–इष्ट अन्न पान के मिलने पर अतिगृद्धि से सेवन करना अंगार दोष है। अनिष्ट अन्न पान की प्राप्ति होने पर द्वेषपूर्वक ग्लानि करता हुआ भोजन करना धूम दोष है।।५७।।

आहार का प्रयोजन

क्षुच्छान्त्यावश्यकप्राणरक्षाधर्मयमा. मुनेः।
वैय्यावृत्त्यं च षट्भुक्तेः कारणानीति यन्मतम्।।५८।।

अन्वयार्थ–(क्षुच्छान्त्यावश्यकप्राणरक्षाधर्मयमः) भूख की शान्ति, आवश्यकों का पालन, प्राणरक्षा, धर्मों का परिपालन, संयम साधन (च) और (वैय्यावत्यं) सेवावृति (इति) इस प्रकार (मुनेः) मुनि के (भुक्तेः) भुक्ति के (षट्) ये छह (कारणादि) कारण (मतं) माने हैं।

भावार्थ–मुनि को क्षुधा की वेदना के उपशमार्थ, वैय्यावृत्ति करने के लिये छह आवश्यक क्रिया के पालनार्थ तेरह प्रकार के चरित्र के लिये, प्राणरक्षा के लिये, उत्तम क्षमादि धर्म के पालन के लिये भोजन करना चाहिये।।५८।। (मूलाचार ४७९)

ततः शरीरसंवृद्धयैः तत्तेजोबलबृद्धये।
स्वादार्थमायुः संवृद्धयै नैव भुञ्जीत संयतः।।५९।।

अन्वयार्थ–(ततः) क्योंकि (संयतः) संयमी (शरीरसंवृद्धयै) शरीर के वृद्धि के लिये (तत्तेजोबलवृद्धये) तेज और बल वृद्धि के लिये (रचादार्थं) स्वाद के लिये (आयुसंवृद्धयै) आयु वृद्धि के लिये (नैव) नहीं (भुंजीत) भोजन करते हैं।

भावार्थ–साधु गण शरीर की पुष्टि करने के लिये, तेज और बल की वृद्धि के लिये जिह्वा-इन्द्रिय के स्वाद के लिये और आयु की वृद्धि के लिये भोजन नहीं करते हैं।।५९।।

महापसर्गोऽऽतंकांगसंन्यासांगिदयातपो-
ब्रह्मचर्याणि भिक्षोर्षट् कारणान्यशनोज्झने।।६०।।

अन्वयार्थ–(भिक्षोः) भिक्षु के (अशंनोज्झने) आहार के छोड़ने में (महोपसर्गाऽऽतंकांगसं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्यासागि-दयातयोब्रह्मचर्याणि) महोपसर्ग, रोग, शरीर के ममत्व का त्याग, प्राणिदया, तप-ब्रह्मचर्य (षट्) से छह (कारणानि) कारण हैं।

भावार्थ–संयमीगण व्याधि के अकस्मात् हो जाने पर, देव मनुष्यादि द्वारा उपसर्ग होने पर, उत्तम क्षमा आदि धर्म के घात के कारणों के उपस्थित होने पर, ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये, शरीर में ममत्व छोड़ने और जीवों पर दया करने के लिये आहार का त्याग करते हैं।

अन्तरायों का उल्लेख

एतद्दोषविहीनान्नभुक्ते रन्तरकारिणः।
अन्तरायाः कियन्तोऽत्र वर्ण्यन्ते वर्णिनामिमे।।६१।।

अन्वयार्थ–(वर्णिनां) साधुओं के (एतद्दोष विहीनात्रभुक्तेः) इन छियालीस दोषों से रहित आहार के (अन्तरकारिणः) अन्तर (बाधा) करने वाले (कियन्तः) कितने (अन्तरायाः) अन्तराय हैं (इमे) इनका (अत्र) यहाँ पर (वर्ण्यन्ते) वर्णन किया जाता है।

भावार्थ–इस प्रकार छियालीस दोष रहित आहार करने वाले साधु के कुछ अन्तरायों का यहाँ वर्णन किया जाता है।।६१।।

रसपूयाऽस्थिमांसासृक्चर्ममेध्यादिवीक्षणम्।
काकाद्यमेध्यपातोंगे वमनं स्वस्थ रोधनम्।।६२।।

अश्रुपाताश्च दुःखेन पिंडपातः स्वहस्ततः।
काकादिपिंडहरणं पतनं त्यक्तसेवनम्।।६३।।

पादान्तरालात्पंचाक्षगतिः पंचेन्द्रियात्ययः।
स्वोदरकृमिवम्मूत्ररक्तपूयदिनिर्गमः।।६४।।

निष्ठीवनं संदष्ट्रांगिदशनं चोपवेशनम्।
पाणिपात्रोऽत्र सांगास्थिनखरोमादिदर्शनम्।।६५।।

प्रहारो ग्रामदाहोऽशुभोग्रवीभत्सवाक्श्रुतिः।
उपसर्गाः पतनं पात्रस्यायोग्यगृहाशनम्।।६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानुदेशादधः स्पर्शश्चेत्येवं बहवो मताः।

लोकसंयमवैराग्यजुगुप्सा भवभीतिजाः।।६७।।षड्भिःकुलकम्।।

DeJeÛ&Le& (रसपूयाऽस्थिमांसासृक्चर्ममेध्यादिवीक्षणम्) रस, पीप, हड्डी, मांस, रक्त, चर्म, अमेध्य आदि का देखना (अंगे) शरीर पर (काकाद्यमेध्यपातः) कौवा आदि की वीट गिरजाना (स्वस्य) अपने आपके (वमनं) वमन होना (रोधनं) रोकना (दुःखेन) दुःख से (अश्रु पातः) अश्रुपात होना (स्वहस्ततः) अपने हाथ से (पिंडपातः) ग्रास का गिर जाना (काकादिपिंडहरणं) कौवा आदि के द्वारा पिण्ड का हरण (च) और (पतनं) गिरजाना (त्यक्तसेवनं) त्याग की हुई वस्तु का सेवन करना (पादान्तरालात्) पैरों के अन्तराल से (पंचाक्षगतिः) पंचेन्द्रिय प्राणी का निकलना (पंचेन्द्रियात्ययः) पंचेन्द्रिय प्राणी का घात होना (स्वोदरकृमिविण्पूत्ररक्तपूयादिनिर्गमः) अपने उदर से कृमि, मल, मूत्र, रस, पूय आदि का निकालना (निष्ठीवनं) थूकना (संदष्ट्रांगिदशनं) दाढवाले कुत्ता आदि प्राणियों के द्वारा काटना (उपवेशनं) बैठ जाना (अत्र) यहाँ (पाणिपात्रे) हाथ में (सांगास्थिनखरोमादिदर्शनम्) प्राणियों का अंग, अस्थि, नख, रोम आदि का दृष्टिगोचर होना (प्रहारः) प्रहार होना (ग्रामदाहः) गांव में अग्नि लग जाना (अशुभोग्रबीभत्सवाक्श्रुतिः) अशुभ, उग्र, भयंकर वचनों का सुनना (उपसर्गाः) उपसर्ग होना (पात्रस्य) पात्र का (पतनं) गिर जाना (अयोग्यगृहाशनं) अयोग्य घर में प्रवेश करना (जानुदेशादथःस्पर्शः) जानु के नीचे को प्रदेश का स्पर्श करना (इति एवं) इस प्रकार (लोकसंयमवैराग्यजुगुप्साभवभीतिजाः) लोक, संयम, वैराग्य, जुगुप्सा और भव की भीति से उत्पन्न (बहवः) बहुत अन्तराय (मताः) माने गये हैं।।६२-६७।।

भावार्थ– १-३ राध-पीप अस्थि, मांस, रक्त, चर्म अमेध्य, (टट्टी) आदि के देखने से अंतराय होती है।

४. आहार को जाते समय साधुओं के शरीर पर कौआ आदि वींट करे तो काक नामा अंतराय है।

५. अशुचि वस्तु से पैर लिप्त हो तो अमेध्य अंतराय है।

६. वमन हो जाय तो छर्दिनामा अंतराय है।

७. मत खाओ इस प्रकार कोई भोजन में रुकावट करे तो रोध नामा अंतराय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. किसी के नेत्रों से दुःख के अश्रु पात होना देखे तो रुदन नामा अंतराय है।

९. अपने हाथ से ग्रास नीचे गिर जाय तो पाणिपिंडपतन नामक अंतराय है।

१०. आहार करते समय कौआ आदि ग्रास ले जाय तो काकादिपिंडहरण अंतराय है।

११. आहार को जाते समय वा आहार करते समय मूर्च्छा आदि से साधु गिर जाय वा दाता आहार देते समय गिर जाय तो पतन नामक अंतराय है।

१२. त्याग की हुई वस्तु का सेवन करना प्रत्याख्यान सेवना नामक अंतराय है।

१३. पैरों के अंतराल से पंचेन्द्रिय प्राणी निकल जाय तो जीव संपात नामक अन्तराय है।

१४. पंचेन्द्रिय जीव का वध होना जन्तुवध नामक अन्तराल है।

१५. आहार करते समय अपने उदर से कृमि निकल जाय तो उदर कृमि निर्गमन अन्तराय है।

१६. आहार करते समय उदर से मल निकल जाय तो उच्चार नामक अन्तराय है।

१७. आहार करते समय मूत्र निकल जाय तो प्रश्रवण नामक अन्तराय है।

१८. अपने या दूसरे शरीर से रक्त पीव निकलता देखे तो रुधिर नामक अंतराय है।

१९. आहार करते समय मुख से कफ ग्रास आदि थूके तो निष्ठीवन अन्तराय है।

२०. कुत्ता आदि काटे तो संदंश नामक अन्तराय है।

२१. आहार करते वा मार्ग में जाते समय मार्ग में बैठ जाय तो उपवेशन नामक अन्तराय है।

२२. पाणि पात्र में विकलत्रयादि जन्तु आदि का मर जाना प्राणी जन्तु वध नामक अन्तराय है।

२३. हाथ में नख, रोम आदि का दृष्टिगोचर होना मांसादि दर्शन अन्तराय है।

२४. अपने वा किसी दूसरे को तलवार आदि से प्रहार करे तो प्रहार नामक अन्तराय है।

२५. ग्राम जलने लग जाय तो ग्राम दाह नामक अन्तराय है।

२६. अशुभ तीव्र भय और कलहकारी वचन सुने सो अशुभ वाक्यश्रुति नामक अन्तराय है।

२७. कोई उपसर्ग हो तो उपसर्ग नामक अन्तराय है।

२८. दाता के हाथ से पात्र गिर जाय तो पात्र संपात नामक अन्तराय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९. अयोग्य चांडालादि के घर में प्रवेश हो जाय अयोग्य गृह प्रवेश नामक अन्तराय है।

३०. जानु (गोडे के) नीचे के भाग का स्पर्श करना जान्वध; स्पर्श नामक अन्तराय है।

३१. जानु प्रमाण काठ के ऊपर उल्लंघन करके जाना जानूपरिव्यक्तिक्रम अन्तराय है।

३२. नाभि से नीचे मस्तक करके निकलना नाभि अधोनिर्गमन अन्तराय है। इसके अलावा चाडाल का स्पर्श, कलह, इष्ट का मरण, आदि बहुत से भोजन के कारण है तथा लोक निन्दा होने से, संयम वैराग्य के लिए संसार से भयभीत होकर आहार का त्याग करना चाहिये। इसमें नख, रोम, प्राणिरहितशरीर, अस्थि, गेहूँ आदि धान के कण, पीप, चर्मष रुधिर, मांस, अंकुर होने योग्य गेहूँ, चना आदि बीज, कंदमूल आदि चौदह मल दोष है॥६८॥

ज्ञात्वायोग्यमयोग्यं च द्रव्यं क्षेत्रत्रयाश्रयम् ।

चरत्येव प्रयत्नेन भिक्षाशुद्धिमतो यतिः।।६८।।

अन्वयार्थ--(अतः) इसलिए (यतिः) संयमी (क्षेत्रत्रयाश्रयं) क्षेत्र, काल और भाव के आश्रित (योग्यं) योग्य (अयोग्यं) अयोग्य (द्रव्यं) द्रव्य को (ज्ञात्वा) जानकर (प्रयत्नेन) प्रयत्न पूर्वक (भिक्षाशुद्धिं) भिक्षा शुद्धि को (चरितएव) आचरण करता है।

भावार्थ--क्षेत्र, काल, भाव के आश्रय से योग्य अयोग्य द्रव्य को जानकर संयमी भिक्षा शुद्धि का आचरण करता है।

विनयशुद्धि

कुलर्द्धि जातिरूपाज्ञातपोज्ञानबलोद्भवैः।

मदैर्विहीना विनये शुद्धिः सद् गुणसन्नतिः।।६९।।

कार्याऽहंत्सिद्धोपाध्ययासूरिसाध्वादिकेष्वसौ।

समीक्ष्य क्षेत्रकालाऽवस्थासमादिं यथागमम्।।७०।।

अन्वयार्थ--(कुलर्द्धिजातिरूपाज्ञातपोज्ञानबलोद्भवै) कुल, ऋद्धि, जाति, रूप, आज्ञा, तप, ज्ञान और बल से उत्पन्न (मदैः) मदों से (विहीना) रहित (सद्गुणसन्नतिः) प्रशस्त गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वालों में प्रणति! (विनये) विनय में (शुद्धि) शुद्धि है अर्थात् कुल, ऐश्वर्य, जाति, रूप, आज्ञा, तप, ज्ञान और बल से उत्पन्न मद से रहित होना या नम्रवृत्ति होना (असौ) यह विनयशुद्धि है इस विनय शुद्धि को (क्षेत्रकालाऽवस्थासमादिं) क्षेत्र, काल, काल अवस्था, समता को (समीक्ष्य) देखकर (यथागमम्) आगम के अनुसार (अर्हत्सिद्धोपाध्यायसूरिसाध्वादिकेषु) अर्हत, सिद्ध, उपाध्याय, आचार्य, साधु आदि में (कार्य) करना चाहिये।

भावार्थ–क्षेत्र, काल, अवस्था, समता आदि को देखकर आगम के अनुसार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु आदि में विनय करना चाहिये।।६९-७०।।

नात्यासन्नो न दूरस्थो न पार्श्वस्थो न पृष्ठगः।
नोच्चस्थो वा गुरुं पृच्छेत्पृच्छेदभिमुखोनतः।।७।।
स्थिते स्थित्वोपविष्टे सत्युपविश्य गुरौ स्फुटम्।
श्रद्धामार्दवभक्त्याऽऽर्जवादियुक्तः कृतांजलिः।।७२।।

अन्वयार्थ–(अत्यासन्नः) अति निकट (न) नहीं (दूरस्थः) दूर स्थित (न) नहीं (पार्श्वस्थः) पार्श्वस्थ (न) नहीं (पृष्ठगः) पीठ पीछे भी (न) नहीं (उच्चस्थः) उच्च स्थान भी (न) नहीं होकर (पृच्छेत्) पूछे परन्तु (गुरौ) गुरु के (स्थिते) खड़े रहने पर (स्थित्वा) खड़ा रहकर (उपविष्टेसति) बैठने पर (उपविश्य) बैठकर (स्फुटं) स्फुट (श्रद्धामार्दवभक्त्या) श्रद्धा मार्दव और भक्ति से (आर्जवादियुक्तः) आर्जव आदि से युक्त होकर (कृतांजुलिः) अंजुलि करके (अभिमुखः) सन्मुख से (नतः) नमस्कार युक्त (गुरुं) गुरु को (पृच्छेत्) पूछे।

भावार्थ–गुरु के अत्यन्त निकट भी नहीं बैठे। अत्यन्त दूर भी नहीं बैठे। पसवाड़े में नहीं बैठे। पीठ पीछे नहीं बैठे। गुरु से ऊँचे स्थान पर भी नहीं बैठे। गुरु के खड़ा होने पर खड़ा हो जाय। गुरु के बैठने पर बैठ जाय तथा कोई बात पूँछना हो तो सम्मुख आकर श्रद्धा, मार्दव, आर्जव आदि भाव से युक्त होकर हाथ जोड़कर नमस्कार करके पूछे।।७१-७२।।

वक्तर्यन्यकथास्तस्मिन्विक्षेपोत्पादकं वचः।
तत्पार्श्वे स्वरैवाग्वृत्तिप्रवृत्तौ च त्यजेद्यतिः।।७३।।

अन्वयार्थ–(यतिः) साधु (तस्मिन्) उसके (अन्यकथाः) अन्यकथा के (वक्तरि) बोलने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विक्षेपोत्पादकं) विक्षेपोत्पादक (वचः) वचन (च) और (तत्पार्श्वे) उस गुरु के समीप में (स्वैरवाग्वृत्तिप्रवृत्ती) स्वैराचार की वृत्ति और प्रवृत्ति को (त्यजेत्) छोड़ दे।

भावार्थ–गुरुराज के समीप में उनके प्रतिकूल वचन और स्वैराचार प्रवृत्ति को छोड़ देना चाहिये।।७३।। अब इस विनय शुद्धि को पालन करने वाले शिष्य के कर्त्तव्य का निरूपण करते हैं।

संस्तरोत्क्षेपनिक्षेपप्रमुखैः परिकर्मभिः।
शर्म संपादयेत्सूरेः शर्मैषी विनयान्वितः।।७४।।

अन्वयार्थ–(शर्मैषी) सुख को चाहने वाले (विनयान्वितः) विनयशील शिष्य (संस्तरोत्क्षेपनिक्षेपप्रमुखैः) संस्तर का उठाना रखना आदि प्रमुख (परिकर्मभिः) परिचर्या के द्वारा (सूरेः) सूरि के (शर्म) सुख (संपादयेत्) संपादन करे।

भावार्थ–सुख का इच्छुक विनयशील संयमी संस्तर, पुस्तक आदि का रखना उठाना, शोधन करना, पैर दबाना आदि परिचर्या से आचार्य को संतुष्ट करे।।७४।।

श्रुत्वोक्ते स्खलितं नैव हसेत्कस्यापि नो वदेत्।
अप्रियं हर्षामर्षाभ्यां न कुर्यात्परपीडनम्।।७५।।

अन्वयार्थ–(कस्य) किसी के (अपि) भी (उक्तेः) वचन के (स्खलितं) स्खलित को (श्रुत्वा) सुन करके (नैव) नहीं (हसेत्) हसना चाहिये। (अप्रियं) अप्रिय वचन (न) नहीं बोले (हर्षामर्षाभ्यां) हर्ष और क्रोध से (परपीडनं) पर का पीडन भी (न) नहीं (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–विनयशील मानव किसी के मुख से स्खलित वचन निकल जाय तो नहीं हंसे। अप्रिय अनिष्ट वचन नहीं बोले तथा रागद्वेष से किसी के शरीर का पीडन मर्दन भी नहीं करे।।७५।।

इयं विनयशुद्धिर्नुर्भूषाऽशेषगुणश्रियः।
कारणं सुखदं नान्यदिहाऽमुत्र च देहिनाम्।।७६।।

अन्वयार्थ–(इयं) यह (विनयशुद्धिः) विनयशुद्धि (नुः) मानवों का (भूषा) भूषण है। (देहिनाम्) प्राणियों के (इह) इस (च) और (अमुत्र) परलोक में (अन्यत्) विनय को छोड़ कर (अशेषगुणश्रियः) अशेष गुण श्री का (सुखद) सुख को देने वाला (कारणं) कारण (न) नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–विनय मानव का भूषण है। इस लोक और परलोक में विनय को छोड़कर दूसरे समस्त गुण श्री का सुखद कारण नहीं है। समस्त गुणों की शोभा विनय है।।७६।।

शयनासन शुद्धि का स्वरूप

अनात्मोदेशनिष्पन्ने निरारंभेऽन्यसम्मते।
शून्यागारादिदेशे च न स्त्रीक्षुद्रनटादिके।।७७।।
व्युत्सर्गादिश्रमोच्छित्यै शयनाऽसनयोः कृतिः।
यतेरत्यल्पकालं सा शयनाऽऽसनशुद्धिधीः।।७८।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(अनात्मोद्देशनिष्पन्ने) अपने उद्देश्य से रहित है निष्पत्ति जिसकी (निरारंभे) आरम्भ् रहित (अन्यसम्मते) दूसरे के लिए निष्पन्न (स्त्रीक्षुद्रनटादिके) स्त्री क्षुद्रादिक नटादि जिसमें (न) नहीं है ऐसे (शून्यागारादिदेशे) शून्यागारादि क्षेत्र में (व्युत्सर्गादिश्रमोच्छित्यै) कायोत्सर्ग आदि से उत्पन्न श्रम का अपनोदन करने के लिए (यतेः) यति को (अत्यल्पकालं) अति अल्पकाल पर्यंत (शयनाऽसनयोः) शयनासन की (कृतिः) क्रिया है (सः) वह (शयनासनशुद्धिः) शयनासन शुद्धि है।

भावार्थ–कायोत्सर्ग आदि से उत्पन्न श्रम का अपनोदन करने के लिए मुनिराज अपने लिए नहीं बनाये हुए आरम्भ से रहित, अन्य की सम्मति से युक्त, स्त्री, नपुंसक, क्षुद्रनट, आदि के संचार से रहित, शून्यागार आदि क्षेत्र में अति अल्पकाल शयनासन करने वाले संयमी के शयनासन शुद्धि होती है।।७७-७८।।

व्युत्सर्ग शुद्धि

चूर्णीकृत्य नखात्केशान्विश्लिष्यैकैकमुत्सृजेत्।
अनुल्बलणमलेपं च क्ष्वेलसिंहाणकादिकम्।।७९।।

अन्वयार्थ–(केशान्) केशों को (नखात्) नखों से (चूर्णीकृत्य) चूर्ण करके (एकैकं) एक एक का (विश्लिष्य) विश्लेषण करके (च) और (क्ष्वेलसिंहाणकादिकं) कफ और नाक के मल आदि को (अनुब्लणं) बिना विस्तरित (अलेपं) बिना लेप (उत्सृजेत्) छोड़े।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–केशों को नखों से चूर्ण करके और एक-एक विश्लेषण करके जमीन पर डाले कफ और नाक के मलादि को किसी दीवाल पर लेप नहीं करे।।७९।।

वीक्ष्य पूर्वापरोध्वधि पार्श्वभागान्पुरोदिते।

स्थाने प्रस्त्रवणोच्चारं वातं निःशब्दमुत्सृजेत्।।८०।।

अन्वयार्थ–(पूर्वापरोध्वधिः पार्श्वभागान्) पूर्वापर उर्ध्व अधोभाग को (वीक्ष्य) देखकर (पुरोदिते) पूर्व कथित (स्थाने) स्थान में (प्रस्त्रवणोच्चारं) मूत्र और मल का तथा (निःशब्दं) शब्द रहित (बातं) बात को (उत्सृजेत्) छोड़े।

भावार्थ–अपने समीप के पूर्व, पश्चिम, ऊर्ध्व, अधोभाग को देखकर पूर्वकथित क्षेत्र में मल मूत्र करे, तथा अधोवायु का संचार शब्द रहित करे।।८०।।

पश्चाच्छुचिं प्रकृत्येष्टकाविकृत्यादिभिः पुनः।

स्यात्क्षालिताऽऽसनकरः सौवीरोष्णजलादिभिः।।८१।।

अन्वयार्थ–(पश्चात्) मलमूत्र करने के बाद (पुनः) फिर (इष्टकाविकृत्यादिभिः) ईंट, गोबर के कंडा आदि के द्वारा (शुचिं) शुद्धि (प्रकृत्य) करके (सौवीरोष्णजलादिभिः) हरड़ आदि डाले हुये अथवा उष्ण जल के द्वारा (क्षालिताऽऽसनकरः) धोये हैं आसन और हाथ जिसने ऐसा (स्यात्) होवे।

भावार्थ–मल मूत्र करके गोबर, ईंट के शुष्क टुकड़े से शुद्धि करके प्रासुक जल से हाथ पैर धोवे।।८१।।

जरारुजार्दितः कायं सन्यासेन त्यजेदिति।

व्युतसर्गशुद्धि संशुद्धिः विद्यते यमिनामियम्।।८२।।

अन्वयार्थ–(जरारुजार्तिः) जरा और रोग से पीड़ित होने पर (संन्यासेन) सन्यासपूर्वक (कायं) शरीर को (त्यजेत्) छोड़े (इति) इस प्रकार (इयं) यह (यमिनां) मुनियों की (व्युत्सर्गशुद्धिः) व्युत्सर्गशुद्धि (संशुद्धि) संशुद्धि को (विद्यते) धारणा करती है।

भावार्थ–जरा रोग आदि से पीड़ित होने पर सन्यासपूर्वक शरीर का त्याग करे यह

Ganesh Varṅi Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयमियों की व्युत्सर्ग शुद्धि है॥८२॥

शुद्धि की महिमा

पुष्टिं विशिष्टामियमष्टशुद्धिर्विशुद्धभावैः परिभाविते ह।
करोति पंचाचरणस्य यद्वत् सौरीमरीचिः सरसीजलक्ष्मीम्।।८३।।

अन्वयार्थ–(इह) इस लोक में (विशुद्धभावैः) विशुद्धभाव से (परिभाविता) परिभावित (इयं) यन (अष्टशुद्धिः) आठ प्रकार की शुद्धि (पंचाचरणस्य) पंचाचार की (विशिष्टां) विशिष्ट (पुष्टिं) पुष्टिको (करोति) करती है (यद्वत्) जैसे (सौरीमरीचिः) सूर्य की किरणें (सरसीजलक्ष्मीं) कमल की लक्ष्मी को (करोति) करती है।

भावार्थ–जिस प्रकार सूर्य की किरणें कमल को विकसित करती हैं उसी प्रकार निर्मल भावों से भावित यह विनयादि आठ प्रकार की शुद्धि पंचाचार को विशुद्ध करती है॥८३॥

वासुपूज्य स्तुति

छत्रत्रयं यस्य जगत्रयस्य स्वामित्वसंकीर्तिपरं रराज।
सन्मंगलं वः स जिनोऽस्तु देवः श्रीवासुपूज्यो भुवनत्रयेऽयः।।८४।।

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसके (जंगत्भयस्य) तीन जगत के (स्वामित्वसकीर्तिपरं) स्वामित्व की संकीर्ति परक (छत्रत्रयं) तीन छत्र (रराज) शोभित होते हैं (सः) वह (भुवनत्रयेङ्यः) तीन लोक में पूज्यनीय (श्री वासुपूज्यः) श्री वासुपूज्य (जिनः) जिन (देवः) देव (वः) तुम्हारे लिये (सन्गलं) सन्मंगलकारी (भवतु) हों।

भावार्थ–जिसके तीन जगत के स्वामित्व का स्थापन करने वाले तीन छत्र शोभित हो रहे हैं, वह तीन लोक में पूजनीय वासुपूज्य जिनेन्द्र तुम्हारे लिए मंगलकारी होवें॥८०॥

इति श्रीमद्वीरनन्दिसिद्धान्तिचक्रवर्तिप्रणीते श्रीआचारसारनाम्निशास्त्रे
शुद्धयष्टकवर्णनात्मकोऽष्टमोऽधिकारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवमोऽधिकारः

सुपार्श्वनाथ स्तुति

श्रीमांस्त्रिलोक्या कृतपादसेवो यः सर्वसत्यामृतदिव्यरावः।
स्यादिष्टदः सोऽनुपप्रभावः सुपार्श्वदेवो भवकक्षदावः।।१।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (श्रीमान्) श्रीमान् (त्रिलोक्याः) तीन लोक के द्वारा (कृतापादसेवः) की गयी है चरण सेवा जिसकी (सर्वसत्वामृतदिव्यरावः) सर्व सत्व हितकार है दिव्यवाणी जिसकी (अनुपमप्रभावः) अनुपम है प्रभाव जिसका ऐसा (भवकक्षदावः) संसार रूपी अटवी को जलाने वाला (सः) वह (सुपार्श्वदेवः) सुपार्श्वदेव (इष्टवः) हमें इष्ट वस्तु को देने वाला (स्यात्) हो।

भावार्थ–अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंग लक्ष्मी और समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मी से युक्त तीन लोक के द्वारा पूजित, सर्वसत्वहितकारी, दिव्यवाणीधारक, अनुपम प्रभावी, संसार रूप अटवी के दाहक, श्रीसुपार्श्व जिनेश्वर हमें इष्टफल के दाता हों।।१।।

आवश्यक शब्द का अर्थ और भेद

आवश्यकक्रियावश्यं कार्यं कर्मावशस्य वाः
मुनेः कर्मोदितं सेति कषायाक्षोऽवशोऽवशः।।२।।

अन्वयार्थ–(अवशस्य) स्वाधीन (मुनेः) मुनि के (अवश्यं) अवश्य (कार्य) करने योग्य (कर्म) कार्य (कर्म) कर्म (उदितं) कहा है (वा) अथवा (कषायाक्षोवशः कषाय और इन्द्रियों के अवश होता हुआ (अवशः) अवशाधीन है (सा) वह (इति) इस प्रकार (आवश्यकक्रिया) आवश्यक क्रिया है।

भावार्थ–कषाय और इन्द्रिय के आधीन होना अथवा आधीन मुनि के जो अवश्य करने योग्य कार्य है वह आवश्यक क्रिया कहलाती है। अथवा जो स्वाधीन होकर क्रिया की जाती है अथवा जो अवश्य करने योग्य है वह आवश्यक क्रिया कहलाती है।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा षड् विधोदितेत्येवं समतास्तववंदनम्।

सप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायविसर्जनम्।।३।।

अन्वयार्थ–(समतास्तववन्दनम्) समता, स्तवन, वन्दना (प्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायविसर्जनम्) प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग (इति एवं) इसप्रकार (सा) वह आवश्यक क्रिया (षड्विधा) षट् प्रकार की (उदिता) कही है।

भावार्थ–समता, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग यह छह प्रकार की आवश्यक क्रिया है।।३।।

स्यान्नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधा।

समता नाम समतैतस्या नामस्ववाचकम्।।४।।

अन्वयार्थ–(नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात्) नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से (समता) समता (चतुर्विधा) चार प्रकार की है (एतस्याः) इसका (समता) समता (नाम) नाम (स्ववाचकं) स्व वाचक है।

भावार्थ–शुभ अशुभ नाम को सुनकर रागद्वेष का नहीं करना नाम सामायिक है। मनोहर और अमनोहर स्थापनादि में रागद्वेष नहीं करना स्थापना सामयिक है। सुवर्ण, मिट्टी आदि रम्यारम्भ द्रव्यों में समदर्शी होना द्रव्य सामायिक है। सर्व जीवों में मैत्रीभाव तथा अशुभ भावों का त्याग होना भाव सामायिक है।।४।।

नामनिक्षेप का वर्णन

जीवजीवोभयेष्टार्थजातिद्रव्यगुणक्रिया।

नामोत्पत्तिनिमित्तानपेक्षं यन्नाम तन्मतम्।।५।।

अन्वयार्थ–(जीवाजीवोभयेष्टार्थजातिद्रव्यगुणक्रिया) जीव, अजीव, उभय, इष्ट, अर्थ, जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया आदि (नामोत्पत्तिनिमित्तानपेक्षं) नाम की उत्पत्ति में निमित्त की अपेक्षा नहीं करके (यत्) जो (नाम) नाम (तत्) वह (नाम) नाम निक्षेप है।

भावार्थ–जीव, अजीव और उभय, इष्ट, पदार्थ, जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया, आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामनोत्पत्ति के निमित्त कारणों की अपेक्षा के बिना जो नाम रखा जाता है वह नाम निक्षेप है।।५।।

स्थापनानिक्षेप

यत्सेयमित्यभेदेन सदृशेतरवस्तुषु।

स्थापन स्थापनं वार्हत्प्रतिकृत्यक्षतादिषु।।६।।

अन्वयार्थ–(सद्दशेत्तरवस्तुषु) सदृश और असदृश वस्तु में (वा) अथवा (अर्डत्प्रतिकृत्यक्षतादिषु) अरिहंत के बिम्ब और अक्षत आदि में (सा) वह (इयं) यह समता है (इत्यादि) इस प्रकार (अभेदेन) अभेदनय से (यत्) जो (स्थापनं) स्थापना है। (सा इयं) व स्थापना निक्षेप है।

भावार्थ–तदाकार और अतदाकार वस्तु में यह वह है, इस प्रकार की कल्पना करना स्थापना निक्षेप है।।६।।

द्रव्य निक्षेप

द्रव्यं भविष्यत्पर्यायं गतार्पितविवर्ति च।

तद् द्वेधाऽऽगमो नो आगमश्चेत्याद्यस्तयोरयमः।।७।।

जीवः स्यादुपयोगो नो विज्ञातसमतागमः।

आगमादन्यो नो आगमाख्यः स त्रिविधो यथा।।८।।

ज्ञायकांगं भविष्यंस्तद्व्यतिरिक्तमिति त्रिधा।

तेष्वाद्यं भाव्यतिक्रान्तवर्तमानविकल्पतः।।९।।त्रिकं।।

अन्वयार्थ–(भविष्यत्पर्यायं) भविष्यत् पर्याय के सन्मुख (द्रव्यं) (आगमः) (च) और (नो) आगम) के भेद से (तद्वेधा) वह दो प्रकार का है। (तयोः) उन आगम नो आगम में (अयं) यह (आद्यः) प्रथम आगम द्रव्य (विज्ञातसमागमः) समता का वर्णन करने वाले शास्त्र का ज्ञायक परन्तु (उपयोगोनः) समता शास्त्र के उपदेश से रहित (जीवः) जीव समतागम जीव है। (आगमात्) आगम से (अन्यः) अन्य (नोआगमाख्यः) नो आगम नामक समता है (सः) वह (त्रिविधः) तीन प्रकार का है (यथा) जैसे (ज्ञायकांगं) ज्ञायक शरीर (भविष्यत्) भविष्यत् (तद् (व्यतिरिक्तं) तद् व्यतिरिक्त (इति) इसप्रकार (त्रिधा) तीन प्रकार का है (तेषु) उनमें (आद्यं) प्रथम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञायक शरीर (भाव्यतिक्रांतवर्तमान विकल्पतः) भावी, अतिक्रान्त, वर्तमान विकल्प से (त्रिधा) तीन प्रकार का है।

भावार्थ–भविष्यत और अतीत सन्मुख पर्याय को द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य आगम और नो आगम के भेद से दो प्रकार का है। समता का वर्णन करने वाले शास्त्र का ज्ञायक और उनके उपयोग से रहित जीव आगम समता द्रव्य है। नो आगम द्रव्य ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उसमें ज्ञायक शरीर भूत, भविष्यत, वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।।७-९।।

आधाराऽऽधेयधर्मोपचारेणांगत्रयस्य च।
तत्वं धनुःशतं भुंक्ते धावतीत्यत्र वा तथा।।१०।।

अन्वयार्थ–(आधाराधेयधर्मोपचारेण) आधार आधेय के उपचार से (अंगत्रयस्य) भूत, भविष्य, वर्तमान, कालीन तीन अंगों का (तत्वं) नो आगम तत्व है। (यथा) जैसे (धनुःशतं) धनुशत को (भुक्ते) भोगता है (वा) अथवा (धावति) दौड़ता है। (इति) इसप्रकार है (तथा) उसीप्रकार।

भावार्थ–तीनों अंगों का नो आगम तत्व आधार (शरीर) आधेय (जीव) धर्म के उपचार से तीन प्रकार का है। जैसे धनुष को छोड़कर भोजन करने वाला भी धनुषधारी है। भोजन को छोड़कर धनुष को ग्रहण करने वाला भी धनु है। धनुष को छोड़कर दौड़ने वाला भी धनु कहलाता है उसी प्रकार शरीर भी भूत, भविष्य और वर्तमान से तीन प्रकार का है।।१०।।

स्याच्च्युतं च्वावितं त्यक्तमित्यतीतं त्रिभेदगम्।
च्युतं त्यागं विनाऽऽयुष्यक्रमक्षयगतात्मकम्।।११।।

अन्वयार्थ–(अतीतं) अतीतकाल का शरीर (च्युतं) च्युत (च्यावित) च्यावित (च) और (त्यक्तं) त्यक्त (इति) इसप्रकार (त्रिभेदगम्) तीन प्रकार का है। (त्यागं) त्याग के (बिना) बिना (आयुष्यक्रमक्षयगतात्मकम्) आयु क्रम के क्षय से नष्ट हुआ शरीर (च्युतं) च्युत कहलाता है।

भावार्थ–अतीत काल सम्बन्धी शरीर च्युत, च्यावित, और त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उसमें सन्यास मरण के बिना आयुक्षय से नष्ट हुआ शरीर च्युत कहलाता है।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च्यावितं कदलीघातपतितं त्यागवर्जितम्।

त्यक्तं भक्तादिकत्यागैर्घाताऽघातगतात्मकम्।।१२।।

अन्वयार्थ–(त्यागवर्जितं) त्याग से रहित (कदलीघातपतितं) कदली घात से पतित (च्यावितं) च्यावित (भक्तादित्यागैः) भक्तादि त्याग के द्वारा (घातघातगतात्मकम्) घात अघात आत्मक (त्यक्तं) त्यक्त कहलाता है।।

भावार्थ–सन्यास से रहित कदलीघात से नष्ट हुआ शरीर च्यावित है। त्यक्त, इंगिनी, प्रायोगपगमन से छोड़ा हुआ शरीर कदलीघात से नष्ट हुआ शरीर अथवा बिना कदलीघात से नष्ट हुआ हो परन्तु त्याग सहित मरण हो वह च्यावित शरीर कहलाता है।

विषास्त्रघातभीरक्तक्षयसंक्लेशवेदना-

ऽऽहारोच्छ्वासनिरोधाः स्युरायुष्यच्छेदकारिणः।।१३।।

अन्वयार्थ–(विषास्त्रघातभीरक्तक्षयसंक्लेशवेदनाऽऽहारोच्छ्वासनिरोधाः) विष, अस्त्रघात, भीति, रक्तक्षय, संक्लेशपरिणाम, वेदना, आहार, और उच्छ्वास का निरोध (आयुच्छेदकारिणः) आयु के घातक कारण (स्युः) हैं।

भावार्थ–विष के भक्षण करने से, शस्त्र के घात से, किसी भयकारक पदार्थ देखने से, रक्त के क्षय होने से, संक्लेश परिणाम होने से, तीव्र वेदना से, आहार और उच्छ्वास के विरोध से आयु का घात होता है उसको कदलीघात मरण कहते हैं।।१३।।

स्याद्भाव्यर्पितपर्यायो भविष्यद्राजनाममाक्।

भविष्यद्राजपर्यायो योपचारान्नृपात्मजः।।१४।।

अन्वयार्थ–(भाव्यर्पितपर्यायः) भविष्यतकाल में होने वाली विवक्षित पर्याय वाला जीव भावि नो आगम द्रव्य है (यथा) जैसे (भविष्यद्राजपर्यायः) भविष्यत् काल में राजा होने वाला (नृपात्मजः) राजा का पुत्र (उपचारात्) उपचार से (राजनामभाक्) राजा कहलाता है।

भावार्थ–भविष्यत् काल में होने वाली पर्यायों का वर्तमान काल में कहना भावि नो आगम द्रव्य है। जैसे भविष्यत काल में राजा होने वाले राजा के पुत्र को वर्त्तमान में राजा कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसीप्रकार भविष्यतकाल में सामायिक रूप परिणमन होने वाले जीव के शरीर को वर्तमान में सामायिक कहना नो आगम द्रव्य है।।१४।।

कर्मनोकर्म भेदं स्यात्तृतीयं तत्र कर्म यत्।
चारित्रमोहमन्दानुभावद्रव्यैनसस्ततिः।।१५।।

अन्वयार्थ–(तृतीयं) तीसरा व्यतिरेक नामक नो आगमद्रव्य (कर्मनोकर्मभेदः) कर्म नोकर्म भेद से दो प्रकार का है (तत्र) उसमें (चारित्रमोहमन्दानुभावद्रव्यैनसः) चारित्र मोहनीय कर्म के भेद अनुभाग रूप द्रव्य कर्मों की (ततिः) समूह (कर्म) तद्व्यतिरेक है।

भावार्थ–तद्व्यतिरेक नो आगमद्रव्य कर्म नोकर्म भेद से दो प्रकार का है। उसमें चारित्र मोहनीय कर्म के मंद अनुभाग से चारित्रधारी जीव के शुभ परिणामों से उपार्जित प्रकृति आदि प्रशस्त नो आगम तद्व्यतिरेक सामायिक है।।१५।।

नोकर्म मृत्सुवर्णाश्ममाणिक्याऽहिस्रगादिकम्।
समताकारणं बाह्यभावावलोकिनः।।१६।।

अन्वयार्थ–(मृत्सुवर्णाश्ममाणिक्याऽहिस्रगादिकम्) मिट्टी, सुवर्ण, पत्थर, माणिक्य, सर्प, मालादिक को (बाह्यभावभावालोकिनः) बाह्य भाव रूप पदार्थों को देखनें वाले के (समताकारण) समता का कारण (नोकर्म) नोकर्म सामायिक है।

भावार्थ–बाह्य में पदार्थों को देखने वालों के जो मिट्टी, सुवर्ण, पत्थर, माणिक्य, माला, सर्प आदि में समता का कारण द्रव्य है वह नो कर्म तद्व्यतिरेक है। अथवा तद्व्यतिरिक्त द्रव्य नोकर्म सचित अचित और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। सचित उपाव्याय है अचित्त पुस्तक है। पुस्तक सहित उपाध्याय मिश्र है। यह उपाध्याय आदि समता भाव में सहायक कारण है, इसलिए इनको भी नोकर्म सामायिक कहते हैं।।१६।।

भाव सामायिक का स्वरूप

अर्पितेन विवर्त्तेन वर्तमानेन संयुतम्।
द्रव्यं भावो भवेद्भावमात्रं वा विनयाश्रयः।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अर्पितेन) विवक्षित (वर्तमानेन) वर्तमान (विवर्त्तेन) पर्याय से (संयुक्तं) संयुक्त (द्रव्यं) द्रव्य (भावः) भाव (भवेत्) होता है (वा) अथवा (विनयाश्रयः) विनय का आश्रय भूत (भावमात्रं) समता का भाव भाव सामायिक है।

भावार्थ–विवक्षित वर्तमान पर्याय में संयुक्त मुनि, भावसामायिक है। अथवा विनय संयुक्त समताभाव भाव सामायिक है।।१७।।

भाव आगम नोआगमद्विभेदस्तयोर्भवेत्।

आगमः समताशास्त्रार्थोपयोगयुतो यतिः।।१८।।

अन्वयार्थ–(भावः) भाव समता (आगमनोआगमद्विभेदः) आगम और नो आगम के भेद से दो प्रकार की है (तयोः) उन दोनों में (समतशास्त्रार्थोपयोगयुतः) समता शास्त्र के अर्थ में उपयुक्त (यतिः) यति (आगमः) आगम भाव सामायिक है।

भावार्थ–भावसमता, आगम नो आगम भेद से दो प्रकार की है। उनमें समता शास्त्र के अर्थ में उपयुक्त यति को भावआगम सामायिक कहा है।।१८।।

द्विभेद उपयुक्तस्तत्परिणत इतीतरः।

शास्त्रं विनोपयुक्तोऽस्यामुपयुक्त इति स्मृतः।।१९।।

अन्वयार्थ–(उपयुक्तः) उपयुक्त (द्विभेदः) दो प्रकार का है (शास्त्रं) सामायिक शास्त्र के (बिना) बिना (उपयुक्तः) उपयुक्त तथा (अस्यांतत्परिणतः) उसमें परिणत (उपयुक्तः) उपयुक्त (इतरः) नो आगम है।

भावार्थ–शास्त्र के बिना उपयुक्त और शास्त्र में उपयुक्त इसप्रकार नो आगम भाव निक्षेप के दो भेद हैं। सामायिक शास्त्र के बिना आत्मध्यान में उपयुक्त मुनि का शरीर नो आगम है। अथवा सामायिक शास्त्र में उपयुक्त मुनि का शरीर नो आगम भाव है।।१९।।

सामायिक शब्द का निरूक्ति अर्थ

सं यः स्वार्थनिवृत्यात्मनेद्रियाणाभयोऽयनम्।

समयः सामायिकं नाम स एव समताह्वयम्।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(सं) सम्यक् प्रकारेण (आत्मना) अपनी आत्मा के साथ (इन्द्रियाणां) इन्द्रियों को (स्वार्थनिवृत्य) अपने-अपने विषयों से विमुख करके (अयः) अय शब्द का अर्थ (अयनं) प्रवृत्ति (सः) वह (समयः) समय है। (सामायिकं) समय का भाव सामायिक है (सः) वह (एवं) ही (समताह्वयं) समता है।

भावार्थ–'सम' का अर्थ इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में निवृत्त करके 'अय' अपने आप में लीन होना है। अर्थात् बाह्यमुखी प्रवृत्ति को छोड़कर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करना समय है और समय का भाव सामायिक है। सामायिक का ही नाम समता है।।२०।।

समस्यारागरोषस्य सर्ववस्तुष्वयोऽयनम्।

समायः स्यात्स एवोक्त सामायिकमिति श्रुते।।२१।।

अन्वयार्थ–(सर्ववस्तुषु) सर्व वस्तुओं में (समस्य) सम का अर्थ (अरागरोषस्य) राग द्वेष रहित (अयः) अय का अर्थ (अयनं) गमन (समायः) सामायिक (स्यात्) है। (सः) वह (एव) ही (श्रुते) श्रुत में (सामायिकं) सामायिक (इति) इस प्रकार (उक्तं) कहा है।

भावार्थ–सर्व वस्तुओं में रागद्वेष की निवृत्ति करके अपने आप में रमण करना श्रुत में सामायिक कहा गया है। "सम" शब्द का अर्थ रागद्वेष रहित "अथवा" अर्थ अपने में लीन होना उसी का नाम समय है और समय का भाव सामायिक है।।२१।।

समःस्याद्रत्यख्याप्तिहेतुवस्तुसमो वमौ।

समस्यभावः समता तोषरोषव्यपेतता।।

अन्वयार्थ–एक प्रति में यह श्लोक भी है–सर्व द्रव्य रति अरति का भाव सम है और अपने में प्रवृत्ति का नाम "आय" है। उसी रागद्वेष रहित प्रवृत्ति का नाम समता वा सामायिक है।

तत्परिणत नोआगम सामायिक का अर्थ

समतोपेतचित्तो यः स तत्परिणताह्वयः।

प्रकृतोऽत्रायमन्यासु क्रियास्वेवं निरुपयेत्।।२२।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (समतोपेतचित्तः) समता से उपयुक्त चित्त है जिसका (सः) वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(तत्परिणाताह्वय) तत्परिणत नाम नोआगम भाव सामायिक है। (अत्र) इस सामायिक में (अयं) यह (प्रकृतः) प्रकरण है वह (अन्यासु) अन्य (क्रियासु) क्रियाओं में (एवं) इस प्रकार (निरूपयेत्) निरूपण करना चाहिये।

सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः संशुद्धकरणत्रयः।

धौतहस्तपदद्वन्द्वः परमानंदमंदिरम् ।।२३।।

चैत्यचैत्यालयादीनां स्तवनादौ कृतोद्यमः।

भवेदनन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये यतिः।।२४।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः) सर्व व्यापार से रहित (संशुद्धकरणत्रयः) शुद्ध मन वचन काय वाला (धौतहस्तपदद्वन्द्वः) धोये हैं हाथ पैर जिसने (परमानंदमदिरम्) परमानन्द का मन्दिर (यतिः) साधु (अन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये) अनन्त संसार के संतान का छेद करने के लिए (चैत्यचैत्यालयादीनां) चैत्य चैत्यालय आदि के (स्तवनादौ) स्तवन आदि में (कृतोद्यमः) उद्यम करने वाला (भवेत्) हो।

भावार्थ–सर्व व्यापार से रहित, शुद्धमनवचनकाय से युक्त, परम आनन्द में लीन साधु, हाथ पैर धोकर अनन्त संसार की संतति का छेद करने के लिए चैत्य (जिनप्रतिभा) चैत्यालय आदि के स्तवन करने में तत्पर होवे अर्थात् परम भक्ति से जिन भगवान की स्तुति करे।।२३-२४।।

यथा निश्चेतनाश्चिन्तामणिकल्पमहीरूहाः।

कृतपुण्यानुसारेण तदभीष्टफलप्रदाः।।२५।।

तथाऽर्हदादयश्चास्तरागद्वेषप्रवृत्तयः।

भक्तभक्त्ययनुसारेण स्वर्गमोक्षफलप्रदाः।।२६।।

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे (निश्चेतनाः) अचेतन (चिंतामणिकल्पमहीरुहाः) चिंतामणि कल्पवृक्ष (कृतपुण्यानुसारेण) किये हुये पुण्य के अनुसार (तदभीष्टफलप्रदाः) अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं (तथा) उसी प्रकार (अस्तरागप्रवृत्तयः) नष्ट हो गई है रागद्वेष प्रवृत्ति जिसकी ऐसे (अर्हदादयः) अर्हद् आदि (भक्तभक्त्यनुसारेण) भक्त की भक्ति के अनुसार (स्वर्गमोक्षफलप्रदाः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर्ग मोक्ष के फल देने वाले होते हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार अचेतन चिंतामणि और कल्पवृक्ष पुण्य के अनुसार अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं उसी प्रकार वीतरागी अरहंत देव की प्रतिमा आदि भक्त की भक्ति के अनुसार स्वर्ग मोक्ष के फल को देने वाले होते हैं।।२५-२६।।

गरापहारिणी मुद्रा गरुडस्य यथा तथा।
जिनस्याऽप्येनसो हंत्री दुरितारातिपातिनः।।२७।।

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे (गरुडस्य) गरुण की (मुद्रा) मुद्रा (गरापहारिणी) विष को हरने वाली होती है (तथा) उसीप्रकार (दुरुतारातिपातिन) पाप रूपी शत्रुओं का नाशक (जिनस्य) जिन भगवान की (मुद्रा) मुद्रा (अपि) भी (एनसः) पापों की (हंत्री) नाश करने वाली होती है।

भावार्थ–जिस प्रकार गरुड की मुद्रा विष को हरण करने वाली होती है उसी प्रकार जिनेन्द्रदेव की मुद्रा पाप नाशक होती है।।२७।।

सुमनः संगमादंगतीहसूत्रं पवित्रताम्।
पिष्टः प्रकृष्टमाधुर्वं प्रकृष्टेक्षुरसाद्यथा।।२८।।

चंपापावादिनिर्वाणक्षेत्रादीनि पवित्रताम्।
वंद्यतां च व्रजत्येव वंधसंगमतस्तथा।।२९।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे (इह) इस लोक में (सुमनः) फूल के (संगमात्) संगम से (सूत्रं) सूत्र धागा (पवित्रतां) पवित्रता को (अंगति) प्राप्त होता है (प्रकृष्टेक्षुरसात्) प्रकृष्ट इक्षु रस के संयोग से (पिष्टः) पिष्ट (आटा) आटा (प्रकृष्टमाधुर्यं) प्रकृष्ट मधुरता को प्राप्त होता है (तथा) उसीप्रकार (चंपापावादिनिर्वाणक्षेत्रादीनि) चंपापुर, पावापुर, आदि निर्वाण क्षेत्र (वंद्यसंगमतः) पूज्य पुरुषों के संगम से (पवित्रतां) पवित्रता (च) और (वंद्यतां) वंदनीयता को (व्रजत्येव) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–जैसे पुष्प के संबंध से सूत्र पवित्रता को प्राप्त होता है, इक्षुरस के संयोग से गेहूँ आदि का चूर्ण मधुरता को प्राप्त होता है उसीप्रकार पूज्य पुरुषों के संयोग से चंपापुर, पावापुर, सम्मेदशिखर आदि निर्वाण क्षेत्र पवित्र और वंदनीयता को प्राप्त हुये हैं।।२८-२९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत्वेति जिनगेहादिं त्रिःपरीत्य कृतांजुलि।

प्रकुर्वस्तच्चतुर्दिक्षु सत्र्यावर्त्तां शिरोनतिम्।।३०।।

घोरसंसारगंभीरवारिराशौ निमज्जताम्।

दत्तहस्तावलंबस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत्।।३१।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(इति) ऐसा (मत्वा) मानकर (जिनगेहादिं) जिन मंदिर आदि को (त्रिःपरीत्य) तीन प्रदिक्षिणा देकर (कृतांजुलिः) की है अंजुलि जिसने ऐसा (तच्चतुर्दिक्षु) उस जिन मंदिर की चारों दिशाओं में (सत्र्यावर्तां) तीन आवर्त्त सहित (शिरोनतिं) शिरोनति को (प्रकुर्वन्) करता हुआ (घोरसंसारगंभीरवारिराशौ) घोर संसार रूपी गंभीर समुद्र में (निमज्जतां) डूबे हुए प्राणियों को (दत्तहस्तावलंवस्य) दिया है हस्तावलंबन जिसने ऐसे (जिनस्य) जिनेन्द्र भगवान की (अर्चार्थं) पूजा करने के लिए (अविशेत्) प्रवेश करे।

भावार्थ–ऐसा जान करके जिन मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर, हाथ जोड़कर, चारों दिशाओं में तीन आवर्त सहित नमस्कार करके घोर संसार रूपी समुद्र में डूबे हुये संसारी प्राणियों को हस्तावलंबन देने वाले जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिए जिन मंदिर में प्रवेश करे।।३०-३१।।

ईर्यापथ शुद्धि

जिनेशतारकाधीशपादसंपादितोत्सवः।

श्रीलीलामंदिरस्वीयलोचनेन्दीवरः पुनः।।३२।।

ईर्याऽऽगः शुद्धयै व्युत्सर्ग कृत्वाऽऽसीनोऽनुकंपया।

आलोच्य समतांवर्यां कुर्यादात्मेच्छयाऽन्यदा।।३३।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(जिनेशतारकाधीशपादसंपादितोत्सवः) जिनेन्द्र भगवान रूपी चंद्रमा के पाद (किरण और चरण) से संपादित है उत्सव जिसके (श्रीलीलामंदिरस्वीयलोचनेन्दीवरः) लक्ष्मी की लीला का मंदिर ही है निज लोचन रूपी कमल जिसके ऐसा संयमी (पुन) फिर (ईर्याग) ईर्यापथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पापों की (शुद्धयैः) शुद्धि के (व्युत्सर्ग) कायोत्सर्ग (कृत्वा) करके (आसीनः) बैठा हुआ (अनुकम्पया) अनुकम्पा से (आलोच्य) आलोचना करके (अन्यदा) अन्यदा (आत्मोच्छाया) अपनी इच्छा से (वर्यां) श्रेष्ठ (समतां) सामायिक को (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–जिनेन्द्र भगवान रूपी चंद्रमा के पाद (किरण चरण) से आनन्दित है लक्ष्मी के निवास भूत नेत्र रूपी कमल जिसके ऐसा संयमी प्रथम मन्दिर में प्रवेश करके ईर्यापथ शुद्धि के लिए "पडिकम्मामिभंते' इत्यादि प्रतिक्रमण पढ कर कायोत्सर्ग करे। तदनन्तर बैठकर जीवघात से भयभीत होता हुआ अनुकम्पा से (इच्छामि भन्ते) इत्यादि आलोचना पढ़ कर अपनी इच्छा से उत्तम समता को स्वीकार करे।।३२-३३।।

लक्षणं समतादीनां पुरोक्तं किन्तु वर्ण्यते।
व्युतसर्गावसरोच्छ्वाससंख्यानामादि साम्प्रतम्।।३४।।

अन्वयार्थ–(पुरा) पूर्व में (समतादीनां) समतादि का (लक्षणं) लक्षण (उक्तं) कहा है (किन्तु) परन्तु (साम्प्रतं) इस समय (व्युत्सर्गावसरोच्छ्वाससंख्यानामादि) उत्सर्ग काल के उच्छ्वासों की संख्याओं का (वर्ण्यते), वर्णन किया जाता है।

भावार्थ–यद्यपि प्रथम अधिकार के छत्तीस श्लोक के द्वारा सामायिक का लक्षण कहा है तथापि इस समय कायोत्सर्ग के काल के श्वासोच्छ्वास की संख्या का वर्णन करते हैं।।३४।।

कार्योत्सर्ग की विधि

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्या करोम्यहम्।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम्।।३५।।

कृत्वा करसरोजातमुकुलालकृतं निजम्।
भाललीलासरः कुर्यात् त्र्यावर्त्तां शिरसो नतिं।।३६।।

अन्वयार्थ–(अस्यां) इस (क्रियायां) क्रिया में (अस्याः) इस (भक्तेः) भक्ति का (व्युत्सर्गं) कायोत्सर्ग (अहं) मैं (करोमि) करता हूँ (इति) इस प्रकार (विज्ञाय) विज्ञापन करके (समुत्थाय) उठकर (गुरुस्तवनपूर्वकम्) गुरु स्तवन पूर्वक (निजं) अपने (करसरोजातमुकुलालंकृतं) हस्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमल की कुड्मलाकृति को (भाललीलासरः) ललाट पर (कृत्वा) करके (त्र्यावर्त्ता) तीन आवर्त्त और (शिरसः) मस्तक से (नतिं) नमस्कार को (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–मैं इस क्रिया में इस भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ जैसे पूर्वाह्निक देववंदना में "चैत्यभक्ति कायोत्सर्गकरोम्यहं" इस प्रकार विज्ञापन करे। तदनंतर उठकर "णमो अरिहंताणं" इत्यादि पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर अपने कर कमल की अंजुलि को मस्तक पर रखकर तीन आवर्त सहित नमस्कार करे।।३५-३६।।

आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रमः।
तदन्तेऽप्यंगव्युत्सर्गः कार्योतस्तदन्तरम्।।३७।।
कुर्यात्तथैव "थोस्सामी" त्याद्यार्याद्यंतयोरपि।
इत्यस्मिन् द्वादशावर्त्ताः शिरोनतिचतुष्टयम्।।३८।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(आद्यस्य) आदि (दंडकस्य) दंडक के (आदौ) आदि में (मंगलादेः) मंगलादि का (अयं) यह (क्रमः) क्रम है। (तदन्ते) चत्तारिमंगलं आदि दंडक के अन्त में (अपि) भी (अंगव्युत्सर्ग) कायोत्सर्ग (कार्यः) करना चाहिये। (अतः) इसके (तदनंतरं) बाद (तथैव) उसी प्रकार (थोस्सामी) थोस्सामी (इति) इस प्रकार (कुर्यात्) करे (इति) इस प्रकार (अस्मिन्) कायोत्सर्ग में (आर्याद्यन्तयोः) आर्या के आदि और अन्त में (अपि) भी (द्वादशावर्त्ताः) बारह आवर्त्त (शिरोनतिचतुष्टयं) चार शिरोनति (कुर्यात्) करना चाहिये।

भावार्थ–एक भक्ति के दंडक की आदि में मंगलादि का यही क्रम है। अर्थात् भक्ति पूर्वक क्रिया और भक्ति का विज्ञापन करे। एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके दंडक पढ़े। दंडक के बाद एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके कायोत्सर्ग करे। तदनन्तर एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करे। इस प्रकार एक कायोत्सर्ग में चार शिरोनति और बारह आवर्त्त करना चाहिये।।३७-३८।।

ग्रंथारंभे समाप्तौ च स्वाध्याये स्तवनादिषु।
सप्तविंशतिरुच्छ्वासा व्युत्सर्गे दुमनस्यपि।।३९।।

अन्वयार्थ–(स्वाध्याये) स्वाध्याय में (च) और (स्तवनादिषु) स्तवन आदि में (दुर्मनसि) विकृति परिणाम के होने पर (व्युत्सर्गे) कायोत्सर्ग में (सप्तविंशतिः) सत्तावीस (उच्छ्वासः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्छ्वास है।

भावार्थ–ग्रन्थ के आरंभ, समाप्ति, स्वाध्याय, पंचपरमेष्ठी की वन्दना और दुर्भावना के कायोत्सर्ग में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये।।३९।।

कार्योत्सर्ग का नियम

व्रतेत्वन्यनमस्याऽतिचारशुद्धेर्दिनस्य च।
स्यान्प्रतिक्रमणेऽष्टाग्रशतं रात्र्यास्तु तद्दलम्।।४०।।

अन्वयार्थ–(व्रतेषु) व्रतों में (अन्यतमस्य) किसी भी (अतिचारशुद्धेः) अतिचार की शुद्धि के लिए (च) और (दिनस्य) देवसिक (प्रतिक्रमणे) प्रतिक्रमण में (अष्टाग्रशतं) एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास (तु) और (रात्र्याः) रात्रि के प्रतिक्रमण में (तद्दलं) उससे आधा अर्थात् चौवन श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग (स्यात्) होता है।

भावार्थ–व्रतों में अतिचार होने पर दैवसिक प्रतिक्रमण में १०८ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा रात्रिक प्रतिक्रमण में ५४ श्वासोच्छ्वासों में कायोत्सर्ग करना चाहिये।।४०।।

पाक्षिके त्रिशतं चातुर्मासिके स्याच्चतु शतम्।
शतानिपंच संवत्सरस्य षट्सु क्रियान्तगे।।४१।।
पंचविंशतिरुच्छ्वासा गोचरेर्यातिचारयो।
जिनसाधुनिषद्यानां विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि।।४२।।

अन्वयार्थ–(पाक्षिके) पाक्षिक प्रतिक्रमण में (त्रिशत) तीन सौ (चातुर्मासिके) चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में (चतुःशतं) चार सौ (संवत्सरस्य) वार्षिक प्रतिक्रमण में (पंच) पांच (शतानि) सौ (षट्षु) छह प्रकार के प्रतिक्रमणों में (क्रियांतगे) प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त में (जिनसाधुनिषद्यानां) जिनेन्द्र भगवान की साधुओं की निषद्या के (गोचरेर्यातिचारयोः) गमनागमन के अतिचार के प्रतिक्रमण में (विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि) मल मूत्र के विसर्जन के पाप में (पंचविंशति) पच्चीस (उच्छ्वासा) श्वासोच्छ्वास होते हैं।

भावार्थ–पाक्षिक प्रतिक्रमण में तीन सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में चार सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। वार्षिक प्रतिक्रमण में पांच सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। छह प्रकार प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त में पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। आहार करने के बाद पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। जिन साधुओं की निषद्या, तीर्थयात्रादि के गमनागमन और मलमूत्र के विसर्जन में भी पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये।।४१-४२।।

देवतास्तवनेभक्ति चैत्यपंचगुरुभयोः।

चतुर्दश्यां तयोर्मध्ये श्रुतभक्तिर्विधीयते।।४३।।

अन्वयार्थ–(देवतास्तवनं) देवताओं के स्तवन में (चैत्यपंचगुरुभयोः) चैत्य और पंच गुरु की (भक्ति) भक्ति (चुतुर्दश्यां) चतुर्दशी के दिन (तयोः) चैत्य पंचगुरु भक्ति के (मध्ये) मध्य में (श्रुतभक्तिः) श्रुतभक्ति (विधीयते) की जाती है।

भावार्थ–त्रिकाल देव वंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति पढ़नी चाहिये। चतुर्दशी के दिन चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये।।४३।।

भक्तियों का क्रम कौन सी भक्ति कहाँ करें

स्यात्सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्ति चतुष्टयम्।

अष्टम्यां श्रुतभक्तयोनमेतत्तीर्थेश जन्मनि।।४४।।

पाक्षिके जिनचैत्ये च यद्यष्टम्यादिकर्मणाम्।

संयोगो देवतापूजादर्शनस्तवनै सह।।४५।।

प्राक् शान्तिभक्तितस्तेषु चैत्यपंचगुरुभयोः।

भक्ति स्तः सिद्धभक्तिः स्यात्सिद्धप्रतिकृतिस्तुतौ।।४६।।त्रिकं।।

अन्वयार्थ–(अष्टम्यां) अष्टमी के दिन में (सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्तिचतुष्टयम्) सिद्ध, श्रुत, चारित्र, शान्ति भक्ति चतुष्टय (तीर्थेशजन्मनि) तीर्थकरके गर्भ जन्म कल्याण में (श्रुतभक्तोयानं) श्रुतभक्ति को छोड़ कर (एतत्) ये तीन भक्ति (स्यात्) होती हैं (च) और (यदि) यदि (पाक्षिके) पाक्षिक क्रिया में (जिनचैत्ये) अपूर्व जिन प्रतिमा के स्थापन में (अष्टम्यादिकर्मणां) अष्टमी आदि क्रियाओं का (संयोगः) संयोग हो तो (तेषु) उस क्रिया कर्म में (देवतापूजादर्शनस्तवनैः) देवता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजन दर्शन स्तवन के (सह) साथ (शान्तिभक्तितः) शान्ति भक्ति के (प्राक्) प्रथम (चैत्यपंचगुरुभयोः) चैत्य पंच गुरु इन दोनों की (भक्ति) भक्ति (स्तः) होती है (सिद्धप्रतिकृतिस्तुतौ) सिद्ध प्रतिमा की स्तुति में (सिद्धभक्तिः) सिद्ध भक्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ–अष्टमी की क्रिया में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चास्त्रिभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। तीर्थंकरों के गर्भ जन्म कल्याण में सिद्ध चारित्र भक्ति करना चाहिये। यदि अष्टमी क्रिया में पाक्षिक क्रिया अथवा अपूर्व निजचैत्य स्थापन का संयोग आ जाय तो चैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़ना चाहिये।।४४-४६।।

चतुर्दशीदिने कर्तुं क्रियां न लभते यदि।
धर्मकार्यादिनाऽष्टम्याः क्रिया कार्या तु पाक्षिके।।४७।।

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (धर्मकार्यादिना) धर्म क्रिया आदि के कारण (चतुर्दशी) चतुर्दशी के दिन में (क्रियां) क्रिया को (कर्तुं) करने के लिए (न लभते) समय नहीं मिले तो (पाक्षिके) पाक्षिक प्रतिक्रमण में (अष्टम्याः) अष्टमी की (क्रिया) क्रिया (कार्या) करनी चाहिये।

भावार्थ–यदि कोई धार्मिक कार्य के कारण चतुर्दशी के दिन क्रिया नहीं कर सके तो पाक्षिक प्रतिक्रमण में अष्टमी की क्रिया करनी चाहिये।।४७।।

नंदीश्वरक्रियायां स्तः सिद्धनन्दीश्वरोभयोः।
भक्तिपंचगुरुणां च शान्तिभक्तिस्तदन्तगा।।४८।।

अन्वयार्थ–(नंदीश्वरक्रियायां) नंदीश्वर क्रिया में (सिद्धनन्दीश्वरोभयोः) सिद्ध नन्दीश्वर (भक्ति) भक्ति (स्तः) होती हैं (तदन्तगा) उन दोनों के अन्त में (पंचगुरुणां) पंचगुरु की (च) और (शान्तिभक्तिः) शान्ति भक्ति होती है।

भावार्थ–नन्दीश्वर क्रिया में सिद्ध भक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिये।।४८।।

स्यात्सिद्धचैत्ययोः पंचगुरुणां स्नपनस्तवे।
भक्ती सशान्तिभक्तिस्तु हीनमध्याद्विभक्त्यदः।।४९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिरेतरप्रतिष्ठायां चतुर्थस्नपने पुनः।

चलचैत्यप्रतिष्ठायाः पूर्वोक्तस्नपनक्रिया।।५०।।

अन्वयार्थ–(स्नपनस्तवे) अभिषेक की वंदना में (सशांतिभक्तिः) शान्तिभक्ति सहित (सिद्धचैत्ययोः) सिद्ध भक्ति चैत्यभक्ति (पंचगुरुणां) पंच गुरु की (भक्ती) भक्ति (स्यात्) होती है (तु) और (स्थितेतर प्रतिष्ठायां) स्थिर और चल प्रतिमा की प्रतिष्ठा में (हीनमध्याद्विभक्त्यदः) बीच की दो भक्ति छोड़कर सिद्ध और शान्ति भक्ति तथा (चलचैत्यप्रतिष्ठायां) चल चैत्य की प्रतिष्ठा में (पूर्वोक्तस्नपनक्रिया) पूर्वोक्त स्नपन क्रिया करना चाहिये।

भावार्थ–जिनाभिषेक की वंदना में सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांति भक्ति करना चाहिये स्थिर चल जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा में और चतुर्थ अभिषेक में सिद्धभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिये। चलचैत्य की प्रतिष्ठा में सिद्ध भक्ति, चैत्य भक्ति, पंचगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करना चाहिये।।४९-५०।।

स्थिरप्रतिष्ठास्नानेऽस्मिन्नेषैवाऽऽलोचनाऽन्विता।

चारित्रभक्तिः स्यात्किन्तु सिद्धभक्तेरनन्तरम्।।५१।।

अन्वयार्थ–(किन्तु) किन्तु (अस्मिन्) इस (स्थिरप्रतिष्ठास्नाने) स्थिर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के स्नपन में (एषा) यह (एव) ही (आलोचनान्विता) आलोचना से युक्त (सिद्धभक्ते) सिद्धभक्ति के (अनन्तरं) अनन्तर (चारित्रभक्तिः) चारित्रभक्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ–स्थिर प्रतिमा की प्रतिष्ठा में अभिषेक समय सिद्ध भक्ति के बाद आलोचना युक्त चारित्र भक्ति होती है।।५१।।

सिद्धभक्तिर्मुनौ जेष्ठे सिद्धान्तविदि सा युता।

श्रुतभक्त्याऽऽचार्यभक्त्या तु गणिन्येतत्रयं पुनः।।५२।।

सूरौ सैद्धान्तिकेऽल्पेऽपिप्रतिमायोगसंस्थिते।

सिद्धभक्ति र्भवेद्योगशान्तिभक्ति च संयते।।५३।।

अत्र चारित्रभक्तिश्चेत्सिद्धभक्तेरन्तरम्।

योगभक्त्या परीतिश्च परिनिष्क्रमणक्रिया।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(जेष्ठे) ज्येष्ठ (मुनौ) मुनि की वंदना में (सिद्धभक्ति) सिद्ध भक्ति (सिद्धान्तविदी) सिद्धान्त वेत्ता की वंदना में (श्रुतभक्त्या) श्रुत भक्ति से (युता) सहित (सा) सिद्ध भक्ति (गणिनि) आचार्य की वन्दना में (आचार्यभक्त्या) आचार्य भक्ति से रहित (श्रुतभक्ति) सिद्ध भक्ति (तु) और (पुनः) फिर (सैद्धान्तिके) सिद्धान्त को जानने वाले (सूरौ) आचार्य की वंदना में (एतत्) यह (त्रयं) सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, और आचार्य भक्ति (अल्पे) अपि ज्ञान से हीन (प्रतिमा योग संस्थिते) प्रतिमा योग (स्थित संयते) मुनि की वंदना में (योगशान्तिभक्ति) योगी भक्ति और शान्ति भक्ति (भवेत्) होती है।

भावार्थ–अपने से ज्येष्ठ मुनि की वंदना करते समय सिद्ध भक्ति पढ़ना चाहिये। सिद्धान्त पारगामी साधु की वंदना सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति आचार्य भक्ति पूर्वक पढ़कर करना चाहिये। गणि की वंदना सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक करना चाहिये। सिद्धान्त पारगामी आचार्य की वन्दना करते समय सिद्ध, श्रुत, आचार्य, भक्ति पढ़ना चाहिये। अल्प सिद्धान्त के ज्ञाता मुनि प्रतिमा योग में स्थित हों तो उनकी वन्दना सिद्ध भक्ति, योग भक्ति और शान्ति भक्ति पढ़कर करनी चाहिये।।५२-५४।।

अत्र चरित्र भक्तिश्चेत्सिद्ध भक्तेरनन्तरम्।
योगभक्त्या परीतिश्च परिनिष्क्रमणक्रिया।।५४।।

अन्वयार्थ–(अत्र) यहां पर (परिनिष्क्रमणक्रिया) परिनिष्क्रमण क्रिया (योगभक्त्या) योग भक्ति से (परीतिः) परिक्रमा लगाकार (सिद्धभक्तेः) सिद्धभक्ति के (अनन्तरम्) अन्तर (चारित्रभक्तिः) चारित्रभक्ति से करनी चाहिये।

भावार्थ–दीक्षाकल्याण की क्रिया में योगभक्ति से परिक्रमा करके सिद्धभक्ति और चारित्रभक्ति पढ़नी चाहिये।।५४।।

ज्ञानोत्पत्तौ क्रियैषैव सिद्धभक्तेरनंतरं।
श्रुतभक्तिश्च स्यात् किन्तु जिननिर्वाण भूष्वपि।।५५।।
परिनिर्वाणभक्तिस्तु योगभक्ते रनन्तरं।
परिनिर्वाण भक्त्या तु त्रिः परीत्य क्रिया भवेत्।।५६।।युग्मं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ज्ञानोत्पत्तौ) ज्ञान की उत्पत्ति की क्रिया में (एषा) यह (क्रिया) क्रिया है (किन्तु) परन्तु (सिद्धभक्तेः) सिद्ध भक्ति के अनन्तर (श्रुतभक्तिः) श्रुतभक्ति (स्यात्) होती है (च) और (जिननिर्वाणभूमिषु) जिन निर्वाण भूमियों में (निर्वाणभक्त्या) निर्वाण भक्ति से (त्रिपरीत्य) तीन प्रदक्षिणा देकर (योगभक्तेः) योग भक्ति के (अनन्तरं) अनन्तरं (परिनिर्वाणभक्तिः) परिनिर्वाण भक्ति (क्रिया) क्रिया (भवेत्) होती है।

भावार्थ–केवलज्ञान की उत्पत्ति क्रिया में सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र भक्ति, योगीभक्ति और शान्ति भक्ति होती है। जिन परिनिर्वाण स्थान में सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगी भक्ति, निर्वाणभक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिये।।५५-५६।।

सिद्धनिर्वाणयोः पंचगुरुणां भक्ति रप्यतः।

स्याच्छान्तिभक्तिः श्रीवर्धमाननिर्वाणवासरे।।५७।।

अन्वयार्थ–(श्रीवर्धमाननिर्वाणवासरे) श्री वर्धमान भगवान के निर्वाण दिन में (सिद्धनिर्वाणयोः) सिद्ध निर्वाण की (अपि) और (पंचगुरुणां) पंचगुरुओं की (भक्तिः) भक्ति (शांतिभक्ति) शांति भक्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ–वर्धमान स्वामी के निर्वाण दिन में सिद्ध भक्ति, निर्वाणभक्ति, पंचमहागुरु भक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये।।५७।।

समाधिविधिना सम्यक् सामान्ये संयतेमृते।

सिद्धभक्तिर्भवद्योगशान्तिभक्तिद्वयं ततः।।५८।।

अन्वयार्थ–(समाधिविधिना) समाधि विधि से (सम्यक्) भलीप्रकार (सामान्ये) सामान्य (संयते) संयत के (मृते) मर जाने पर (सिद्धभक्तिः) सिद्ध भक्ति (ततः) उसके बाद (योगशांतिभक्तिद्वयं) योगभक्ति शांतिभक्ति यह दोनों (भवेत्) होती है।

भावार्थ–समाधि से विधिपूर्वक सामान्य मुनि के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति योगी भक्ति और शांतिभक्ति पढ़ना चाहिये।।५८।।

यद्यत्रश्रुतभक्तिः स्यात्सिद्धभक्तेरनंतरम्।

कृतिकर्मेति निर्दिष्टं साधौसिद्धान्तवेदिनि।।५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यदि) यदि (सिद्धान्तवेदिनि) सिद्धान्तवेदी (साधौ) साधु के स्वर्गवास होने पर (अत्र) इसमें (सिद्धभक्तेः) सिद्ध भक्ति के (अनंतरम्) अनंतर (श्रुतभक्तिः) श्रुतभक्ति (स्यात्) होती है (इति) इसप्रकार (कृतिकर्म) कृतिकर्म (निर्दिष्टं) कहा है।

भावार्थ–सिद्धान्तवेदी साधु के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगभक्ति और शान्तिभक्ति पूर्वक कृतिकर्म कहा है।।५९।।

सामान्यमुनिकर्मैव व्रतिन्युत्तरयोगिनि।

स्यात्तु चरित्रभक्तिश्च सिद्धभक्तेरनन्तरम्।।६०।।

अन्वयार्थ–(उत्तरयोगिनि) उत्तरगुण पालन करने वाले (व्रतिनि) संयत की समाधि होने पर (सामान्यमुनिकर्मैव) सामान्य मुनि की क्रिया के समान है। (तु) परन्तु (सिद्धभक्तेः) सिद्धभक्ति के (अनंतरम्) अनन्तर (चारित्रभक्तिः) चारित्रभक्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ–उत्तर गुणों को पालन करने वाले संयत के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़ना चाहिये।।६०।।

स्यत्सिद्धश्रुतचारित्रयोगभक्तिचतुष्टयम्।

शान्तिभक्तिश्च सिद्धान्तवेदिन्युत्तरयोगिनि।।६१।।

अन्वयार्थ–(उत्तरयोगिनि) उत्तर गुणों का पालन करने वाले (सिद्धान्तवेदिनि) सिद्धान्तवेदी के स्वर्गवास होने पर (सिद्धश्रुतचारित्रयोगभक्तिचतुष्टयम्) सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगभक्ति चतुष्टय (च) और (शांतिभक्तिः) शांतिभक्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ–उत्तर गुणों के पालक सिद्धान्तवेदी साधु का स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति योगभक्ति और चारित्रभक्ति पढ़ना चाहिये।।६१।।

आचार्येषु चतुर्थेषु योगभक्तेरनन्तरम्।

सूरिभक्तिर्भवेदष्टौ निषद्यादेहयोरिमाः।।६२।।

अन्वयार्थ–(चतुर्थेषु) चारों (आचार्येषु) आचार्यों के स्वर्गवास होने पर (योगभक्तेः) योगभक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (सूरभक्तिः) आचार्यभक्ति (भवेत्) होती है। (निषद्यादेहयोः) निषद्याभूमि और मुनि के मृतक शरीर की (इमाः) ये (अष्टौ) आठ क्रियायें हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–सामान्य आचार्य के स्वर्गवास हो जाने पर सिद्धभक्ति, योगभक्ति, आचार्यभक्ति, शान्तिभक्ति तथा सिद्धान्तवेदी आचार्य के स्वर्गवास होने पर, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगभक्ति, आचार्य भक्ति और शान्तिभक्ति पढ़ना चाहिये। उत्तर गुणों के पालक आचार्य के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, योगभक्ति, चारित्रभक्ति, आचार्यभक्ति और शांति भक्ति पढ़ना चाहिये सिद्धान्तवेदी और उत्तर गुणों के पालक आचार्य के स्वर्गवास में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र, योगभक्ति, आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति पढ़ना चाहिये। सामान्य मुनि, सिद्धान्तवेदी उत्तर गुण पालक उत्तर गुण सहित सिद्धान्तवेदी साधु की और आचार्य की निषद्या भूमि की और उनकी मृतक शरीर की कृतिकर्म में यही भक्ति बोलना चाहिये। अर्थात् सामान्य मुनि की निषद्याभूमि और शरीर की वंदना में सामान्य मुनि की क्रिया करनी चाहिये।।६२।।

सिद्धश्रुतयोर्भक्ती श्रुतपंचम्यां तु वाचना।

स्वाध्यायः शान्तिभक्त्यन्तमस्य निष्ठापनं ततः।।६३।।

अन्वयार्थ–(श्रुतपंचम्यां) श्रुतपंचमी के दिन (सिद्धश्रुतयोर्भक्ती) सिद्ध और श्रुत भक्ति बोलकर श्रुतस्कन्ध की स्थापना करनी चाहिये। (तु) और (वाचना) वाचना (स्वाध्यायः) स्वाध्याय सिद्ध, श्रुतभक्ति पढ़कर प्रारम्भ करना चाहिये। (अस्य) इस स्वाध्याय के (निष्ठापनं) निष्ठापन में (शान्तिभक्त्यन्तम्) अन्त में शान्तिभक्ति पढ़ना चाहिये।

भावार्थ–श्रुतपंचमी की स्वाध्याय में सिद्धभक्ति बोलकर श्रुत की स्थापना करके वाचना स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिये और शान्तिभक्ति बोलकर स्वाध्याय निष्ठापन करना चाहिये।।६३।।

एतत्संन्यासप्रारंभे शांतिभक्तिर्न हीह तु।

श्रुतपंचमीक्रिया स्यादस्य निष्ठापने पुनः।।६४।।

अन्वयार्थ–(इह) इस (संन्यासप्रारंभे) संन्यास के प्रारम्भ में (एतत्) श्रुतवाचना के समान है (तु) परन्तु (शान्तिभक्तिः) शान्तिभक्ति (न) नहीं है (पुनः) और (अस्य) संन्यास के (निष्ठापने) निष्ठापन में (श्रुतपंचमीक्रिया) श्रुत पंचमी की क्रिया (स्यात्) होती है।

भावार्थ–संन्यास के प्रारंभ में सिद्धभक्ति और श्रुतभक्ति करना चाहिये और निष्ठापन में सिद्धभक्ति, श्रुत भक्ति, शान्तिभक्ति करना चाहिये।।६४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्यो भक्तयः स्वाध्यायेषु संन्यासगे मुनौ।
योगभक्तिर्विधातव्या योगग्रहणमोक्षयोः।।६५।।

अन्वयार्थ–(स्वाध्यायेषु) स्वाध्याय में (मुनौ) मुनि के (संन्यासगे) संन्यास के प्राप्त होने पर (महत्यं) बड़ी (भक्तयः) भक्ति तथा (योगग्रहणमोक्षयोः) योग के ग्रहण और छोड़ने में (योगभक्तिः) योग भक्ति (विधातव्या) करना चाहिये।

भावार्थ–स्वाध्याय में, साधु संन्यास में बड़ी भक्ति करना चाहिये तथा योग के ग्रहण और मोचन में योगभक्ति करना चाहिये।।६५।।

सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्तयः।
चतुर्विंशतितीर्थेशभक्तिश्च नियमे यते।।६६।।

अन्यवार्थ–(यतेः) यति के (नियमे) नियम में (सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्तयः) सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठितकरण भक्ति (च) और (चतुर्विंशतितीर्थेशभक्तिः) चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करनी चाहिये।

भावार्थ–मुनि के नियम में सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरणभक्ति और चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति करना चाहिये।।६६।।

पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिककर्मसु।
प्रतिक्रमणसंज्ञेषु नियमोक्तक्रियैव तु।।६७।।

पश्चाच्चारित्रभक्तिः स्यात्सिद्धभक्तेः क्रियान्तगाः।
चारित्रबृहदालोचनाध्वाचार्यत्रिभक्तयः।।६८।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(प्रतिक्रमणसंज्ञेषु) प्रतिक्रमण संज्ञक (पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिककर्मसु) पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक क्रिया में (नियमोक्तक्रियैव) नियमों में कही हुई क्रिया करनी चाहिये। (तु) परन्तु (सिद्धभक्तेः) सिद्ध भक्ति के (पश्चात्) पश्चात् (चारित्रभक्तिः) चारित्र भक्ति (क्रियांतगाः) क्रिया के अन्त में (चारित्रबृहदालोचनाध्वाचार्यत्रिभक्तयः) चारित्र, बृहदालोचना, लघु आचार्य भक्ति यह तीन भक्ति करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति निष्ठितकरणवीरभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति, बृहदआलोचना, लघु आचार्य भक्ति करनी चाहिये।।६७-६८।।

चारित्रबृहदालोचगुरुभक्तिद्वयं विना।

शेषाः शेषेषु कर्तव्याः स्युः प्रतिक्रमणेषु ताः।।६९।।

अन्वयार्थ–(शेषेषु) शेष (प्रतिक्रमणेषु) प्रतिक्रमण में (चारित्रबृहदालोचगुरुक्तद्वयं) चारित्र, बृहदालोचना, गुरु भक्ति इन दो भक्ति के (बिना) (शेषाः) शेष (ताः) वे भक्तियाँ (कर्तव्याः) करनी (स्युः) होती है।

भावार्थ–शेष व्रतारोपण आदि प्रतिक्रमण के समय चारित्रालोचना, बृहदालोचना, और गुरुभक्ति को छोड़ कर शेष भक्ति करना चाहिये अर्थात् दैवसिक रात्रिक आदि प्रतिक्रमण में सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरण वीरभक्ति और चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति करना चाहिये।।६९।।

प्राक्सिद्धयोगभक्ती स्तो दीक्षाग्रहणलुंचने।

तल्लुंचनावसाने तु सिद्धभक्तिर्विधीयते।।७०।।

अन्वयार्थ–(दीक्षाग्रहणलुंचने) दीक्षा ग्रहण के समय और केशलोंच के समय (प्राक्) प्रथम (सिद्धयोग-भक्ती) सिद्धभक्ति, योगभक्ति (स्तः) होती हैं (तु) और (तल्लुंचनावसने) दीक्षा और केशलोंच की समाप्ति में (सिद्धभक्तिः) सिद्धभक्ति (विधीयते) की जाती है।

भावार्थ–दीक्षा के ग्रहण करने के समय और केशलोंच के समय सिद्धभक्ति, योगभक्ति करना चाहिये तथा केशलोंच और दीक्षा के समाप्ति में सिद्धभक्ति करना चाहिये।।७०।।

स्तः सिद्धयोगभक्ती द्वे प्रत्याख्यानेतदन्तगा।

सूरिभक्तिर्भवेत्सिद्धभक्तिर्निष्ठापनेऽस्य तु।।७१।।

अन्वयार्थ–(प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान के प्रतिष्ठापन में (सिद्धयोगभक्ती) सिद्ध योगभक्ति (द्वे) बह दो (स्तः) होती हैं और (तदन्तगा) उसके अन्त में (सूरिभक्तिः) आचार्यभक्ति (भवेत्) होती है (तु) और (अस्य) इस प्रत्याख्यान के (निष्ठापने) निष्ठापन में (सिद्धभक्तिः) सिद्धभक्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन क्रिया में सिद्धभक्ति, योगभक्ति, और आचार्य भक्ति करना चाहिये और इसके निष्ठापन में सिद्धभक्ति करना चाहिये।।७१।।

ताः स्युमंगलगोचरप्रत्याख्याने तु भक्तयः।

महत्यः शान्तिभक्तिश्च सूरिभक्तेरनन्तरम्।।७२।।

अन्वयार्थ–(मंगलगोचरप्रत्याख्याने) मंगलगोचर प्रत्याख्यान में (ताः) ऊपरकथित बड़ी (भक्तयः) भक्तियां (च) और (सूरिभक्तेः) आचार्य भक्ति के (अनन्तरम्) (शांतिभक्तिः) शांति भक्ति (स्युः) होती है।

भावार्थ–मंगलगोचर प्रत्याख्यान में बड़ी सिद्धभक्ति, योगभक्ति, आचार्य भक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिये।।७२।।

श्रुतसूरिभक्तिपूर्वं स्वाध्यायं प्रविधाय तु।

निष्ठापयेदमुं काले श्रुतभक्त्या यथोदिते।।७३।।

अन्वयार्थ–(श्रुतसूरिभक्तिपूर्वं) श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति पूर्वक (स्वाध्यायं) स्वाध्याय (प्रविधाय) करके (तु) और (यथोदिते) ऊपर कथित (काले) काल में (अमुं) इस स्वाध्याय को (श्रुतभक्त्या) श्रुतभक्ति सहित (निष्ठापयेत्) निष्ठापन करे।

भावार्थ–श्रुत और आचार्य भक्ति पूर्वक स्वाध्याय का आरम्भ करे और स्वाध्याय काल समाप्त हो जाने पर श्रुतभक्ति पढ़कर स्वाध्याय की समाप्ति करना चाहिये।।७३।।

भवेन्मंगलगोचारमध्याह्ने स्नपनस्तवः।

सवर्षाकालयोगस्याऽऽदाननिष्ठापनेऽपि तु।।७४।।

योगभक्तिर्भवेदत्र सिद्धभवतेरनन्तरम्।

सिद्धान्तवाचनाया श्रुतपंचम्याः क्रियोदिताः।।७५।।युग्मं।।

अन्वयार्थ–(मंगलगोचरमध्याह्ने) मंगलगोचर मध्याह्नक्रिया (स्नपनस्तवः) अभिषेक क्रिया में की जाने वाली सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति (भवेत्) होती है। (वर्षाकालयोगस्य) वर्षा काल योग के (आदाननिष्ठापने) आदान और निष्ठापन में (सिद्धभक्तेः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धभक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (योगभक्ति) योगभक्ति (भवेत्) होती है (तु) और (सिद्धान्तवाचनायाः) सिद्धान्त वाचना में (श्रुतपंचम्याः) श्रुत पंचमी के अनुसार (क्रियोदिताः) क्रिया कही गई है।

भावार्थ–मंगलगोचर मध्याह्नकाल में सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति पढ़ना चाहिये वर्षायोग के ग्रहण और निष्ठापन में सिद्धभक्ति, योगभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति पढ़ना चाहिये। सिद्धान्तशास्त्र के स्वाध्याय में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति करना चाहिये।।७४-७५।।

सिद्धान्तार्थाधिकाराणामादावन्ते च भक्तयः।
तिस्रः सिद्धश्रुताऽचार्यसंश्रिताः परिकीर्त्तिताः।।७६।।
कुर्याद् व्युतसर्गमेकैकं समाप्तौ भक्तिपूर्वकम्।
सिद्धान्तार्थाधिकाराणां विद्याविद्याफलाप्तये।।७७।।

अन्वयार्थ–(सिद्धान्तार्थाधिकाराणां) सिद्धान्त शास्त्र के अर्थाधिकार के (आदौ) आदि में (च) और (अन्ते) अन्त में (सिद्धश्रुताऽऽचार्यसंश्रिताः) सिद्ध, श्रुत, आचार्य से सम्बन्धित (तिस्रः) तीन (भक्तयः) भक्तियाँ (परिकीर्तिता) कही हैं। (सिद्धान्तार्थाधिकारणां) सिद्धान्त के अर्थाधिकार की (समाप्तौ) समाप्ति में (विद्याविद्याफलाप्तये) विद्या और विद्या के फल के प्राप्ति के लिए (भक्तिपूर्वकं) भक्ति पूर्वक (एकैकं) एक एक (व्युत्सर्ग) कायोत्सर्ग (कुर्यात्) करना चाहिये।

भावार्थ–सिद्धान्त शास्त्र के अर्थाधिकार के प्रारम्भ और समाप्ति में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करना चाहिये तथा इसकी समाप्ति में विद्या और विद्या के फल की प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक एक-एक कायोत्सर्ग करना चाहिये।।७६-७७।।

ज्ञानविज्ञानसंपन्नः स्थविरः प्रश्रयाश्रयः।
गुरुणां सन्निधौ सिद्धसूरिभक्ती विधाय तु।।७८।।
गुर्वाज्ञया समादाय गणेशपदवीं ततः।
शान्तिभक्तिं यतिः कुर्याद्गुर्वादीनामपि स्तवम्।।७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ज्ञानविज्ञानसंपन्नः) ज्ञान विज्ञान में सम्पन्न (स्थविरः) वयोवृद्ध (प्रश्रयाश्रयः) कषाय विजयी (यतिः) साधु (गुरुणां) गुरुओं के (सन्निधौ) सानिध्य में (सिद्धसूरिभक्ती) सिद्ध और आचार्यभक्ति (विधाय) करके (गुर्वाज्ञया) और गुरु के आज्ञा से (गणेशपदवीं) आचार्य पदवी को (समादाय) स्वीकार कर (ततः) उसके बाद (शांतिभक्तिं) शान्तिभक्ति को (गुर्वादीनां) गुरु आदि का (स्तवं) (अपि) भी (कुर्यात्) करे।

भावार्थ–ज्ञान विज्ञान से संपन्न विनयी स्थविर, साधु, गुरु के सान्निध्य में सिद्धभक्ति, आचार्य भक्ति पढ़ करके गुरु के आज्ञा से आचार्य पदवी को स्वीकार कर शान्तिभक्ति पढ़े तथा गुरुओं की वंदना स्तवन करे।।७८-७९।।

कायोत्सर्ग के ३२ दोष

ऋज्वंगस्थाने व्युत्सर्गे लीलाऽऽलंबितदोर्युगे।
समांगुलीचतुष्कान्तरस्थपादेऽप्यकंपिते।।८०।।
कुड्याश्रितं लतावक्रं स्तंभावष्टंभकुंचिते।
स्तनेक्षाकाकदृक्शीर्षकंपित युगकंधरम्।।८१।।
भ्रूक्षेपोत्तरितोन्मत्तपिशाचाष्टदिशेक्षणम्।
ग्रीवाऽवनमनं मूकसंज्ञा चांगुलिचालनम्।।८२।।
निष्ठीवनं खलिनितं शबरीगुह्यगूहनम्।
कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमनं शृंखलिताह्वयम्।।८३।।
मलिकोद्वहनं स्वांगस्पर्शनं घोटकांघ्रि च।
स्थानं द्वात्रिंशदित्येते त्याज्या दोषास्तथापरे।।८५।।पंचक्रं।।

अन्वयार्थ–(ऋज्वंगस्थाने) सरल है अंगस्थान जिसके (लीलाऽऽलंबितदोर्युगे) लीला से अवलंबित हैं बाहुयुग जिसमें (समांगुलीचतुष्कान्तरपाते) समान अंगुली चतुष्प्रमाण अन्तर में स्थित है पाद जिसके ऐसे (अकंपिते) अकंपित (व्युत्सर्गे) कायोत्सर्ग में (१) कुडयाश्रितं) कुडयाश्रित (२) लतावक्रं) लतावक्र (३) (स्तंभावष्टं भकुचिते) स्तंभावष्टंभ (४) अकुंचित (५-६) (स्तनेक्षाकाकदृक्) स्तनईक्षा, काकदृक् (७) (शीर्षकंपितं) शिर का कंपन (८) (युगकंधरम्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युगकंधर (९-१०) भूक्षेपोत्तरितोन्मत्तपिशाचाष्टदिशेक्षणम्) भूक्षेप, उत्तरित उन्मत्तपिशाच के समान अष्ट दिशाओं का देखना (११) (ग्रीवाऽवनमनं) ग्रीवा का झुकाना (१२) (मूकसंज्ञा) मूकसंज्ञा (१३) (अंगुलिचालनम्) अंगुलि का चलाना (१४) (निष्ठीवनं) थूकना (१५) खलिनितं) खलिनितं (१६) (शवरीगुह्यगूहनम्) शवरीगुह्यगूहन (१७) (कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमनं) कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमन (१८) (शृंखलिताहयम्) शृंखलित नामक (२०) (मालिकोद्वहनम्) मालिक आरोहण (२१) (स्वांग स्पर्शनम्) अपने अंग का स्पर्श (२२) (घोटकांघ्रि) घोटक पाद (स्थानं) स्थान (इति) इसप्रकार (एते) यह (द्वात्रिंशत्) बत्तींस दोष (त्याज्या) छोड़ना चाहिये।

भावार्थ–(१) कुडयाश्रित–दोष-भित्ति का सहारा लेकर कायोत्सर्ग करना कुड्य दोष है।

(२) लतावक्रं दोष–कायोत्सर्ग के समय लता के समान शरीर को कंपायमान करना लता दोष है।

(३) स्तंभावष्टंभ–स्तंभ का सहारा लेकर अथवा स्तंभ के समान उदण्डता पूर्वक खड़े होकर कायोत्सर्ग करना स्तंभदोष है।

(४) अंकुचित दोष–शरीर को संकुचित करके खड़ा होना अकुंचित दोष है।

(५) स्तनेक्षा–दोनों स्तनों पर दृष्टि रखकर कायोत्सर्ग करना स्तन दृष्टि दोष है।

(६) काकदृक्–कौवे के समान चंचलदृष्टि रखकर कायोत्सर्ग करना काकदृक् दोष है।

(७) शीर्ष कंपित दोष–शिर को कंपाते हुये कायोत्सर्ग करना शीर्ष कंपित दोष है।

(८) युगकंधरम् जिसप्रकार बैल गर्दन को पसारकर चलता है उसीप्रकार गर्दन को तिरक्षा करके कायोत्सर्ग करना युगकंधरम् दोष है।

(९) भ्रूक्षेप–भ्रकुटी को चलाते हुये कायोत्सर्ग करना भ्रूक्षेप दोष है।

(१०) उत्तरितादि–उन्मत्त पिशाच के समान अष्ट दिशाओं को देखना उसे उत्तरित्तोन्मत्त-पिशाचाष्टादिशेक्षणम् दोष कहते हैं।

(११) ग्रीवाऽवनमनं–ग्रीवा झुकाकर कायोत्सर्ग करना ग्रीवाऽवनमनं दोष है।

(१२) मूकसंज्ञा–गूगे के समान हुँकार करते हुये कायोत्सर्ग करना मूक दोष है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३) अंगुलिचालनम्–अंगुली से इशारा करते हुये कायोत्सर्ग करना अंगुलिचालनम् दोष है।

(१४) निष्ठीवनं–कायोत्सर्ग करते समय बीच बीच में थूकना निष्ठीवन दोष है।

(१५) खलिनित–जिसप्रकार मुख में लगाम होने से घोड़ा मुख को चलाता है उसीप्रकार मुख चलाते हुये कायोत्सर्ग करना खलिनित दोष है।

(१६) शबरीगुह्यगूहनम्–भील की स्त्री के समान दोनों हाथ आगे पसार करके कायोत्सर्ग करना शबर दोष है।

(१७) कपित्थदोष–कपित्थ के समान मुट्ठी बांधकर कायोत्सर्ग कपित्थ दोष है।

(१८) ग्रीवोनमनं–ग्रीवा का संकोच करके कायोत्सर्ग करना ग्रीवोनमनं या प्रणयन दोष है।

(१९) शृंखलिताह्य–बेड़ी में पैर रक्खे हुये के समान पैर फैलाकर कायोत्सर्ग करना।

(२०) मालिकोद्वहनम्–तुला में मस्तक का सहारा लेकर कायोत्सर्ग करना।

(२१) स्वांगस्सर्शनम्–शरीर खुजलाते हुये कायोत्सर्ग करना।

(२२) घोटकांघ्रि–घोड़े के समान एक पैर को स्थिर करके तथा दूसरे पैर को हिलाते हुये कायोत्सर्ग करने से घोटकदोष लगता है।

(२३ से ३२) दश दिशाओं को अवलोकन करते हुये कायोत्सर्ग करना दशदिशावलोकन् १० दोष हैं। ये कायोत्सर्ग के बत्तीस दोष हैं इनका त्याग करके शुद्ध कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा इनके समान और भी दोष है उनका भी त्याग करना चाहिये।।८०-८४।।

आसन वर्णन

वामान्तर्गुल्फवामस्य गुल्फो वाह्यः स्थितस्तयोः।
पादयोरूरूमूलस्थं पल्यंके पार्ष्णियुग्मकम्।।८५।।

गुल्फस्थोत्तानवामस्थोत्तानावामकरः समः।
पल्यंकेऽत्रासने स्याच्चेत्कायोत्सर्गः सुसौष्ठवः।।८६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवन्यार्थ–(वामन्तर्गुल्फावस्य) वामपाद की अन्तर्गुल्फ में दक्षिणपाद की (गुल्फः) गुल्फ (बाह्यः) बाह्य (स्थितः) स्थित है (तयोः) उन दोनों (पादयोः) चरणों के (उरुमूलस्थं) उरुमूल में स्थित (पार्ष्णियुग्मकं) पाव की एडी है तथा (पल्यंके) गोदी में (गुल्फस्थोत्तानवामस्थोत्तानावामकरः) गुल्फ के उत्तान वाम में स्थित है उत्तान दक्षिण हाथ जिसका ऐसा (समः) समान (चेत्) हो तो (अत्र) इस (पल्यके) पालथी (आसने) आसन में (कायोत्सर्गः) कायोत्सर्ग (सुसौष्ठवः) सुस्थिति (स्यात्) होता है।

भावार्थ–वामपाद के जंघा के ऊपर दक्षिण पाद हो और दोनों पैरों के मध्यभाग में दोनों पैर की एड़ी हो तथा गोदी में वामहाथ के ऊपर दक्षिण हाथ हो इसको पर्यकासन कहते हैं, इस आसन में कायोत्सर्ग सुस्थित होता है।।८५-८६।।

त्रिशुद्धौ द्वादशावर्त्ते द्विनिषण्णे चतुर्नतौ।

बद्धांजुलौ त्यजेद्दोषान् कृतिकर्मव्रजेऽप्यमून्।।८७।।

अन्वयार्थ–(त्रिशुद्धौ) मन, वचन, काय की शुद्धि (द्वादशावर्त्ते) बारह आवर्त्त (द्विनिषण्णे) दो निषद्या (चतुर्नतौ) चार शिरोनति (बद्धांजुलि स्वरूप (कृतिकर्मव्रजे कृति कर्म के समूह में (अपि) भी (अमून्) इन (दोषान्) दोषों को (त्यजेत्) छोड़े।

भावार्थ–मन, वचन, काय की शुद्धि, बारह आवर्त्त, द्विनिषद्या चार शिरोणति पूर्वक अंजुलि जोड़कर कृति कर्म करना चाहिये। इस कृति कर्म में भी बत्तीस दोष होते हैं उनको छोड़ना चाहिये।।७८।।

वंदना के दोष

स्तब्धः प्रविष्टोऽनालब्धमालब्धं परिपीडितम्।

दोलायितं मनोदुष्टं मत्स्योद्वर्त्तनभेषितम्।।८८।।

हीनाधिकर्द्धिगौरवशेषगौरवधर्धरम्।

भेष्यत्वं स्तनितंमूकमुनमत्तकमनाद्भुतम्।।८९।।

तर्जितं शब्दितं संघकरमोचितं कुचिंतम्।

वेदिकाबद्धक्रोधादि शल्याचार्यादिदर्शनम्।।९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यनीकं सुललितादृष्टे कच्छपरिंगितम्।
हलितं त्रिवलितं चेति द्वात्रिंशदमी मताः।।९१।।चतुष्कं।।

अन्वयार्थ–१. स्तब्ध २. प्रविष्ट ३. अनालब्ध ४. आलब्ध ५. परिपीडनम् ६. दोलायितं ७. मनोदुष्टं ८. मत्स्योद्वर्तन ९. भेषितम् १०. हीन अधिक ११. ऋद्धिगौरव १२. शेषगौरव १३. घर्घर १४. भेष्यत्व १५. स्तनित १६. मूक १७. उन्मुक्त १८. अनाद्रुत १९. तर्जित २०. शब्दित २१. संघकरमोचित २२. कुंचितम् २२. वेदिका बद्ध २४. क्रोध २५. शल्य २६. आचार्यादि दर्शनम् २७. प्रत्यनीक २८. सुललित २९. अष्ट दोष ३०. कच्छपरिंगिणत ३१ हलित ३२. त्रिवलित ये बत्तीस दोष हैं।

भावार्थ–(१) **स्तब्ध**–विद्यादिक के गर्व से उद्दंड होकर देव वंदना करना स्तब्ध दोष है।

(२) **प्रविष्ट**–पंचपरमेष्ठी के अत्यन्त निकट वैठकर देववंदना करना प्रविष्ट दोष है।

(३) **अनालब्ध**–देववंदना करने से उपकरण प्राप्त होंगे इस बुद्धि से वंदना करना अनालब्ध दोष है।

(४) **आलब्ध**–पिच्छीका कमंडलु आदि उपकरणों के प्राप्त करके वंदना करना आलब्ध दोष है।

(५) **परिपीडनम्**–हाथ के द्वारा जानु आदि प्रदेशों का स्पर्श करके अथवा उनका पीडन करके वंदना करना परिपीडन दोष है।

(६) **दोलायित**–झूले (दोले के) समान शरीर को हिलाते हुए देववंदना करना दोलायित दोष है।

(७) **मनोदुष्ट**–संक्लेशयुक्त मन से वंदना करना मनोदुष्ट दोष है।

(८) **मत्स्योद्वर्तन**–मछली के समान कटिभाग का उद्वर्तन करके देववंदना करना।

(९) **भेषितत्**–गुरु के भय से वंदना करना भेषित दोष है।

(१०) **हीन**–शास्त्र के अनुकूल काल से रहित देववंदना करना हीन दोष है।

(११) **अधिक**–वंदना थोड़े समय करना और चूलिका को अधिक समय लगाना अधिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष है।

(१२) **ऋद्धिगौरव**–देव वंदना करने से चातुर्वण्य श्रमणसंघ मेरा भक्त बन जायेगा इस अभिप्राय से देव वंदना करना ऋद्धि गौरव दोष है।

(१३) **दुर्दर** (घर्घर)-अपने शब्दों से अन्य वंदना करने वाले के शब्दों का तिरस्कार करके महा उच्च स्वर में देववंदना करना दुर्दर दोष है।

(१४) **स्तनित**–चोर बुद्धि से गुरु आदि से छिपकर वंदना करना स्तनित दोष है।

(१५) **भेष्यत्व**–किसी को भय दिखाकर वन्दना करना भेष्यत्व दोष है।

(१६) **मूकदोष**–हुंकार अथवा अंगुली आदि से मूकवत् संकेत करते हुए देव वंदना करना मूक दोष है।

(१७) **उन्मुक्त**–एक ही स्थान पर बैठकर हाथ जोड़कर सबकी वन्दना करना उन्मुक्त दोष है।

(१८) **अनादरित**–अनादर से देव वन्दना करना अनादरित दोष है।

(१९) **तर्जितक्षैप**–अन्य संघस्थ मुनियों के साथ कलह करके अथवा गुरु ने कहा है कि तुम देववन्दना नहीं करोगे तो संघ से निकाल दिये जाओगे इससे भयभीत होकर वन्दना करना।

(२०) **शब्दित**–मौन त्याग कर कुछ बोलते हुये देव वन्दना करना अथवा माया प्रपंच से देव वन्दना शाद्वय दोष है।

(२१) **संघकर मोचित दोष**–संघ को माया चार से कोई अतिशय दिखाकर देववन्दना करना संघकर मोचित दोष है।

(२२) **कुंचितम्**–हाथ से मस्तक आदि अंगों का स्पर्श करते हुये अथवा घुटने के बीच में मस्तक रखकर संकुचित शरीर से वन्दना करना कुंचित दोष है।

सिद्धो की स्तुति

नष्टदुष्टाष्टकर्माणस्ते पुष्टाष्टगुणर्द्धयः।

त्रिलोकौमस्तकोत्तसाः सिद्धा नः सन्तु सिद्धिदाः।।९२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(नष्टदुष्टाष्टकर्माणः) नष्ट हो गये हैं दुष्ट अष्ट कर्म जिन्होंके (पुष्टाष्टगुणर्द्धयः) पुष्ट है अष्टगुण ऋद्धियां जिन्होंकी (त्रिलोकीमस्तकोत्तंसाः) तीन लोक के शिखर के भूषण) (ते) वे (सिद्धा) सिद्ध भगवान (नः) हमारे लिए (सिद्धिदाः) सिद्धि के देने वाले (सन्तु) हो।

भावार्थ–जिन्होंके ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय यह आठ कर्म नष्ट हो गये हैं। सम्यत्त्व, अनन्तदर्शनत्व, अनन्तज्ञानत्व, अगुरु लघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व, निराबाधत्व इन आठ गुणों से जो युक्त है तथा लोक के अग्रभाग में स्थित हैं ऐसे तीन लोक के शिरोमणि सिद्ध भगवान हमारे लिए सिद्धि को देने वाले हों।।९२।।

पंच परमेष्ठी की स्तुति

श्रीपादेंदूदयस्यासीदमरीचिकुरोऽम्बरम्।
यस्य स्याद्वादिनो विश्ववेदिनः पातु नो जिनः।।९३।।

अन्वयार्थ–(यस्य) (जिस) (स्याद्वादिनः) स्याद्वादी (विश्ववेदिनः) विश्ववेदी के (श्रीपादेदूदयस्य) शोभनीय पाद रूपी चंद्रमा के उदय का (अम्बरं) आकाश (अमरीचिकुरः) देवियों का केशपाश (आसीत्) था वह (जिनः) जिनेन्द्र भगवान (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे।

भावार्थ–जिस स्याद्वादी विश्ववेदी के चरण रूपी चंद्रमा के उदय का आकाश देवियों का केशपाश था वह जिनेन्द्र भगवान हमारी रक्षा करे।।९३।।

विपक्षक्षयजानंतानंतज्ञानादिसद्गुणाः।
दद्यादद्य स नः प्राज्यं बृजिनारिजयं जिनः।।९४।।

अन्वयार्थ–(विपक्षक्षयजानंतानंतज्ञानादिसद्गुणाः) विपक्ष के क्षय से उत्पन्न अनन्त ज्ञानादि सद्गुण वाले (सः) वह (जिनः) जिनराज (नः) हमारे लिए (अद्यः) आज (प्राज्यं) उत्कृष्ट (वृजनारिजयं) पाप रूपी शत्रुओं के जीतने की शक्ति (दद्यात्) दें।

भावार्थ–ज्ञानावरणी आदि विपक्षियों के नाश करने से उत्पन्न अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य के धारी जिनेन्द्र भगवान हमारे लिए पापरूपी शत्रुओं को नाश करने की शक्ति देवें।।९४।।

निराकृत्यान्तरं ध्वान्तं सूरिसूरः करोत्वरम्।
सन्मानासंबुजानंदममन्दं वाक्करैर्वरैः।।९५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(सूरिसरः) आचार्य रूपी सूर्य (वरैः) श्रेष्ठ (वाक्करैः) वचन रूपी किरणों के द्वारा (अन्तरं) आंतरिक (ध्वान्तं) अंधकार को (निराकृत्य) दूर करके (अरं) शीघ्र ही (अमंदं) अमन्द (सन्मानसांबुजानंदं) सत्पुरुषों के मन रूपी कमल को आनन्दित (करोतु) करे।

भावार्थ–आचार्य रूपी सूर्य अपने वचन रूपी किरणों के द्वारा शीघ्र ही आंतरिक अंधकार को दूर करके सत्पुरुषों के मन रूपी कमल को विकसित करे।।९५।।

कुर्वन्नखर्वदुर्वादिमदद्विरदमर्दनम्।
स्याद्वादाद्रावुपाध्यायसिन्धुरारिर्विजृंभताम्।।९६।।

अन्वयार्थ–(अखर्वदुवादिमदद्विरदमर्दनम्) घमंडी मिथ्यावादी रूपी मदोन्मत्त हाथियों के मद के निर्मद (कुर्वन्) करता हुआ (उपाध्यायसिन्धुरारिः) उपाध्याय रूपी सिंह (स्याद्वादाद्रौ) स्याद्वदरूपी पर्वत पर (विजृंभताम्) बढ़ता रहे।

भावार्थ–घमंडी कुवादी रूपी मदोन्मत्त हाथी के मान को मर्दन करने वाले उपाध्याय रूपी सिंह स्याद्वाद रूपी पर्वत पर वृद्धि को प्राप्त हों।।९६।।

रत्नत्रयामृतांभोधिविधवः साधवः श्रियम्।
दद्युरात्मर्द्धिनिर्धूतदुरितध्वान्तवृन्तयः।।९७।।

अन्वयार्थ–(आत्मर्द्धिनिर्धूतदुरितध्वान्तवृत्तयः) आत्म सिद्धि से नष्ट कर दिया है पापरूपी अंधकार के समूह को जिसने ऐसा (रत्नत्रयामृतांमोधिविधवः) रत्नत्रय रूपी अमृत के समुद्र को बढ़ाने वाले चन्द्रमा ऐसे (साधवः) साधु गण (श्रियं) श्री को (दद्युः) देवें।

भावार्थ–आत्मऋद्धि से पापरूपी अंधकार को नाश करने वाले रत्नत्रय रूपी अमृत के समुद्र को बढ़ाने वाले साधु रूपी चन्द्रमा हमारे लिये श्री को देवें।।९७।।

त्रिजगद्गुरवः सर्वैर्गुणैर्गुरव इत्यमी।
गुरवः पंच न पान्तु पायापायनिकायतः।।९८।।

अन्वयार्थ–(सर्वैः) सर्व (गुणैः) गुणों के द्वारा (गुरवः) गुरु हैं (इति) इसलिये (त्रिजगद् गुरवः) तीन जगत के गुरु (अभी) ये (पंचः) पांच (गुरवः) पंच परमेष्ठी गुरु (नः) हमारी (पापापाथनिकायतः) पाप और अपाय के समूह से (पान्तु) रक्षा करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–तीन जगत के गुरु सर्व गुणों में श्रेष्ठ पंचपरमेष्ठी पाप और अपाय के समूह से हमारी रक्षा करें।।९८।।

रत्नत्रय वर्णन

लोकत्रयेशदत्तार्घ्यमप्यनर्घ्य महोदयम्।
रत्नत्रयं पवित्रं नः पुनातु हृदयं सदा।।९९।।

अन्वयार्थ–(लोकत्रयेशदत्तार्घ्यं) तीन लोक के स्वामियों के द्वारा दिया गया है अर्घ जिसको (अपि) फिर भी (अनर्घ्य) बहुमूल्य (महोदयं) महा उदय वाला (पवित्रं) पवित्र (रत्नत्रयं) रत्नत्रय (सदा) सदा (नः) हमारे हृदय को (पुनातु) पवित्र करे।

भावार्थ–तीन लोक के अधिपतियों के द्वारा पूजनीय अनर्घ्य महोदय वाला पवित्र रत्नत्रय हमारे हृदय को पवित्र करे।।९९।।

धर्म की स्तुति

स्तुत्यः स्तुतिशतैर्धर्म शर्मदो यो गुणाधिकः।
गुणिनः सद्गुणाश्चैते भवन्तु मम मंङ्गलम्।।१००।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (स्तुतिशतैः) सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा (स्तुत्यः) स्तुति करने योग्य (शर्मदः) सुख को देने वाला (गुणाधिकः) गुणाधिक (धर्मः) धर्म है (च) और (एते) ये (गुणिनः) गुणी (सद्गुणाः) और सद्गुण हैं वे (मम) मेरे लिये (मंगलं) मंगल कारक (भवन्तु) हों।

भावार्थ–सैकड़ों स्तुतिओं के द्वारा स्तुत्य, गुणाधिक स्तुति को देने वाला धर्म, धर्मी तथा धर्मियों के सद्गुण मेरे लिये मंगल करे।।१००।।

चन्द्रप्रभ स्तुति

यत्कान्तकान्तिः कुमुदं वितन्वती।
तनोय्यलं तत्कमलोत्सवं नवः।।
निरस्तदोषाऽभ्यदयाक्षयश्रियं।
क्रियात्स चंद्रप्रभदेववल्लभः।।१०१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यत्कान्तकान्तिः) जिसकी सुन्दर कान्ति (कुमुदं) पृथ्वी के हर्ष को (वितन्वती) विस्तरित करती हुयी (तत्कमलोत्सवं) मुक्ति रूपी कमल के उत्सव को (तनोति) विस्तरित करती है (सः) वह (नवः) श्रेष्ठ (चन्द्रप्रभदेववल्लभः) चन्द्र प्रभु भगवान (निरस्तदोषाऽभ्युदयाक्षयश्रियं) दोष रहित अभ्युदय वाली अविनश्वर लक्ष्मी को (क्रियात्) प्रदान करें।

भावार्थ–जिसकी सुन्दर कान्ति पृथ्वी के हर्ष को विस्तारित करती हुई मोक्षरूपी लक्ष्मी के उत्सव को विस्तरित करती है वह श्रेष्ठ चंद्रप्रभ भगवान निर्दोष अभ्युदय और अविनाशी लक्ष्मी को देवें।।१०१।।

इति श्रीमद्वीरनंदिसिद्धान्तचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार नाम्नि शास्त्रे नवमोऽधिकारः।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशमोऽधिकारः

शीतलनाथ स्तुति

यद्वाक्यामृतमाजवंजवदवोत्तप्तात्मनामात्मनां
नानैनश्चिततापलोपनपरं श्री शीतलः शीतलम्।
यस्यांगस्य मरीचिमंडलमिलानंदेंदिरामन्दिरं
पायात्पार्वणशीतरश्मिरुचिरः सोऽयं जिनाधीश्वरः।।१।।

अन्वयार्थ–(यद्वाक्यामृतं) जिसके वचन रूपी अमृत (आजवंजवदवोत्तप्तात्मनामात्मनां) संसार रूपी दावानल से संतप्त स्वरूप वाली आत्माओं के (नानैनश्चित्ततापलोपनपरं) नाना प्रकार के पापों से उपार्जित ताप के लोपन करने के लिए तत्पर (शीतल) एवं शीतल हैं, (यस्य) जिसके (अंगस्य) शरीर की (मरीचिमंडलं) किरणों का समूह (इलानन्देंदिरामन्दिरं) पृथ्वी के उत्सव रूपी लक्ष्मी का स्थान है, (सः) वह (अयं) यह (पार्वणशीतरश्मिरुचिरः) पूर्णिमा के चन्द्र के समान शोभित (श्रीशीतलः) श्री शीतल (जिनाधीश्वरः) जिनाधीश्वर (पायात्) हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–जिनका वचन रूपी अमृत संसार रूपी दावानल से संतत्प प्राणियों के अशुभ परिणामों से उपार्जित नाना पाप रूपी ताप को नाश करने में समर्थ है, जिसके शरीर की किरणों का समूह पृथ्वी के उत्सव रूपी लक्ष्मी का स्थान है, जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अत्यन्त शोभनीय है ऐसे श्री शीतलनाथ जिनेश्वर हमारी रक्षा करें।।१।।

मुनिप्रशंसा

दीक्षां पीटिकयोदितेन विधिना शिक्षां गृहीत्वा समा-
चारेणानुमतो गणेन गणिना प्राप्तश्च सत्सूरिताम्।
षट्त्रिंशद्गुणभूषणो व्यपगतव्यापद्गणं सद्गणं,
रक्षन् यः समयं नयत्यतितरां धन्यः स मान्यो मुनिः।।२।।

अन्वयार्थ–(पीठिकया) पीठिका के द्वारा (उदितेन) कथित (विधिना) विधि से (दीक्षां)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीक्षा और (शिक्षां) शिक्षा को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (समाचरेण) समाचार (गणेन) समूह से (अनुमतः) स्वीकृत (च) और (गणिना) सूरि के द्वारा (सत्सूरितां) सत्यसूरिपने को (प्राप्तः) प्राप्त (षट्त्रिंशद्गुणभूषणः) छत्तीस गुण के भूषण से युक्त (व्यपगतव्यापद्गणं) नष्ट हो गये हैं आपत्तियों के समूह जिसके ऐसे (सद्गणं) अपने संघ को (रक्षन्) रक्षा करता हुआ (यः) जो (समयं) काल को (नयति) व्यतीत करता है (सः) वह (मान्यः) माननीय (मुनिः) मुनि (अतितरां) अत्यन्त (धन्यः) धन्य है।

भावार्थ—पीठिका के द्वारा कथित विधि से दीक्षा और शिक्षा को ग्रहण करके जो समाचार विधि से परिपूर्ण है तथा जिसको आचार्य ने सूरिपद दिया है, जो आचार्य के छत्तीस गुण से शोभित है, सर्व प्रकार से सद्गण की रक्षा करता हुआ आपत्ति रहित अपना समय व्यतीत करता है, वह सर्वमान्य मुनि धन्य है॥२॥

नवीन आचार्य को भार समर्पण

ज्योतिः शास्त्रविनूतजातकमतान्नानानिमित्तक्षणात्
प्रश्नाच्चापचयग्रहावलिबलक्षीणत्वसंप्रेक्षणात्।
प्रश्नस्याक्षरलक्षणोक्षणवशात्कालागमात्स्वायुषो-
मानं द्वादशवर्षसंमितमतो हीनं च निश्चित्य सः।।३।।
पश्चाच्चारुतरात्मसंस्करणधीर्धीरो मुमुक्षुर्गुणी
प्रीत्या पालितमात्मनात्मनि महान्स्नेहानुबंधने महत्।
वृन्दं तुन्दिलरोगिसुतपः शैक्षादिभिक्ष्वन्वितं।
प्रारोप्यात्मभर वर गणधरे सद्वृत्तलक्ष्मीधरे।।४।।
रक्षादक्षतमं गणस्य गणिनं सर्वगणं चादरा-
दाहूय प्रियवाक्चयामृतरसासारेण चोतोगतम्।
तापं तस्य निरस्य दुस्तरतरं जातं वियोगाद्गुरोः
स्वस्यातो नियतं विहारमपरं कुर्वन्मुनीन्द्रोत्तमः।।त्रिकं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ज्योतिःशास्त्रविनूतजातकमतात्) ज्योतिषशास्त्र एवं जातक में कथित संकेतों से (नानानिमित्तक्षणात्) नानानिमित्त क्षणों से (प्रश्नात्) प्रश्न से (चापचयग्रहावलिबलक्षीणत्वसंप्रेक्षणात्) ध्वजादि समूह के ग्रहावलि के वल के क्षीणत्व देखने से (प्रश्नस्य) प्रश्न के (अक्षरलक्षणेक्षणवशात्) अलिंगित अत्रिधूमिलादि लक्षण परीक्षक, केवल प्रश्न चूडामणिशास्त्र कथित अक्षरों के लक्षणों के वश से (कालागमात्) काल के ज्ञान से (स्वायुषः) अपने आयुष के (मानं) प्रमाण के (द्वादशवर्षसंमितं) बारह वर्ष प्रमाण (च) और (अतः) बारह वर्ष से (हीनं) हीन (निश्चित्य) जानकर (पश्चात्) पश्चात् (चारुतरात्मसंस्करणधीः) श्रेष्ठतर रत्नत्रय से अलंकृत है बुद्धि जिसकी ऐसा (सः) वह (धीरः) धीर (मुमुक्षुः) मुमुक्षु (गणी) आचार्य (आत्मनि) अपने में (महास्नेहानुबन्धे) महान स्नेह रखने वाले (सद्वृत्तलक्ष्मीधरे) समीचीन व्रत रूपी लक्ष्मी के धारक (गणधरे) गणधर में (प्रीत्या) आचार्य धर्मानुराग से (पालितं) पालित (तुन्दिलवालरोगिसुतपःशिक्षाभिक्ष्वन्वितं) वृद्धावस्था के कारण वृद्धिगत उदर वाले एवं बाल, रोगी, वहूपवासी, शास्त्राभ्यासी, आदि मुनियों से युक्त ऐसे (महत्) महान (वृन्दं) समूह वाले (आत्मभरे) अपने भार को (प्रारोप्य) आरोपण करके (गणस्य) गण की (रक्षादक्षतमं) रक्षा करने में दक्षत्तम (गणिनं) आचार्य को (च) और (सर्वं) सर्व (गणं) गण को (आदरात्) आदर पूर्वक (आहूय) बुलाकर (तस्य) उस (गुरोः) गुरु के (वियोगात्) वियोग से (जातं) उत्पन्न (चेतोगतम्) चित्तगत (दुस्तरतरं दुस्तरतर (तापं) ताप को (प्रियवाक्चयामृतरसासारेण) प्रिय वचनों के समूह रूपी अमृत रस की वर्षा से (निरस्य) दूर करके (अतः) इसके बाद (स्वस्य) अपना (अनियतं) अनियत (अपरं) अभिप्राय से (विहारं) विहार को (कुर्वन्) करता हुआ (मुनीन्द्रोत्तमः) मुनींद्रों में श्रेष्ठ होता है।

भावार्थ–ज्योतिषशास्त्र में कथित लक्षणों से वा ग्रहों के बलाबल के क्षीणत्व देखने से, अथवा केवलप्रश्न चूडामणि में कथित दग्ध अभिधूमित आदि प्रश्नोत्तरों से अपनी आयु को बारह वर्ष प्रमाण या हीन जानकर रत्नत्रय से अलंकृत धीरधी मुमुक्षु आचार्य, अपने धर्मानुराग से पालित अपने वृद्ध रोगी, नवीनदीक्षित, महोपवासी, शिक्षित आदि से समन्वित संघ के भार को अपने महान् स्नेह रखने वाले शिष्यों में आरोपित करता है। तदन्तर अपने संघ की रक्षा करने में चतुर नूतन आचार्य को और सर्व संघ को बुलाकर उनके गुरु के वियोग से उत्पन्न चेतोगत दुःख को, अपने वचनरूपी अमृत वर्षा की धारा से शांत करता है। तदनन्तर मैं यहाँ ठरहूँगा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार के संकल्प से रहित होकर अनियत विहार करता है वह श्रेष्ठ मुनीन्द्र कहलाता है।।३-५।।

अनियत विहार से लाभ

प्रेक्ष्यन्ते बहुदेशसंश्रयबशात्संवेगिताद्याप्तय-
स्तीर्थाधीश्वरकेवलोद्गममही निर्वाणभूम्यादयः।
स्थैर्य धैर्यविरागतादिषु गुणोष्वाचार्यवर्ये क्षण-
द्विद्यावित्तसमागमादधिगमो नूत्नार्थस्य च।।६।।

अन्वयार्थ–(बहुदेशसंश्रयवशात्) बहुदेश के संश्रय के वश से (संवेगिताद्याप्तयः) संवेग आदि की प्राप्ति (तीर्थाधीश्वरकेवलोद्गममहीनिर्वाणभूभ्यादयः) तीर्थाधीश्वर केवलोद्गम भूमि निर्वाण भूमि, आदि के (प्रेक्ष्यन्ते) दर्शन होते हैं (आचार्यवर्ये) आचार्यवर्य के अवलोकन से (क्षणात्) क्षणमात्र में (धैर्यविरागतादिषु) धीरता वीतरागादि (गुणेषु) गुणों में (स्थैर्य) स्थिरता (च) और (विद्यावित्तसमागयात्) ज्ञान शास्त्रियों के समागम से (नूत्नार्थसार्थस्य) नूतन अर्थ के समूह का (अधिगयः) ज्ञान होता है।

भावार्थ–बहुदेश के संश्रय से संवेगादि की गुणों की प्राप्ति होती है, तीर्थाधीश्वरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति के स्थान और निर्वाणभूमि आदि के दर्शन होते हैं। आचार्यवर्य के अवलोकन से धैर्य वीतरागादि गुणों में स्थिरता आती है और ज्ञानियों के समागम से नूतन अर्थ के समूह का ज्ञान होता है।।६।।

सल्लेखना योग्य क्षेत्र

सद्भूपं बहुसूरिभाक्तिकयुतं क्षामादिदोषोज्झितं
क्षेत्रं पात्रमपीक्ष्यते तनुपरित्यागस्य निःसंगता।
सर्वस्मिन्नपि चेतनेतरवहिः संगे स्वशिष्यादिके।
गर्वस्यापचयः परीषहजयः सल्लेखना चोत्तमा।।७।।

अन्वयार्थ–(बहुसूरिभाक्तिकयुतं) बहु सूरि की भक्ति से युक्त (क्षामादिदोषोज्झितं) क्रोधादि दोषों से रहित (सद्भूपं) योग्य राजा जिसमें हो ऐसा (क्षेत्रं) क्षेत्र (पात्रं) पात्र, (तनुपरित्यागस्य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर के परित्याग की (निःसंगता) निःसंगता, (सर्वस्मिन्) सर्व (चेतनेतरबहिसंगे) चेतन, अचेतन, वहिरंग परिग्रह में (अपि) और (स्वशिष्यादिके) स्व शिष्यादिक में (अपि) भी (गर्वस्य) गर्व का (अपचयः) अभाव और (परीषहजयः) परीषहों पर विजय होने पर (उत्तमा) उत्तम (संल्लेखना) संल्लेखना (ईक्ष्यते) देखी जाती है।

भावार्थ–जिस क्षेत्र में आचार्य का भक्त क्षमाशील योग्य राजा हो वह सल्लेखना का क्षेत्र है। जिसकी शरीर में निस्पृहता है, चेतन, अचेतन वहिरंग परिग्रह में निर्मत्व है, अपने शिष्यादिक में गर्व का अभाव है वही सल्लेखना का उत्तम पात्र कहा जाता है।।७।।

सल्लेखना का समय

सम्यक्कायकषायकार्श्यकरणं सल्लेखनाद्या वरै-
र्योगैर्वर्षचतुष्टयं रसपरित्यागैस्तथाब्दद्वयम्।
सौवीरान्नरसोज्झनैरभिषवान्नेनाब्दमेतद्दलं-
बाह्यैर्मन्दतपोभिरुग्रनियमैरब्दार्धमंगार्दनम्।।८।।

अन्वयार्थ–(सम्यक्कायकषायकार्श्यकरणं) भली प्रकार काय और कषायों को क्रश करना (सल्लेखना) सल्लेखना है। उसमें (वरैः) उत्कृष्ट (योगैः) योगों के द्वारा (वर्षचतुष्टयं) चार वर्ष पर्यन्त (रसपरित्यागैः) रस परित्याग के द्वारा (अब्दद्वयं) चार वर्ष व्यतीत करना (तथा) इसके बाद (अब्दद्वयं) दो वर्ष (सौवीरान्नरसोज्झन्नैः) कांजी आहार और रस त्याग के द्वारा (अब्दं) एक वर्ष (अभिषवान्नेन) वृष्य अन्न के सेवने से (एतत्) यह (दलं) उससे आधा वर्ष (बाह्यैः) वाह्य (मन्दतपोभिः) मन्द मन्द तप के द्वारा (अब्दार्धं) आधा वर्ष (उग्रनियमैः) उग्र नियमों के द्वारा (अंगार्दनं) शरीर को कृश करना (आद्या) प्रथम काय (संल्लेखना) सल्लेखना है।

भावार्थ–सम्यक् प्रकार से काय और कषाय को कृश करना सल्लेखना है उसमें प्रथम उत्कृष्ट योग के द्वारा चार वर्ष व्यतीत करना, उसके बाद रस परित्यांग के द्वारा चार वर्ष, तदनंतर कांजी आहार रस के त्याग के द्वारा दो वर्ष, वृष्य (गरिष्ठ) पदार्थ का त्याग कर एक वर्ष तदनन्तर बाह्य मन्द तप के द्वारा आधा वर्ष तदनन्तर उग्रनियम के द्वारा आधा वर्ष व्यतीत करके शरीर को कृश करना काय सल्लेखना है।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालं कायवलं च देशमशनं पानं प्रकृत्यादिकं।
ज्ञात्वा पित्तकफानिलैः र्निजयतेर्न स्याद्यथा विक्रिया।
कर्त्तव्यविदुषा तथोक्तविधिभिर्बाह्यैस्तपः प्रक्रमै-
राचार्यानुमतैः समाधिफलदैरषांगसल्लेखना।।९।।

अन्वयार्थ–(कालं) काल (कायबलं) शारीरिक बल (देशं) देश (अशनं) अन्न (पानं) पान (च) और (प्रकृत्यादिकं) प्रकृत्यादिको (ज्ञात्वा) जानकर (यथा) जिससे (पित्तकफानिलैः) पित्त, कफ, वायु के द्वारा (निजमते) निजमति की (विक्रिया) विक्रिया (न) नहीं (स्यात्) हो (तथा) उस प्रकार (आचार्यानुमतैः) आचार्य के द्वारा अनुमत (समाधिफलदैः) समाधि के फल को देने वाले (उक्तविधिभिः) पूर्व कथित विधि वाले (बाह्यैः) बाह्य (तपक्रमैः) तप क्रम से (विदुषा) विद्वानों के द्वारा (एषा) यह (अंगसल्लेखना) अंग सल्लेखना (कर्तव्या) करनी चाहिये।

भावार्थ–जिससे वात, पित्त, और कफ से अपने ज्ञान में विकृति नहीं हो ऐसे काल, शरीर, बल, देश, अन्न, पान और प्रकृति आदि को जान करके आचार्य के द्वारा अनुगत समाधिरूप फल के देने वाले पूर्व कथित विधि से बाह्य तप के द्वारा विद्वानों को यह काय सल्लेखना करनी चाहिये।।९।।

उत्तम सल्लेखना कैसे होती है

सद्ध्यानप्रकरैः कषायविषया सल्लेर्खना श्रेयसी-
स्वेष्टानिष्टवियोगयोगयुगजे बाधानिदानोद्भवे।
इत्यार्त्तस्य चतुर्विधस्य विजयो हिंसामृषास्तेयसं-
रक्षानन्दविभेदतोऽशुभकृतो ध्यानस्य रौद्रस्य च।।१०।।

अन्वयार्थ–(सद्ध्यानप्रकरैः) सद्ध्यान के समूह से (स्वेष्टानिष्टवियोगयोगयुगजे) स्व इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग से उत्पन्न (इति) इस प्रकार (चतुर्विधस्य) चार प्रकार के (आर्तस्य) आर्त ध्यान परिग्रह का (च) और (हिंसाभृषास्तेयसंरक्षानन्दविभेदतः) हिंसा, असत्य, स्तेय और संरक्षणानन्द के भेद से (अशुभकृतः) अशुभकृत (रौद्रस्य) रौद्र (ध्यानस्य) ध्यान की (विजयः) विजया (कषायविषया) कषाय को कृश करने वाली (श्रेयसी) कल्याणकारी उत्तम (सल्लेखना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सल्लेखना है।

भावार्थ–धर्म और शुक्ल के द्वारा इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीड़ाचिंतवन और निदानवंध नामक चार प्रकार के आर्त्तध्यान पर विजय और हिंसा नन्द, मृषानन्द, स्तेयानन्द एवं परिग्रहानन्द इन चार प्रकार के रौद्र ध्यान पर विजय प्राप्त करना कषाय को कृश करने वाली उत्तम सल्लेखना है॥१०॥

ध्यातृध्यानविचिंत्यचिंतनफलान्यंगानि चत्वारि तैः

स्याद् ध्यानं सदसत्व तत्र भवति ध्यातोत्तमैरन्वितः।

आद्यैः संहननैस्त्रिभिस्त्रिभिरूपेतोऽन्त्यैः स नाऽस्मिन्पुनः

चिन्तातर्वहिरंगकारणसृणिप्रेर्यो हि कार्यद्विपः।।११।।

अन्वयार्थ–(ध्यातृध्यानविचिंत्यचिंतनफलानि) ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का फल (चत्वारि) चार (अंगानि) अंग हैं (तत्र) उन चारों में (सद्सत्) सद् और असत् (शुभ और अशुभ) (ध्यानं) ध्यान (भवति) होता है (आद्यैः) आदि (त्रिभिः) तीन (तैः) उन (उत्तमैः) उत्तम (संहननैः) संहननों से (अन्वितः) युक्त (ध्याता) ध्याता (भवति) होता है। (अन्त्यैः) अन्तिम संहननों से (सः) वह ध्यान (न) नहीं होता है। (हि) क्योंकि (पुनः) पुन (अस्मिन्) इस (चिन्तान्तर्वहिरंगकारणसृणि) चिन्ता अंतरंग बहिरंग कारण रूप मार्ग में (कार्यद्विपः) कार्यरूपी हाथी (प्रेर्यः) प्रेरित करने योग्य है।

भावार्थ–ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यान का फल यह चार ध्यान के अंग हैं। शुभ धर्म्य ध्यान, शुक्ल ध्यान, और अशुभ आर्त्त रौद्र ध्यान यह दो प्रकार का ध्यान है। आदि के उत्तम तीन संहनन से युक्त मुनि इनके ध्याता होते हैं। अन्त के तीन संहननवाला ध्याता नहीं है। क्योंकि उत्तम संहनन से ही चिंतवन करने योग्य अन्तरंग बहिरंग कारणरूपी मार्ग में कार्यरूपी हाथी प्रेरित होता है।

ध्यान का लक्षण

एकस्मिन्विषयेऽग्रमाननमभूदस्या मतेरित्यसा

वेकाग्रा विषयोपयोगनिरता चिंता निरोधोऽचला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्था स्यान्निजगोचराचलमनो ध्यानं तदन्तर्मुहु

र्त्तावस्थानमतीवदुर्धरतया नाऽतः परं तिष्ठति।।१२।।

DeJeÙeLe& (अस्थाः) इस (भतेः) मति का (एकस्मिन्) एक (विषये) विषय में (अग्रमाननं) एकाग्रता (अभूत्) होती है (इति) इस प्रकार (असौ) यह (एकाग्रतां) एकाग्रता (विषयोपयोगनिरता) विषयों में उपयोग की लीनता (चिंतानिरोधः) चिंता का निरोध (अचलावस्था) अचल अवस्था (निजगोचराचलमनः) अपने गोचर अचल मन (ध्यानं) ध्यान है (तत्) वह ध्यान (अन्तर्मुहूर्तावस्थानं) अन्तर्मुहूर्ताअवस्थानवाला (स्यात्) होता है। (अतीवदुर्धरतया) अत्यन्त दुर्धर होने से (अतः परं) इसके आगे यह ध्यान (न) नहीं (तिष्ठति) रहता है।

भावार्थ—एक विषय में मन की एकाग्रता में चित्त का स्थिर होना, विषय में उपयोग का लीन होना, चिन्ता का निरोध, अचल अवस्था, निजगोचर अचलमन होना ध्यान है। उस मन को एकाग्र करना अत्यन्त दुर्धर है, इसलिये अन्तर्मूहूर्त से अधिक समय तक मन स्थिर नहीं रह सकता है।।१२।।

अशुभ ध्यान व उसके भेद

मिथ्यात्वोरुतमस्तिरस्कृतसुदृग्ज्ञानोऽधिकक्रोधवान्

स्तब्धः सत्स्वपि वंचनांचितमतिर्लुब्धः परार्थेष्वपि।

दुर्लेश्यापशगाशयश्च भवति ध्याताऽशुभध्यानयोः

ध्येयं ध्यानविशेषलक्षणविनिर्देशक्षणे लक्ष्यते।।१३।।

अन्वयार्थ—(मिथ्यात्वोरुतमस्तिरस्कृतसुदृग्ज्ञानः) मिथ्यात्व रूपी महान अन्धकार से तिरस्कृत है सम्यग्दर्शन और ज्ञान जिसका (अधिकक्रोधवान्) अधिक क्रोधी (स्तब्धः) स्तब्ध (सत्सु) समीचीन वस्तु में (अपि) भी (वञ्चनां चित्तमतिः) वञ्चना से व्याप्त है मति जिसकी (परार्थेष्वपि) दूसरे के धन में (लुब्धः) लुब्ध (दुर्लेश्यावशगाशयः) दुर्लेश्या में वशंगत आशय वाला (अशुभध्यानयोः) अशुभ ध्यान का (ध्याता) ध्यान करने वाला (भवति) होता है। (च) और (ध्यानविशेषलक्षणनिर्देशक्षणे) ध्यान विशेष लक्षण के विर्निदेशक्षण में (ध्येयं) ध्येय (लक्ष्यते) कहा जायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–मिथ्यारूपी महान अन्धकार से तिरस्कृत है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जिसका ऐसा अत्यन्त क्रोधी मूर्ख, सत्पदार्थों में भी वंचनमति पर धन का लोलुपी, दुर्लेश्या के वशीभूत हुआ, प्राणी, आर्त्तरौद्र ध्यान का ध्याता होता है। अशुभ ध्यान का ध्येय ध्यान, लक्षण के वर्णन करने के क्षण में कहेंगे।।१३।।

इष्ट वियोग जन्य आर्त्तध्यान

जीवाजीवकलत्रपुत्रकनकाऽगारादिकादात्मनः
प्रेमप्रीतिवशात्मसात्कृतबहिः संगाद्वियोगोद्वमे।
क्लेशेनेष्टवियोगजार्त्तमचलं तच्चिन्तनं मे कथ
न स्यादिष्टवियोग इत्यपि सदा मन्दस्य दुःकर्मणः।।१४।।

अन्वयार्थ–(आत्मनः) अपने (जीवाजीवकलत्रपुत्रकनकाऽगारादिकात्) जीव, अजीव, स्त्री, पुत्र, सुवर्ण घरादि से (प्रेमप्रीतिवशात्मसात्कृतबहिः) प्रेम और प्रीति के वश से आत्म स्वात्कृत बहिरंग परिग्रह के (वियोगोद्वमे) वियोग हो जाने पर (क्लेशेन) क्लेश से (में) (इष्टवियोगः) इष्ट वियोग (कथं) किसी प्रकार (न) नहीं (स्यात्) होवे (इति) इसप्रकार (मन्दस्य) मन्द (कर्मणः) कर्म का (अचलं) अचल (तच्चिंतनं) चितवन करना (इष्टवियोगजार्तम्) इष्ट वियोग से उत्पन्न आर्त ध्यान है।

भावार्थ–अपने चेतन, अचेतन, पुत्र, पुत्री, स्त्री, सोना, घर, आदि के प्रेम और प्रीति के वशीभूत होकर आत्मसात् किये हुये वहिरंग परिग्रह के वियोग के कारण मिलने पर अज्ञानी के दुष्कर्मों के उदय से ऐसा निरन्तर चिंतवन होता है कि मेरे किसी प्रकार से इष्ट का वियोग न होवे। यह इष्ट वियोग जन्य आर्त्तध्यान है।।१४।।

अनिष्ट संयोग आर्तध्यान

क्रूरैर्व्यंतरचौरवैरिमनुजैर्व्यालैमृगैरापदि
प्राप्तायां गरलादिकैश्च महती तन्नाशचिन्ताऽऽपदा
संयोगो न भवेत् सदा कथमिति क्लेशातिनुन्नं मनः
श्चार्त्तध्यानमनिष्टयोगजनितं जातदुरन्तैनसः।।१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(क्रूरैः) क्रूर (व्यन्तरचौरवैरिमनुजैः) व्यन्तर, चौर, वैरी मनुष्य (व्यालैः) सिंह (मृगैः) पशु (च) और (गरलैः) विषादि के द्वारा (आपदि) आपत्ति (प्राप्तायां) आ जाने पर (महती) महान (तन्नाशचिंता) उसके नाश की चिन्ता (कथं) किसी प्रकार से भी (आपदासंयोगः) आपत्ति का संयोग (न) नहीं (भवेत्) होवे (इति) इसप्रकार (सदा) हमेशा (क्लेशातिनुन्नं) क्लेश से पीड़ित (मनः) मन (दुरन्तैनसः) पाप से (जातं) उत्पन्न (मनिष्टवियोगजनितं) इष्ट वियोग जनित (आर्तध्यानं) आर्त्तध्यान है।

भावार्थ–क्रूर, व्यन्तर, चौर, वैरी मानव, व्याल, मृग, विष आदि पदार्थों के द्वारा आपत्ति आने पर, उस आपत्ति के नाश की चिन्ता उत्पन्न होती है। मेरे अनिष्ट पदार्थों का संयोग न हो। इस प्रकार की चिन्ता से चित्त निरन्तर आकुलित रहता है। वह पापों का कारण भूत अनिष्ट संयोग नाम द्वितीय आर्त्तध्यान है।।१५।।

वेदनाजन्य आर्त्तध्यान

बाधासंजनितार्तमर्तिनिहित स्वान्तं नितान्तस्थिरं
तीव्राद्विश्वपरीषहान्मम कदा विश्लेष इत्यंगिनः।
दीनस्यास्तविशिष्टवस्तुविषयज्ञानस्य न स्यात्कथं
क्लेशाल्या मम जातु संगम इति क्लिष्टं च तस्यात्मनः।।१६।।

अन्वयार्थ–(तीव्रात्) तीव्र (विश्वपरीषहात्) विश्वपरावह से (मम) मेरा (विश्लेषः) वियोग (कदा) कब (स्यात्) होता (वा) अथवा (क्लेशाल्या) क्लेशों के समूह का (मम) मेरे (जातु) कभी भी (संगमः) संयोग (न) नहीं (स्यात्) होवे (इति) इस प्रकार (अस्त विशिष्ट वस्तु विषय विज्ञानस्य) अस्त हो गया है विशिष्ट वस्तु विषय का विज्ञान जिसका ऐसे (दीनस्य) दीन (अंगिनः) प्राणी का (मनः) मन (क्लिष्टं) क्लेशित होता है। (च) और (आर्त्तनिहितं) दुःख में क्षिप्त (स्वांतं) मन (नितान्तस्थिरं) अत्यन्त स्थिर रहता है (तत्) वह (बाधासंजनितार्त्तमतिनिहितं) रोग से उत्पन्न आर्त्तध्यान में निहित ध्यान (स्यात्) होता है।

भावार्थ–तीव्र विश्व परीषहों से मेरा वियोग कब होगा। अथवा क्लेशों के समूह का मेरे कभी संयोग न होवे इस प्रकार की चिन्ता से नष्ट हो गया या विशिष्ट विज्ञान जिसका, ऐसे दीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणी का मन जब क्लेशित होता है और दुःख में मन अत्यन्त स्थिर रहता है वह रोगों से उत्पन्न (वेदना जन्य) आर्त्तध्यान है।।१६।।

निदानजन्य आर्त्तध्यान

नानोपायचयेन नीचचरितैर्भ्रान्त्वा विशालामिला-
माभीलं मकराकरं च वहुशो तुच्छोच्छया प्राप्य यत्।
प्राप्यं पुण्यवता जनेन कनकं कान्तं च कान्तादिकं
तत्कांक्षाक्षुभिता मितर्वत् निदानार्तं महार्तिप्रदम्।।१७।।

अन्वयार्थ–(नासोपायचयेन) नाना प्रकार के उपायों के समूह के द्वारा (नीचचरितैः) नीच आचरणों के द्वारा (विशालां) विशाल (इलां) पृथ्वी पर (भ्रान्त्वा) भ्रमण करके (च) और (बहुशः) बहुत बार (तुच्छेच्छया) तुच्छ इच्छा से (आभीलं) भयंकर (मकराकरं) समुद्र को (प्राप्य) प्राप्त करके (पुण्यवता) पुण्यवान (जनेन) मानव के द्वारा (प्राप्यं) प्राप्त करने योग्य (यत्) जो (कनकं) सुवर्ण (च) और (कान्तं) मनोज्ञ (कांतादिकं) कान्ता आदि है (तत्काक्षाक्षुभिता) उस धनादि की इच्छा से क्षुक्षित (मतिः) मति है (महार्तिदं) महान अर्ति को देने वाला (निदानार्त्तं) निदान नामक आर्त ध्यान है (वत) यह खेद की बात है।

भावार्थ–अनेक प्रकार के उपायों तथा नीच आचरणों के द्वारा विशाल पृथ्वी पर भ्रमण करके तथा भयंकर समुद्रों की अवगाहना करके प्राप्त योग्य धन, धान्य, मनोज्ञ स्त्री आदि के प्राप्ति को वांछा से जो मन क्षोभित होता है मझे ये संसारिक सुख प्राप्त हों ऐसी मानसिक आकुलता है। वह महान दुःख को देने वाला निदान नामक आर्त ध्यान है।।१७।।

आर्त्तध्यान की निरुक्ति व फल

ग्लान्यश्रूद्गमशोकशोषजडतामूर्छागकंपोत्कता
निःश्वास स्वरभंगकार्ष्ण्यकृशतामौनाऽभिवीक्षामृति।
प्रस्वेदाऽनिमिषेणास्थितिरुजायाञ्चामृषोक्तयादयः
स्पष्टाः स्वस्य परस्य वाऽऽर्त्तजनितास्तज्ज्ञापकाः कायिकाः।।१८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ग्लान्यश्रूदगमशोकशोषजडतामूर्छांगकंपोत्कता) ग्लानि, अश्रुओं का निकालना, शोक, रोष, जड़ता, मूर्च्छा, अंग की कंपन (निःश्वासस्वरभंगकार्ष्ण्यकृशतामौनाऽभिवीक्षामृतिप्रस्वेदा अनिभेषणास्थिति रूजायाञ्चामृषोक्त्पादयः) दीर्घ निश्वास, स्वर, भंग, कृष्ण कृशता, मौन, बार बार देखना, मृत्यु, बार-बार पसीना आना, अनिभिषेण से देखना, अस्थिरता रोग, याचना, असत्य भाषण आदि (स्वस्य) अपने और (परस्य) पर के (तज्ज्ञापकाः) आर्तध्यान की ज्ञापक (वा) अथवा (आर्तजनिता) आर्त्तध्यान से जनित (कायिका) काय की चेष्टा (स्पष्ट) स्पष्ट देखी जाती है।

भावार्थ–ग्लानि, बार-बार आँखों से अश्रुधारा निकलना, शोक, कंठ का शोष होना, जड़ता होना, मूर्च्छा होना, शरीर में कम्पन होना, निश्वास चलना, स्वर देखना, मृत्यु होना, शरीर में पसीना निकलना, बिना निमेष देखना रोग याचना असत्य भाषण आदि, स्व के और पर के आर्तध्यान से उत्पन्न काय की चेष्टाएँ हैं।।१८।।

अर्तिर्दुःखमसातजातजनितं स्यादार्त्तमर्तौ भवं
पापाऽऽदाननिदानमार्द्रसिचय यद्वद्रजः संश्रयम्।
मिथ्यादृष्टिगुणादिषड्गुणपदं येन प्रमादास्पदं
दुर्लेश्यात्रयजं सुदुःखजनकं तिर्यग्गतिप्रापकम् ।।१९।।

अन्वयार्थ–(असातजातजनितं) असाता वेदनीय से उत्पन्न (दुःखं) दुख (अर्त्तिः) है (अतौ) अर्ति में (भवं) होने वाला (आर्त्त) आर्त्त (स्यात्) होता है (यद्वद्) जिस प्रकार (आर्द्रसिंचयं) गीला वस्त्र (रजःसंश्रयं) रज से संश्रय का कारण है उसी प्रकार आर्त्तध्यान (पापनिदानं) पाप के आदान का कारण है (येन) जिससे (मिथ्यादृष्टिगुणादिषड्गुणपदं) मिथ्यात्वादि षट् गुण स्थान होते हैं (प्रमादास्पदं) प्रमाद का स्थान है (दुःखजनकं) दुःख का जनक है (तिर्यग्गतिप्रापकम्) और तिर्यंच गति का प्रापक है।

भावार्थ–असाता वेदनीय से उत्पन्न होने वाले दुःख को अर्ति कहते हैं। और आर्त से होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है। जिस प्रकार आर्द्र वस्त्र धूलि के संचय का कारण होता है उसी प्रकार आर्तध्यान पाप के आदान का कारण है। मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्त गुणस्थान तक आर्त्तध्यान का अस्तित्व है। यह प्रमाद का स्थान है, तीन अशुभ लेश्या से उत्पन्न होता है, दुःख जनक है और तिर्यंच गति में ले जाने वाला है।।१९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रौद्रध्यान के भेद

हिंसानन्दमसातकारणगणैर्हिंसारुचिर्देहिनां
भेदच्छेद विदारणासुहरणैरन्यैश्च तैर्दारुणैः।
शेषेर्ष्याद्युदितैरसत्यवचनैरन्यस्य हान्या मृषा-
नंदंरौद्रमसातसन्ततिपदे मिथ्याप्रलापे रुचिः।।२०।।

अन्वयार्थ–(भेदच्छेदविदारणसुहरणैः) भेद, च्छेद, विदारण, प्राणहरण आदि के द्वारा (अन्येः) अन्य भी (तैः) उन (दारुणैः) दारुण (असातकारणगणैः) असात कारणों के समूह के द्वारा (देहिनां) प्राणियों की (हिंसारुचिः) हिंसा में रुचि करना (हिंसानंदं) हिंसानन्द नामक प्रथम रौद्रध्यान है (शेषेर्ष्याद्युदितैः) शेष ईर्ष्या आदि से कथित (असत्यवचनैः) असत्य वचनों के द्वारा (अन्यस्व) दूसरे की (हान्या) हानि के लिए (असातसन्ततिपदे) असाता की सन्तति के स्थान (मिथ्या प्रलापे) मिथ्याप्रलाप में (रुचिः) रखना (मृषा) मृषानन्द नामक द्वितीय (रौदं) रौद्र ध्यान है।

भावार्थ–दुःख के कारण भूत शस्त्र आदि के द्वारा छेदन, भेदन विदारण आदि दारूण कारणों से प्राणियों के हिंसा में आनन्द मानना हिंसानन्द नामक रौद्र ध्यान है। क्रोध, ईर्ष्या आदि के वशीभूत होकर किसी के धन, यश के घात करने के लिए असत्य प्रलाप में रुचि करना मृषानन्द नामक द्वितीय आर्त्तध्यान है।।२०।।

स्तेयानन्दमवाप्य यत्परधनं वंद्यादिनिंद्येहितै-
रानंदित्वमवाप्तुमुत्सुकतरं चेतश्च तैस्तद्भवेत्।
स्वं संरक्ष्य विपक्षदूरमुदिता तोषोग्रता या तुसं-
रक्षानन्दमपि स्ववस्तु निखिलं निर्वैरि कुर्वे इति।।२१।।

अन्वयार्थ–(तैः) उन (वन्द्यादिर्निंद्येहितैः) वन्द्यादि निन्दनीय चेष्टाओं के द्वारा (परधनं) दूसरे के धन को (अवाप्य) प्राप्त करके (आनन्दित्वं) आनन्दत्व को (अवाप्तुं) प्राप्त करने के लिये (उत्सुकतरं) उत्सुकतर (चेतः) चित्त है (तत्) वह (स्तेयानंद) स्तेयानन्द (भवेत्) होता है (स्वं) धन की (संरक्षा) रक्षा करके (या) जो (विपक्षदूरमुदितातोषोग्रता) विपक्ष के दूर करने में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्षित होकर उग्र सन्तोष है वह (संरक्षानन्दं) संरक्षानन्द नामक रौद्र ध्यान है (अथवा) मैं (निखिलं) सारी (स्ववस्तु) अपनी वस्तु को (निर्वैरि) वैर रहित (कुर्वे) करता हूँ (इति) इस प्रकार के विचार का नाम भी संरक्षानन्द रौद्रध्यान है

भावार्थ–वंध वंधन आदि निंदनीय चेष्टाओं के द्वारा दूसरे के धन को प्राप्त करके आनन्द को प्राप्त करने के लिए जो चित्त की उत्सुकता है उसको स्तेयानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। अपने धन की रक्षा करने के लिए विपक्ष को दूर करने में जो सन्तोष होता है अथवा मेरी समस्त वस्तुओं को वैरियों को दूर करके वस्तु को निर्विघ्न रखता हूँ, ऐसा चिंतवन है उसको संरक्षणानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।।२१।।

रौद्रध्यान की निरुक्ति और फल

अक्षापाटवमाननाऽक्ष्यरुणता दाहश्च देहे महान्
हेत्युत्क्षेपविरुक्षवाग्भृकुटयः शक्तिप्रशंसात्मनः।
स्वेदस्वाधरनिष्ठुरग्रहकराघातांगकंपादयः
कायाकांः स्वपरावबोधविषयास्तद्रौद्रभावोद्भवाः।।२२।।

अन्वयार्थ–(अक्षापाटवं) इन्द्रिय के विकलता (आननाक्ष्यरुणता) आँख मुख का रक्त होना (देहे) शरीर में (महान्) महान (दाहः) दाह (हेत्युत्क्षेपविरूक्षवाग्भृकुटयः) शस्त्र का उत्क्षेपण, विरूक्ष वचन बोलना, भृकुटिका चढ़ना (आत्मनः) अपनी (शक्तिप्रशंसा) शक्ति की प्रशंसा (स्वेदस्वाधरनिष्ठुरग्रहकराघातांगकंपादयः) पसीना आना, अपने अधरों को निष्ठुरता से ग्रहण, हाथों का घात अंग का कम्पन आदि होना (स्वपरावोधविषयाः) स्व और पर के दृष्टिगोचर होने वाले (तद्रौद्रवाभोद्भवाः) उस रौद्र भाव से उत्पन्न (कायांकाः) कायिक चिह्न है।

भावार्थ–इन्द्रियों की विकलता, आंख और मुख की लालिमा का होना, शरीर में महादाह, शस्त्र का उत्क्षेपण कठोर वचन बोलना, भृकुटि का चढ़ाना, अपनी शक्ति की प्रशंसा करना, शरीर में पसीना आना, होठों का दंशन (काटना) हाथों का घात प्रतिघात, अंगों का कम्पन आदि स्व और पर के दृष्टिगोचर होने वाले रौद्रध्यान जन्य शरीर के चिह्न है।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुदःक्रूरतराशयो गतदयो रौद्रं हि रुद्रेभवं
आर्द्र चर्म यथोरुधूलिनिलय तद्वत्कुकर्मालयम्।
पंचस्वादिगुणेषु तीव्रतरतत्कृष्णात्रिलेश्योद्गत
प्रोद्यतीव्रतरार्त्तिनारकगतिप्राप्तोर्निमित्तं मनम्।।२३।।

अन्वयार्थ–(क्रूरताशयः) क्रूर चित्त वाला (गतदयः) दया रहित भाव (रुद्रः) रूद्र है (हि) निश्चय से (रौद्रे) रौद्र में (भवं) होने वाले परिणाम (रौद्रं) रौद्र ध्यान है (यथा) जैसे (आर्द्र) आर्द्र (चर्म) चमड़ा (उरुघूलिनिलयं) महान धूलि का स्थान होता है (तद्वत) उसी प्रकार (कुकर्मालयम्) कुकर्मों का स्थान है (पंचसु) पाँच मिथ्यात्व आदि गुण स्थानों में (तीव्रतरतत्कृष्णात्रिलेश्योद्गतं) तीव्रतर कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या से उत्पन्न (प्रोद्यत्तीव्रतरार्त्तिनारकगतिप्राप्तः) और उत्पन्न तीव्रतर अर्त्ति से नारक गति प्राप्ति का (निमित्तं) निमित्त (मतं) माना है।

भावार्थ–निर्दयता सहित चित्त की क्रूरता रुद्र है और रुद्र में होने वाला भाव रौद्र है। जिस प्रकार आर्द्र चर्म महान धूलि का स्थान होता है। उसी प्रकार रौद्रध्यान महान कुकर्मों का आलय (स्थान) है। मिथ्यात्वादि पांच गुण स्थानों में रौद्र ध्यान होता है, तीव्रतर कृष्ण नील कापोत लेश्या इसकी जननी है। यह नरक गति का कारण है।।२३।।

"शुभध्यान" का क्षेत्र बध्याता

ध्याताऽपेतजनोक्तगीतविततताऽऽतोद्याविकोलाहले
स्थाने स्थावरजंगमांगिरहिते पूते नितांतं समे।
निश्छिद्रै निरुपद्रवे पृथुशिलेलाद्ये मुखस्पर्शिनि
प्रध्यानाभिरतः स्थितो न नियमः स्वभ्यस्तयोगे स्वयम्।।२४।।

अन्वयार्थ–(अपेतजनोक्तगीतविततताऽऽतोद्यादिकोलाहले) मनुष्यों के द्वारा गाये गये गीत का समूह वादित्र आदि कोलाहल से रहित (स्थावरजंगमागिरहिते) स्थावर और जंगम प्राणियों से रहित (पूते) पवित्र (नितांतं) अत्यन्त (समे) समान (निश्छिद्रे) निश्छिद्र (निरुपद्रवे) निरुपद्रव (सुखस्पर्शिनि) सुख स्पर्श वाली (पृथुशिलेलाद्ये) विस्तरित शिला, पृथ्वी आदि पर (स्थितः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थित (ध्याता) ध्यान करने वाला (प्रध्यानाभिरतः) उत्कृष्ट ध्यान में लीन होता है (तु) परन्तु (अभ्यस्तयोगे) अभ्यस्त योग में (अहं) यह (नियमः) नियम (न) नहीं है।

भावार्थ–मानवों के द्वारा गाये गये गीत वादित्र कोलाहल और त्रस स्थावर आदि जीवों से रहित पवित्र निश्छिद्र, निरुपद्रव, समान, सुख स्पर्श वाली शिक्षा या पृथ्वी आदि पर बैठकर ध्याता ध्यान करता है। ऐसा स्थान ध्यान के योग्य माना है। परन्तु जो अभ्यस्त योगी है, उनके लिए विशेष स्थान का नियम नहीं है।।२४।।

यानांगावयवप्रचालनवचोजृंभाद्यभावो मुनि-
र्व्युत्सर्गेण समावलंवकशिलास्तंभो निखातो यथा।
पर्यंकेन यथासुखं स्वमनसः शय्यादिभिर्वा स्थितो
निःसंगोऽस्तसमस्तबाह्यविषयण्यापृत्यशेषेन्द्रियः।।२५।।
प्राणापानविनिग्रहादतितरां भ्रांतिर्मतेरूच्छ्वस-
न्मन्दं मन्दमतो न नेत्रयुगलं सम्यग्निमीलन्न च।
प्रोन्मीलन्दशनैर्मनाग्दशनपत्त्यग्राणि विम्रन्मनः-
शांतिं मूर्त्तिमतीमिवार्त्तिजयिनीं स्वां मूर्त्तिमप्यूर्जिताम् ।।२६।।
सद्दृष्टिर्मुदुताऽऽर्जवादिसहितः श्रेण्योरशेषश्रुतः
स्याद्र ध्याता दशपूर्वपिच्च नवपूर्वज्ञो परत्राऽपि च।
ध्येयन्यस्तमना निरस्तनियमः कालेषु संध्यादिषु
निर्वाणोचितमाद्यसंहननमेवाऽस्मिन्पुनर्ध्यातरि।।२७।।त्रिकं।

अवन्यार्थ–(यानांगावयवप्रचालनवचोजृंभाद्यभावः) गमन, अंग के अवयव का प्रचालन, वचन, जंभाई आदि का अभाव है जिसके (यथा) जैसे (निखातः) खोदा हुआ (समावलंबकशिलास्तंभों) स्थित शिला का स्तम्भ है उसी प्रकार (व्युत्सर्गेण) व्युत्सर्ग से (पर्यकेण) पर्यकासन से (वा) अथवा (स्वमनसः) अपने मन की (यथा) जैसे (सुखं) शांति के अनुसार (शय्यादिभिः) शय्या (आसन) आदि से (स्थितः) स्थित (निःसंगः) निसंग (अस्तसमस्तंबाह्यविषयापृत्यशेषेन्द्रियः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नष्ट हुये समस्त विषयो से व्यावृत है अशेष इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा (मुनिः) मुनि (प्राणापानविनिग्रहादतितरां) श्वासोच्छ्वास के निग्रह से (मन्दं-मन्दं) मन्द मन्द (उच्छ्वसन) श्वास लेता हुआ (मतेः) मति की (अतितरां) अत्यन्त (भ्रान्तिः) भ्रान्ति वाला (अतः) इसलिये (नेत्रयुगलं) नेत्रयुगल को (सम्यग्) भली प्रकार (न) नहीं (निमीलन्) वन्द करता हुआ (दशनैः) दान्तों के द्वारा (मनाग्) थोड़ी सी (दशनपंक्त्यग्राणि) दान्तों की पक्ति के अग्रभाग को (च) और (स्वां) अपनी (ऊर्जितां) ऊर्जित (मूर्ति) शरीर को (अपि) भी (मूर्तिमतीं) मूर्मिमान के (इव) समान (आर्तिजयिनी) आर्त्त ध्यान के विजय को (विभ्रन्) धारण करता हुआ (सदृष्टिः) सम्यग्दृष्टि (मृदुताऽऽआर्जवादिसहितः) मृदुता आर्जव आदि से सहित (दशपूर्ववित्) दश पूर्व को जानने वाला (नवपूर्वज्ञः) नौ पूर्व का ज्ञाता (श्रेण्योः) दोनों श्रेणी पर आरूढ़ (च) और (अशेष श्रुतः) अशेष श्रुत को जानने वाला केवली (परत्रापि) अन्यत्र भी (ध्येयन्यस्तमना) ध्येय में स्थित है मन जिसका (सन्ध्यादिषु) तीन संध्याओं के (कालेषु) कालों में (निरस्तनियमः) निरस्त नियम वाला (मुनिः) मुनि (ध्याता) ध्यान करने वाला (श्यात्) होता है। (पुनः) और (अस्मिन्) इस (ध्यातरि) ध्यान करने वालों में (निर्वाणोचितं) निर्वाण के उचित (आद्यं) प्रथम (संहननं) संहनन (एवं) ही होता है।

भावार्थ—जिसके गमन के समय अंग की चंचलता, वचन, जंभाई आदि का अभाव है, जो शिला में अंकित स्तम्भ के समान कार्योत्सर्ग से अचल खड़ा है अथवा पर्यंकासन से बैठा है, यथायोग्य शय्या आदि से भी स्थित है, परिग्रह रहित है, समस्त इन्द्रियों के व्यापार से शून्य है, प्राणापान के निरोध से अत्यन्त मन्दमन्द श्वासोच्छ्वास ले रहा है, जिसके नेत्र अर्द्धोन्मीलित हैं दातों की पंक्ति दांतों पर धारण किये हुये हैं, मन अत्यन्त शांत है, आर्तध्यान को जीतने वाली अत्यन्त सौम्य शरीर की आकृति को धारण करता है, क्षपक श्रेणी तथा उपशम श्रेणी पर आरूढ़ है। नव पूर्व या दशपूर्व का ज्ञाता सम्यग्दृष्टि आर्जवादि गुणों से युक्त होकर ध्येय में व्यस्त है मन जिसका ऐसा तीनों काल की संध्या के समय में निरस्त नियम से ध्याता होता है। इस ध्याता के निर्वाण योग्य प्रथम संहनन होता है॥२५-२७॥

धर्म्यध्यान के भेद

धर्म्य शुक्लमिति द्विभेदमुदितं सद्ध्यानमाद्यंतयो-
राज्ञाऽपायविपाकगाच्च विचयात्संस्थानगात्स्पाच्चतु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदं भूरि विकल्पजालकलितं जैनान्नयान्नैगमा-
त्सर्वं सर्वविदो वचो न हि नयापेतयतो वस्तु च।।२८।।

अन्वयार्थ–(सद्ध्यानं) सद्ध्यान (धर्म्यं) धर्मध्यान (शुक्लं) शुक्ल ध्यान (इति) इस प्रकार (द्विभेदं) दो प्रकार (उदितं) कहा है (तयो) उन दोनों में (आद्यं) धर्मध्यान (आज्ञापायविपाकगात्) आज्ञा, अपाय, विपाक (संस्थानगात्) संस्थान का (विचयात्) विषय होने से (चतुर्भेदं) चार प्रकार का है (जैनात्) जिनेन्द्र भगवान के (नैगमात्) नैगम (नयात्) नय की अपेक्षा से (भूरिविकल्पजालकलितं) बहुत से विकल्प जाल से कलित है (यतः) क्योंकि (सर्वविदः) सर्वज्ञ भगवान के (सर्वं) सब (वच) वचन (च) और (वस्तु) वस्तु (नयापेतं) नय से रहित (न) नहीं है।

भावार्थ–सद्ध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भेद से दो प्रकार का है। आज्ञाविचय, अपायविच, विपाकविचय और संस्थानविचय के भेद से धर्मध्यान चार प्रकार का है। नैगमनय की अपेक्षा धर्मध्यान अनेक प्रकार का है। सर्वज्ञ के वचन और अखिल वस्तु नय रहित नहीं है।।२८।।

आज्ञा विचय धर्मध्यान

विज्ञातुं न तु शक्यमावृतियुताध्यक्षानुमानादिना-
त्यक्षानंतविषर्त्तवर्त्तिसकलं वस्त्वस्तदोषार्हताम्।
आज्ञावाग्विचयस्तयोक्तमनृतं नैवेति तद्वस्तुन-
स्चिन्ताज्ञाविचयो विदुर्नयचयः संज्ञानपुण्योदयः।।२९।।

अन्वयार्थ–(अत्यक्षानंतविषर्त्तवर्त्तिसकलं) इन्द्रियातीत अनन्त पर्यायवर्ति सकल (वस्तु) वस्तु (आवृतियुताध्यक्षानुमानादिना) आवरण युक्त प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमानादि के द्वारा (विज्ञातुं) जानने के लिए (शक्यम्) शक्य (न) नहीं है। (तु) परन्तु (अस्तदोषार्हताम्) बीतरागी अर्हंत की (आज्ञावाग्विचयस्तयोक्तमनृतं) आज्ञा से वचनों का विचार है कि (तया) भगवान की आज्ञा से (उक्तं) कहा गया वस्तु का स्वरूप (अनृतं) असत्य (नैव) नहीं है (इति) इस प्रकार (तद्वस्तुनः) उस वस्तु का (चिंता) चिन्तवन (संज्ञानपुण्योदयः) संज्ञान और पुण्य का उदयभूत (नयचयः) नय का समूह (आज्ञाविचयः) आज्ञा विचय है।

भावार्थ–इन्द्रियातीत अनन्त पर्याय वर्ती सकल वस्तु, आवरण युक्त इन्द्रिय ज्ञान और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमान ज्ञान के द्वारा जानना शक्य नहीं है। परन्तु वीतराग अर्हत भगवान की आज्ञा से निश्चय किया जाता है कि भगवान की आज्ञा से कथित वस्तु असत्य नहीं हो सकती ऐसा वस्तु का चिंतवन करना आज्ञाविचय नाम का धर्मध्यान है।।२९।।

अपायविचय धर्मध्यान

दुःकर्मात्मदुरौहितैरुपचितं मिथ्याविरत्यादिभि-
र्व्यापज्जन्म जरामृतिप्रभृतयो वांऽपाय एनः कृताः।
जीवेनादिभवे भवेत्कथमतोऽपायादपायः कदा
कस्मिन्केनममेत्यपायविचयः सत्कारणादीक्षणम्।।३०।।

अन्वयार्थ–(जीवेन) जीव के द्वारा (आदिभवे) पूर्व भव में (मिथ्याविरत्यादिभिः) मिथ्यात्व, अविरति आदि (आत्मदुरीहितैः) अपनी दुश्चेष्टाओं के द्वारा (उपचितं) उपार्जित (दुष्कर्म) दुष्कर्म (वा) अथवा (एनःकृताः) पाप कृत (व्यापज्जन्मजरामृतिप्रभृतयः) आपत्ति, जन्म, जरा, मृत्यु प्रभृति (अपायः) अपाय है (अतः) इस (अपायात्) अपाय से (मम) मेरा (अपायः) निराकरण (कदा) कब (भवेत्) होगा (इति) इसप्रकार (सत्कारणात्) सत्कारणों से (ईक्षणं) चिंतवन करना (अपायविचयः) अपाय विचय है।

भावार्थ–अज्ञानी जनों के द्वारा भव भवों में मिथ्यात्व अविरति के द्वारा उपार्जन किये हुए दुष्कर्मों का नाश कैसे होगा। अथवा पाप से उत्पन्न मेरी जन्म जरा मृत्यु आदि व्याधियों का नाश कब होगा, कहां पर होगा, किस कारणों से होगा, ऐसा विचार करना अपाय विचय नामक धर्मध्यान है।।३०।।

विपाकविचय

गत्यादौ परिणामतस्तनु भृतां प्राप्तोदयोदीरणं।
क्लेशाश्लेषकरं सुखोत्करकरं कर्माशुभं तच्छुभम्।
शक्त्या युक्तमसंख्यलोकमितषट् स्थानान्वितंस्थानया
इत्येवं विचयो विपाकविचयः प्रत्यस्तदोषोच्चयः।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(गत्यादौ) गति आदि में (परिणामतः) परिणामों से (तनुभृतां) प्राणियों के (प्राप्तोदयोदीरणं) प्राप्त है उदय और उदीरणा जिन्हों की ऐसे (क्लेशाश्लेषकरं) क्लेशों को करने वाले और (सुखोत्करकरं) सुख को करने वाले (असंख्यलोकमितषट्स्यानान्वितस्थानया) असंख्यात लोक प्रमाण, षट् स्थान से अन्वित (शक्तत्या) शक्ति से (युक्तं) युक्त (अशुभं) अशुभ (तच्छुभं) वह शुभ (कर्म) कर्म है। (इत्यवं) इसप्रकार (विचया) विचार करना (प्रत्यस्तदोषोच्चयः) नष्ट हो गया है दोषों का समूह जिसका ऐसा (विपाकविचयः) विपाक विचय है।

भावार्थ–गति आदि में अपने परिणामों से उपार्जन किये हुये जीव के शुभाशुभ कर्म सुख दुःख देने वाले हैं, वे असंख्यात लोक प्रभाव शक्ति से युक्त है, ऐसा विचार करना निर्दोष विपाकविचय नामक धर्म ध्यान है। अर्थात् यह जीव अपने उपार्जन किये हुये कर्मों के अनुसार सुखी दुःखी होता है–ऐसा विचार करना भी विपाकविचय नामक ध्यान है।।३१।।

संस्थान विचय

सस्थानं यदनित्यताऽशरणता संसार एकाकिता-
ऽन्यत्वं चाशुचिताऽऽस्रवः सुनयतः स्यात्संवरो निर्जरा।
लोको बोध्यतिदुर्लभत्वमपरो धर्मस्तदित्यन्वितं
भेदैः स्वैर्विचयोऽस्य चिंतनमनुप्रेक्षा स्मृतं द्वादश।।३२।।

अन्वयार्थ–(अनित्यता) अनित्य (अशरणता) अशरण (संसारः) संसार (एकाकिता) एकत्व (अन्यत्वं) अन्यत्व (अशुचिता) अशुचित्व (आस्रवः) आस्रव (च) और (सुनयतः) सुनय से (संवरः संवर (निर्जरा) निर्जरा (स्यात्) होती है (लोकः) लोक (बोध्यातिदुर्लभत्वं) बोधि की अति दुर्लभता (अपरः) उत्कृष्ट (धर्मः) धर्म (इति) इसप्रकार (द्वादश) बारह (अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षायें हैं (तत्) उसका (स्वैः) अपने-अपने (भेदैः) भेदों से (अन्वितं) युक्त (यत्) जो (चिंतवनं) चिन्तवन करना है। (संस्थानं) संस्थान विचय ध्यान है।

भावार्थ–अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म ये बारह भावनाओं के द्वारा चिंतवन करना संस्थान विचय है। अथवा लोक के आकार का चिंतवन करना संस्थानविचय है।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बारह अनुप्रेक्षा-अनित्य भावना

उत्पत्तिः प्रलयश्च पर्ययवशाद्द्रव्यात्मना नित्यता
वस्तूनां निचये प्रतिक्षणमिहाज्ञानाज्जनो मन्यते।
नित्यत्वं द्रवदंबुदीपकलिकास्थैर्य यथार्थादिके
नष्टे नष्टयुतिः करोति बत शोकार्ती बृथाऽऽत्मीयके।।३३।।

अन्वयार्थ–(इह) इस लोक में (वस्तूनां) वस्तुओं के (निचये) समूह में (प्रतिक्षणं) प्रतिक्षण (द्रव्यात्मना) द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा (नित्यता) नित्यता है। (पर्यायवशात्) पर्याय की अपेक्षा (उत्पत्तिः) उत्पत्ति (च) और (प्रलयः) विनाश है (आज्ञानात्) अज्ञान से (जनः) जन (द्रवदम्बुदीपकलिकास्थैर्यं) नष्ट होने वाले पानी और दीपक की कलिका में स्थिरता (नित्यत्वं) नित्यत्व (मन्यते) मानता है (यथा) जिससे (आत्मीयके) अपने (अर्थादिके) धनादि के (नष्टे) नष्ट हो जाने पर (नष्टघृतिः) नष्ट हो गया है धैर्य जिसका ऐसा मानव (वृथा) व्यर्थ (शोकार्ती) शोक और दुःख को (करोति) करता है।

भावार्थ–प्रतिक्षण में वस्तु के समूह में द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्यत्व है, और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उत्पत्ति और विनाश है। परन्तु अज्ञानीजन निकलते हुये पानी और दीपक की कलिका में नित्यत्व मानता है जिससे अपने धनादि के नाश होने पर व्यर्थ में खेद खिन्न होता है अर्थात् पर्याय की अपेक्षा कोई वस्तु नित्य नहीं है। सर्व क्षणिक है ऐसा चिंतवन करना अनित्य भावना है।।३३।।

अशरण भावना

मंत्रास्तंत्रततिस्तदन्वितकृतिर्दुर्गा द्विषद्दुर्गमा
भृत्याः किं न भृताः सुहृत्ततिरपीत्येतेषु, सत्सप्यगुः।
सर्वे पूर्वमहीभूतः क्षतिमतः कस्यापि कालत्रये-
त्राताऽत्रास्ति न नाशमीयुषि पुरा पुण्याङ्गिते वाऽऽयुषि।।३४।।

अन्वयार्थ–(मंत्रा) मंत्र (तंत्रततिः) तंत्रों का समूह (तदन्वितकृतिः) मंत्र तंत्र के जानने वाले की कृति (द्विषद्दुर्गमाः) शत्रुओं से दुर्गम (दुर्गाः) किले (सुहृत्ततिः) मित्रों का समूह (भृत्याः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौकर (भृताः) रक्षक थे। (एतेषु) इनके (सत्सु) होने पर (अपि) भी (सर्वे) सर्व (पूर्वमहीभृतः) पूर्व राजा लोग (कि) क्या (क्षतिं) नाश को (न) नहीं (अगुः) प्राप्त हुये (अतः) इसलिये (अत्र) इस लोक में (कालत्रये) तीनों कालों में (पूर्वोपार्जिते) पूर्व में उपार्जित (आयुषि) आयु के (नाशं) नाश (ईयुषि) हो जाने पर (कस्यापि) किसका का भी (त्राता) रक्षक (न) कोई नहीं (अस्ति) है।

भावार्थ—पूर्वोपार्जित आयु के नाश हो जाने पर, कोई किसी को मरण से बचा नहीं सकता। बड़े-बड़े नरेश, मंत्र, तंत्र, भृत्यों के समूह, दुर्गम, किला आदि रक्षक नहीं होते हैं। अर्थात् मृत्यु से बचाने के लिए कोई समर्थ नहीं है। यह अशरण भावना है।।३४।।

संसार भावना

वृत्या जातिगतिष्वाप्तकरणोऽनंतांगहारः सदा
प्रोद्भूतिप्रलयो नरामरमृगाद्याहार्यपर्यायवान्।
हित्वा सात्विकभावजातमितरैर्भावैः स्वकर्मोद्भवैः-
जीवोऽयं नटवद्मत्यभिनवः सर्वत्र लोकत्रये।।३५।।

अन्वयार्थ—(वृत्या) पंच परिवर्त्तन रूप परिभ्रमण से (जातिगतिषु) ८४ लाख जाति और चार गतियों में (अवाप्तकरणः) प्राप्त किया है इन्द्रिय लाभ जिसने (अनंतसांगहारः) अपरिमित शरीर धारी (सदा) हमेशा (प्रोद्भूतिप्रलयो) उत्पत्ति और विनाशवान (नरामरमृगाद्याहार्यपर्यायवान्) नर, मानव, पशु आदि पर्यायों को धारण करने वाला (अयं) यह (जीवः) जीव (सात्विकभावजातं) सात्विक भाव से उत्पन्न अनन्त ज्ञानादि को (हित्वा) छोड़कर (इतरैः) इतर (स्वकर्मोद्भवैः) स्वकर्मों से उत्पन्न (भावैः) मिथ्यात्वादि भावों के द्वारा (अभिनवः) नूतन शरीर को धारण करके (सर्वत्र) सर्वत्र (लोकत्रये) तीन लोक में (नटवट्) नट के समान (भ्रमति) भ्रमण करता है।

भावार्थ—जैसे नट अनेक प्रकार के स्वांग बना करके अनेक हाव, भाव विलासों से नृत्य के अखाड़े में नृत्य करता है, उसी प्रकार यह जीव अपनी स्वाभाविक सहजानन्द अवस्था को छोड़ कर मिथ्यात्वादि विभावभावों के वशीभूत होकर नर, नारकी, तिर्यंच, देव आदि अनेक प्रकार के स्वांग को धारण करके ८४०००० योनियों में भ्रमण करता है। तीन लोक में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं रहा जहाँ इसने जन्म नहीं लिया हो, और ऐसी कोई पर्याय नहीं जिसको धारण नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया हो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप पांच परिवर्तनों को पूरा करता हुआ यह अनादि काल से संसार के दुःखों को भोग रहा है। यह संसार भावना है।।३५।।

एकत्व भावना

कोऽप्याप्तः स्वजनोऽनुगोऽस्ति न परो वा याति जन्मांतरं
जीवे जन्मनिवाऽत्र मित्रनिकरैः किं नाशितं वा हृतम्।
चित्रं गात्ररुजादिजं हृदयजं वाऽसातमेकस्ततो
मृत्युत्पत्तिनिवृतिषु प्रणयिनोऽन्येऽर्थेष्वनर्थे निजः।।३६।।

अन्वयार्थ–(आप्तः) प्राप्त (स्वजनः) स्वजन (अनुगः) साथ में चलने वाले (परः) दूसरा (कः) कोई (अपि) भी (जन्मान्तरं) जन्मान्तर में (न याति) साथ नहीं जाता है (वा) अथवा (अत्र) इस (जन्मनि) जन्म में (मित्र-निकरैः) मित्रों के समूह के द्वारा (चित्रं) चित्र (गात्ररुजादिजं) शरीर के रोगादि से उत्पन्न (वा) अथवा (हृदयजं) मानसिक (असातं) असाता (किं) क्या (नाशितं) किसी के द्वारा नाश की गई है (हृतं) अथवा हरी गयी है (मृत्युत्पत्तिनिवृतिषु) मरण, जन्म और निर्वाण में (एकः) जीव अकेला ही है। (अर्थेषु) धन के समय (अन्ये) दूसरे (प्रणयिनः) प्यारे बनते हैं (अनर्थे) पाप में (निजः) स्वयं ही जीव भागी होता है।

भावार्थ–इस संसार में इस जीव के माता-पिता, स्वजन, मित्र कोई भी परलोक में साथ जाने वाले नहीं हैं। और कोई न कोई मित्र आदि इस भव में उत्पन्न हुये शारीरिक, मानसिक असाता के दूर करने में समर्थ है। अकेला ही यह प्राणी दुःख सुख को भोगता है, अकेला जन्मता है, अकेला मरता है और अकेला ही मोक्ष में जाता है, धन पास में हो तो मित्र बनते हैं, परन्तु दुःख तो अकेले को ही भोगना पड़ता है। यह एकत्व भावना है।।३६।।

अन्यत्व भावना

चैतन्यं जडतैकताऽवयविसंदोहोदिताऽनेकता
नित्यत्वं क्षयिता च मूर्तिवियतिर्मूतत्वमित्यादिभिः।
भेदं देहिशरीरयोरगणयन् किं नेक्षते वृद्धिम्-
देहं खेदिनि देहिनि स्थितमतिकांतेऽत्र दुर्भित्रवत्।।३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अवयविसंदोहोदिताऽनेकता) अवयवी के समूह में प्रकट हुई (चैतन्यं) चैतन्य और (जड़ता) अचैतन्य (एकता) एकमेक है। (नित्यत्वं) चैतन्य नित्य है (च) और (क्षयिता) क्षणध्वंसी शरीर है इसलिये (अनेकता) शरीर और आत्मा में अनेकता है (मूर्तिवियतिः) मूर्ति के आश्रय है इसलिए (मूर्त्तत्वं) मूर्त है (इत्यादिभिः) इत्यादि के द्वारा (देहिशरीरयो) शरीर और आत्मा में (भेदं) भेद को (अगणयन्) नहीं मानता हुआ (खेदिनि) खेदकारी (देहिनि) आत्मा के (अतिक्रांते) निकल जाने पर (वृद्धिमत्) उत्कृर्षता को प्राप्त हुये (देहं) शरीर को (दुर्भित्रवत्) दुर्भिन्न के समान (अत्र) यहाँ पर (स्थितं) स्थित (किम्) क्या (न) नहीं (नेक्षते) देखता है।

भावार्थ–अवयवी के समूह से प्राप्त हुआ शरीर और आत्मा के एकता है। लक्षण को अपेक्षा भिन्नता है, क्योंकि आत्मा चैतन्य है और शरीर जड़ है। परन्तु मूर्तिमान आत्मा के साथ एकमेक हो रहा है। भिन्न दृष्टि गोचर नहीं होता है। आत्मा के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है ऐसा शरीर आत्मा के निकल जाने के बाद क्या यहाँ पड़ा हुआ नहीं दीखता है। दीखता ही है, साथ में नहीं जाता है, दूध पानी के साथ एक क्षेत्रागवाही होकर रहने वाला शरीर भी परलोक में साथ नहीं जाता है। वह भी आत्मीय नहीं है, तो पुत्र पौत्रादिक अपने कैसे हो सकते हैं। ऐसा विचार करना अन्यत्व भावना है।।३७।।

अशुचि भावना

रेतः शोणि जातिधातु निचितं प्रच्छादितं चर्मणा
सान्द्रोद्रिक्तगलन्मलं बहुविलैरंग जुगुप्सानुगाम्।
भीति किं न तनोत्यसंस्कृति बहिश्चर्मात्रगात्रे न चेत्
स्पृष्टं द्रष्टुमपि क्षमोऽस्ति किमिदं त्रातुपतज्यादितः।।३८।।

अन्वयार्थ–(रेतः शोणित जाति धातु निचितं) वीर्य, रक्त, जाति आदि धातुओं से व्याप्त (चर्मणा) चमड़े के द्वारा (प्रच्छादितं) आच्छादित (बहुविलैः) नाक, आँख, कर्ण आदि बहुत से बिलों से (सान्द्रोद्रिक्तगलन्मलं) अत्यन्त प्रवाह से बह रहा है मल जिसमें ऐसा (अगं) यह शरीर (जुगुप्सानुगां) ग्लानि का अनुकरण करने वाली (भीतिं) भय को (किं) क्या (न) नहीं (तनोति) विस्तारित करता है (चेत्) यदि (अत्र) इस (गात्रे) शरीर में (असंस्कृबतिहिश्चर्म) संस्कार रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहिर का चर्म (न) नहीं हो तो (किं) क्या (इदं) इस शरीर की (स्पृष्टुं) स्पर्श करने के लिए (द्रष्टुं) देखने के लिए (पतत्रयादितः) पक्षी आदि से (त्रातुं) रक्षा करने के लिए (क्षमः) कौन समर्थ (अस्ति) है अर्थात् नहीं हैं।

भावार्थ–यह शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न, सप्त धातुओं से निर्मित और चर्म से आच्छादित है, निरन्तर नव द्वारों से मल बहता रहता है, ग्लानि का स्थान है। यदि इस बाहर मनोज्ञ चर्म से आच्छादित नहीं होता तो इसका स्पर्श करने के लिए, देखने के लिए तथा काक आदि पक्षियों से रक्षा करने के लिये कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं इस प्रकार चिंतवन करना अशुचि भावना है।।३८।।

आश्रव भावना

देहे स्नेहयुते लगत्यविरतं रेणोर्गणोऽयं यथा
मिथ्यावृत्तकषाययोगकलुषेऽजस्त्रं सजंत्यंगिनि।
तद्वत स्वैक शरीरगाः सुमिलिताऽनताणवो वर्गणा
विश्वात्मावयवेष्वनंतगणना नो कर्मणा कर्मणाम्।।३९।।

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे (स्नेहयुते) तेल सहित (देहे) शरीर में (रेणोः) रेणु का (गणः) समूह (अविरतं) निरन्तर (लगति) लगता है (तद्वत) उसी प्रकार (विश्वात्यावृत्यकषाययोगकलुषे) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग से कलुषित (अंगिनि) संसारी आत्मा में (विश्वात्मावयवेषु) सारे आत्मा के अवयवों पर (अजस्त्रं) निरन्तर (स्वैकशरीरगाः) अपने एक शरीर को प्राप्त होने वाली (कर्मणां) कर्मों की (नोकर्मणां) नो कर्मों की (सुमिलिताऽनंताणवः) सम्यकप्रकार से मिली हुई अनन्त अणु जिसमें ऐसा (अनन्तगणना) अनन्त संख्या वाली (वर्गणा) वर्गणा (सजन्ति) प्राप्त होती है।

भावार्थ–जिस प्रकार तैल लिप्त शरीर में निरन्तर धूलि आकर चिपकती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूपी तैल लिप्त संसारी आत्मा के सर्व प्रदेशों में कर्म और नोकर्म रूप अनन्त पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड रूप वर्गणा निरन्तर आत्मा के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होती है और कषाय आदि भावों के द्वारा निरन्तर कर्मों का आश्रव होता है ऐसा चिंतवन करना आश्रव भावना है।।३९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवर भावना

दष्टे दुष्टविषाहिनांऽगिनि यथा नष्टप्रचेष्टेविषं
पुष्यज्जांगुलिकेन मंत्रबलिना संस्तंमितं तिष्ठति।
सम्यक्त्व व्रत निष्कषाय परिणामाऽयोगताभिस्तथा
मिथ्यात्वादित्ततुः स्वहेतु विगमान्नूत्लैन सा नागमः।।४०।।

अवन्यार्थ–(यथा) जैसे (दुष्टविषाहिना) दुष्ट विष वाले सर्प के द्वारा (दष्टे) काटने पर (नष्टप्रचेष्टे) नष्ट चेष्टा वाले (अंगिनी) प्राणी के हो जाने पर (पुष्यज्जांगुलिकेन) विष वैद्य के द्वारा अथवा (मंत्रबलिना) मन्त्र की शक्ति के द्वारा (विषं) विष (संस्तंमितं) कीलित हो जाता है (तथा) उसी प्रकार (सम्यक्त्वव्रतनिष्कषायपरिणामाऽयोगताभिः) सम्यक्त्व, व्रत, निष्कषायपरिणाम और अयोगता के द्वारा (मिथ्यात्वादिचतुः स्वहेतुविगमात्) मिथ्यात्वादि अपने चार कारणों के नाश हो जाने से (नूत्लैनसां) नूतन पापों का (आगमः) आगमन (न) नहीं (तिष्ठति) रहता है।

भावार्थ–जिस प्रकार भयंकर विषैले सर्प के काटने पर मूर्च्छित हुये मानव के विष को विष की चिकित्सा जानने वाला वैद्य वा मंत्रवादी कीलित कर देते हैं। अर्थात् उनके द्वारा विष का वेग दूर कर दिया जाता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन व्रत का निष्कषाय परिणाम योग का भावादि परिणामों के द्वारा मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप कर्मों के आने के द्वार के नाश हो जाने पर नवीन कर्मों का आगमन नहीं होता है ऐसा चिंतवन करना संवर भावना है।।४०।।

निर्जरा भावना

संश्लिष्टात्मललस्य निर्गलनतो निःशेषविश्लेषत-
श्चान्तर्बाह्यचतुःस्वहेतुवशतः स्वर्णोपले स्वर्णता।
यद्वद्देहिनि कर्मणोऽशगलनान्निःशेषविश्लेषतः
सम्यक्त्वग्रहणद्यनेककरणैस्तद्वद्विशुद्धात्मता।।४१।।

अन्वयार्थ–(यद्वत्) जैसे (अन्तर्बाह्यचतुः स्वहेतुविगमात्) अन्तरंग, वहिरंग चार अपने का कारणों के कारण (संलिष्टात्मबलस्य) संश्लेष को प्राप्त अपनी शक्ति का (निर्गलनता) स्तोक स्तोक निर्गलन हो से (निःशेषविश्लेषतः) सारी कालिमा नष्ट हो जाने से (स्वर्णोपले) सुवर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाषाण में (स्वर्णता) शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति होती है (तद्वत्) उसी प्रकार (देहिनि) प्राणी में (सम्यक्त्वंग्रहणाद्यनेककरणैः) सम्यग्दर्शन को ग्रहण करना आदि अनेक कारणों के द्वारा (कर्मणः) कर्म के (अंशगलनात्) कर्मों के अंश का गलन होने से (निःशेषविश्लेषतः) सम्पूर्ण कर्मों का नाश हो जाने से (विशुद्धात्मता) निर्मल आत्मा की प्राप्ति होती है।

भावार्थ–जिस प्रकार कर्षण, छेदन, तापन आदि कारणों के द्वारा अनादि कालीन सुवर्ण की कालिमा नष्ट हो जाती है और सुवर्ण शुद्ध बन जाता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि गुणों के द्वारा आत्मा की पाप कालिमा दूर हो जाती है और आत्मा शुद्ध बन जाती है ऐसा चिंतवन करना निर्जरा भावना है।।४१।।

लोक भावना

मध्यांशः परितौऽप्नतंवियतो लोकस्त्रिवाताऽवृतः
पंचद्रव्यचितः प्रकृर्तृरहितो नित्यः सदाऽवस्थितः।
संस्थानेन तु सुप्रतिष्ठकसमोऽसंख्यप्रदेशप्रमो
मध्यस्थत्रसनालिरज भविना स्पृष्टं न दृष्टं पदम्।।४२।।

अन्वयार्थ–(अनन्तवियतः) अनन्त लोकाकाश के (मध्यांशः) मध्यम अंश (लोकः) लोक है (परितः) वह चारों तरफ (त्रिवातावृतः) तीन वायुओं से वेष्टित है (पंचद्रव्यचित्तः) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पांच द्रव्यों से भरा हुआ है (प्रकृर्तृ रहितः) दूसरे कर्ता से रहित है (नित्यः) नित्य (सदा) सदा (अवस्थितः) अवस्थित (लोकः) लोक है (तु) और वह (संस्थानेन) संस्थान से (सुप्रतिष्ठकसमः) सुप्रतिष्ठक के समान है (असंख्यप्रदेशप्रमः) असंख्यात प्रदेश प्रमाण है (अत्र) इसमें (मध्यस्थत्रसनालिः) मध्यस्थ त्रस नाली है (भाविना) संसारी प्राणियों के द्वारा (स्पृष्टं) स्पष्ट (दृष्टं) देखने का (पदं) स्थान (न) नहीं है।

भावार्थ–अनंतानंत प्रदेशी, अखण्ड, सर्वव्यापी, आकाश के मध्य में घनवातवलय घनोदधिवातवलय और तनुवातवलयों से वेष्टित जीव पुद्गल, धर्म और काल से भरे हुये संस्थान से सुप्रतिष्ठाकार, नित्य, सदा व स्थित, 'स्वयंसिद्ध, असंख्यात, प्रदेशी, लोकाकाश है। उसके मध्य में एक राजू चौड़ी, चौदह राजू ऊँची, त्रसनाली है। संसारी प्राणी इस लोक को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी चर्म चक्षु के द्वारा पूर्वरूप से देखने के लिये समर्थ नहीं है। इसप्रकार चिन्तन करना लोक भावना है।।४२।।

वोधिदुर्लभ भावना

नैकाक्षैर्विकलाक्षपंचकरणासंज्ञव्रजै र्जातु या
लब्धा बोधिरगण्यपुण्यवशतः संपूर्णपर्याप्तिभिः।
भव्यैः संज्ञिभिराप्तलब्धिविधिभिः कैश्चित्कदाचित्क्वचित्
प्राप्या सा रमतां भदीयहृदये स्वर्गापवर्गप्रदा।।४३।।

अन्वयार्थ–(एकाक्षैः) एकेन्द्रिय के द्वारा (विकलाक्षपंचकरणासंज्ञव्रजैः) विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, पंचेन्द्रियों के द्वारा (या) जो (जातु) कभी (न) नहीं (लब्धा) प्राप्त होती है (अगण्यपुण्यवशतः) महान पुण्य के कारण (सम्पूर्णपर्याप्तिभि) सम्पूर्णपर्याप्त (संज्ञिभिः) संज्ञी (आप्तलब्धिविधिभिः) प्राप्त की है क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि जिन्होंने ऐसे (कैश्चित्) किन्हीं (भव्यः) भव्यों के द्वारा (क्वचित्) किसी स्थान पर (प्राप्या) प्राप्त करने योग्य (सा) वह (स्वर्गापवर्गदा) स्वगमोक्ष को देने वाली (बोधिः) रत्नत्रय की प्राप्ति रूप बोधि (महीयहृदये) मेरे हृदय में (रमतां) रमण करे।

भावार्थ–यह बोधि, हीन पुण्य वाले एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रि और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के द्वारा कभी भी प्राप्त करने योग्य नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति को बोधि कहते हैं। जिसको क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि प्राप्त हो गयी है, जो संज्ञी है, पचंन्द्रिय है, पर्याप्त है, भव्य है, उसी को ही बोधि की प्राप्त होती है। वह बोधि निरन्तर मेरे हृदय में वास करे। ऐसा निरन्तर चिंतवन करना बोधि दुर्लभ भावना है।।४३।।

धर्म भावना

दाताऽभीष्टविशिष्टवस्तुनिचय स्याकांक्षिणेऽपिक्षणा-
द्धत्तर्तिर्नरनारकादिमृवसंभूतेः स्मृतेर्भीकृतेः
हंताऽऽक्रान्त जगत्रयांतक रिपोर्यः स्वान्तगः संस्तुत-
स्त्राताऽत्राणशरीरिणां न हि परो धर्मात्सुशर्मप्रदात्।।४४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(स्वांतगः) स्वांतगत (संस्कृतः) संस्तुत (यः) जो धर्म (आकांक्षिणे) आकांक्षा करने वाले के लिए (क्षणात्) एक क्षणभर में (अभीष्टवस्तुनिश्चयस्य) अभीष्ट वस्तु के समूह को (दाता) देने वाला है (स्मृतेः) जो स्मरणमात्र से (भीकृतेः) भयभीत करने वाली (नरनारकादिभवसंभूतेः) नरनारकादि से उत्पन्न (अर्त्तेः) दुःख का (हर्त्ता) हरण करने वाला है (आक्रांतजगत्रयांतकरिपोः) आक्रांत किया है तीन जगत को जिसने ऐसे यमराज रूपी रिपु का (हंता) जो घातक है (अत्राणशरीरिणां) अशरण संसारी प्राणियों का (त्राता) रक्षक है ऐसे (सुशर्मप्रदात्) सुशर्म को देने वाले (धर्मात्) धर्म से (परः) दूसरा (न) कोई नहीं है (हि) पादपूर्णे।

भावार्थ–संसार में अभीष्ट वस्तु को देने वाला धर्म है। स्मृति मात्र से भय देने वाली, नरनारकादि आपत्तियों से बचाने वाला जिन धर्म ही है। तीन जगत के जीवों को दुःख देने वाला यमराज रूपी शत्रु का नाशक धर्म है। अशरण संसारियों को शरण देने वाला धर्म है, वह धर्म वस्तु का स्वभाव है। वह हृदय में रहता है तब ही जीव की रक्षा होती है। धर्म को छोड़कर इष्ट वस्तु को देने वाला, आपत्तियों से बचाने वाला यमराज का नाशक, प्राणियों का रक्षक, दूसरा कोई नहीं है वह धर्म भावना है।।४४।।

धर्मध्यान की निरूक्ति व फल

श्रद्धानं सदशंकितादिसदनं तत्वार्थसंचिन्तनं
संवेगः प्रशमोदयेन्द्रियदमः प्राज्योद्यमः संयमः।
वैराग्यं वरगुप्तिताऽतिमृदुता निर्मायिताऽसंगता
धर्मस्येति समस्तवस्तुपरमोपेक्षा च लक्ष्मोदितम्।।४५।।

अन्वयार्थ–(अशंकितादिसदनं) अशंकित आदि के स्थान (सत्) समीचीन (श्रद्धानं) श्रद्धान (तत्वार्थसंचितनं) तत्वार्थ का चिंतवन (संवेगः) सवेग (प्रशमः) प्रशम (दया) दया (इन्द्रियदमः) इन्द्रिय मन (प्राज्योद्यमः) उत्कृष्ट उद्यम (संयमः) संयम (वैराग्यं) वैराग्य (वरगुप्तिता) उत्कृष्ट गुप्तिपना अत्यन्त कोमलता (अतिमृदुता) अन्यन्त कोमलता (निर्मायता) माया से रहित (असंगता) परिग्रह से रहित (च) और (समस्तवस्तुपरमोपेक्षा) समस्त वस्तुओं में परम उपेक्षा (इति) प्रकार (धर्मस्य) धर्म का (लक्ष्मः) लक्षण (उदितं) कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–तत्त्वार्थ श्रद्धान, निःशंकत्व, तत्वार्थ चिंतवन, संवेग, प्रशम, दया, इन्द्रियदमन, उत्कृष्टउद्यम, संयम, वैराग्य, उत्कृष्टगुप्ति, परिणामों की अतिकोमलता, निर्मायित्व, असंगता, समस्त वस्तु के प्रति परम उपेक्षिता यह धर्म का लक्षण कहा है।।४५।।

धर्म्यं स्यान्निखिलार्थसार्थनिहितं चित्तं समं संस्थितं
सम्यग्दृष्टययतादिसप्तमगुणांतेषु प्रबृद्धं क्रमात्।
साक्षात्संवरनिर्जरादिकरणं नानातमनां कर्मणां
सल्लेश्यात्रयजं च नाकसुखदं प्राग्रं क्रमासिद्धिदम्।।४६।।

अन्वयार्थ–(निखिलार्थसार्थनिहित) समस्त अर्थों के समूह से निहित (समं) समान (संस्थितं) स्थित (चित्तं) चित्त (धर्म्यं) धर्मध्यान (सम्यग्दृष्टययतादिसप्तमगुणांतेषु) अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान से लेकर अप्रमत गुणस्थानों में (क्रमात्) क्रम से (प्रवृद्धं) प्रवर्धमान है। (नानात्मनां) नाना प्रकार के (कर्मणां) कर्मों का (साक्षात्) साक्षात् (संवरनिर्जरादिकरणं) संवर और निर्जरा का कारण है (सल्लेश्यात्रयजं) तीन शुभ लेश्याओं से उत्पन्न होने वाला है, (प्राग्रं) उत्कृष्ट (नाकसुखदं) स्वर्ग के सुखों का देने वाला है (च) और (क्रमात्) कर्म से (सिद्धिदं) सिद्धि को देने वाला है।

भावार्थ–सकल पदार्थों के समूह में चित्त समान स्थित हो अर्थात् सुख दुःख आदि में समान भाव और राग-द्वेष का अभाव धर्मध्यान है। यह धर्मध्यान अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुण स्थान से लेकर अप्रमत नामक सातवें गुण स्थान तक क्रम से वृद्धि को प्राप्त होता है। साक्षात् नानात्मक कर्मों की निर्जरा का कारण है, पीत, पदम, शुक्ल इन तीन शुभ लेश्या वाले के ही होता है। उत्कृष्ट स्वर्ग के सुखों का दाता है और क्रम से मोक्ष फल को देता है।।४६।।

शुक्लध्यान के भेद

शुक्लध्यानमतश्चतुर्विधंमिदं प्रोक्तं वितर्कौ पृथ-
क्त्वेकत्वानुगतावुभावपि सवीचारेतरौ स्त; क्रमात्।
कार्यस्यातिशयेन जातपरमाह्लानं तु सूक्ष्मक्रियं
ध्यानं ह्यप्रतिपाति तादृशसमुच्छिन्नक्रिय चेत्यपि।।४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अतः) इसके बाद (इदं) यह (शुक्लध्यानं) शुक्ल ध्यान (चतुर्विधं) चार प्रकार का (प्रोक्तं) कहा है (पृथक्त्वेकत्वानुगतौ) पृथक्त्व और एकत्व से अनुगत (उभौ) दोनों ही (वितर्कौ) वितर्क (क्रमात्) क्रम से (सवीचारेतरौ) सवीचार और अवीचार (स्तः) हैं (कार्यस्य) कार्य के (अतिशयेन) अतिशय से (जातपरमाह्वानं) उत्पन्न है उत्कृष्ट नाम जिसका ऐसा (सूक्ष्मक्रियं) सूक्ष्म क्रिया (अप्रतिपाति) अप्रतिपाति (ध्यान) ध्यान है (च) और (हि) निश्चय से (तादृशमुच्छन्नक्रियं) सूक्ष्म क्रिया का भी जिसमें उच्छेद हो गया है (इति) इसप्रकार सूक्ष्म क्रिया उच्छिन्न ध्यान है।

भावार्थ–पृथक्त्व वितर्क वीचार, एकत्व वितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, और व्युपरत्तक्रियानिवृत्ति इसप्रकार चार प्रकार का शुक्ल ध्यान है।।४७।।

पृथक्त्व वितर्क वीचार

आद्यं शुक्लमनेकद्या स्वाविषये वृत्या पृथक्त्वेन यत्
सर्वद्रव्यगतश्रुतस्य परमस्यास्मिन् वितर्कस्य यः।
संचारोऽर्थवचश्त्रियोगगहने वीचार एषो भवे-
द्ध्यानं सार्थकनामधाम तदिदं स्यादिष्टसपत्प्रदम्।।४८।।

अन्वयार्थ–(अस्मिन्) इस (त्रियोग गहने) तीन योग से गहन (स्वविषये) अपने विषय में (पृथक्त्वेन) अनेक प्रकार की (वृत्या) वृति से (परं) केवल (अस्य) इस (सर्वद्रव्यगतश्रुतस्य) सर्वद्रव्यगतश्रुतरूप (वितर्कस्य) श्रुत के (यः) जो (अर्थवचः) अर्थ, व्यंजन, योग का (संचारः) संचार ही (एषः) यह (वीचारः) वीचार (भवेत्) होता है (यत्) इसलिये (तत्) वह (इदं) यह (आद्यं) प्रथम (शुक्लं) शुक्ल (ध्यानं) ध्यान (इष्टसम्पत्प्रदं) इष्ट सम्पदाओं को देने वाला (सार्थक नामधाम) सार्थक नाम का स्थान (अनेकधा) अनेक प्रकार का होता है।

भावार्थ–इस तीन योग से गहन शुक्ल ध्यान अपने विषय में अनेक प्रकार की पृथक् पृथक् वृति से सर्वद्रव्यगत श्रुत का अर्थ, व्यंजन, योग के निमित्त से संचार होता है। वह एक पृथक्त्व वितर्क यह सार्थक है और यह अनेक प्रकार का है। तथा इष्ट सम्पदाओं को देने वाला है।।४८।।

एकत्व वितर्क अवीचार

एकत्वेन न पर्ययान्तरतया जातो वितर्कस्य य-
द्यो वीचार इहैकवस्तुनि वचस्येकगत्र योगेऽपि च।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नार्थव्यंजनयोगजालचलनं तत्सार्थनामेत्यदो
ध्यानं घातिविघातजातपरमार्हन्त्यं द्वितीयं मतम् ।।४९।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (एकत्वेन) एक रूप से (इह) इस (एकवस्तुनि) एक वस्तु में (वचसि) एक वचन में (च) और (एकत्र) एक (योगे) योग में (वीचारः) संचार है। (वितर्कस्य) श्रुत का (पर्ययान्तारतया) पर्यायान्तर से संचार (न) नहीं है। (अर्थ व्यंजनयोगजालचलनं) इसमें अर्थ, व्यंजन, योग के समूह का चलन (अपि) भी (न) नहीं है (यत्) इसलिये (इति) इस प्रकार (अदः) यह (सार्थनाम) एकत्व वितर्क अविचार इस सार्थक नाम वाला (घातविघात-जातपरमार्हन्त्यं) घातिया कर्मों के विनाश से उत्पन्न, परम अर्हन्त्य पद को देने वाला (द्वितीयं) दूसरा (ध्यानं) शुक्ल ध्यान (मतं) माना है।

भावार्थ–इस ध्यान में द्रव्य से द्रव्यांतर, पर्याय से पर्यायान्तर में, अर्थ से अर्थान्तर में और योग से योगान्तर में संचार नहीं है। एक वचन, एक अर्थ, एक द्रव्य, एक पर्याय और एक योग में ही इसकी प्रवृत्ति होती है, इसलिए एकत्व वितर्क अवीचार यह इसका सार्थक नाम है और यह घातिया कर्मों का नाशक और अर्हन्त पद का प्रदायक है। पृथक्तवितर्क के समान यह प्रतिपाति नहीं है।।४९।।

उक्त दोनों ध्यान किसको और कहां होते हैं

शुक्लेऽभ्यन्तरबाह्यकारणगणो न्यक्षं च तल्लक्षणं
धर्म्ये वा प्रथम क्षयोपशमयोर्मोहस्य हेतुर्द्वयोः।
श्रेण्योर्मोक्षविनाकदं विलयकृद्घातित्रयस्यापरं
वर्यं क्षीणकषाय एव यमलं तच्छुक्लेश्योद्भम्।।५०।।

अन्वयार्थ–(शुक्ले) शक्ल ध्यान में (अभ्यंतरबाह्यकारणगणः) अभ्यन्तर और बाह्य कारणों का समूह (धर्म्ये) धर्मध्यान के (वा) समान है (च) और (तल्लक्षणं) उसका लक्षण (न्यक्षं) इन्द्रियातीत है (प्रथमं) प्रथम शुक्ल ध्यान (द्वयोः) दोनों (श्रेण्याः) उपशम तथा क्षपक श्रेणियों में (मोहस्य) मोह के (क्षयोपशमयोः) क्षय और उपशम का (हेतुः) कारण है। (मोक्षविनाकदं) मोक्ष और उत्कृष्ट स्वर्ग को देने वाला है (अपरं) दूसरा शुक्लध्यान (घातित्रयस्य) तीन घातिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मों का (विलयकृत्) नाश करने वाला है (वर्ष) श्रेष्ठ है (क्षीणकषाये) क्षीण कषाय में (एव) ही होता है (तत्) वह (यमलं) दोनों ध्यान (शुक्ललेश्योद्वयं) शुक्ल लेश्या से उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–शुक्लध्यान में बाह्याभ्यन्तर सामग्री धर्मध्यान के समान है और इसका लक्षण इन्द्रियातीत है। प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणी में चारित्र मोहनीय के उपशम का कारण है और क्षपक श्रेणी में दर्शन मोह के क्षय का कारण है। उपशम श्रेणी में होने वाला यह ध्यान स्वर्ग देने वाला है और क्षपक श्रेणी में मोक्ष को देने वाला है। द्वितीय शुक्लध्यान तीन घातिया कर्मों का नाश करने वाला है श्रेष्ठ है। यह ध्यान बारहवें गुण स्थान में होता है यह दोनों ही ध्यान शुक्ल लेश्या से उत्पन्न होते हैं।।५०।।

ध्यानं चिन्तनमेकवस्तुनि कियत्कालं मतं तच्छुत-
ज्ञानं स्वावरणक्षयोपशमजं ध्यानोपचारस्वतः।
शश्वंद्विश्वनिरन्तरावृतिहतिप्रत्यक्षबोधेऽर्हति
कर्मस्थित्यनुभागघातगलनाद्यर्थस्य तत्रेक्षणात्।।५१।।

अन्यवार्थ–(कियत्कालं) कुछ काल पर्यंत (एक वस्तुनि) एक वस्तु में (चिंतवनं) एकाग्र चिंतवन (ध्यानं) ध्यान (मतं) माना गया है (तत्) वह ध्यान (स्वावरणक्षयोपशमजं) अपने आवरण के क्षयोपशम से उत्पन्न (श्रुतज्ञानं) श्रुत ज्ञान है (शश्वंद्विश्वनिरन्तरावृतिहतिप्रत्यक्षबोधे) नित्य सकल वस्तु का व्यवधान रहित आवरण के क्षय से प्रत्यक्ष ज्ञान है, जिसके ऐसे (अर्हति) अर्हंत भगवान में (कर्मस्थित्यनुभाघातगलनाद्यर्थस्य) कर्मों की स्थिति अनुभाग के नाश आदि प्रयोजन का (ईक्षणात्) अवलोकन होने से (तत्र) उस अर्हंत भगवान में ऐसा उपचार से कहा जाता है।

भावार्थ–अन्तर्मुहूर्त पर्यंत एक वस्तु में स्थिर रहना ध्यान है और वह ध्यान श्रुतज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से होता है। इसलिए श्रुतज्ञान है तथा सम्पूर्ण ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय से उत्पन्न केवलज्ञानी सर्व वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखने वाले अर्हंत भगवान में ध्यान कार्य कर्मों का स्थिति खंडन अनुभाग खंडन और निर्जरा देखी जाती है। इसलिए सर्वज्ञ में उपचार से ध्यान है।।५१।।

सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति ध्यान का लक्षण

सूक्ष्मा कृष्टिगता क्रियेति तनुगो योगोऽत्र सूक्ष्मक्रियं
ध्यानं ह्यप्रतिपात्यनश्वरमिंद नामाऽस्य तत्सार्थकम्।
तन्नात्युद्यतराघघातनसमुघातक्रियाऽनन्तरं
योगिन्यर्हति जीविते समुदमूदन्तर्मुहूर्त्ते स्थिते।।५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अत्र) इस ध्यान में (तनुगः) शरीरगत (योगः) योग और (क्रिया) क्रिया (सूक्ष्मा) सूक्ष्म (कृष्टिगताः) कृष्टि को प्राप्त हुई है (इदं) यह ध्यान (अनश्वरं) अनश्वर है (इति) इसलिये (अस्य) इस ध्यान का (सूक्ष्मक्रियं) सूक्ष्म क्रिया (अप्रतिपात्तिः) अप्रतिपात्ति (नाम) नाम (सत्सार्थकं) वह सार्थक है (तत्) वह ध्यान (अत्युधतराघघातनस-मुघातक्रियाऽनन्तरं) अत्यन्त उत्कृष्ट पाप के घातने वाली समुघात क्रिया के अनन्तर (अर्हति) अर्हंत (योगिनि) योगी का (जीविने) जीवन (अन्तर्मुहूर्त) अन्तर्मुहूर्त (स्थिते) बाकी रहने पर (समुदभूत्) उत्पन्न होता है।

भावार्थ–इस ध्यान में शरीरगत क्रिया और योग सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त हो जाता हैं जाता यह ध्यान अविनश्वर है इसलिये सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति इसका यह नाम सार्थक है। यह ध्यान अपूर्व, अति प्रशस्त, अघाति कर्मों की स्थिति और अनुभाग का घातक है। दण्ड कपाट प्रतर और लोक पूर्ण समुद्धात क्रिया के अनन्तर अर्हंत जिनेन्द्र की आयु के अन्तर्मूहूर्त शेष रहने पर सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल ध्यान उत्पन्न होता है।।५२।।

व्युपरतक्रिया निवृत्ति ध्यान का लक्षण

योगोऽस्मिन्प्रहतो वभूव हि समुच्छिन्नक्रियं सुस्थितं
ध्यानं ह्यप्रतिपाति तेन तदमूदन्वर्थनामास्पदम्।
लेश्यातीतमयोगकेवलिजिने शुक्लं चतुर्थं वरं
निर्मूलप्रविलीनसंसृतिगदं स्वात्मोपलब्धिप्रदम्।।५३।।

अन्वयार्थ–(अस्मिन्) इस ध्यान में (योगः) योग (प्रहतः) नष्ट हो जाता है (च) और (अप्रतिपाति) यह अविनश्वर है (तेन हि) इसलिए ही (सुस्थितं) स्फुट (समुच्छिन्नक्रियं) समुच्छन्न क्रिया (तद्) वह नाम (अवर्न्थनामास्पदं) सार्थक नाम का आस्पद (अभूत) हुआ है और यह (लेश्यातीतं) लेश्याओं से रहित है (निर्मूलं प्रविलनीसंसृतिगदं) निर्मूल से नष्ट किया है संसार व्याधि को जिसने ऐसा (स्वात्मोपलब्धिप्रदम्) स्वात्मोपलब्धि का प्रदायक (चतुर्थं) चौथा (वरं) श्रेष्ठ (शुक्लध्यानं) शुक्ल ध्यान होता है।

भावार्थ–इस ध्यान में योग का निरोध हो जाने से कायगत क्रिया सूक्ष्म को प्राप्त हो जाती है और इस ध्यान का पतन नहीं होता है। इसलिये सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति इस सार्थक नाम का चतुर्थ शुक्लध्यान है। यह ध्यान लेश्यातीत है। संसार व्याधि का नाशक है है और स्वात्मोपलब्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का देने वाला है। यह शुक्लध्यान अयोग केवलि जिन में ही होता है।।५३।।

आराधक व आराधना विधि

संस्कारातिशयः प्रसन्नहृदयस्त्यागौ क्षमी प्रोद्यमी
प्रव्यक्तस्वपरस्थितिः शुभवचोरत्नावलीराजित;।
शूरः शीलपरो गुणस्थिररूर्चिर्मव्योऽभिमानी पर
साध्वीं साधयति स्वभावसुभगामाराधनां नायिकाम्।।५४।।

अन्वयार्थ–(संस्कारातिशयः) उत्तम संस्कार वाला (प्रसन्नहृदयस्त्यागी) प्रसन्न हृदय वाला, समस्त परिग्रह का त्यागी (क्षमी) क्षमावान (प्रोद्यमी) आत्म पुरुषार्थी (प्रव्यक्तस्वपरस्थितिः) प्रव्यक्त है स्वपर स्थिति जिसको (शुभवचः) शुभ वचन बोलने वाला (रत्नावलीराजित;) सम्यग्दर्शनादिरत्नों से शोभित (शूरः) शूरवीर (शीलपरः) शीलवान (गुणस्थिररुचिः) गुणों में स्थिर रुचि रखने वाला (भव्यः) भव्य (अभिमानी) स्वाभिमानी मानव ही (परं) केवल (स्वभाव-सुभगाम्) स्वभाव से मान्य (साध्वीं) प्रशंसनीय (नायिकां) सिद्धि की प्राप्त कराने वाली (आराधनां) आराधना को (साधयति) सिद्ध करता है।

भावार्थ–उत्तम संस्कार वाला, प्रसन्न हृदय वाला, समस्त परिग्रह का त्यागी, क्षमावान, आत्मपुरुषार्थी, प्रव्यक्त है स्वपर स्थिति जिसकी, शुभ वचन बोलने वाला, सम्यग्दर्शनादि रत्नों से शोभित, शूरवीर, शीलवान, गुणों में स्थिर रुचि रखने वाला, भव्य, स्वाभिमानी मानस ही केवल स्वभाव से मान्य प्रशंसनीय सिद्धि की प्राप्त कराने वाली आराधना को साधन करता है।।५४।।

शेषेऽल्पे निजजीवने जनहितं देशं महीशान्वितं
नाना जैनजनास्पदं सुखपदं सत्संगिनां योगिनाम्।
संप्राप्यात्ममनोगतं बहुमतं सम्यद्विवेद्य स्थितः
सूरिभ्यः सकलश्च तै सुविदितः संघान्वितैः स्वीकृतः।।५४।।

अन्वयार्थ–(निजजीवने) अपने जीवन के (अल्पे) अल्प (शेषे) शेष रहने पर (जनहितं) जनता का हित करने वाला (महीशान्वितं) राजा से युक्त (नानाजैनजनास्पदं) नाना प्रकार जैन जातियों का आस्पद (सत्संगिता) सत्संगति वाले (योगिनां) योगियों के (सुखप्रदं) सुख का स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वहुमतं) बहुजनों के द्वारा सम्मत (देशं) देश को (संप्राप्य) प्राप्य करके (आत्ममनोगतं) वह आत्मीय विचारों को (सम्यग्) भली प्रकार (सूरिभ्यः) आचार्य के लिये (निबेद्य) निवेदन कर (स्थितः) सुस्थित, होता है (च) और (तैः) उस (सकलैः) सकल (संघान्वितैः) संघ के द्वारा (स्वीकृतः) स्वीकार किया जाता है।

भावार्थ—मेरे आयु अल्प है, ऐसा जानकर यतिराज जनता का हित करने वाले राजा से शोभित, नाना जैन लोगों से भरे हुये, सत्पुरुष योगिजनों के रहने का स्थान ऐसे देश में जाकर बहुजनों के द्वारा माननीय अपने मनोगत विचारों को आचार्य के समक्ष भली प्रकार निवेदन करता है। तदनन्तर सकल संघ के द्वारा स्वीकृत किया जाता है।।५५।।

आचार्यैः परिचर्ययाऽहितहितै सद्वयूनपंचाशता
द्वाभ्यां वाऽतिजघन्यतः परिवृतः प्रीत्योत्तमार्थार्थ्यतः।
आलोच्याऽऽत्मकृतं कृती त्रिकरणैर्दोषं विशुद्धाशयः
श्रुत्वातः प्रवरं प्रतिक्रमणमप्यारुह्य सत्संस्तरम् ।।५६।।
प्राज्ञोऽसौ क्रमशोऽशनं परिहरन्नेकैकमास्वाद्यत-
त्सम्यग्दर्शितमिष्टमिष्टमसकृत्कांक्षायार्थं बुधैः।
हित्वाऽतस्त्रिविधाशनं धृतिकरं किं स्तोकमतेतन्मया
भुक्तात्पूर्वमनेकमेरुमहतो में तृप्तिकस्येत्यतः।।५७।।
त्यक्त्वाऽतः कुशलः क्रमेण विविधं घोरः समाध्याप्तये
पानं सिक्थयुत विलेपि सरसं निःस्नेहमच्छं पयः।
किं तृप्तिर्भवतीयती भवभवे पीतादजातेत्यतो
नानानीरधिनीरतोऽतिमहतो में कर्मघर्मार्तिनः।।५८।।
ज्ञाताऽऽस्वादसमस्तवस्तुभिरलं वाह्यैरसारैः परं
जैनेन्द्रं वचनामृतं जननमृत्यातंकनाशीति तत्।
धृत्वा पंचगुरुन्मनस्यविचलं तन्मन्त्रमुच्चाश्यन्
धर्म्यं शुक्लमपि प्रकृष्टफलदं ध्यायंस्तनुं व्युत्सृजेत् ।।५९।।चतुष्कं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(परिचर्ययाहितहितैः) परिचर्या (सेवा) में लीन है हित जिन्होंका ऐसे (आचार्यैः) आचार्य के द्वारा तथा उत्कृष्ट (सद्वयूनपंचाशता) दो कम पचास अर्थात् ४८ (वा) अथवा (जघन्यतः) जघन्य से (द्वाभ्यां) दो मुनियों के द्वारा (प्रीत्या) प्रीति से (परिवृतः) घेरा हुआ (उत्तमार्थार्थ्यतः) उत्तम प्रयोजन का कांक्षी (त्रिकरणैः) मन, वचन, काय से (विशुद्धाशयः) विशुद्धाशयवाला (कृती) पुण्यात्मा (आत्मकृतं) अपने किये हुये (दोषं) दोषों को (आलोच्य) आलोचना करके (प्रवरं) उत्तमार्थ (प्रतिक्रमणं) प्रतिक्रमण को (श्रुत्वा) सुनकर (सत्संस्तरं) संस्तर पर (आरूह्य) आरूढ़ होकर (असौ) यह (प्राज्ञः) बुद्धिमान (बुधैः) बुद्धिमानों के द्वारा (कांक्षाक्षयार्थं) कांक्षा को क्षय करने के लिये (असकृत) वार-वार (सम्यग्दर्शितं) सम्यक्तप्रकार से दर्शित (इष्टमिष्टं) इष्ट और मिष्ट पदार्थों को (एकैकं) एक एक का (आस्वाद्य) आस्वादन करके (क्रमशः) क्रमशः (अशनं) अशनं को (परिहरन्) परिहार करता हुआ (अतः) इसके बाद (मया) मेरे द्वारा (पूर्व) पूर्व (अनेक) अनेक (मेरुमहतः) मेरु प्रमाण (भुक्तात्) भोगे हुये पदार्थों से (अतृप्तिकस्य) अतृप्तिकारी मेरे (किं) क्या (एतत्) यह (स्तोकं) स्तोक पदार्थं (घृतिकरं) तृप्तिकारी है (इति) इस प्रकार विचार करके (त्रिविधाशनं) तीन प्रकार के आहारों को। (हित्वा) छोड़कर (अतः) तदनन्तर (कुशलः) बुद्धिमान (धीरः) धीर, वीर (समाध्याप्तये) समाधि की प्राप्ति के लिये (भवभवे) भव भव में (कर्मधर्मर्तिनः) कर्म रूपी धर्म से दुःखी (में) मेरे (अतिमहतः) अति महान (पीतात्) पिये हूये (नानानीरधिनीरतः) नाना समुद्र के नीर से (अजाता) नहीं होने वाली (तृप्तिः) तृप्ति (किं) क्या (इयतः) इतने पानी पीने मात्र से तृप्ति (भवति) होती है। (इति) इस प्रकार विचार करके (सिक्थयुतं) सिक्थयुत (विलेपि) लेप सहित (सरसं) सरस (पानं) दुग्धादि पेय पदार्थों को (हित्वा) छोड़कर (अतः) इसके बाद (निःस्नेहं) चिक्कणत्वरहित (अक्षंपयः) स्वच्छ जल को (त्यक्त्वा) छोड़कर (असारैः) असार (वाह्यैः) बाह्य (ज्ञात्वाऽऽस्वादसमस्तवस्तुभिः) ज्ञात स्वाद वाली समस्त वस्तुओं से (अलं) वश करो (इति) इस प्रकार विचार कर (परं) उत्कृष्ट (जननमृत्यातंकनाशे) जन्म-मृत्यु और आतंक का नाश करने वाले (जैनेन्द्रवचनामृतं) जिनेन्द्र के वचनरूपी अमृत को और (पंचगुरून्) पंचपरमेष्ठी को (अविचलं) अविचल रूप से (मनसि) मनमें (घृत्वा) धारण कर और (तन्मंत्रमुच्चाश्यन्) पंच परमेष्ठी के मंत्र का उच्चारण करता हुआ तथा (प्रकृष्टफलदं) उत्कृष्ट फल को देने वाले (धर्म्य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मध्यान (अपि) और (शुक्लं) शुक्लध्यान का (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (तनुं) शरीर को (व्युत्सृजेत्) छोड़े।

भावार्थ–उत्कृष्ट अड़तालीस और जघन्य दो आचार्य (साधु) जिसकी प्रीति से परिचर्या करते हैं तथा विशुद्ध आशयवाला क्षपक पुण्यात्मक उत्तमार्थ के लिये अपने दोषों को मन वचन काय से आलोचना करे तथा उत्तमार्थ प्रतिक्रमण सुन कर समीचीन संस्तर पर आरूढ़ हो अर्थात् सल्लेखना धारण करे। तदनन्तर आहार की कांक्षा को क्षय करने के लिये बुद्धिमान आचार्य के द्वारा बार-बार दिखाये गये इष्ट और स्वाद युक्त आहार का एक-एक आस्वादन करके अशन का त्याग करे। तदनन्तर अहो मैंने पूर्व में बहुत पदार्थों को भक्षण किया है, अब तक उनसे तृप्ति नहीं हुई तो इन स्तोक पदार्थों से क्या तृप्ति हो सकती है, कदापि नही, ऐसा विचार कर क्षपक स्वाद्य और लेह्य इन पदार्थों का त्याग कर देता है। तदनन्तर कर्मरूपी ताप से दुःखी मेरी प्यास समुद्रों के पानी पीने से शांत नहीं हुई तो क्या? इस अल्प पेय से मेरी तृप्ति हो सकती है कदापि नहीं हो सकती, ऐसा विचार कर क्रमशः दूध, छाछ, स्वच्छ पानी का भी त्याग करता है। जिसने वस्तु का स्वरूप जान लिया है, अनादिकाल से अनुभूत दृष्ट, श्रुत वाह्य वस्तुओं से क्या प्रयोजन है। वाह्य पदार्थों का संयोग ही दुःखदायक है, इस प्रकार की भावनाओं से पवित्रतात्मा, क्षपक, जन्म, जरा, मृत्यु के नाशक जेनेन्द्र भगवान के वचनरूपी अमृत का पानकर और पंचपरमेष्ठी को अविचल रूप से मन में धारण करता हुआ तथा पंचपरमेष्ठी वाचक मन्त्र को वचन से उच्चारण करता हुआ उत्तम स्वर्ग और मोक्ष फल को देने वाले धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लीन होता हुआ शरीर को छोड़े।।५६-५९।।

देवैस्तिर्यगचेतनैश्च मनुजैः प्राप्तोपसर्गस्तदा
त्यक्त्वाऽऽहारशरीरसंगमखिलं वाधाऽविरामावधि।
सावद्यं सकलं च निर्मलमना ध्याने प्रशस्ते स्थित-
स्तिष्ठेत्पंचगुरुनभिमतफलप्राप्त्यभ्युपायानपि।।६०।।

अन्वयार्थ–(दैवैः) देवों के द्वारा (तिर्यगचेतनैः) तिर्यंच और अचेतन के द्वारा (च) और (मनुजैः) मनुष्यों के द्वारा (प्राप्तोपसर्गः) प्राप्त है उपसर्ग जिसको ऐसा यति (तदा) उस समय (बाधाविरामाधिः) उपसर्ग की निवृत्ति पर्यंत (अखिलं) सारे (आहारशरीरसंगं) आहार शरीर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह को (च) और (सकलं) समस्त (सावद्यं) सावद्य को (त्यक्त्वा) छोड़कर (प्रशस्ते) प्रशंसनीय (ध्याने) ध्यान में (स्थितः) स्थित होकर (निर्मलमना) निर्मल मन वाला साधु (अभिमतफलप्राप्त्यभ्युपायान्) अभिमत फल की प्राप्ति के उपाय भूत (पंचगुरुन्) पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ (तिष्ठेत्) रहे।

भावार्थ–देवकृत, तिर्यचकृत, मानवकृत और अचेतन कृत उपसर्ग के आ जाने पर, जब तक उपसर्ग दूर न हो तक तब अखिल आहार, परिग्रह और सकल सावद्य का त्याग करके योगीगण अभिमत फल के प्राप्ति के कारणभूत पंचपरमेष्ठी का निर्मल चित्त से चिंतवन करते हुये धर्मध्यान और शुक्ल में स्थिर हों।।६०।।

समाधिमरण के भेद व स्वरूप

इंगिन्यां चान्यसंपादितहितविरतौ वर्णितो योऽत्र भक्त-
प्रत्याख्याने क्रमोऽसौ निरतिशयमृतौ स्वोपकारप्रवृत्तौ।
ज्ञेयः प्रायोपगत्यां स्वपरहितकृत्त्यक्तवांछाप्रवृत्तौ
ताभिः सप्ताष्टजन्मस्वपगतदुरितां मोक्षलक्ष्मी लभन्ते।।६१।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (अत्र) इस (निरतिशयमृतौ) निरतिशय रूप (प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान में (क्रमः) क्रम (वर्णितः) वर्णित है वही क्रम (स्वोपकारप्रवृतौ) अपने उपकार की जिसमें प्रवृत्ति है और (अन्यसंपादितहितविरतौ) दूसरे के द्वारा की जाने वाली वैय्यावृत्ति से रहित है ऐसे (इंगिन्यां) इंगिनीमरण में (च) और (स्वपरहितकृत्त्यक्तवांच्छाप्रवृत्तौ) स्वपर वैय्यावृत्ति की वांछा से रहित ऐसे (प्रायोपगत्यां) प्रायोगगमन (प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान में (ज्ञेयं) जानना चाहिये (ताभिः) उन भक्त प्रत्याख्यान इंगिनी मरण और प्रायोगपगमन मरणों के द्वारा क्षपक (सप्ताष्टजन्मसु) सात आठ भव में (अपगतदुरितां) पाप रहित (मोक्षलक्ष्मीं) मोक्ष लक्ष्मी को (लभन्ते) प्राप्त करता है।

भावार्थ–जब वह ज्ञान हो जाय कि अब मेरा जीवन अल्प है, तब क्रम से अन्न का त्याग, दूध आदि स्निग्ध पदार्थों का त्याग तदनन्तर समस्त आहार का त्याग किया जाता है, शरीर की वैय्यावृत्ति का त्याग नहीं किया जाता है, वह भक्तप्रत्याख्यान मरण है। जिसका उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है जघन्य काल अन्तमूहूर्त है। और जिसमें आहार पानी के त्याग के साथ अपने शरीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की वैय्यावृत्ति दूसरे से भी नहीं कराता है वह इंगिनीमरण है। जिस सन्यास में अपने शरीर की वैयावृत्ति दूसरे से भी नहीं कराता है और अपने हाथों से भी नहीं करता है, केवल ध्यान में मग्न रहता है, उसको प्रायोपगमन प्रत्याख्यान कहते हैं। आहार पानी के त्याग की विधि तीनों में समान है, इन तीनों प्रकार के संन्यास पूर्वक मरण करने वाला यतिराज सात आठ भव में निश्चय से मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।।६१।।

समाधिमरण की सफलता

दीक्षामादाय शिक्षामथ गणधरता रक्षणार्थं गणस्य
संस्कारं स्वस्य भावैः शमदमविभवैर्योऽत्र संल्लेखनां च।
क्रोधादीनां विधाय प्रथितपृथुयशाः साधयेदुत्तमाथ-
सं स्यात्सद्भव्यसस्योत्पलनिकरमुदं मेघचन्द्रो मुनीन्द्रः।।६२।।

अन्वयार्थ–(अत्र) इसके बाद (गणस्य) गण की (रक्षार्थ) रक्षा के लिए (गणधरतां) आचार्य पद की (दीक्षा) दीक्षा (शिक्षां) शिक्षा को (आदाय) ग्रहण करके (अथ) इसके बाद (पृथितपृथुयशः) विख्यात है विस्तरित यश जिसका ऐसा (यः) जो यति (अत्र) यहाँ पर (स्वस्य) अपने (शमदमविभवैः) शमदम के विभवों के द्वारा (क्रोधदीनां) क्रोधादि के (संस्कारं) संस्कार को (संल्लेखनां) क्रश (विधाय) करके (उत्तमार्थं) उत्तमार्थ को (साधयेत्) सिद्ध करता है (सः) वह (सद्भव्यसस्योत्पलनिकरमुदे) सद्भव्यरूपी धान्य और कमलों के समूह को प्रमुदित के लिए (मेघचन्द्रः) मेघ और चन्द्रमा के समान वाला मेघचन्द्र (मुनीन्द्रः) मुनि (स्यात्) हो।

भावार्थ–प्रथम दीक्षा शिक्षा और गण की रक्षा के लिये आचार्य पद को धारण करके विख्यात यश का धारी मुनिराज तदन्तर अपने समता इन्द्रिय मन आदि विभवों के द्वारा क्रोधादि कषायों के संस्कार को कृश करके उत्तमार्थ को सिद्ध करते हैं। वह मुनि भव्य जीव रूपी धान्य के लिए मेघ और भव्य कमलों के लिए चन्द्रमा के समान होते हैं इसमें अपने गुरु मेघ चन्द्र का स्मरण भी किया है।।६२।।

श्रेयांसनाथ स्तुति

श्रेयोनाथ! सरस्वतीश्वरतया रत्नाकरेत्वेन तु
गांभीर्येण वरेण निर्मलतया वार्द्धिः समोऽस्तु त्वया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं वंद्या जलधेः सदा प्रमुदितत्रैलोक्यसंसेव्यता-
लक्ष्मीश्चाक्षयसंगमाऽस्ति परमा मूर्तिर्मनोहारिता।।६३।।

अन्वयार्थ–(श्रेयोनाथ) हे श्रेयांस जिन (जिनसरस्वतीश्वरतया) सरस्वती के ईश्वर होने से (समुद्रपक्षे सरस्वती नामक नदी के स्वामी) (रत्नाकरत्वेन) तीन रत्नों के निधि होने से (समुद्रपक्षे) रत्नों का स्थान होने से (वरेण) श्रेष्ठ (गांभीर्येण) गंभीरता से (निर्मलतया) निर्मल होने से (वार्द्धिः) समुद्र (त्वया) तेरे साथ समानता है। परन्तु (सदा) निरन्तर (प्रमुदितत्रैलोक्यसंसेव्यता) प्रमुदित तीन लोक के द्वारा संसेव्य (परमा) श्रेष्ठ (च) और (मनोहारिता) मनोहर (मूर्तिः) मूर्त्ति (अक्षयसंगमाऽस्ति) अक्षय संगम वाली (वंद्या) वंदनीय (लक्ष्मीः) लक्ष्मी (किं) क्या (जलधेः) समुद्र के (अस्ति) है, अर्थात् नहीं है।

भावार्थ–हे श्रेयांसनाथ समुद्र भी रत्न से पूरित होने से रत्नाकर है और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण होने से आप भी रत्नाकर है। सरस्वती नामक नदी का पति होने से समुद्र भी सरस्वतीश्वर है और आप भी सरस्वती के ईश्वर हो इसलिए रत्नाकरत्व और सरस्वतीश्वरत्व-गंभीरत्व निर्मलत्व की अपेक्षा समुद्र तेरे समान हो तो हो, परन्तु वंदनीय लोक के द्वारा सेवनीय श्रेष्ठ मनोहर मूर्त्ति अविनश्वर केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी का संगम (प्राप्ति) क्या जलधि से हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। इसलिए हे भगवान, आप केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी के निवास स्थान अपूर्व समुद्र हो।।६३।।

इति श्रीमद्वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिते श्रीआचारसारनाम्नि ग्रन्थे
ध्यानवर्णनात्मको दशमोऽधिकारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकादशोऽधिकारः

विमलनाथ स्तुति

श्रियं ममैनस्तिमिरक्षयोज्ज्वलां
सन्मार्गगः श्रीविमलः क्रियात्सदा।
जिनो निजानंतवरैर्गुणोत्करै-
र्विराजमानो जनताब्जभास्करः।।१।।

अन्वयार्थ–(सन्मार्गगः) सन्मार्गगामी (निजानन्तवरैः) अपने अनन्त श्रेष्ठ (गुणोत्करैः) गुणों के समूह से (विराजमानः) शोभायमान (जनताब्जभास्करः) जनता रूपी कमल के लिये सूर्य (श्रीविमलः) श्री विमलनाथ (जिनः) जिनेन्द्र (मम) मेरे लिए (सदा) हमेशा (एनस्तिमिरक्षयोज्ज्वलां) पापरूपी अन्धकार के क्षय हो जाने से उज्ज्वल (श्रियं) लक्ष्मी को (क्रियात्) करें।

भावार्थ–स्वकीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्यादि अनन्त गुणों के धारी, भव्य जीवों के हृदय रूप कमल को विकसित करने के लिये सूर्य ऐसे श्रीविमल मेरे लिए पापत्तिमिर के नाश से उज्ज्वल मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्रदान करें।।१।।

जीव-कर्म प्ररूपणा की प्रतिज्ञा

जीवस्य कर्मणो भेदवेदनायेदमुच्यते।
संक्षेपेणाज्ञसंज्ञप्त्यै जीवकर्मप्ररूपणम्।।२।।

अन्वयार्थ–(अज्ञसंज्ञप्त्यै) अज्ञानी जनों के ज्ञान कराने के लिए (संक्षेपण) संक्षेप से (जीवस्य) जीव (कर्मणः) कर्म के (भेदवेदनये) भेद का ज्ञान कराने के लिए (इदम्) यह (जीवकर्मप्ररूपणम्) जीव और कर्म की प्ररूपणा (उच्यते) कही जाती है।

भावार्थ–अनादि काल से अज्ञ प्राणी, जीव और कर्म के भेद को नहीं जानता है, इसलिए अज्ञ प्राणी को जीव और कर्म के भेद का ज्ञान कराने के लिए जीव और कर्म के स्वरूप का कथन किया जाता है।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीसप्ररूपणा

जीवो गुणोऽस्य पर्याप्तिः प्राणः संज्ञा तु मार्गणाः।
चतुर्दशोपयोगश्चेत्याद्यं विंशतिभेदगम्।।३।।

अन्वयार्थ–(अस्य) इस जीव प्ररूपणा के (जीवः) जीवसमास (गुणः) गुणस्थान (पर्याप्तिः) पर्याप्ति (प्राणः) प्राण (संज्ञा) संज्ञा (चतुर्दश) चौदह (मार्गणाः) मार्गणा (तु च) और (उपयोगः) उपयोग (इति) इस प्रकार (आद्यं) आदि की जीव प्ररूपणा (विंशतिभेदगं) बीस भेद रूप है।

भावार्थ–जीव और कर्म की प्ररूपणा में प्रथम भेद जीव है! उस जीव के जीवसमास, गुणास्थान, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग यह बीस भेद हैं।।३।।

जीवसमास

त्रसादीनां चतुर्युग्मेष्व विरूद्धोदयान्वितात्।
जातिकर्मोधयाज्जीवसमासाः स्युश्चतुर्दश।।४।।

अन्वयार्थ–(त्रसादीनां) त्रसादि के (चतुर्युग्मेषु) चार युगल में (अविरुद्धोदयान्वितात्) अविरुद्ध उदय से युक्त (जातिकर्मोदयात्) जाति नाम कर्म के उदय से (जीवसमासः) जीव समास (चतुर्दश) चौदह प्रकार के हैं।

भावार्थ–जातिनामकर्म के उदय से होने वाले तिर्यग्सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य धर्मों की जीव समास कहते हैं। त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त और प्रत्येक साधारण इन अविरुद्ध त्रसादि कर्मों से युक्त जाति नाम कर्म के उदय से जीव समास चौदह प्रकार के हैं।।४।।

त एते स्थूलसूक्ष्मैकाक्षद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः।
संज्ञ्यसंज्ञ्यंगिपंचाक्षपर्याप्तेतरसंज्ञकाः।।५।।

संगृहीतविशेषद्विसामान्यत्वादितीरिताः।
नैगमाश्रयणादेवमन्यत्राऽपि निरूपयेत्।।६।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(ते) वे (एते) यह चौदह जीवसमास हैं (नैगमाश्रयणात्) नैगम नय के आश्रय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से (संगृहीतविशेषद्विसामान्यत्वात्) संगृहीत विशेष और दो सामान्य होने से (स्थूलसूक्ष्मैकक्षद्वित्रि-तुरिन्द्रियाः) स्थूल, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, (संज्ञ्यसंज्ञ्यंगिपंचाक्ष-पर्याप्तेतरसंज्ञकः) संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, संज्ञा वाली (इति) इस प्रकार (ईरिताः) कहे गये हैं (एवं) इस प्रकार (अन्यत्र) अन्य स्थलों में (अपि) भी (निरूपयेत्) निरूपण किया जायेगा।

भावार्थ–प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। जो सबमें रहता है वह सामान्य है। और जो किसी एक में रहता है वह विशेष है। ऊर्ध्वतासामान्य और तिर्यग्सामान्य भेद से सामान्य दो प्रकार का है। एक पदार्थ की काल क्रम से होने वाली अनेक पर्यायों में रहने वाले समान धर्म को ऊर्ध्वतासामान्य अथवा तद्भवसामान्य कहते हैं। एक समय में अनेक पदार्थगत सदृश धर्म को तिर्यक् सामान्य अथवा सादृश्यसामन्य कहते हैं। यह ऊर्ध्वतासामान्य रूप या तिर्यक्सामान्य रूप धर्म, त्रसादि युगलों में से अविरुद्ध कर्मों से युक्त एकेन्द्रियादि जातिनामकर्म का उदय होने पर उत्पन्न होता है। इसी को जीवसमास कहते हैं।

जीवसमास से सम्बन्धित कर्मों में से किस किसके उदय के साथ किस किस कर्म के उदय का विरोधाविरोध है, यह नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिये।।५-६।।

क्रमांक	किसके साथ	विरुद्ध	अविरुद्ध
१.	एकेन्द्रिय	त्रस	शेष सभी कर्मों का उदय
२.	द्वीन्द्रियादि	स्थावर, सूक्ष्म, साधारण	,,
३.	त्रस	,, ,, ,,	,,
४.	स्थावर	त्रस नामकर्म	,,
५.	बादर	सूक्ष्म नामकर्म	,,
६.	सूक्ष्म	त्रस, बादर, प्रत्येक	,,
७.	पर्याप्त	अपर्याप्त	,,
८.	अपर्याप्त	पर्याप्त	,,
९.	प्रत्येक	साधारण	,,
१०.	साधारण	प्रत्येक, त्रस	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षेप से जीवसमास के चौदह भेदों को गिनाते हैं। एकेन्द्रिय के दो भेद हैं बादर और सूक्ष्म तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। पंचेन्द्रिय के दो भेद हैं–संज्ञीपंचेन्द्रिय और असंज्ञीपंचेन्द्रिय। इस तरह ये सातों ही प्रकार के जीव पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही तरह के हुआ करते हैं, इसलिए जीवसमास के सामान्यतया सब मिलकर चौदह भेद होते हैं।।५-६।।

योनियों के भेद

सचित्ताऽचित्तमिश्रोष्णा शीता मिश्रा च संवृता।

विवृतेत्यंगिनामऽष्टौ स्युः सन्मूर्च्छनयोनयः।।७।।

अन्वयार्थ–(सचित्ताऽचित्तमिश्रा) सचित्त, अचित, मिश्र, (उष्णा) उष्ण) (शीता) शीत (मिश्रा) शीतोष्ण (संवृता) संवृत (च) और (विवृता) (इति) इसप्रकार (अंगिनां) प्राणियों की (सन्मूर्च्छनयोनयः) सन्मूर्च्छन योनियां (अष्टौ) आठ (स्युः) हैं।

भावार्थ–सन्मूर्च्छन जीवों के आठ प्रकार की योनि होती है। सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत्त और विवृत।।७।।

सचिताचित्तयोर्मिश्रा संवृतेतरयोरपि।

शीतोष्णमिश्राः पंचैवं जीवानां गर्भयोनयः।।८।।

अन्वयार्थ–(सचित्ताचित्तयोः) सचित्त अचित्त का (मिश्राः) मिश्र (संवृतेतश्योः) संवृत विवृत का मिश्र (शीतोष्णमिश्राः) शीत उष्ण और मिश्र (एवं) इस प्रकार (जीवानां) जीवों की (गर्भयोनयः) गर्भयोनि (पंच) पांच हैं।

भावार्थ–सचित्ताचित्त, संवृतविवृत, शीत, उष्ण, शीतोष्ण यह गर्भज जीवों की पांच प्रकार की योनि होती है।।८।।

उपपादयोनयः स्युः शीतोष्णाचित्तसंवृताः।

संवृतैकेन्द्रियेऽन्येषु विवृतोष्णा त्वग्निकायिके।।९।।

अन्वयार्थ–(शीतोष्णाचित्तसंवृताः) शीत, उष्ण, अचित्त और संवृत (उपपादयोनयः) उपपाद योनि (स्युः) हैं। (एकेन्द्रिये) एकेन्द्रिय में (संवृता) संवृत योनि है (अन्येषु) दो इन्द्रियादि में (विवृता) विवृत योनि है (तु) और (अग्निकायिके) अग्नि काय की (उष्णा) उष्ण योनि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–उपपाद जन्म की अचित्त ही योनि होती है। गर्भ जन्म की मिश्र योनि ही होती है। तथा सम्मूर्च्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, तीनों तरह की योनि होती है। उपपाद जन्म में शीत और उष्ण दो प्रकार की योनि होती है। शेष गर्भ और सर्म्मूछन जन्मों में शीत, उष्ण, मिश्र तीनों ही योनि होती है। उपपाद जन्म वालों की तथा एकेन्द्रिय जीवों की योनि संवृत्त ही होती है और विकलेन्द्रियों की विवृत ही होती है।।९।।

गर्भज जीवों की योनि नियम से मिश्र-संवृत-विवृत की अपेक्षा मिश्रित ही होती है। पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जीवों की विकलेन्द्रियों की तरह विवृत योनि ही होती है। पूर्वोक्त क्रमानुसार सामान्य से योनियों के नियम से नव ही भेद होते हैं। विस्तार की अपेक्षा इनके चौरासी लाख भेद होते हैं। आत्म प्रदेशों से युक्त पुद्गल पिंड को सचित्त और उनसे रहित पुद्गल को अचित्त कहते हैं। जन्म के आधार भूत स्थान के कुछ पुद्गल सचित्त और कुछ अचित्त हों तो उसको सचित्ता सचित्त की मिश्रयोनि समझना चाहिये। शीत, उष्ण और उसकी मिश्र का अर्थ स्पष्ट है। संवृत का अर्थ ढका हुआ और विवृत का अर्थ खुला हुआ है। तथा कुछ ढका हुआ कुछ खुला हुआ हो तो उसको संवृत, विवृत का मिश्र समझना चाहिये।।९।।

जराद्यंडजपोताः स्युर्गर्भेऽप्येवोपपादिकाः।

नाकिनो नारकाश्चान्ये स्यु सम्मूर्च्छनयोनयः।।१०।।

अन्वयार्थ–(जराद्यंढजपोताः) जरायुज, अंडज और पोतज जीव (गर्भे) गर्भ में (एवं) ही होते हैं (नाकिनः) देव (नारकाः) नारकी (उपपादिकाः) उत्पाद जन्म वाले हैं (अपि) और (अन्ये) शेष जीव (सम्मूर्च्छनयोनयः) सम्मूर्च्छन जन्म वाले (स्युः) हैं।

भावार्थ–पोत प्रावरण रहित और उत्पन्न होते ही जिनमें चलने फिरने आदि की सामर्थ्य हो जैसे–सिंह, बिल्ली, हिरण आदि। जरायुज जो जेर के साथ उत्पन्न होते हों। अण्डज जो अण्डे से उत्पन्न, इन तीन प्रकार के जीवों का गर्भजन्म ही होता है। देव नारकियों का उपपाद जन्म ही होता है, शेष जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।।१०।।

सप्तसप्तनिगोदद्वयोर्वीतोयाग्निवायुषु।

प्रत्येके दशयोनीनं षडपिंडाद्विकलेन्द्रिये।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचाक्षे नारके देवे चत्वारि तु चतुर्दश।

नरे चतुरशीतिः स्युर्लक्षाण्येव विशेषतः।।१२।।

अन्वयार्थ–(सप्तसप्तनिगोदद्वयोर्वीतोयाग्निवायुषु) नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय वायु की सात सात लाख योनि हैं। (प्रत्येके) प्रत्येक वनस्पति में (योनीनां) योनियों की संख्या (दश) दश लाख है। (षडपिंडाद्विकलेन्द्रिये) विकलेन्द्रियों की पिंड रूप छह लाख (पंचाक्षै) पंचेन्द्रिय में (नारके) नारकी में (देवे) देवों में (चत्वारि) चार चार लाख (नरे) मनुष्य में (चतुर्दश) चौदह लाख (विशेषतः) विशेष से (चतुरशीति) चौरासी लाख योनि (स्युः) हैं।

भावार्थ–नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इनमें से प्रत्येक की सात-सात लाख तक अर्थात् प्रत्येक, वनस्पति की दश लाख द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इनमें से प्रत्येक की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की सब मिलाकर छह लाख, देव, नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय प्रत्येक की चार-चार लाख, मनुष्य की चौदह लाख सब मिलाकर चौरासी लाख योनि होती हैं।।११-१२।।

न जन्म शंखावर्त्तायां तीर्थेशाश्चक्रिणोवलाः।

कूर्मोन्नतायां स्युश्चान्ये वंशपत्राकृतौ परे।।१३।।

अन्यवार्थ–(शंखावर्त्तायां) शंखावर्त्त योनि में (जन्म) जन्म (न) नहीं होता है। (कूर्मोन्नतायां) कूर्मोन्नत योनि में (तीर्थेशाः) तीर्थंकर (चक्रिणः) चक्रवर्त्ती (बलाः) बलभद्र (स्युः) उत्पन्न होते हैं (च) और (परे) दूसरे (अन्ये) शेष सारे संसारी जीव (वंशपत्राकृतौ) वंशपत्राकृति वाली योनि में उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–आकार योनि के तीन भेद हैं। १. शंखावर्त्त २. कूर्मोन्नत, ३. वंशपत्र इनमे से शंखावर्त योनि में गर्भ नियम से वर्ज्जित है। जिसके भीतर शंख के समान चक्कर पड़े हों उसको शंखावर्त योनि कहते हैं। जो कछुआ की पीठ की तरह उठी हुई हो उसको कूर्मोन्नत योनि कहते हैं। जो बांस के पत्ते के समान लम्बी हो उसको वंशपत्र योनि कहते हैं। ये तीन तरह की आकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योनि हैं। इनमें से पहली शंखावर्त योनि में नियम से गर्भ नहीं रहता है। कूर्मोन्नत योनि में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती तथा बलभद्र, अपि शब्द की सामर्थ्य से अन्य भी महान् पुरुष उत्पन्न होते हैं। तीसरी वंशपत्र योनि में साधारण पुरुष ही उत्पन्न होते हैं।।१३।।

नरकगति में अवगाहना आदि का वर्णन

आदीन्द्रके त्रिहस्ता; स्युराद्युर्व्यामन्तिमेन्द्रके।
सप्तचापास्त्रिहस्ताश्च षडंगुल्यस्तनूच्छ्रयः।।१४।।
द्वितीयाद्युर्वरान्तेन्द्रकेषु स्याद्विगुणः क्रमात्।
नारकाणामयं हानिवृद्धी स्यातां परेषु तु।।२५।।

अन्वयार्थ–(आद्युर्व्याम्) प्रथम नरक के (आन्दीन्द्रके) प्रथम इन्द्रक बिल में (नारकाणां) नारकियों के (तनूच्छ्रयः) शरीर की ऊँचाई (त्रिहस्ताः) तीन हाथ प्रमाण है (च) और (अन्तिमेन्द्रके) प्रथम नरक के अन्तिम इन्द्रक बिल में (सप्तचापाः) सात धनुष (त्रिहस्ताः) तीन हाथ (षंडगुल्यः) छह अंगुल है (द्वितीयाद्युर्वरान्तेन्द्रकेषु) द्वितीय आदि नरकों के अन्तिम बिल में (क्रमात्) क्रम से (द्विगुणा) द्विगुणी (स्यात्) होगी (तु) और (नारकाणां) नारकियों के (अयम्) यह (परेषु) शेष नरकों में भी (हानिवृद्धी) हानि वृद्धि (स्याताम्) होगी।

भावार्थ–धर्मा पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक में नारकियों के शरीर की ऊंचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगल है। इसके आगे शेष पृथिवियों के अन्तिम इन्द्रकों में रहने वाले नारकियों के शरीर की ऊंचाई का प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दुगुणा होता गया है। धर्मा पृथिवी में शरीर की ऊंचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल है। वंशा पृथिवी में पन्द्रह धनुष दो हाथ, बारह अंगुल है। मेधा पृथिवी में इकतीस धनुष, एक हाथ, अंजना पृथिवी में बासठ धनुष दो हाथ, अरिष्टा में एक सौ पच्चीस धनुष, मघवी में दो सौ पच्चास धनुष, माधवी पृथिवी में पांच सौ धनुष ऊँचाई है। रत्नप्रभा पृथिवी के सीमन्त नामक पटल में जीवों के शरीर की ऊंचाई तीन हाथ है। इसके आगे शेष पटलों में शरीर की ऊँचाई हानि वृद्धि को लिये हुए हैं। अन्त में से आदि को घटाकर शेष में एक कम अपने इन्द्रक के प्रमाण का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रथम पृथिवी में हानि वृद्धि का प्रमाण है इसे उत्तरोत्तर मुख में मिलाने अथवा भूमि में से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम करने पर अपने अपने पटलों में ऊंचाई का प्रमाण ज्ञात होता है।

उदाहरण—अन्त ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल। आदि ३ हाथ, इसे हाथों में परिवर्तित करके $31\frac{1}{4}-3\div(13-1)=2$ हाथ $8\frac{1}{2}$ अं, हानि वृद्धि। धर्मा पृथिवी में इस हानि वृद्धि का प्रमाण दो हाथ आठ अगुल और एक अंगुल का दूसरा भाग $\left(\frac{1}{2}\right)$ है। हा. २ अंगुल $\left(8\frac{1}{2}\right)$ । प्रथम पृथिवी के निरय नामक द्वितीय पटल में एक धनुष, एक हाथ और सत्रह अंगुल के आधे अर्थात् साढ़े आठ अंगुल प्रमाण तथा रौरुक पटल में एक धनुष, तीन हाथ और सत्रह अंगुल प्रमाण शरीर की ऊंचाई है। भ्रान्त पटल में दो धनुष, दो हाथ और डेढ़ अंगुल तथा उद्भ्रान्त पटल में तीन धनुष और दस अंगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। प्रथम पृथिवी के सम्भ्रान्त नामक इन्द्रक में शरीर की ऊंचाई तीन धनुष, दो हाथ और साढ़े अठारह अंगुल है। प्रथम पृथ्वी के असम्भ्रांत नामक इन्द्रक में शरीर की ऊँचाई का प्रमाण चार धनुष और सत्ताईस अंगुल है।

विभ्रान्त नामक पटल में चार धनुष, तीन हाथ और तेईस अंगुल के आधे अर्थात् साढ़े ग्यारह अंगुल प्रमाण उन्सेध है। प्रथम पृथिवी के तप्त इन्द्रक में शरीर का उत्सेध पांच धनुष, एक हाथ और बीस अंगुल प्रमाण कहा गया है। त्रसित नामक पटल में नारकियों के शरीर की ऊंचाई छह धनुष और अर्ध अंगुल सहित चार अंगुल प्रमाण जानना चाहिये। प्रथम पृथिवी के वक्रान्त नामक पटल में शरीर का उत्सेध छह धनुष, दो हाथ और तेरह अंगुल है। अवक्रान्त नामक पटल में सात धनुष और साढ़े इक्कीस अंगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। प्रथम पृथिवी के विक्रान्त नामक अन्तिम इन्द्रक में उत्सेध शरीर का उत्सेध सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल हैं।

वंशा पृथिवी में दो हाथ, बीस अंगुल और ग्यारह से भाजित दो भाग प्रमाण प्रत्येक पटल में वृद्धि होतीं है। इस वृद्धि को मुख अर्थात् प्रथम पृथिवी के उत्कृष्ट उत्सेध प्रमाण में उत्तरोत्तर मिलाते जाने से क्रमशः द्वितीय पृथिवी के प्रथमादि पटलों में उत्सेध का प्रमाण निकलता है। द्वितीय पृथिवी के (स्तनक नामक प्रथम इन्द्रक में) नारकियों के शरीर का उत्सेध आठ धनुष, दो हाथ और ग्यारह से भाजित चौबीस अंगुल प्रमाण है। दूसरी पृथिवी के तनक नामक द्वितीय पटल में नौ धनुष, बाईस अंगुल और ग्यारह से भाजित चार भाग प्रमाण शरीर का उत्सेध है। मन इन्द्रक में जीवों के शरीर का उत्सेध नौ धनुष, तीन हाथ और ग्यारह से भाजित दो सौ चार अंगुल प्रमाण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी पृथिवी के वनक इन्द्रक में शरीर का उत्सेध दस धनुष-दो हाथ चौदह अंगुल और आठ अंगुलों का ग्यारहवाँ भाग है। द्वितीय पृथिवी के घात इन्द्रक में ग्यारह धनुष, एक हाथ, दस अंगुल ग्यारह से भाजित दश भाग प्रमाण शरीर का उत्सेध है। संघात इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध बारह धनुष, ग्यारह से भाजित अठत्तर अंगुल प्रमाण है। द्वितीय पृथिवी के जिह्व इन्द्रक में शरीर का उत्सेध बारह धनुष तीन हाथ तीन अंगुल और ग्यारह से भाजित तीन भाग प्रमाण है। जिह्वक पटल में शरीर का उत्सेध तिरेपन हाथ तेईस अंगुल के ग्यारह भागों में से पाँच भाग मात्र है। लोल नामक पटल में शरीर का उत्सेध चौदह धनुष और ग्यारह से भाजित दो सौ सोलह अंगुल मात्र है। लोलक नामक पटल में नारकियों के शरीर की ऊँचाई उनसठ हाथ पन्द्रह अंगुल और ग्यारह से भाजित अंगुल के नौ भाग प्रमाण है। द्वितीय पृथ्वी के स्तनक लोलक अन्तिम पटल में पन्द्रह धनुष दो हाथ और बारह अंगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। मेघा पृथिवी में एक धनुष, दो हाथ बाईस अंगुल और तीन से भाजित एक अंगुल के दो भाग प्रमाण हानि वृद्धि जानना चाहिये।

मेधा पृथिवी के तप्त इन्द्रक में जीवों के शरीर का उत्सेध सत्रह धनुष चौंतीस अंगुल और तीन से भाजित अंगुल के दो भाग प्रमाण है। तीसरी पृथिवी के शीत इन्द्रक में नारकियों का उत्सेध उन्नीस धनुष और तीन से भाजित अट्ठाईस अंगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के तपन इन्द्रक बिल में शरीर का उत्सेध बीस धनुष सहित अस्सी अंगुल प्रमाण है। मेधा पृथिवी के तापन इन्द्रक में स्थित जीवों के शरीर को उत्सेध नब्बै हाथ और तीन से भाजित बीस अंगुल मात्र है। निदाघ नामक पटल में नारकी जीवों के शरीर की ऊंचाई सत्तानबें हाथ और तीन से भाजित सोलह अंगुल मात्र है। मेघा पृथिवी के प्रज्वलित नामक पटल में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध छब्बीस धनुष और चार अंगुल प्रमाण है। उज्वलित इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध सत्ताईस धनुष, तीन हाथ और तीन से भाजित आठ अंगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के संज्वलित इन्द्रक में शरीर का उत्सेध उनतीस धनुष, दो हाथ और तीन से भाजित चार अंगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के संप्रज्वलित नामक अन्तिम इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध इकतीस धनुष और एक हाथ प्रमाण है।

चतुर्थ पृथिवी में चार धनुष एक हाथ बीस अंगुल और सात से भाजित चार भाग प्रमाण हानि वुद्धि है। आर पटल में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध पैंतीस धनुष, दो हाथ, बीस अंगुल और सात से भाजित चार भाग प्रमाण है। चतुर्थ पृथिवी के मार नामक पटल में रहने वाले जीवों के शरीर की ऊँचाई चालीस धनुष और सात से भाजित एक सौ बीस अंगुल प्रमाण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ पृथिवी के तार इन्द्रक में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध चवालीस धनुष, दो हाथ और सात से भाजित छयानबे अंगुल मात्र है। चतुर्थ पृथिवी में तत्व (चर्चा) इन्द्रक में नारिकयों के शरीर का उत्सेध उनचास धनुष और सात से भाजित बहत्तर अंगुल मात्र है। तमक इन्द्रक में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध तिरेपन धनुष दो हाथ और सात से भाजित अड़तालीस अंगुल प्रमाण है। चतुर्थ पृथिवी के बाद इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध अट्ठावन धनुष और सात से भाजित चौबीस अंगुल है। चतुर्थ पृथिवी के खलखल नामक अन्तिम इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ प्रमाण है।

वीतराग देव ने पांचवीं पृथिवी में क्षय व वृद्धि का प्रमाण बारह धनुष और दो हाथ बतलाया है। पांचवी पृथिवी के तम नामक प्रथम इन्द्रक में स्थित जीवों के शरीर की ऊंचाई पचहत्तर धनुष प्रमाण है। पांचवीं पृथिवी के भ्रम नामक पटल में नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध सत्यासी धनुष और दो हाथ प्रमाण है। झष नामक पटल में एक सौ धनुष तथा अंधक पटल में एक सौ बारह धनुष और दो हाथ प्रमाण नारकियों के शरीर की ऊंचाई है। धूमप्रभा पृथिवी के तिमिश्र नामक अन्तिम इन्द्रक में नारकियों के शरीर का उत्सेध पच्चीस अधिक एक सौ अर्थात् एक सौ अर्थात् एक सौ पच्चीस धनुष मात्र है।

छठी पृथिवी में हानि वृद्धि का प्रमाण इकतालीस धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल है। हिम पटल गत जीवों के शरीर की ऊँचाई एक सौ छयासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल प्रमाण है। छठी पृथिवी के बर्दल पटल में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध दो सौ आठ धनुष और बत्तीस अंगुल प्रमाण है। लल्लक नामक इन्द्रक में स्थित जीवों के शरीर का उत्सेध दो सौ पचास धनुष मात्र है।

सातवी पृथिवी के अवधिस्थान इन्द्रक में पांच सौ धनुष प्रमाण नारकियों के शरीर का उत्सेध है। इस प्रकार जिन भगवान ने सम्पूर्ण नारकियों के शरीर का उत्सेध कहा है। इस प्रकार रत्नप्रभादिक पृथिवियों के प्रत्येक इन्द्रकों में जो शरीर का उत्सेध है वही उत्सेध उन उन पृथिवियों के श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत प्रकीर्णक बिलों में भी जानना चाहिये।।१५।।

ऋज्वा गत्या समुत्पन्नस्तृतीयसमयेऽवरः।
देहः सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य च।।१६।।
पल्याऽसंख्येयभागेन विभक्त स्याद्धनांगुलं।
चतुर्वृद्धियुतोऽप्यस्मादालापादीदृशो मतः।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(ऋज्वा) ऋजु (गत्या) गति से (समुत्पन्नः) उत्पन्न (सूक्ष्मनिगोदस्य) सूक्ष्मनिगोदिया (लब्ध्यपर्याप्तकस्य) लब्धपर्याप्त का (तृतीयसमये) तीसरे समय में (देहः) शरीर (अवरः) जघन्य (पल्याऽसंख्येयभागेन) पल्य के असंख्यात भाग से (विभक्तं) भाजित (धनांगुलं) धनांगुल प्रमाण है (चतुर्वृद्धियुतः) चतुस्थान वृद्धि से युक्त होता हुआ (अपि) भी (अस्मात्) इस आलापात्) आलाप से (ईदृशः) ऐसा (मतः) माना है।

भावार्थ–ऋजुगति से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति के तीसरे समय में शरीर की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उत्पत्ति के प्रथम समय में आयत चतुरस्त्र और दूसरे समय में समचतुरस्त्र होती है। इसलिये प्रथम द्वितीय समय में जघन्य अवगाहना नहीं होती है। परन्तु तीसरे समय में गोल हो जाने से जघन्य अवगाहना होती है। इसके आगे चतुस्थान वृद्धियुक्त होने से आलाप इस प्रकार माना है।।१६-१७।।

लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तपर्याप्तेष्ववरो वरः।,
निर्वृत्यपूर्णपूर्णेषु विशेषः केषुचिद्यथा।।१८।।
घनागुलस्य संख्यभागः स्यादवरः क्रमात्।
पूर्णद्वित्रिचतु पंचाक्षाणां संख्ययतसंगुणः।।१९।।
तज्जघन्यमणुंधर्यां कुंथावप्यवगाहनम्।
स्यात्काणमक्षिकायां च सिक्थमस्त्ये यथाक्रमम्।।२०।।
वरं चित्रतुर्द्वक्षा प्रतिष्ठितेंगमपूर्णके।
पंचाक्षे च ततः पूर्णेऽमीषां संख्यातसंगुणम्।।२१।।

अन्वयार्थ–(लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तपर्याप्तेषु) लब्धिअपर्याप्त, निवृत्तिअपर्याप्त, पर्याप्त में (अवरः) जघन्य (वरः) उत्कृष्ट (केषुचित्) किसी (निवृत्यपूर्णपूर्णेषु) निवृत्ति अपर्याप्त, पर्याप्त में (विशेषः) विशेष है (यथा) जैसे (क्रमात्) क्रम से (पूर्णद्वित्रिचतुः पंचक्षाणां) पर्याप्त दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की (अवरः) जघन्य अवगाहना (संख्यातगुणः) संख्यात गुणी (धनांगुलस्य) धनांगुल के (संख्येयभागः) संख्यातवें भाग है। (यथाक्रमम्) यथाक्रम से (अणुधर्यां) दो इन्द्रिय अनुधरी में (कुंथौ) तीन इन्द्रिय कुन्थु में (काणमसिकायां) चतुरिन्द्रि काणमक्षिका में (च) और (सिक्थमत्स्ये) पंचेन्द्रिय सिक्थ मत्स्य में (जघन्यं) जघन्य (अवगाहनम्) अवगाहना (संख्यातसंगुणाः) परस्पर में संख्यात् गुणी विशेष (स्यात्) होती है। (अपूर्णके)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपर्याप्त (त्रिचतुर्द्वक्षाः) तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, दो इन्द्रिय (प्रतिष्ठिते) प्रतिष्ठे में (पंचाक्षे) पंचेन्द्रिय में (अंगं) शरीर की अवगाहना (संख्यातगुणं) संख्यात गुणित है। (अमीषां) इन तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय दो इन्द्रिय, प्रतिष्ठित (पूर्णे) पूर्ण में (ततः) उससे (संख्यातसंगुणम्) संख्यात गुणित है।

भावार्थ–सूक्ष्म निगोदिया से सूक्ष्म वायुकाय का प्रमाण आवली के असंख्यातवे भाग से गुणित है। इसी प्रकार सूक्ष्म वायु काय से सूक्ष्म तेज काय और सूक्ष्म तेज काय से सूक्ष्म जलकाय का तथा सूक्ष्म जलकाय से सूक्ष्म पृथ्वी काय का प्रमाण उत्तरोत्तर आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित है। परन्तु सूक्ष्म पृथिवी काय से बादर बातकाय का प्रमाण पर स्थान होने से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित है। इसी प्रकार बादर बातकाय से बादर तेज काय का और बादर तेजकाय से बादर जलकायादि का प्रमाण उत्तरोत्तर क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग २ गुणा है। इसीप्रकार आगे के स्थान भी समझना चाहिये। क्योंकि जितने सूक्ष्म स्थान है वे आवली के एक असंख्यातवें भाग सें गुणित है। ओर जितने बादर अवगाहनाओं के स्थान है वे सब पल्यके एक असंख्यातवें भाग से गुणित है। परन्तु श्रेणीगत बाईस स्थानों में गुणाकार नहीं है किन्तु वे सब स्थान उत्तरोत्तर अधिक अधिक है। अर्थात् बाईस स्थानों में जो सूक्ष्म है वे आवली के एक एक असंख्यातवें भाग अधिक है। इस तरह किसी भी विवक्षित स्थान की अवगाहना का प्रमाण उससे पूर्व के अवगाहना प्रमाण को अपने अपने गुणाकार से गुणित करने पर अथवा उसमें अधिक प्रमाण जोड़ देने पर निष्पन्न होता है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में अनुन्धरी, कुंथु काणमक्षिका सिक्थक मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है। जघन्य अवगाहना के ऊपर प्रदेशोत्तर वृद्धि के क्रम से असंख्यात भागवृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि को क्रम से असंख्यात २ बार हो जाने पर जब असंख्यात गुणवृद्धि होते होते अन्त में अपर्याप्त वायु काय की जघन्य अवगाहनाओं को उत्पन्न करनें में योग्य समर्थ आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात का गुणाकार आ जाय तब उसके साथ जघन्य अवगाहना का गुणा करने से अपर्याप्त वायुकाय की जघन्य अवगाहना प्रमाण निकलता है। यह सब पूर्वोक्त कथन अंकसंदृष्टि के बिना अच्छी तरह से समझ में नहीं आ सकता इसलिए यहाँ पर अंकसंदृष्टि लिख देना उचित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझते हैं। वह इस प्रकार है कल्पना कीजिये कि जघन्य अवगाहना का प्रमाण ९६० है और जघन्य संख्यात का प्रमाण २ तथा उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण १५ और जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण १६ है। इस जघन्य अवगाहना के प्रमाण में जघन्य अवगाहना का ही भाग देने से १ लब्ध आता है उसको जघन्य अवगाहना में मिलाने से असंख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान होता है और जघन्य परीतासंख्यात अर्थात् १६ का भाग देने से ६० लाख आते हैं उनको जघन्य अवगाहना में मिलाने से असंख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट संख्या का अर्थात् १५ का जघन्य अवगाहना में भाग देने से लब्ध ६४ आते हैं इनको जघन्य अवगाहना में मिलाने से संख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान होता है। जघन्य में २ का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको अर्थात् जघन्य के आधे (४८०) को जघन्य में मिलाने से संख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान (१४४०) होता है। परन्तु उत्कृष्ट असंख्यातभाग वृद्धि के आगे और जघन्य संख्यातभागवृद्धि के पूर्व जो तीन स्थान हैं, अर्थात् जघन्य के ऊपर ६० प्रदेशों की वृद्धि तथा ६४ प्रदेशों की वृद्धि के मध्य में जो ६१-६२) तथा ६३ प्रदेशों के वृद्धि के तीन स्थान हैं वे न तो असंख्यातभाग वृद्धि में हो आते हैं और न संख्यातभागवृद्धि में ही। इसलिये इनको अवक्तव्य वृद्धि में लिया है। इसके आगे गुणवृद्धि का प्रारम्भ होता है। जघन्य को दूना करने से संख्यातगुणवृद्धि का आदि स्थान (१९२०) होता है। इसके पूर्व में उत्कृष्ट संख्यातभाग वृद्धि के स्थान से आगे अर्थात् १४४० से आगे जो १४४१ तथा १४४२ आदि १९१९ पर्यन्त स्थान है वे सम्पूर्ण ही अवक्तव्य वृद्धि के स्थान है। इस ही प्रकार जघन्य को उत्कृष्ट संख्यात से गुणित करने पर संख्यातगुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है और इसके आगे जघन्य परीतासंख्यात का जघन्य अवगाहना के साथ गुणा करने पर असंख्यात गुणवृद्धि का आदि स्थान होता है तथा इन दोनों के मध्य में भी पूर्व की तरह अवक्तव्यवृद्धि होती है। इस असंख्यातगुण वृद्धि में ही प्रदेशोत्तर वृद्धि के क्रम से वृद्धि होते होते सूक्ष्म बातकाय की जघन्य अवगाहना की उत्पत्ति के योग्य गुणाकार प्राप्त होता है तब उसका जघन्य अवगाहना के साथ गुणा करने पर सूक्ष्म बातकाय की जघन्य अवगाहना उत्पन्न होती है। इस अंकसंदृष्टि के अनुसार अर्थ संदृष्टि भी समझनी चाहिये, परन्तु अंकसंदृष्टि को ही अर्थ संदृष्टि नहीं समझ लेना चाहिये॥१८-२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

चौसठ अवगाहनाओं का यन्त्र

सूक्ष्म निगोद १ वात २ तेज ३ अप् ४ पृथ्वी ४ अप. जघन्य	वादर वात ६ तेज ७ अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्र. प्रत्येक ११ अप. जघन्य	अप. प्रत्येक १२ वेन्द्री १३ तेइन्द्री १४ चतुरिन्द्रिय १५ पंचेन्द्रिय १६ अप. जघन्य	सूक्ष्म निगोद १७ वात २० तेज २३ अप २६ पृथ्वी २९ पर्याप्त जं.	वादर वात ३२ तेज ३५ अप ३८ पृथ्वी ४१ निगोद ४४ प्र. प्रत्येक ४७ पर्याप्त जं.	अप. प्रत्येक ५० वेइन्द्री ५१ तेइन्द्री ५२ चौइन्द्रिय ५३ पंचेन्द्रिय ५४ पर्याप्त जं.	तेइन्द्री ५० चौइन्द्री ५६ वेइन्द्री ५७ अप्रतिष्ठित ५८ पंचेन्द्रिय ५९ अपर्याप्त उत्कृष्ट	तेइन्द्री ६० चौइन्द्री ६१ वेइन्द्री ६२ अप्र. प्रत्येक ६३ पंचेन्द्रिय ६४ अपर्याप्त उत्कृष्ट
			सूक्ष्म निगोद १८ वात २१ तेज २४ अप २७ पृथ्वी ३० अपर्याप्त उत्कृष्ट	वादर वात ३३ तेज ३६ अप ३९ पृथ्वी ४२ निगोद ४५ प्रति. प्रत्येक ४८ अपर्याप्त उत्कृष्ट			
			सूक्ष्म निगोद १९ वात २२ तेज २५ अप २८ पृथ्वी ३१ पर्याप्त उत्कृष्ट	वादर वात ३४ तेज ३७ अप ४० पृथ्वी ४३ निगोद ४६ प्रति. प्रत्येक ४९ पर्याप्त उत्कृष्ट			

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीपसमुद्र वर्णन

जम्बूद्वीपः सुवृतोऽसौ मध्यलोकाऽतिमध्यगः।
लक्षयोजनविस्तारस्ततः स्याल्लवणार्णवः।।२२।।
धातकीखंडद्वीपोऽतः स्यात्कालोदकवारिधिः।
स्तः पुष्करवरौ द्वीपसागरौ वारुणीवरौ।।२३।।
तथा क्षीरघृतक्षौद्रवरनन्दीश्वरादयः।
मध्ये प्रशस्तनामानोऽसंख्येयाः समनामकाः।।२४।।
स्वयंभूरमणाद्वीपसागरावन्तसंस्थितौ।
सर्वे सार्द्धद्विकोद्धारसागरोपमसम्मिताः।।२५।।

अन्वयार्थ–(मध्यलोकाऽतिमध्यगः) मध्य लोक के अत्यन्त बीच में (सुवृतः) गोलाकार (लक्षयोजनविस्तरः) एक लाख योजन विस्तार वाला (असौ) यह (जम्बूद्वीप) है। (ततः उसके बाद (लवणार्णवः) लवण समुद्र है। (ततः) उसके बाद (धातकीखण्डद्वीपः) धातकीखण्ड द्वीप है (स्यात्) है। (ततः) उसके बाद (कालोदकवारिधिः) कालोदधि समुद्र है। (पुष्करवरौ) पुष्करवर'' (द्वीपसागरौ) द्वीप सागर (स्तः) है। (बारुणीवरौ) वारुणीवर (द्वीपसागरौ) द्वीप समुद्र है। (तथा) उसीप्रकार (मध्ये) मध्य में (क्षीरघृतक्षौद्रवरंनन्दीश्वरादयः) क्षीरवर, घृतवर, क्षौद्रवर, नन्दीश्वरादि (प्रशस्तनामानः) प्रशस्त नाम वाले (समनामकः) समान नामक (असंख्येयाः) असंख्यात द्वीप हैं। (अन्तस्थितौ) अन्त में स्थित (स्वयंभूरमणद्वीपसागरौ) स्वयंभूरमणद्वीप और समुद्र है। (सर्वे) सर्व द्वीप समुद्र (सार्द्धद्विकोद्धारसागरोपमसम्मिताः) अर्द्ध सहित दो सागरोपम प्रमाण है। अर्थात् ढ़ाई सागर प्रमाण है।

भावार्थ–मध्यलोक के बीचोंबीच एक लाख योजन विस्तार वाला सुवृत जम्बूद्वीप है। उसके बाद लवण समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर द्वीप, पुष्कवरसमुद्र, वारुणीद्वीप, वारुणी समुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवरसमुद्र, क्षौद्रवरद्वीप, क्षौद्रवरसमुद्र, नन्दीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र आदि स्वयंभूमरण द्वीप, स्वयंभूमरण समुद्र पर्यन्त शुभनाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सारे द्वीप समुद्रों की संख्या सार्द्ध दो सागरोपम है। अर्थात् पच्चीस कोड़ाकोड़ी पल्यके समय प्रमाण द्वीप समुद्र हैं।।२२-२५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जम्बूद्वीपस्तुविष्कम्भा द्विगुणद्विगुणाः क्रमात्।

पूर्व पूर्वं परिक्षिप्ता वलयाकृतयोऽखिलाः।।२६।।

अन्वयार्थ–(जम्बूद्वीपात्) जम्बूद्वीप से लेकर (क्रमात्) क्रम से (विष्कम्भाः) विष्कम्भ (द्विगुणद्विगुणाः) द्विगुण द्विगुण है। (अखिलाः) सारे द्वीप और समुद्र (पूर्व पूर्व) पूर्व पूर्व को (परिक्षिप्ताः) घेरे हुये (बलयाकृतयः) चूड़ी के आकार है।

भावार्थ–जम्बूद्वीप से लेकर सारे द्वीप और समुद्र द्विगुण विस्तार वाले हैं। जैसे जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार का है। लवण समुद्र उससे द्विगुण अर्थात् दो लाख विस्तार का है। पूर्व पूर्व के द्वीप समुद्र को बलयाकृति से वेष्टित किये हुये हैं।।२६।।

स्वस्वनामरसास्वादा लवणो वारुणीवरः।

वार्द्धी क्षीरघृतवरौ चत्वार इति कीर्त्तिताः।।२७।।

अन्वयार्थ–(लवणः) लवण (वारुणीवरः) वारुणीवर (क्षीरघृतवरौ) क्षीरवर और घृतवर (वार्द्धी) समुद्र (इति) इस प्रकार (चत्वारः) चार समुद्र (स्वस्वनामरसास्वादाः) अपने नाम रस स्वाद वाले (कीर्त्तिताः) कहे गये हैं।

भावार्थ–लवणसमुद्र, वारुणीवर समुद्र, क्षीरसमुद्र और घृतवर समुद्र अपने नाम के अनुसार स्वाद वाले है। अर्थात् लवण समुद्र के जल का स्वाद लवण के समान है। वारुणी का वारुणी के, घृतवर का घृत के समान और क्षीरवर का क्षीर के समान रस स्वाद है।।२७।।

कालोदकपुष्करवरस्वयंभूरमणार्णवाः।

जलास्वादास्त्रयः क्षौद्ररसाः शेषास्तु सागराः।।२८।।

अन्वयार्थ–(कालोदकपुष्करवरस्वंभूरमणार्णवाः) कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र, स्वयंभूरमण समुद्र, (त्रयः) तीन (जलस्वादाः) जल स्वाद हैं (तु) और (शेषाः) शेष (सागराः) समुद्र (क्षौद्ररसाः) क्षौद्र रस वाले हैं।

भावार्थ–कालोदधि समुद्र, पष्करवर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र यह तीनों समुद्र जल स्वाद वाले हैं और शेष समुद्र क्षौद्र रस वाले हैं।।२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमानुषोत्तरान्मर्त्या यतः सोन्वर्थसंज्ञकः।

पुष्करद्वीपमहध्यस्थः स गिरिर्वलयाकृतिः।।२९।।

अन्वयार्थ–(अमानुषोत्तरात्) मानुषोत्तरपर्यन्त (मर्त्याः) मनुष्य हैं (यतः) इसलिये (सः) वह (अन्वर्थ-संज्ञक) सार्थक नाम वाला (पुष्करद्वीपमध्यस्थः) पुष्करद्वीप में स्थित (बलयाकृतिः) बलयाकृति (सः) वह मानुषोत्तर (गिरिः) पर्वत है।

भावार्थ–मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य हैं। इसलिये पुष्करद्वीप के मध्यस्थ बलयाकृति सार्थ नामक मानुषोत्तर पर्वत है।।२९।।

स्वयंभूरमणद्वीपमध्यस्थाद्वलयाकृतेः।

स्वयंप्रभाचलात्सर्वा कर्मभूमिर्बहिः स्थिताः।।३०।।

अन्वयार्थ–(बलयाकृतेः) वलयाकृति (स्वयंभूरमणद्वीपमध्यस्यात्) स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यस्थ (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयंप्रभ अचल से (बहि) बाहर (सर्वा) सब (कर्मभूमिः) (स्थिताः) स्थित हैं।

भावार्थ–स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यस्थ वलयाकृति स्वयंप्रभ पर्वत के बाहर कर्मभूमि स्थित है।

स्वयंप्रभाचलादारात्परतो मानुषोत्तरात्।

मध्याभूरन्तरद्वीपा जघन्या भोग भूमयः।।३१।।

भावार्थ–(मानुषोत्तरात्) मानुषोत्तर पर्वत से (परतः) आगे (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयंप्रभाचल से (आरात्) पूर्व (मध्याभूः) मध्य भूमियों के (अन्तरद्वीपाः) अन्तर द्वीपों में (जघन्या) जघन्य (भोगभूमयः) भोग भूमियां हैं।

भावार्थ–मानुषोत्तर पर्वत से लेकर स्वयंप्रभ पर्वत तक मध्य के असंख्यात द्वीप समुद्र में जघन्य भोगभूमियाँ पाई जाती हैं।।३१।।

जीवों की अवगाहना

कोशोनं योजनं दैर्घ्यमेकं द्वादश साधिकम्।

सहस्रयोजनं गोभ्यां भृंगे शंखेऽम्बुजे वरम्।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(गोभ्यां) गोभी में (वरं) उत्कृष्ट (दैर्घ्यम्) दीर्घता (क्रोशोनं) एक कोश कम (योजनं) एक योजन है। (शंखे) शंख में (द्वादश) बारह योजन है। (भृगे) भ्रमर में (एकं) एक योजनं) योजन है। (अम्बुजे) कमल में (साधिकं) कुछ अधिक (सहस्रयोजनं) हजार योजन है।

भावार्थ–तीन इन्द्रिय में गोभी (कंसला) की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश है। चतुरिन्द्रिय में भ्रमर की उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन है। द्विइन्द्रिय में शंख की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है और एकेन्द्रिय में कमल की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से कुछ अधिक है।।३२।।

सम्मूर्च्छनजपर्याप्ते स्वयंभूरमणाम्बुधौ।
सहस्रयोजनं मत्स्ये सरित्संखेऽस्य तद्दलम्।।३३।।
लवणाब्धौ सरित्संगमेऽस्याष्टादशतद्दलम्।
कालोदकाब्धौ तत्सिंधुसंगे च द्विगुणं ततः।।३४।।

अन्वयार्थ–(स्वयंभूरमणाम्बुधौ) स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य में (सम्मूच्छर्नजपर्याप्ते) सम्मूर्च्छन से उत्पन्न होने वाले पर्याप्त (मत्स्ये) मगरमच्छ में उत्कृष्ट अवगाहना (सहस्रयोजनं) एक हजार योजन की है। (सरित्संगे) नदी के संयोग में (अस्य) इस मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना (तद्दलम्) इससे आधी है। (लवणाब्धौ) लवण समुद्र में (अस्य) मगर की (अष्टादश) अठारह योजन (सरित्संगे) नदी संयोग के स्थान में (तद्दलम्) उससे आधी है। (कालोदकाब्धौ) कालोदधि समुद्र में (च) और (सरित्संगे) नदी के संयोग में (ततः) लवण समुद्र में (द्विगुणं) द्विगुणी है।

भावार्थ–स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य में सम्मूर्च्छन से उत्पन्न पर्याप्त मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन है। स्वयंभूरमण समुद्र में जहाँ नदी का प्रवेश होता है, वहाँ पर मगरमच्छ की अवगाहना पांच सौ योजन की है। लवण समुद्र के मध्य में मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना अठारह योजन की है और नदी के संयोग के स्थान में नव योजन अवगाहना वाला मगरमच्छ है। कालोदधि समुद्र के मध्य में मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना छत्तीस योजन है और नदी के संग में अठारह योजन है।।३३-३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलस्थलखगापूर्णे खगपूर्णे च गर्भजे।

सम्मूर्च्छनस्थलखगे पूर्णे चापपृथक्त्वगः।।३५।।

जलस्थलखगापूर्णे स्यात्सम्मूर्च्छनजन्मनि।

वरो वितस्तिर्देहोल्पः कुंथमात्रः पयश्चरे।।३६।।

जलगे गर्भजे पूर्णे स्यात्पंचशतयोजनम्।

स्थलगे गर्भजे पूर्णे त्रिकोशं तिर्यगंगिनि।।३७।।

अन्वयार्थ–(जलस्थलखगापूर्णे) जलचर, स्थलचर, नभचर अपर्याप्त (च) और (खगपूर्णे) नभचर पर्याप्त (गर्भजे) गर्भज में (सम्मूर्च्छनस्थलखगे) सम्मूर्च्छन स्थलचर, नभचर (पूर्णे) पर्याप्त में (चापपृथक्त्वगः) पृथक्त्व धनुष प्रमाण अवगाहना है। (सम्मूर्च्छनजन्मनि) सम्मूर्च्छन जन्म वाले (जलस्थलखगापूर्णे) जलचर थलचर नभचर अपर्याप्त में (वरः) उत्कृष्ट अवगाहना (वितस्तिः) वितस्ति प्रमाण है। (अल्पः) जघन्य (देहः) शरीर (पयश्चरे) जलचर में (कुंथुमात्रः) कुंथुमात्र है (गर्भजे) गर्भज (पूर्णे) पर्याप्त (जलचरे) जलचर में उत्कृष्ट अवगाहना (पंचशत योजनम्) पांच सौ योजन (स्यात्) है। (गर्भजे) गर्भज (पूर्णे) पर्याप्त (तिर्यगंगिनि) तिर्यञ्च योनि में (त्रिकोशं) तीन कोश की उत्कृष्ट अवगाहना है।

भावार्थ–अपर्याप्त जलचर, थलचर, नभचर की, पर्याप्त गर्भज नभचर की पर्याप्त सम्मूर्छन स्थलचर नभचर की उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष प्रमाण है। सम्मूर्च्छन जन्म वाले अपर्याप्त जलचर, स्थलचर, नभचर की उत्कृष्ट अवगाहना (वितस्ति (१२ अंगुल प्रमाण) है और जलचर अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना कुंथुमात्र है। पर्याप्त गर्भज जलचर की उत्कृष्ट अवगाहना पांच सौ योजन प्रमाण है। पर्याप्त गर्भज स्थलचर तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश की है।।३५-३७।।

त्रिभोगभूजे त्रिद्वयेकक्रोशाः स्युः कर्मभूमिजे।

चापाः पंचशतं पचविंशतिश्च नरे वरम्।।३८।।

अन्वयार्थ–(त्रिभोगभूजे) तीन भोग भूमि में उत्पन्न (नरे) मानव में (वरं) उत्कृष्ट अवगाहना (त्रिद्वयेकक्रोशाः) तीन, दो, एक कोश (स्युः) है (च) और (कर्मभूमिजे) कर्म भूमि में उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नरे) मानव में (वरं) उत्कृष्ट (पंचविंशतिः) पच्चीस अधिक (पंचशतं) पांच सौ (चापाः) धनुष प्रमाण है।

भावार्थ–उत्तम भोग भूमि में मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश है। मध्यम भोगभूमि में मनुष्यों की अवगाहना उत्कृष्ट दो कोश है और जघन्य भोगभूमि में मनुष्यों की अवगाहना एक कोश है। कर्मभूमिज मनुष्यों के शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई पांच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है।।३८।।

चापा स्युरसुरे पंचविंशतिः शेषभावन।
व्यन्तरेषु दशोत्सेधो ज्योतिष्के सप्त देहगः।।३९।।

कल्पेषु द्विद्विचतुर्षु स्युश्चतुर्षु द्वयोर्द्वयोः।
सप्त षट् पंच चत्वारस्त्रयः सार्द्धाः करास्त्रयः।।४०।।

त्रित्रित्रिग्रैवेयकेष्वनुदिशानुत्तरेष्वतः।
स्युः सार्द्धद्विद्विद्वयर्द्धैककराः काये दिवौकसाम्।।४१।।

अन्वयार्थ–(असुरे) असुर कुमार देवों का (उत्सेधः) उत्सेध (पंचविंशतिः) पच्चीस (चापाः) धनुष है (शेषभावनल्यन्तरेषु) शेष भवनवासी और व्यन्तरों का उत्सेध (दश) दश धनुष है। (ज्योतिष्के) ज्योतिष देवों में (देहगः) देहगत (उत्सेधः) उत्सेध (सप्त) सात धनुष (स्युः) है। (द्विद्विचतुर्षु) दो दो और चार (कल्पेषु) कल्पवासी में सप्त, षट्, पंच सात, छह, पांच (चतुर्षु) चार में (चत्वारः) चार (द्वयो) दो में (सार्द्धाः) आधे सहित (त्रयः) तीन (द्वयोः) दो में (त्रयः) तीन (कराः) हाथ (उत्सेधः) उत्सेध (स्युः) है। (अतः) इसके बाद (त्रित्रित्रिग्रैवेयकेषु) तीन, तीन, तीन ग्रैवेयकों में (अनुदिशानुत्तरेषु) अनुदिश और अनुत्तरों में (दिवौकसां) देवों की (काये) काय में (सार्द्धद्विद्विद्वयर्द्धैककराः) अर्ध सहित दो हाथ, दो हाथ, डेढ़ हाथ और एक हाथ (स्युः) ऊंचाई है।

भावार्थ–भवन वासियों में असुर कुमार देवों के शरीर की ऊंचाई पच्चीस धनुष है। शेष नव प्रकार के भवनवासी और व्यन्तरों के शरीर की ऊँचाई दश धनुष है और ज्योतिषी देवों के शरीर की ऊंचाई सात धनुष है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में, शरीर की ऊंचाई सात अरत्नि, सानत्कुमार और माहेन्द्र में छह अरत्नि, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव और कापिष्ठ में पांच अरत्नि, शुक्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाशुक्र शतार और सहस्रार में चार अरत्नि, आनत और प्राणत में साढ़े तीन अरत्नि और आरण और अच्युत में तीन अरत्नि शरीर की ऊंचाई है। प्रथम तीन ग्रैवेयकों में ढ़ाई अरत्नि, मध्यग्रैवेयक में दो अरत्नि ऊर्ध्व ग्रेवेयक और नव अनुदिश में डेढ़ अरत्नि, शरीर की ऊंचाई है। पांच अनुत्तर विमानों में शरीर की ऊंचाई केवल एक हाथ है। (मुंडे हाथ को अरत्नि कहते हैं)।।३९-४१।।

कुलकोटि

कुलानां कोटिलक्षाणि स्युर्भूतोयाग्निवायुषु।

द्वयुत्तरा विंशतिः सप्त त्रीणि सप्त यथाक्रमम्।।४२।।

अन्वयार्थ–(भूतोयाग्निवायुषु) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में (यथाक्रमम्) क्रम से (द्वयुत्तराः) दो उत्तर (विंशतिः) बीस (सप्त) सात (त्रीणि) तीन (सप्त) सात (कुलानां) कुलों की (कौटिलक्षाणि) कोटि लाख (स्युः) है।

भावार्थ–पृथिवीकायिक जीवों के कुल बाईस लाख कोटि हैं। जलकायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि हैं। अग्निकायिक जीवों के कुल तीन लाख कोटि हैं और वायु कायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि हैं।।४२।।

अष्टाविंशतिः सप्ताष्टौ नवार्द्धोनत्रयोदश।

वनस्पतौ द्वयक्षे त्र्यक्षे चतुरक्षे पयश्चरे।।४३।।

नव दश द्वादशोरः परिसर्पे चतुष्पदे।

विहंगे द्वादश नरे नारके पंचविंशतिः।।४४।।

देवे षड् विंशतिस्तेषां कोटिलक्षाणि पिंडतः।

सार्द्ध सप्तनवत्यग्रशतमात्राणि देहिनाम्।।४५।।

अन्वयार्थ–(वनस्पतौ) वनस्पति में (अष्टाविंशतिः) अट्ठावीस (द्वयक्षे) दो इन्द्रियों में (सप्त) सात (त्र्यक्षे) तीन इन्द्रियों में (अष्टौ) आठ (चतुरक्षे) चार इन्द्रिय में नौ लाख कुल कोटि (पयश्चरे) जलचर में (अर्द्धोनत्रयोदश) साढ़े बारह (उरः परिसर्पे) उर परिसर्पों में (नव) नवलक्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोड़ाकोडी (चतुष्पदे) चतुष्पद गाय भैंसादि में (दश) दश लक्ष कोड़ा कोड़ी (विहगे) नभश्चरों में (द्वादश) बारह लक्ष कोड़ा कोड़ी (नरे) मानव में (द्वादश) बारह लक्ष कौड़ी (नरके) नरक में (पंचविंशतिः) पच्चीस लक्ष कोड़ी (देवे) देव में (षड्विंशतिः) छब्बीस लक्ष कोड़ी (तेषां) उन (देहिना) प्राणियों की (पिंडतः) पिंड करने पर (सारी जोड़ने पर) सार्द्धसप्त–नवत्यग्रशतमात्राणि) आधे सहित एक सौ सतानवें (कोटिलक्षाणि) लक्ष करोड़ होती हैं।

भावार्थ–द्वीन्द्रिय जीवों के कुल सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीवों के कुल आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीवों के कुल नौ लाख कोटि और वनस्पति कायिक जीवों के कुल २८ लाख कोटि कुल है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जलचर जीवों के साड़े बारह लाख कोटि, पक्षियों के बारह लाख कोटि पशुओं के दश लाख कोटि और छाती के सहारे से चलने वाले दुमुही आदि के नव लाख कोटि कुल है। देव नारकी तथा मनुष्य इनके कुल क्रम से छब्बीस लाख कोटि, पच्चीस लाख कोटि, तथा बारह लाख कोटि है। इस प्रकार पृथिवीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवों के समस्त कुलों की संख्या एक कोड़ा कोड़ी सत्तानबे लाख तथा पचास हजार कोटि है ग्रन्थान्तरों में मनुष्यों के १४ लाख कोटि कुल गिनाये हैं उस हिसाब से सम्पूर्ण कुलों का जोड़ एक करोड़ निन्यानबे लाख पचास हजार कोटि होता है।।४३-४५।।

जीवों की आयु

भौमभावनयोरार्युजघन्यं चादिमेन्द्रके।
दशाब्दानां सहस्राणि धर्मायां नवतिर्वरम्।।४६।।
लक्षाणां नवतिः पूर्वकोट्योऽसंख्या दशांशकः।
रत्नाकरोपमस्यास्यां द्वितीयादीन्द्रकत्रये।।४७।।
एकत्रिसप्ताधुपमा दश सप्तदश क्रमात्।
द्वाविंशतिस्त्रयास्त्रिंशदाद्युर्व्याद्यन्तिमेन्द्रके।।४८।।
प्रथमादिवरायुष्यं समयोत्तरमौरितम्।
द्वितीयादि जघन्यायुरिति कल्पेष्वयं क्रमः।।४९।।

अन्वयार्थ–(भौमभावनयोः) भवनवासी और व्यन्तरों में (धर्मायाः) प्रथम नरक के (आदिमेन्द्रके) प्रथम इन्द्रक बिल में (जघन्य) जघन्य (आयुः) (दश) दश (सहस्राणि) हजार (अब्दानां) वर्ष की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। (आदिमेन्द्रके) प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार में (वरं) उत्कृष्ट आयु (नवतिः) नब्बे (सहस्राणि) हजार वर्ष की है। (अस्यां) इस प्रथम नरक में (द्वितीयादीन्द्रकत्रये) दूसरे तीसरे और चतुर्थ प्रस्तार में (क्रमात्) क्रम से (लक्षाणि) लाख की (नवतिः) नब्बे (नब्बे) लाख वर्ष (असंख्याः) असंख्यात (पूर्वकोट्यः) पूर्व कोटी, (रत्नाकरोपमस्य) एक सागर का (दशांशकः) दशवाँ भाग है। उर्व्याद्यन्तिमेन्द्रके) नरक की पृथ्वियों के अन्तिम इन्द्रक बिल में (वरः) उत्कृष्ट (आयुः) आयु (एकत्रिसप्ताद्युपमा) एक सागर, तीन सात सागर (दश) दश सागर (सप्तदश) सत्रह सागर (द्राविंशतिः) बावीस सागर (त्रयस्त्रिंशत्) तैतींस सागर है (द्वितीयादिजघन्यायुः) दूसरे आदि नरकों में जघन्य आयु (समयोत्तरं) एक समय अधिक (प्रथमादिवरायुष्यं) प्रथमादि की उत्कृष्ट आयु (ईरितं) कही है। (इति) इस प्रकार (अयं) यह (क्रमः) क्रम (कल्पेषु) स्वर्ग के कल्पों में भी है।

भावार्थ—भवनवासी व्यन्तर और प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार में जीवों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है। तथा प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार में उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्ष की है। द्वितीय प्रस्तार में नब्बे लाख वर्ष की है। तीसरे प्रस्तार में असंख्यात पूर्व कोटि की है। चतुर्थ प्रस्तार में एक सागर का दशवां भाग है।

"रत्नप्रभा पृथिवी के चतुर्थ पंचमादि इन्द्रकों में क्रमशः दश से भाजित एक, दो तीन, चार, पांच, छह, सात आठ, नौ और दश सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। भ्रान्त ई $\frac{1}{10}$, उद्भ्रान्त ई. $\frac{2}{10}$, सं. $\frac{3}{10}$, अंस $\frac{4}{10}$, विभ्रा $\frac{5}{10}$, तप्त $\frac{6}{10}$, त्रसित $\frac{7}{10}$, वक्रां $\frac{8}{10}$, अब $\frac{9}{10}$, विक्रां $\frac{10}{10}$, सा. उपरिम पृथिवी की उत्कृष्ट आयु को नीचे की पृथिवी की उत्कृष्ट आयु में से कम करके शेष में अपने अपने इन्द्रकों की संख्या का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना विवक्षित पृथिवी में आयु की हानि वृद्धि का प्रमाण जानना चाहिये।

उदाहरण—द्वि. उ आयु. सा. ३-१÷११=$\frac{2}{11}$ द्वि. पृ. में आयु की हानि वृद्धि द्वितीय पृथिवी के ग्यारह इन्द्रकों में से प्रथम इन्द्रक में ग्यारह से भाजित तेरह $\left(\frac{13}{11}\right)$ सागरोपम प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट आयु है इसमें तैंतीस $\left(\frac{33}{11}\right)$ प्राप्त होने तक ग्यारह से भाजित दो दो $\left(\frac{2}{11}\right)$ को मिलाने पर क्रमशः द्वितीय पृथिवी के शेष द्वितीयादि इन्द्रकों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण होता है। स्नतक इं. $\frac{13}{11}$ त. $\frac{15}{11}$ व $\frac{19}{11}$ घा $\frac{21}{11}$ सं. $\frac{23}{11}$, जिह्वा $\frac{25}{11}$, जिह्वक $\frac{27}{11}$ लोल $\frac{29}{11}$ लोलक $\frac{31}{11}$ स्त लो $\frac{33}{11}$ सा।

तृतीय पृथिवी में नौ से भाजित इकतीस $\left(\frac{31}{9}\right)$ सागरोपम प्रभव या आदि है। इसके आगे प्रत्येक पटल में नौ से भाजित $\left(\frac{4}{9}\right)$ की तिरेसठ $\left(\frac{63}{9}\right)$ तक वृद्धि करने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण निकलता है। तप्त. $\left(\frac{31}{9}\right)$ शी. $\left(\frac{35}{9}\right)$ तपन $\frac{39}{9}$ तापन $\frac{43}{9}$ नि. $\frac{47}{9}$ प्रज्व $\frac{51}{8}$ उज्व $\frac{55}{9}$ सज्व $\frac{59}{9}$ संप्रज्व $\frac{63}{9}$ सा. । चतुर्थ पृथिवी में सात से भाजित बावन सागरोपम प्रभव है। इसके आगे प्रत्येक पटल में सत्तर पर्यन्त सात से भाजित तीन $\left(\frac{3}{17}\right)$ की वृद्धि करने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण निकलता है। आर, $\frac{52}{7}$, मार $\frac{55}{7}$, तार $\frac{58}{7}$ चर्चा $\frac{61}{7}$, तमक $\frac{64}{7}$, वाद $\frac{67}{7}$, ख स्व. $\frac{77}{7}$, सा. पांचवी पृथिवी में पांच से भाजित सत्तावन सागरोपम आदि है। अनन्तर प्रत्येक पटल में पचासी तक पांच से भाजित सात सात $\left(\frac{7}{5}\right)$ के जोड़ने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण जाना जाता है। तमक. $\frac{57}{5}$, भ्र $\frac{64}{5}$, झ. $\frac{71}{5}$, अंध $\frac{78}{5}$, ति. $\frac{85}{5}$ सा।

मघवी पृथिवी के तीन पटलों में नारकियों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः तीन से भाजित छप्पन, इकसठ और छ्यासठ सागरोपम है। हिम. $\frac{56}{3}$, वर्दल $\frac{61}{3}$, लल्लक $\frac{66}{3}$ सा. सातवीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथिवी के जीवों की आयु तेतीस सागरोपम प्रमाण है। ऊपर ऊपर के पटलों में जो उत्कृष्ट आयु है, उसमें एक समय मिलाने पर वही नीचे के पटलों में जघन्य आयु हो जाती है। अवधिस्थान ३३ सा.। इस प्रकार सातों पृथिवियों के प्रत्येक इन्द्रक में जो उत्कृष्ट आयु कही गई है, वही वहाँ के श्रेणीबद्ध और विश्रेणी गत प्रकीर्क बिलों की भी आयु समझना चाहिये।।४६-४९।।

आयुरन्तरर्मुहूर्त्तः स्यादेषोऽप्यष्टादशाशंकः।

उच्छ्वासस्य जघन्यं नतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके।।५०।।

अन्वयार्थ–(नृतिरश्चां) मनुष्य और तिर्यञ्चों के (लब्धपूर्णके) लब्ध्यपर्याप्तक में (जघन्यं) जघन्य (आयुः) आयु (उच्छ्वासस्य) उच्छवास का (अष्टादशाशंकः) अठारहवाँ भाग (एषः) यह (अन्तर्मुहूर्त्तः) अन्तर्मुहूर्त्त (स्यात्) है।

भावार्थ–लब्धपर्याप्त मनुष्य और तिर्यञ्चों की जघन्य आयु एक उच्छवास का अठारहवां भाग प्रमाण अन्तमुहूर्त्त है।।५०।।

शुद्धोर्व्यायुः सहस्राणि द्वादश द्वयग्रविंशतिः।

खरोर्व्यां सप्त वर्षाणां तोयेऽग्नौ स्याद्दिनत्रयम्।।५१।।

त्रीण्यब्दानां सहस्राणि वायुजीवे वनस्पतौ।

सहस्राणि दश द्वयक्षे द्वादशाब्दानिकेवलम् ।।५२।।

दिनान्येकोनपंचाशत् त्र्यक्षे स्युश्चतुरिन्द्रिये।

मासाः षड्विहगेऽब्दानां सहस्राणि द्विसप्ततिः।।५३।।

द्विचत्वारिंशदब्दानां सहस्राणि भुजंगमे।

नवोऽर; परिसर्पाणां पूर्वांगानि वरायुषि।।५४।।

पूर्वकोट्यवरे संज्ञिन्यप्येतौ भोगभूमिषु।

त्रसाः सम्मूर्च्छिनो ये च न भवन्ति स्वभावतः।।५५।।

अन्वयार्थ–(शुद्धोर्व्यायुः) शुद्ध (मृदु) भूमि की (वरः) उत्कृष्ट (आयुः) आयु (द्वादश) बारह (सहस्राणि) हजार वर्ष है। (खरोर्व्यां) कठोर भूमि की आयु (द्वयग्रविंशतिः) बावीस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सहस्राणि) हजार (वर्षाणां) वर्षों की है। (तोये) जलकाय में (आयु) आयु (सप्त) सात हजार (वर्षाणां) वर्षों की है (अग्नौ) अग्निकाय में (दिनत्रय) तीन दिन की है (वायुजीवे) वायु कायिक जीवों की (त्रीणि) तीन (सहस्राणि) हजार (अब्दानां) वर्षों की है (वनस्पत्तौ) वनस्पति में (दशसहस्राणि) दश हजार वर्ष की है (द्वयक्षे) द्वीन्द्रिय में (केवलं) केवल (द्वादशाब्दानां) बारह वर्ष की है। (त्र्यक्षे) तीन्द्रिय में (केवलं) केवल (एकोनपंचाशत्) एक कम पच्चास (दिनानि) दिन की (स्युः) है (चतुरिन्द्रिये) चतुरिन्द्रिय में (षड्) छह (मासाः) महीने की है। (विहगे) पक्षियों में (द्विसप्ततिः) बहत्तर (सहस्राणि) हजार (अब्दानां) वर्षों की है। (भुजंगमे) सर्प की (द्विचत्वारिशत्) ब्यालीस (सहस्राणि) हजार (अब्दानां) वर्षों की है (उरः परिसर्पाणां) सरिसर्पों की (वरायुषि) उत्कृष्ट आयु (नव) नौ (पूर्वांगानि) पूर्वांग की है (एतौ) कर्मभूमियाँ जलचर थलचर (असंज्ञिनी) असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों की उत्कृष्ट आयु (पूर्वकोटि) पूर्व कोटी की है (भोगभूमिषु) भोग भूमि में (स्वभावतः) स्वभाव से ही (सम्मूर्च्छनः) सम्मूर्च्छन (त्रसः) त्रस (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ–मृदु भूमि कायिक की अर्थात् गेरू हरताल आदिक पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु बारह हजार हर्ष की है और खरभूकाय की अर्थात् रत्न पत्थर आदि कठोर पृथ्वीकायिक जीवों की २२ हजार वर्ष की है। जल कायिक जीवों की ७ हजार, वायु कायिक को तीन हजार, तरुकायिक की जीवों की दश हजार, पक्षियों की बहत्तर हजार, सर्पों की व्यालीस हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु है। अग्निकायिक की तीन दिन, शंख आदि दो इन्द्रिय, जीवों की बारह वर्ष, बिच्छू आदि तेइन्द्रिय जीवों की उनपचास दिन, भौंरा आदि चौइन्द्रिय जीवों की छह महीना, सरीसृप (पेट के बल सरकने वाला) जीवों की नौ पूर्वांग होती है और असंज्ञी संज्ञी जलचर की उत्कृष्ट आयु एक कोटी एक पूर्व की है। स्वभाव से भोगभूमि में सम्मूर्च्छन नहीं होते हैं।।५१-५५।।

जघन्यमध्यमोत्कृष्टभोगभूमिष्ववस्थितम्।

स्यादेकद्वित्रिपल्यायुर्नित्यास्वन्यासु तद्वरम्।।५६।।

अन्वयार्थ–(नित्यासु) नित्य रहने वाली देवकुरु, उत्तरकुरु आदि (अन्यासु) प्रथम द्वितीय कालादि (जघन्य मध्यमोत्कृष्टभोगभूमिषु) जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भोगभूमि में (अवस्थितं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्थित (तद्वरं) उन जीवों की उत्कृष्ट (एकद्वित्रिपल्यायुः) एक दो तीन पल्योपम आयु (स्यात्) है।

भावार्थ–नित्य भोग भूमि देवकुरु, उत्तरकुरु, हेमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत् हैं। अनित्य भोगभूमि प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल में होती है देवकुरु, उत्तरकुरु सुषमा सुषमा प्रथम काल उत्तमभोगभूमि है। इसमें जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है। हरि रम्यक और द्वितीय काल में मध्यम भोग भूमि है इनमें उत्कृष्ट आयु दो पल्य की है। हैमवत हैरण्य और तृतीय काल में जघन्य भोगभूमि है इनमें जीवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य की है।।५६।।

पूवरकोट्येकपल्यं च पल्यद्वयमिति त्रयम्।

समयेनाधिकं तासु नृतिर्यक्ष्वस्वरं क्रमात्।।५७।।

अन्वयार्थ–(तासु) उन्हीं भोगभूमियों में (नरतिर्यक्षु) मनुष्य और तिर्यञ्चों में (अवरं) जघन्य आयु (क्रमात्) क्रम से (समयेनाधिकं) एक समय अधिक (पूर्वकोटि) पूर्वकोटि (एक पल्यं) एक समय अधिक एक पल्य (च) और (पल्यं द्वयं) समयाधिक दो पल्य है (इति) इस प्रकार (त्रयं) तीनों जघन्य आयु है।

भावार्थ–उनमें जघन्य भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक एक कोटि पूर्व की है। मध्यम भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य की है। उत्तम भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य की है।।५७।।

कर्मभूमिषु सर्वासु पूर्वकोटी मता स्थितिः।

वरार्यम्लेच्छखंडोत्थवियच्चरनरेषु तु।।५८।।

अन्वयार्थ–(सर्वासु) सर्व (कर्मभूमिषु) कर्म भूमियों में (आर्यम्लेच्छखण्डोत्थवियच्चरनरेषु) आर्य, म्लेच्छ और विद्याधर मनुष्यों में (वर) उत्कृष्ट (स्थितिः) आयु (पूर्वकोटी) पूर्वकोटि (मता) मानी गयी है (तु) शब्द से भरत ऐरावत में भी उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की है।

भावार्थ–सम्पूर्ण कर्मभूमियों के आर्य खण्ड, म्लेचछ खण्ड में उत्पन्न विद्याधरों में उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटी वर्ष की है।।५८।।

---

१. चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वकोटी वरं कर्मभूष्यवायुस्तुर्यकालवत्।

अनित्यकर्मभूषु स्यान्म्लेच्छविद्याधरक्षितौ।।५९।।

अन्वयार्थ–(कर्मभूषु) कर्मभूमियों (विदेहक्षेत्र) में (अनित्यकर्मभूमिषु) अनित्य कर्मभूमियों (भरत, ऐरावत) में म्लेच्छविद्याधरक्षितौ) म्लेच्छ विद्याधर भूमियों में (वरं) उत्कृष्ट (आयुः) आयु (तुर्यकालवत्) चौथे काल के समान (पूर्वकोटी) पूर्वकोटी की है।

भावार्थ–नित्य कर्मभूमि विदेह क्षेत्र में अनित्य कर्म भूमि भरत और ऐरावत में आर्य खण्ड म्लेच्छ खण्ड में और विद्याधर पृथ्वी में उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि वर्ष की है।।५९।।

असुरेऽर्णवोपमः स्यान्नागे पल्यत्रयं क्रमात्।

सुपर्णद्वीपशेषेषु भौमे चार्द्धार्द्ध हीनकम्।।६०।।

अन्वयार्थ–(असुरे) असुर कुमारों में उत्कृष्ट आयु (अर्णवोपमः) एक सागर की है। (नागे) नाग कुमारों में (पल्यत्रयं) तीन पल्य की है (सुपर्णद्वीपशेषेषु) सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भावनवासियों में (च) और (भौमे) व्यन्तरों में (क्रमात्) क्रम से (अर्द्धहीनकं) आधा पल्य हीन हीन है।

भावार्थ–असुरकुमारों में उत्कृष्ट आयु एक सागर की है। नागकुमारों की तीन पल्य है। सुपर्णकुमार की ढ़ाई पल्य की है। द्वीप कुमार की दो पल्य है। शेष छह प्रकार के भवनवासियों की उत्कृष्ट आयु डेढ़ पल्य की है, और व्यन्तरों की एक पल्य की है।।६०।।

लक्षसहस्रशताब्दैर्युक्तं पल्यं विधाविने।

शुक्रे क्रमाद्गुरौ पल्यं ग्रहेष्वन्येषु तद्दलम्।।६१।।

अन्वयार्थ–(विधौ) चन्द्रमा में (इने) सूर्य में (शुक्रे) शुक्र में (क्रमात्) क्रम से (लक्षसहस्रशताब्दैः) लक्ष, सहस्र और सौ वर्ष (युक्तं) सहित (पल्यं) पल्य प्रमाण है। (गुरौ) गुरु में (पल्यं) पल्य प्रमाण है (अन्येषु) अन्य (शेषगृहेषु) शेष ग्रहों में (तद्दलं) आधा पल्य है।

भावार्थ–चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक लक्ष वर्ष अधिक एक पल्य प्रमाण है। सूर्य की उत्कृष्ट आयु हजार वर्ष अधिक एक पल्य की है। शुक्र की उत्कृष्ट आयु एक पल्य और सौ वर्ष प्रमाण है। अन्य शेष ग्रहों की उत्कृष्ट आयु आधा पल्य प्रमाण है।।६१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परापल्यचतुर्भागः स्थितिस्तारासु तद्दलम्।
जघन्या पल्यमेकं स्यात्सौधर्मेशानकल्पयोः।।६२।।

अन्वयार्थ–(तारासु) ताराओं में (पराः) उत्कृष्ट (स्थितिः) आयु (पल्यचतुर्थभागः) पल्य के चतुर्थ भाग है (जघन्याः) जघन्यु आयु (उससे) आधी है (सौधर्मैशानयोः) सौधर्म और ऐशान कल्प में (जघन्या) जघन्य आयु (एकं) एक (पल्यं) पल्य है।

भावार्थ–ताराओं की उत्कृष्ट आयु पल्य का चतुर्थांश है। ताराओं की जघन्य आयु पल्य का आठवां भाग है। सूर्यादि की जघन्य आयु पल्य की चतुर्थांश है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्य आयु एक पल्य प्रमाण है।।६२।।

देवेषु द्वौ वरा सप्त स्थितिदश चतुर्दशः।
कल्पे द्वाविंशतिर्यावत् द्वयुत्तराः सागरोपमाः।।६३।।
उपर्येकोत्तरस्तावत्स्युस्त्रयस्त्रिंदशदन्तिमे।
सौधर्मेशानजा एव देव्यः स्युः स्वस्वकल्पगाः।।६४।।

अन्वयार्थ–(कल्पे) कल्पवासियों के आठ युगल (देवेषु) देवों में (वरा) उत्कृष्ट (स्थितः) स्थिति (द्वौ) दो (सागरोपमाः) सागरोपम है (सप्त) सात (दश) दश (चतुर्दशः) चौदह सागरोपम है (द्वयुत्तरा;) दो दो अधिक (यावत्) जब तक (द्वाविंशतिः) बावीस सागर तक अर्थात् सोलह, अठारह, बीस, बावीस सागर तक है (उपरि) ऊपर नव ग्रैवेयकादि में (तावत्) तब तक (एकोत्तरः) एक एक उत्तर (स्युः) है।। (अन्तिमे) अन्त में (त्रयस्त्रिंशत्) तैतीस सागर है (सौधर्मेशानजा) सौधर्म और ऐशान में उत्पन्न होने वाली (एव) ही (देव्यः) देवियां (स्वस्वकल्पगाः) अपने अपने कल्पों में जाती है।

भावार्थ–सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागर है। (अधिक का प्रमाण आधा सागर है) सनतकुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर से कुछ अधिक है। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में दश सागर से कुछ अधिक। लान्तव और कापिष्ट स्वर्ग में चौदह सागर से कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र में सोलह सागर से कुछ अधिक, शतार और सहस्त्रार में अठारह सागर से कुछ अधिक है। आनत और प्राणत में बीस सागर और आरण और अच्युत में बावीस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागर की उत्कृष्ट आयु है। आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयकों में, नव अनुदिशों में और विजय आदि विमानों में एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है। इस प्रकार प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागर और क्रमशः एकएक सागर बढ़ती हुई नव में ग्रैवेयक में इकतीस सागर की आयु है। नव अनुदिशों में बत्तीस सागर और विजय आदि पांच विमानों में तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। देवियों की उत्पत्ति सौधर्म और ऐशान स्वर्ग तक ही है देव उनको अपने अपने स्वर्गों में ले जाते हैं।।६३-६४।।

अल्पं कल्पद्वये पल्यं साधिकं जीवनं वरं।
सौधर्मे पंच पल्यानि तानीशानादिषु क्रमात्।।६५।।
एकादश सू कल्पेषु द्वयधिकानि तु चतुर्ष्वतः।
सप्तोत्तराणि देवीनामहमिन्द्रस्ततः परम।।६६।।

अन्वयार्थ–(कल्पद्वये) सौधर्म ऐशान स्वर्ग में देवियों की (अल्पं) जघन्य (जीवनं) आयु (साधिकं) किंचित् अधिक (पल्यं) पल्य प्रमाण है (वरं) उत्कृष्ट आयु (पंच) पांच (पल्यानि) पल्य की है (क्रमात्) क्रम से (ईशानादिषु) ईशानादि से लेकर (एकादशु) एकादश (कल्पेषु) कल्पों में (देवीनां) देवियों की उत्कृष्ट आयु (तानि) उस पांच पल्य (द्वयधिकानि) दो दो पल्य अधिक है (अतः) इसके आगे (चतुर्षु) चार कल्पों में (सप्तोत्तराणि) सात सात पल्य अधिक है (ततः) उसके (सोलह स्वर्ग से आगे) (परम्) केवल (अहमिन्द्रः) एहमिन्द्र है। देवियां नहीं है।

भावार्थ–सौधर्म स्वर्ग में देवांगनाओं की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है और उत्कृष्ट आयु पांच पल्य की है। इसके ऊपर बारहवें स्वर्ग तक आयु दो दो पल्य अधिक है। अर्थात् द्वितीय स्वर्ग में देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु सात पल्य, तृतीय स्वर्ग में नौ पल्य, चतुर्थ स्वर्ग में ग्यारह पल्य, पंचम स्वर्ग में तेरह पल्य, छठे स्वर्ग में पन्द्रह पल्य, सप्त में स्वर्ग सत्तरह पल्य है। अष्टम स्वर्ग में उन्नीस पल्य है। नवमें स्वर्ग में इक्कीस पल्य है दशवें में तेबीस पल्य है ग्यारहवें में पच्चीस पल्य, बारहवें में सत्तावीस पल्य की आयु है। इसके आगे चार कल्पों में सात सात पल्य अधिक है। पन्द्रहवें स्वर्ग में अड़तालीस पल्य है। और सोहवें स्वर्ग में पचपन पल्य की उत्कृष्ट आयु है। अच्युत स्वर्ग से आगे केवल अहमिन्द्र है वहाँ देवियाँ नहीं हैं।।६५-६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत् किल्विषिक लान्तावन्तं भवन्ति ते।

अच्युतावधि कंदर्पा आभियोग्यसुरा अपि।।६७।।

अन्वयार्थ–(यत्) जो (किल्विषिकसन्मोहा;) किल्विषक और वाद्यवादक है (लान्तवान्तं) लान्तवत तक (भवन्ति) होते हैं (च) और (कन्दर्पा) कन्दर्प (आभियोग्यसुराः) आभियोग्य देव (अपि) भी (अच्युत्तावधिः) अच्युत स्वर्ग तक ही है।

भावार्थ–किल्विषक जाति और वाद्यवादक देवों का सद्भाव लान्तव स्वर्ग तक है। कन्दर्प और आभियोग्य जाति के देव अच्युत स्वर्ग तक ही होते हैं।।६७।।

सारस्वतादयोब्रह्मलोके लौकान्तिकामरा;।

तेषामष्टावरिष्टे तु नवायुः सागरोपमाः।।६८।।

अन्वयार्थ–(सारस्वतादय सारस्वतादि (लौकन्तिकामराः) लौकान्तिक देव (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोक में है (तेषां) सारस्वतादि की (आयुः) आयु (अष्टौ) आठ (सागरोपमाः) सागरोपम है (तु) परन्तु (अरिष्टै) अरिष्ट विमान में आयु (नव) नौ सागरोपम है।

भावार्थ–सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट नामक लौकान्तिक देव ब्रह्म नाम स्वर्ग के अन्त में ईशान आदि आठों दिशाओं में क्रम से आठ विमानों में रहते हैं। यह अरिष्टादि श्रेणीवद्ध है और प्रकीर्णक विमान में कुछ लौकान्तिक देव रहते हैं। उनमें सारस्वतादि सात विमानस्थ देवों की और प्रकीर्णक में स्थित देवों की उत्कृष्ट आयु आठ सागर की है परन्तु अरिष्ट नामक विमान में स्थित लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट आयु नौ सागर की है। स्वर्ग के देवों में सौधर्म ऐशान की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है और शेष स्वर्गों की जघन्य आयु नीचे के स्वर्ग की आयु में एक समय अधिक है। जैसे तृतीय चतुर्थ चतुर्थ स्वर्ग में जघन्य आयु ढ़ाई सागर से एक समय अधिक है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर में देवों की जघन्य आयु साढ़े सात सागर से एक समय अधिक है। इसीप्रकार सर्व स्वर्गों में जघन्य आयु का विधान है। परन्तु सर्वार्थ सिद्धि में जघन्य आयु नहीं है।।६८।।

देवों के आहार और स्वासोच्छ्वास का वर्णन

आहारस्मृतिरूच्छ्वासः सागरोपम संख्यकैः।

समासहस्त्रैः पक्षैश्च यथासंख्यं सुरायुषि।।६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(यथासंख्यं) यथासंख्य (सुरायुषि) देवों की आयु में (सागरोपमसंख्यकैः) सागरोपम संख्या प्रमाण (समासहस्रैः) हजार वर्षों से (आहारस्मृतिः) आहार का मानसिक विचार है (च) और (पक्षैः) उतने ही पक्षों के द्वारा (उच्छ्वासः) श्वासोच्छ्वास है।

भावार्थ–देवों में जिस स्वर्ग में जितने सागर की आयु है, उतने ही हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार होता है तथा उतने ही पक्ष बाद एक बार उच्छ्वास होता है। जैसे सर्वार्थसिद्धि में तेतीस सागर प्रमाण आयु है, इसलिये वहाँ पर तेतीस हजार वर्ष बाद एक बार आहार तथा तेतीस पक्ष बीत जाने के बाद एक बार श्वासोच्छवास होता है। यही नियम सब स्वर्गों में है॥६९॥

गुण स्थानों का स्वरूप

मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रः सुदृगसंयतः।
देशव्रती प्रमत्तः स्यादप्रमत्तश्च संयतः।।७०।।
स्यातामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणौ ततः।
स्यु सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायकाः।।७१।।
जिनः सयोगोऽयोगः स्युश्चतुर्दश गुणा इति।
मोहयोगसमुद्भूतां सिद्धास्तद्गुणनिर्गताः।।७२।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यादृष्टिः) मिथ्यादृष्टि (सासादनः) सासादन (मिश्रः) मिश्र (सुदृगसंयत्) अविरत सम्यग्दृष्टि (देशव्रती) देशव्रती (प्रमत्तः) प्रमत संयत (च) और (अप्रमत्तः) अप्रमत्त (संयतः) संयत (स्यात्) है (अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणौ) अपूर्वकरण और अनिवृतिकरण (स्यातां) है (ततः) इसके बाद (सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायकाः) सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय (संयोगः) संयोगौ (जिनः) जिन (अयोगः) अयोगी (जिनः) जिन (इति) इसप्रकार (मोहयोगसमुद्भूताः) मोह और योग से समुद्भूत (चतुर्दश) चौदह (गुणाः) गुणस्थान है (तद्गुणनिर्गताः) गुण स्थानों में रहित (सिद्धाः) सिद्ध (स्युः) होते हैं।

भावार्थ–मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अवरित सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्त मोह, क्षीणमोह, सयोगकेवलिजिन और अयोकेवलिजिन ये चौदह गुण स्थान है और सिद्ध इन गुणस्थानों से रहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. मिथ्यात्व—तत्त्वार्थ का यथार्थ श्रद्धान न होकर विपरीत श्रद्धान होने को मिथ्यात्व नाम का प्रथम गुणस्थान कहते हैं। **२. सासादन**—उपशम सम्यक्त्व के काल में उत्कृष्ट छह आवली और जघन्य एक समय शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ में से किसी एक का उदय होने पर तथा और मिथ्यादर्शन के कारणों का उदयाभाव होने पर पर सासादन गुणस्थान होता है। **३. मिश्र गुणस्थान**—इस गुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय होने से उभय रूप (सम्यक्त्व और मिथ्यात्व) परिणाम होते हैं। जिनके कारण तत्त्वार्थों में जीव श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों करता हैं। **४. अविरत—सम्यदृष्टि**—इस गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म के उदय होने से सम्यग्दृष्टि जीव संयम पालन करने में नितान्त असमर्थ होता है। केवल सम्यग्दर्शन सहित होता है इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टि है। **५. देशविरत**—इस गुण स्थान में जीव श्रावक के व्रतों का पालन करता है। लेकिन प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से मुनि व्रतों का पालन नहीं कर सकता है। संकल्प पूर्वक त्रस जीवों का घात नहीं करता है, इसलिये संयमी है और स्थावर घात का त्यागी नहीं है इसलिये असंयमी है और दोनों अवस्थायें एक साथ होती है इसलिये संयमासंयम हैं। **६. प्रमत्तसंयत**—इस गुणस्थान में अप्रमत्त जीव भी अन्तर्मुहूर्त के लिये प्रमत्त हो जाता है अतः छठवें गुण स्थान का नाम प्रमत्त संयत है। अथवा इस गुण स्थान में चार कषाय, चार विकथा, पांच इन्द्रिय, स्नेह और निद्रा या पन्द्रह प्रमाद रहते हैं। **७. अप्रमत्तसंयत**—इस गुण स्थान में निद्रा आदि प्रमाद का अभाव होने से सातवें गुण स्थान का ना अप्रमत्त है। **८. अपूर्वकरण**—इस गुणस्थान में उपशमक और क्षपक जीव नूतन २ परिणामों को प्राप्त करते हैं। अतः इसका नाम अपूर्वकरण है। **९. अनिवृत्तिबादरसाम्पराय**—इस गुणस्थान में कषाय का स्थूल रूप से उपशम और क्षय होता है। तथा एक समय वर्ती उपशमक और क्षपक नाना जीवों के परिणाम सदृश ही होते हैं तथा कषाय बादर रहती है। अतः इस गुणस्थान का नाम अनिवृत्तिबादर साम्पराय है। **१०. सूक्ष्मसाम्पराय**—साम्पराय कषाय को कहते हैं, इस गुणस्थान में कषाय का सूक्ष्म रूप से उपशम या क्षय हो जाता है, अतः इस गुणस्थान का नाम सूक्ष्म साम्पराय है। **११. उपशान्तमोह**—इस गुणस्थान में मोह का उपशम हो जाता है, अतः इसका नाम उपशान्त मोह है। **१२. क्षीणमोह**—इस गुणस्थान में मोह का पूर्ण क्षय हो जाता है, अतः इसका नाम क्षीण मोह है। **१३. सयोगकेवली**—इस गुण स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में जीव केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तथा योग सहित होता है अतः इसका नाम सयोग केवली है। **१४. अयोगकेवली**–अ, इ, उ, ऋ, ऌ इन पांच लघु अक्षरों के उच्चारण करने में जितना काल लगता है, उतना ही काल अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान का है। इसमें योग नष्ट हो जाता है, केवलज्ञान रहता है, इसलिए इसको अयोग केवली कहते हैं।।७०-७२।।

पर्याप्तिवर्णन

स्युराहारशरीराक्षोच्छ्वासभाषामनस्त्विमाः।
पर्याप्तयः समन्तादात्मस्थशक्तिसमृद्धयः।।७३।।

अन्वयार्थ–(आहारशरीराक्षोच्छवासभाषामनः) आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छवास, भाषा और मन (इमाः) यह (समन्तात्) चारों ओर से (आत्मस्थशक्तिसमृद्धयः) आत्मस्थ शक्ति के समृद्ध में कारणभूत (पर्याप्तयः) पर्याप्ति (स्युः) हैं।

भावार्थ–आत्मस्थ शक्ति की वृद्धि में कारणभूत आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन यह छह पर्याप्ति हैं।।७३।।

सादिदेहोदयादासां प्रारंभोऽक्रमतः क्रमात्।
अन्तर्मुहूर्ते निष्पतिरपर्याप्तिस्त्वपूर्णता।।७४।।

अन्वयार्थ–(सादिदेहोदयात्) आदि सहित नाम कर्म के उदय से (आसा) इन पर्याप्तियों का (प्रारंभः) प्रारम्भ (अक्रमतः) अक्रम से होता है और (निष्पत्तिः) निष्पत्ति (अन्तर्मुहूर्त) अन्तमुहुर्त्त में (क्रमात्) क्रम से होती है (तु) और इनकी (अपूर्णता) अपूर्णता (अपर्याप्ति) कहलाती है।

भावार्थ–सादि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर नाम कर्म के उदय से छह पर्याप्ति होती हैं। इनका प्रारम्भ युगपत्त होता है। परन्तु इनकी निष्पत्ति क्रम से होती है इनकी निष्पत्ति का काल अन्तर्मुहूर्त है। जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है उनको अपर्याप्त कहते हैं। एक शरीर को छोड़कर दूसरे नवीन शरीर के लिए कारणभूत जिन कर्म वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है उनको खलरस भाग रूप परिणमने की, पर्याप्त नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्ण हो को आहार पर्याप्ति कहते हैं और उनमें से खल भाग को हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रस भाग को खून आदि द्रव (नरम पतले) अवयव रूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण होने को शरीर पर्याप्ति कहते हैं। तथा उसी नोकर्म वर्गणाओं के स्कन्धों में से कुछ वर्गणाओं को अपनी अपनी इन्द्रिय के स्थान पर उस उस द्रव्येन्द्रिय के आकार परिणमाने की (ज्ञानावरण दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा जाति नामकर्म के उदय से युक्त) जीव की शक्ति के पूर्ण होने को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं। इसी प्रकार कुछ स्कन्धों को श्वासोच्छवास रूप परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छवास पर्याप्ति कहते हैं। वचन रूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धों (भाषा वर्गणा) को वचनरूप परिणमाने की स्वर नाम कर्म के उदय से युक्तजीव की शक्ति के पूर्ण होने को भाषा पर्याप्ति कहते हैं। तथा द्रव्य मनरूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धों को (मनो वर्गणाओं) को द्रव्य मन के आकार परिणमाने की नोइन्द्रियावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से युक्त जीव की शक्ति पूर्ण होने को मनः पर्याप्ति कहते हैं।।७४।।

एकाक्षे विकलाक्षेषु चांसज्ञिनी संज्ञिनि।

चतस्रः पंच पंचेताः षड् भवन्ति यथाक्रमम्।।७५।।

अन्वयार्थ–(यथाक्रमम्) क्रम से (एकाक्षे) एकेन्द्रिय में (चतस्रः) चार (विकलाक्षेषु) विकलेन्द्रिय में (च) और (असंज्ञिनि) असंज्ञी में (पंच) पांच (संज्ञिनि) संज्ञी में (एताः) यह (षड्) छहों पर्याप्ति (भवन्ति) होती हैं।

भावार्थ–इन छह पर्याप्तियों में से एकेन्द्रिय जीवों के आदि की चार ही पर्याप्ति होती है और दो इन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीवों के मन पर्याप्ति छोड़कर शेष पांच पर्याप्ति होती है। संज्ञी जीवों के छहों पर्याप्ति होती हैं। जिन जीवों की पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है उनको पर्याप्त और जिनकी पूर्ण नहीं उनको अपर्याप्त कहते हैं।।७५।।

नारकाणां रवरः कायोऽत्यशुभाभिन्नविक्रयः।

करालः कालो दुर्गन्धो धातुनोन्मतमुर्हुर्त्ततः।।७६।।

अन्वयार्थ–(नारकाणां) नारकियों का (कायः) शरीर (रवरः) तीक्ष्ण (अत्यशुभाभिन्नविक्रयः) अत्यन्त, अशुभ, अभिन्न, विक्रिया वाला है (करालः) विकराल है (कालः) कृष्णवर्ण है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दुर्गन्धः) दुर्गन्ध युक्त है (धातूनः) धातु से रहित (अन्तर्मूहूर्ततः) अन्तर्मूहूर्त में परिपूर्ण हो वाला है।

भावार्थ–नारकियों का शरीर अत्यन्त तीक्ष्ण और दुर्गन्धित होता है। कृष्ण वर्ण का है। अत्यन्त, अभिन्न, अशुभ, विक्रिया वाला है। सप्त धातु से रहित और अन्तर्मूहूर्त प्रमाण काल में परिपूर्ण हो जाता है।।७६।।

अणिमादिगुणं सप्तधात्वपेतं मनोहरम्।
जायतेऽन्तर्मुहूर्तेन देवांगे नवयौवनम्।।७७।।

अन्वयार्थ–(देवांगे) देवों के शरीर (अणिमादिगुणं) अणिमादि गुण सहित (सप्तधात्वपेतं) सप्त धातु रहित (मनोहरम्) मनोहर (अन्तमुहूर्तेन) अन्तर्मुहूर्त मात्र में (नवयौवनम्) नव यौवन को (जायते) प्राप्त होता है।

भावार्थ–देवों का शरीर सप्त धातु से रहित है। अणिमा, महिमा आदि गुणों से युक्त है, अत्यन्त मनोहर है और अन्तर्मुहूर्त मात्र समय में नव यौवन को प्राप्त हो जाता है।।७७।।

प्राणवर्णन

पंचाक्षायुर्मनोवाक्यकायऽऽनापाना दशांगिनः।
प्राणत्येभिरिति प्राणा बाह्यैरन्नादिभिर्यथा।।७८।।

अन्वयार्थ–(यथा) जिसप्रकार जीव (बाह्यैः) बाह्य (अन्नादिभिः) अन्नादि के द्वारा (प्राणन्ति) जीवित रहता है उसी प्रकार (एभिः) इन प्राणों के द्वारा (प्राणन्ति) जीवित रहता है (इति) इस प्रकार (अंगिनः) प्राणियों का (पंचाक्षायुर्मनोवाक्कायाऽऽनापाना) पांच इन्द्रिय, आयु, मन, वचन, काय, श्वासोच्छवास ये (दश) दश (प्राणाः) प्राण हैं।

भावार्थ–जिस प्रकार अन्न पानी के द्वारा प्राणी जीवित रहता है। उसी प्रकार पांच इन्द्रिय, मन बल, वचन बल, कायबल, आयु और श्वासोच्छवास के द्वारा प्राणी जीवित रहता है। इसलिए प्राणियों के ये दश प्राण हैं।।७८।।

संज्ञ्यादौ स्युर्दशैकैकहीनास्तेन्त्ये द्विवर्जितः।
पूर्णे त्वपूर्णके सप्त सप्तकैकविहीनकः।।७९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(संज्ञादौ) सज्ञी आदि (पूर्णे) पर्याप्त में (दशैकैकहीनाः) दश से एक एक हीन है (ते) वह प्राण (अंत्ये) अन्त में (द्विवर्जिताः) दो रहित है (तु) और (अपूर्णके) अपर्याप्त (संज्ञादौ) संज्ञी आदि में (सप्त) सात (सप्तैकैकविहीनकः) सात सात से एक एक हीन है।

भावार्थ–पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के दश प्राण होते हैं। असंज्ञी के मनोबल प्राण को छोड़कर नव प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय को छोड़कर आठ तीन इन्द्रिय के चक्षु और कर्ण इन्द्रिय रहित सात प्राण होते हैं। द्वीन्द्रिय के घ्राण को छोड़कर छह और एकेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय तथा वचन को छोड़कर चार प्राण होते हैं। यह पर्याप्त की अपेक्षा से कथन है। अपर्याप्त की अपेक्षा संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के श्वासोच्छ्वास, वचोबल, मनोबल को छोड़कर पांच इन्द्रिय, कायबल आयु प्राण सात प्राण होते हैं। आगे एक एक कम होता गया है। अर्थात् चतुरिन्द्रिय के श्रोत्र को छोड़कर छह प्राण, त्रीन्द्रिय के चक्षु को छोड़कर पांच प्राण, द्वीन्द्रिय के घ्राण को छोड़कर चार प्राण तथा एकेन्द्रिय के रसना को छोड़कर तीन प्राण होते हैं।।७९।।

संज्ञा

संज्ञावाच्छाश्चतस्रः स्युरत्रामुत्र च दुखदाः।
आहारे भयतो मैथुनेगिनां ताः परिग्रहे।।८०।।

अन्वयार्थ–(अंगिनां) प्राणियों को (आहारे) आहार में (भयतः) भय में (मेथुने) मैथुन में (परिग्रहे) परिग्रह में (अत्र) इस लोक में (च) और (अमुत्र) परलोक में (दुःखदाः) दुःख देने वाली (ता) वे (चतस्र) चार (वांछा) वाच्छा (संज्ञा) संज्ञा (स्युः) होती हैं।

भावार्थ–संज्ञा नाम वांछा का है। जिसके निमित्त से दोनों ही भवों में दारुण दुःख की प्राप्ति होती है। उस वांछा को संज्ञा कहते हैं। उसके चार भेद होते हैं। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। उत्तम रसयुक्त विशिष्ट आहार के देखने से, पूर्वानुभूत भोजन का स्मरण से, पेट के खाली होने से और असाता वेदनीय कर्म के तीव्र उदय और उदीरणा होने से आहार संज्ञा होती है। भयंकर पदार्थ के देखने से, पहले देखे हुये भयंकर पदार्थ के स्मरणादि से, शक्ति हीन होने से और भय कर्म का तीव्र उदय और उदीरणा होने पर भय संज्ञा होती है।

कामोत्तेजक स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन करने से, काम कथा सुनने अथवा पहले भुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयों को स्मरण करने से कुशील पुरुषों की संगति गोष्ठी करने से, वेद कर्म का तीव्र उदय अथवा उदीरणा आदि से मैथुन संज्ञा होती है। भोजन, वस्त्र, स्त्री, धन, धान्यादि, भोगोपभोग के साधनभूत, बाह्य पदार्थों को देखने से, पहले के भुक्त पदार्थों का स्मरण, उनकी कथा का श्रवणादि से और ममत्व परिणामों के तीव्र गृद्धि भाव होने से अथवा लोभ कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा होने से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है॥८०॥

मार्गणावर्णन

ते गताविन्द्रिये काये योगे वेदकषाययोः।
संयमे दशने ज्ञाने लेश्याभव्यत्वयोरपि।।८१।।
सम्यक्त्वसंज्ञित्वाहारे गुणिनो मार्गणा इति।
मृग्यन्त एभिरिति वा स्वकर्मभ्यश्चतुर्दश।।८२।।युग्मम्।।

अन्वयार्थ–(गुणिनः) गुणीजन (गतौ) गति में (इन्द्रिये) इन्द्रिय में (काये) काय में (योगे) योग में (वेदकषाययोः) वेद और कषाय में (संयमे) संयम में (दर्शने) दर्शन में (ज्ञाने) ज्ञान में (लेश्याभव्यत्वयोः) लेश्या और भव्यत्व में (सम्यक्त्वसंज्ञित्वाहारेः) सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारकत्व में (एभिः) इन मार्गणाओं के द्वारा (मृग्यन्ते) अन्वेषण किये जाते हैं (इति) इस प्रकार (ते) वे (स्वकर्मभ्यः) अपने अपने कर्मों से होने वाली (चतुर्दश) चौदह (मार्गणा) मार्गणा हैं।

भावार्थ–प्रवचन में जिस प्रकार से सुना हो उसी प्रकार से जीवादि पदार्थों का जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार अन्वेषण किया जाय उनको ही मार्गणा कहते हैं। उनके चौदह भेद हैं। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय-ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञा, आहार ये चौदह मार्गणा हैं॥८१-८२॥

गतिमार्गणा

गतयो नारकतिर्यङ्मनुष्यामरपर्ययाः।
चतस्त्रो गतिकर्माणि तत्तन्निर्मापकानि वा।।८३।।

अन्वयार्थ–(नारकतिर्यङमनुष्यामरपर्ययाः) नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव पर्याय (चतस्त्रः) चार (गतयः) गतियां हैं। (वा) अथवा (तत्तन्निर्मापकानि) उन उन गतियों का निर्मापक (गतिकर्माणि) गति नाम कर्म है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–अपने अपने गति नामकर्म से उत्पन्न नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के भेद से चार गति होती हैं। तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से तिर्यञ्च, मनुष्य गतिनाम कर्म के उदय से मनुष्य, नरक गति नाम कर्म के उदय से नारकी, देव गति नाम कर्म के उदय से देवगति होती है।।८३।।

इन्द्रियमार्गणा

स्पर्शनादीन्द्रियैर्युक्ता रसनाद्येकवृद्धिभिः।
एकद्वित्रिचतुः पंचाक्षांगिनः स्वोक्तकर्मभिः।।८४।।

अन्वयार्थ–(स्पर्शनादीन्द्रियैः) स्पर्शनादि इन्द्रियों से (रसनाद्येकवृद्धिभिः) रसनादि एक वृद्धि से (स्वोक्तकर्मभिः) अपने उक्त कर्मों से (युक्ताः) युक्त (एकद्वित्रिचतुपंचाक्षांगिनः) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्राणी होते हैं।

भावार्थ–स्पर्शनादि अपने अपने कर्म से निर्मित्त एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव होते हैं।।८४।।

भूवारिवह्निवातांगा ये वनस्पतिकायिकाः।
स्थूलाः सूक्ष्माश्च ते सर्वे भवंत्यकेन्द्रियांगिनः।।८५।।

अन्वयार्थ–(ये) जो (भूवारिवह्निवातंगाः) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु (वनस्पतिकायिकाः) वनस्पति कायिक (सर्वे) सर्व (एते) ये (एकेन्द्रियांगिनः) एकेन्द्रियादि प्राणी (स्थूलाः) स्थूल (सूक्ष्माः) सूक्ष्म (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ–पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक ये सभी एकेन्द्रियादि प्राणी स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं।।८५।।

शंखशुक्तिनखक्षुल्लकक्षेदिककपर्दिकाः।
गंडूपदोदरकृम्याद्याश्च ते द्वीन्द्रियांगिनः।।८६।।

अन्वयार्थ–(शंख, शुक्ति, नख, क्षुल्लक, क्षेदिक, कपर्दिका) शंख, सीप, नख, क्षुल्लक, क्षेदिक, कोडी (च) और (गंडूपदोदरकृम्याद्याः) गंडूप, उ र, कृमि आदि (ते) वह (द्वीन्द्रियांगिनः) दो इन्द्रिय प्राणी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–शंख, सीप, नख, क्षुल्लक, क्षैदिक, कोड़ी, गंडूप, उदरकृमि आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं।।८६।।

गोभीन्द्रगोपवृश्चिक यूकालिक्षापिपीलिका;।
कुन्थुस्त्रीमत्कुणाद्याश्च जिनेन्द्रैस्त्रीन्द्रियाः स्मृता।।८७।।

अन्वयार्थ–(गोभीन्द्रगोपवृश्चिकयूकालिक्षापिपीलिकाः) गोभी (कंसला) इन्द्रगोप, बिच्छू, जूं, लीख, चिउंटी (च) और (कुन्थुस्त्रीमत्कुणाद्याः) कुन्थुस्त्री, खटमल आदि को (जिनेन्द्रैः) जिनेन्द्र भगवान ने (त्रीन्द्रियाः) तीन इन्द्रिय प्राणी (स्मृताः) कहा है।

भावार्थ–गोभी, इन्द्रगोप (वर्षाकाल में होने वाला रक्त वर्ण का कीड़ा) विच्छू, जूं, लीख, चिउटी, कुंथु, खटमल आदि को जिनेन्द्र भगवान ने तीन इन्द्रिय जीव कहा है।।८७।।

भृंगः पतंगः कीटश्च दंशो मशकमक्षिके।
मधुगोमक्षिकाद्याश्च देहिनश्चतुरिन्द्रियाः।।८८।।

अवन्यार्थ–(भृंगः) भंवरा (पतंगः) पतंगा (कीटः) कीडा (दंशः) डांस (मशक मक्षिके) मच्छर मक्खी (मधुगोमक्षिकाद्याः) मधुमक्खी गो मक्षिका आदि (देहिनः) प्राणी (चतुरिन्द्रियाः) चतुरिन्द्रिय हैं।

भावार्थ–भ्रमर, पतंगा, कीट, मच्छर, मक्षिका आदि प्राणी चतुरिन्द्रिय हैं।।८८।।

जलस्थलखगास्ते ये मीननागशुकादयः।
ज्ञेयाः पंचेन्द्रियाः सर्वे नारकाश्च नराः सुराः।।८९।।

अन्वयार्थ–(जलस्थलखगाः) जलचर, थलचर, नभचर (ये) जो (मीननागशुकादयः) मच्छली, हाथी, तोता आदि (च) और (नारकाः) नारकी (नराः) मानव (सुराः) देव (ते) वे (सर्वे) सब (पंचेन्द्रियः) पंचेन्द्रिय (ज्ञेयाः) जानना चाहिये।

भावार्थ–पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में हाथी, सिंह, भैंस आदि थलचर। मच्छली, मगर आदि जलचर, तोता, कबूतर मयूर आदि नभचर पंचेन्द्रिय हैं। तथा नारकी, देव और मनुष्य भी पंचेन्द्रिय होते हैं।।८९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काय मार्गणा

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकाः।
जीवा षडिति पृथ्व्यादिनामकर्मविशेषजाः।।९०।।

अन्वयार्थ–(पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकाः) पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय (पृथिव्यादिनामकर्मविशेषजाः) पृथ्वी आदि नाम कर्म विशेष से उत्पन्न (इति) इसप्रकार (षट्) छह प्रकार के (जीवाः) जीव हैं।

भावार्थ–पृथिवी आदि नाम कर्म से उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति और त्रसकाय यह छह काय के जीव हैं।।९०।।

मसूरिकापयोविन्दूसूचीवृन्दध्वजोपमाः।
कायाश्चतुर्षु पृथ्व्यादिष्वन्त्ययोर्विविधाः स्मृताः।।९१।।

अन्वयार्थ–(पृथ्व्यादिषु) पृथ्वी आदि (चतुर्षु) चार में आकृति क्रमशः (मसूरिकापयोविन्दुसूची-वृन्दध्वजोपमाः) मसूरिका, पयोबिन्दु सूचिका समूह, ध्वजोपम हैं (अन्त्ययोः) अन्त के दो (विविधाः) विविध प्रकार के (स्मृताः) माने हैं।

भावार्थ–पृथ्वीकाय का आकार मसूरिका के समान है, अग्निकाय का आकार सूची के आकार है, जलकाय का आकार जलबिन्दु के समान है, वायुकाय के जीवों का आकार ध्वजा के समान है, वनस्पति काय का और त्रसकाय के जीव अनेक प्रकार के हैं।।९१।।

समचतुरस्त्रं न्यगोध्रस्वाती द्वे च वावनम्।
कुब्जं हुंडमिति प्रोक्तं संस्थानं षड्विधं जिनैः।।९२।।

अन्वयार्थ–(समचतुरस्त्रं) समचतुरस्त्र संस्थान (न्यगोध्रस्वाती) न्यगोध्र, स्वाति (द्वे) दो (वामनं) वामन (कुब्जं) कुब्ज (च) और (हुंडं) हुंडक (इति) इस प्रकार (षड्विधं) छह प्रकार के (संस्थानं) संस्थान (जिनैः) जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं।

भावार्थ–समचतुरस्त्र संस्थान, न्यगोध्र परिमंडल संस्थान, स्वाति संस्थान, वामन संस्थान, कुब्जक संस्थान और हुंडक संस्थान के भेद से जिनेन्द्र भगवान ने छह प्रकार के संस्थान कहे हैं। जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों के आकार बने वह संस्थान नाम कर्म है। वह छह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार का है। ऊपर नीचे और मध्यम में कुशल शिल्पी के द्वारा बनाये गये समचक्र की तरह समान रूप से शरीर के अवयवों की रचना होना समचतुरस्त्र संस्थान है। बड़ के पेड़ की तरह नाभि के ऊपर भारी और नीचे लघु प्रदेशों की रचना का होना न्यगोध्र परिमंडल संस्थान है। उससे ऊल्टा ऊपर लघु और नीचे भारी वामी की तरह रचना का होना स्वाति संस्थान है। पीठ पर बहुत पुद्गलों का पिंड हो जाना अर्थात् कुबड़ापन कुब्जक संस्थान है। सभी अंग और उपांगों को छोटा बनाने में कारण वामन संस्थान है। सभी अंग और उपांगों को वेतरतीव हुंड की तरह रचना हुंडक संस्थान है।।९२।।

हुंडं पुंनारकैकाक्षाद्यसंज्ञ्यतेषु सामरे।
भोगभूजे भवेदाद्यं सर्वाण्यन्येषु देहिषु।।९३।।

अन्वयार्थ–(पुंनारकैकाक्षाद्यसंज्ञ्यंतेषु) कुभोगभूमि नपुंसक नारकी एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञि पर्यन्त जीवों में (हुंडं) हुंडक संस्थान है (सामरे) देवों में (भोगभूमिजे) और भोगभूमि में (आद्यं) प्रथम (समचतरस्त्रसंस्थानं) होता है (अन्येषु) शेष सर्व (देहिषु) प्राणियों में (सर्वाणि) सर्व संस्थान होते हैं।

भावार्थ–कुभोग भूमियों में मनुष्य, नारक, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियों में एक हुंडक संस्थान होता है। देव और भोगभूमि जीवों में समतुरस्त्र संस्थान है। शेष जीवों में छहों संस्थान होते हैं।।९३।।

रसरत्नशिलालोहवालुकागैरिकादयः।
मृदश्च पृथ्वीतत्काया पृथिवीकायिकांगिनः।।९४।।

अन्वयार्थ–(रसरत्नशिलालोहवालुकागैरिकादयः) रस (पारद) रत्नशिला, लोह, बालू, गैरिक आदि (मृदश्च) मिट्टी (च) और (पृथ्वी) पृथ्वी (पृथिवीकायिकांगिनः) पृथ्वी कायिक प्राणी हैं (तत्कायाः) पृथ्वीकाय हैं।

भावार्थ–मिट्टी आदि पृथिवी, बालू, तिकोन, चौकोंन रूप, शर्करा, गोल पत्थर, बड़ा पत्थर, समुद्रादि का लवण, नमक, लोहा, ताम्बा, जस्ता, सीसा, चांदी सोना, हीरा।।१३।। हरिताल, इंगुल, मैनसिल, हरा रंग वाला, सस्यक, सुरमामूंगा, भोडल (अभ्रक) चमकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रेती।।२१।। गोरोचन वर्णवाली, कर्केतनमणि अलसी पुष्पवर्ण, राजवर्तकमणि, पुलकवर्णमणि, स्फटिकमणिक, पद्मरागमणि, चन्द्रकान्तमणि, वैडूर्य, (नील) मणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि।।३०।। गेरूवर्ण इस प्रकार पृथिवी के छत्तीस भेद हैं। ये सब जीव पृथ्वी कायिक हैं।।९४।।

नदीनदसमुद्रादिजलवर्षाम्बुसीकराः।

स्युः प्रालेयादयश्चापस्तदप्कायाः स्वकायिकाः।।९५।।

अन्वयार्थ–(नदीनदसमुद्रादिजलवर्षाम्बुसीकराः) नदी, नद, समुद्रादि का जल वर्षा का पानी, जलकण (प्रालेयादयः) हिम (बर्फ) आदि (अप्) जल (स्युः) हैं (च) और (तदपकायाः) वह जल जिनका शरीर है (स्वकायिकाः) वह जलकायिक हैं।

भावार्थ–ओस, बर्फ, धुंआ के समान पाला, स्थूल बिन्दु रूप जल सूक्ष्मादि बिन्दु रूप जल, चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न शुद्ध जल, झरना से उत्पन्न जल, मेघ का जल वा घनोदधिवात जल ये सब जलकायिक जीव हैं। पूर्वाभिमुख में निकलने वाली सरिता का नाम नदी है। पश्चिमाभिमुख से निकलने वाली नदी को नद कहते हैं।।९५।।

स्युरंगाराः स्फुलिंगाश्च ज्वालाश्चाप्यन्यवन्हयः।

तेजांसि तच्छरीरा ये ते तेजस्कायिकाः स्मृताः।।९६।।

अन्वयार्थ–(अंगाराः) अंगार (स्फुलिंगाः) स्फुलिंग (ज्वालाः) ज्वाला (च) और (अपि) भी (अन्यवह्यः) अन्य अग्नियां (तेजांसि) अग्नि हैं (ये) जो (तच्छरीराः) अग्नि जिनका शरीर है (ते) वे (तेजस्कायिकाः) तेजकाय (स्मृताः) कहे गये हैं।

भावार्थ–धुआं रहित अंगार, ज्वाला, दीपक की लौ, कंडा की आग और वज्राग्नि, विजली आदि से उत्पन्न शुद्ध अग्नि, सामान्य अग्नि ये तेज कायिक जीव हैं।।९६।।

वातोवात्या महावाता व्यजनादिभवाश्च ये।

ते वातास्तच्छरीराः स्युरगिनो वातकायिकाः।।९७।।

अन्वयार्थ–(वातः) वात (वात्या) वात्या (महावाता) महावात (व्यजनादिभवाः) पंखे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि से उत्पन्न होने वाली (ये) जो (वात) वायु हैं (तच्छरीराः) वह वायु जिसका शरीर है (ते) वे (अंगिनः) प्राणी (वातकायिकाः) वातकायिक हैं।

भावार्थ–सामान्य वायु का नाम वात है, वातूलिका का नाम वात्या है। घनोद्ध्यादि महावात है। भ्रमता हुआ ऊंचा जाने वाला, बहुत रज सहित, आवाज वाला, पृथ्वी में लगता हुआ, चक्कर वाला, गूंजता हुआ चलने वाला पवन है।।९७।।

ते वनस्पतयो बृक्षक्षुपवल्लीतृणादयः।

उद्वेजनक्रियाभाजस्त्रसाः स्युर्द्वीन्द्रियादयः।।९८।।

अन्वयार्थ–(वृक्षक्षुपवल्लीतृणादयः) वृक्ष, क्षुप, वल्ली (लता) तृणादि (ते) वह (वनस्पतयः) वनस्पति कायिक हैं (उद्वेजनक्रियाभाजः) उद्वेजन क्रिया के भागी (द्वीन्द्रियादयः) द्वीन्द्रियादि (त्रस) त्रस (स्यु) हैं।

भावार्थ–विशाल वृक्ष को वृक्ष कहते हैं। छोटे को क्षुप कहते हैं। बेल (लता) को बल्लरी कहते हैं। घास फूंस को तृण कहते हैं। वृक्ष, क्षुप, वल्लरी, तृणादि, वनस्पति कायिक जीव हैं। जो भयभीत होते हैं वा जिसके त्रस नाम कर्म का उदय है वे द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस होते हैं।।९८।।

योमार्गणा

कर्मादाननिमित्तात्मप्रयत्नो योग इष्यते।

देहनामैनसः पाकात्प्रदेशस्पंदलक्षणः।।९९।।

अन्वयार्थ–(कर्मादाननिमित्तात्मप्रयत्नः) कर्म के ग्रहण करने में निमित्तभूत जो आत्मा का व्यापार विशेष अथवा (देहनामैनसः) शरीर नाम कर्म पाप के (पाकात्) उदय से (प्रदेशस्पंलक्षणः) आत्म प्रदेशों का परिस्पंद लक्षण (योग) योग (इष्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–कर्मों के ग्रहण करने में निमित्त जो व्यापार विशेष है उनको योग कहते हैं। अथवा शरीर नाम कर्म रूपी पाप कर्म के उदय से जो आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन होता है उनको योग कहते हैं।।९९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोयोगः स वाग्योगः काययोग इति त्रिधा।
मनोवचनपर्याप्तिकायवत्सु क्रमेण नुः।।१००।।

अन्वयार्थ–(नुः) मानव के (मनोवचनपर्याप्तिकायवत्सु) मन, वचन, काय पर्याप्ति वालों के (क्रमेण) क्रम से (मनोयोगः) मनोयोग (वाग्योगः) वचन योग (काययोगः) काययोग (इति) इसप्रकार (सः) वह योग (त्रिधा) तीन प्रकार का है।

भावार्थ–मन, वचन, काय के भेद से योग जीवों के मन पर्याप्ति में मनोयोग वचन पर्याप्ति में वचनयोग और कायपर्याप्ति में काय योग होता है।।१००।।

वेद मार्गणा

स्त्री पुमान् षण्ढ इत्येवं भावावेदास्त्रयोंऽगिषु।
ते स्त्रीपुंषण्ढवेदैनः प्रदेशोदयसंभवाः।।१०१।।

अन्वयार्थ–(स्त्री) स्त्री (पुमान्) पुरूष (षण्ढ) नपुंसक (इत्येवं) इस प्रकार (अंगिषु) प्राणियों में (स्त्रीपुंषण्ढवेदैनः) स्त्री पुरुष और नपुंसक वेद रूप पाप कर्म के (प्रदेशोदयसंभवाः) प्रदेशोदय से उत्पन्न (भावाः) भाव (वेदाः) वेद (त्रयः) तीन प्रकार हैं।

भावार्थ–स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद के उदय से उत्पन्न स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद हैं इस प्रकार प्राणियों में भावभेद तीन प्रकार का है।।१०१।।

स्त्रीपुंवेदाः सुरा भोगभूमिजाताश्च नारकाः।
षण्ढाः सम्मूर्च्छिनश्चान्ये नृतिर्यञ्च स्त्रिवेदिनः।।१०२।।

अन्वयार्थ–(सुराभोगभूमिजाताः) देव और भोगभूमि में उत्पन्न स्त्री पुरुष के (स्त्रीपुंवेदाः) स्त्री पुरुष दो वेद होते हैं। (नारकाः) नारकी (च) और (सम्मूर्च्छितः) सम्मूर्च्छिनों को (षण्ढा) नुपंसक वेद होता हैं (च) और (अन्ये) अन्य (नृतिर्यञ्चः) मनुष्य और तिर्यञ्च (त्रिवेदिनः) तीनों वेद वाले हैं।

भावार्थ–देव और भोगभूमि में उत्पन्न जीवों के स्त्री और पुरुष दो वेद होते हैं। नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवों के नुपंसक वेद होता है। शेष बचे मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेद वाले होते हैं।।१०१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईशानान्ते प्रवीचारः स्याद् द्वयोस्त्रिचतुर्ष्वत;।

शरीरे स्पर्शे रूपे च शब्द चित्ते ततो न सः।।१०३।।

अन्वयार्थ–(ईशानान्ते) ईशान स्वर्ग तक देवों में (शरीरे) शरीर में (अंतः) इसके आगे (द्वयोः) दो स्वर्ग में (स्पर्शे) स्पर्श से (त्रिचतुर्षु) तीन, चार, चार स्वर्ग में क्रम से (रूपे) रूप से (शब्दे) शब्द से (चित्ते) मन से (प्रवीचारः) प्रवीचार (स्यात्) है (ततः) उसके बाद (सः) वह प्रवीचार (न) नहीं है।

भावार्थ–ऐशान स्वर्ग पर्यन्त देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और पहले दूसरे स्वर्ग के देव मनुष्यों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं। शेष स्वर्ग के देव, देवियों के स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनने से और मन के विचारने से काम सेवन करते हैं। अर्थात् तीसरे चौथे स्वर्ग के देव, स्पर्श से, पांचवे-छठवें सातवें और आठवें स्वर्ग के देव रूप देखने से, नवमें दशवें ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग के देव शब्द सुनने से, तेरहवें, चौदहवें पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देव मन के विचारने मात्र से तृप्त हो जाते हैं। सोलहवें स्वर्ग के आगे देव काम सेवन से रहित होते हैं।।१०३।।

कषायमार्गणा

चतुः कषायाः क्रुन्मानमायालोभा विपाकजाः।

चतुः कषायाः सामान्यक्रोधादिद्रव्यकर्मणः।।१०४।।

अन्वयार्थ–(सामान्यक्रोधादिद्रव्यकर्मणः) सामान्य क्रोधादि द्रव्य कर्मों के (विपाकजाः) विपाक से होने वाली (क्रुन्मानमायालोभाः) क्रोध, मान, माया और लोभ रूप (चतुः कषायाः) चार कषाय हैं (चतुः कषायाः) एक एक कषाय के चार चार भेद हैं।

भावार्थ–सामान्य क्रोधादि द्रव्य कर्म के उदय से क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय होती हैं और एक एक कषाय के विशेष चार चार भेद होते हैं। क्रोध चार प्रकार के है एक पत्थर की रेखा के समान, दूसरा पृथ्वी की रेखा के समान, तीसरा धूलि रेखा की समान, चौथी जल रेखा के समान है। मान चार प्रकार है, पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान तथा वेंत के समान है। माया चार प्रकार होती है। बांस की जड़ के समान, मेढ़े के सींग के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान, गोमूत्र के समान, खुरपा के समान है। लोभ भी चार प्रकार है। क्रिमि राग के समान, चक्रमल के समान (ओंगन) है। शरीर के मल के समान, हल्दी के रंग के समान होती है। अथवा अन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये भी एक एक कषाय के चार चार भेद होते हैं।।१०४।।

ज्ञानमार्गणा

ज्ञानसष्टविधं ज्ञातं पुरा स्युः सप्त संयमाः।
चारित्रपंचकं देशसंयमासंयमान्वितम्।।१०५।।

अन्वयार्थ–(पुरा) पहिले (ज्ञानं) ज्ञान (अष्ठविधं) आठ प्रकार का (ज्ञातं) कहा है। (चारित्रपंचकम्) पांच प्रकार का चारित्र (देशसंयमासंयमान्वितं) देशसंयम और असंयम से युक्त (सप्तसंयमाः) सात प्रकार संयम (स्युः) है।

भावार्थ–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, कुमति, कुश्रुति और कुअवधि, यह आठ प्रकार के ज्ञान हैं। सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपरायिक, और यथाख्यात पांच प्रकार का चारित्र तथा देशसंयम और असंयम के भेद से संयम सात प्रकार का है। कर्मों के आस्रव में कारणभूत वाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं के त्याग करने को चारित्र कहते हैं। सम्पूर्ण पापों का त्याग करने को सामायिक कहते हैं। प्रमाद के वश से अहिंसा आदि व्रतों में दूषण लग जाने पर आगमोक्त विधि से उस दोष का प्रायश्चित करके पुनः व्रतों का ग्रहण करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

जिस चारित्र में जीवों की हिंसा का त्याग होने से विशेष शुद्धि हो उसको परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सदा सुखी रहकर पुनः दीक्षा ग्रहण करके तीर्थंकर भगवान के पादमूल में आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व का अध्ययन करने वाले जीव के यह संयम होता है। इस संयम वाला जीव तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस पर्यन्त गमन करता है, रात्रि को गमन नहीं करता है, वर्ष काल में गमन करने या न करने का कोई नियम नहीं है। जिस चारित्र में अति सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय रहता है, उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं। सम्पूर्ण मोहनीय के उपशम या क्षय होने पर आत्मा के अपने स्वरूप में स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं।।१०५।।

दर्शनमार्गणा

प्रत्याख्यानकषायोदयेन स्याद्देशसंयमः।

विविधाऽसंयमो भावोप्रत्याख्यानकषायतः।।१०६।।

अन्वयार्थ–(प्रत्याख्यानकषायो येन) प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से (देशसंयमः) देशसंयम (स्यात्) होता है (अप्रत्याख्यानकषायतः) अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से (विविधासंयमः) विविध प्रकार के असंयम (भावः) भाव होते हैं।

भावार्थ–सकलसंयम घातक प्रत्याख्यानावरणीकषाय के उदय से देश संयम होता है। तथा देश संयम घातक अप्रत्याख्यानकषाय के उदय से अनेक प्रकार असंयम भाव होता है।।१०६।।

दर्शनं ग्रहणं सामान्यात्मनस्तच्चतुर्विधम्।

अचक्षुश्चक्षुरवधिः केवलं चेति वर्णितम्।।१०७।।

अन्वयार्थ–(सामान्यात्मनः) सामान्य आत्मा का (ग्रहणं) ग्रहण (दर्शनं) दर्शन है (तत्) वह दर्शन (अचक्षु) अचक्षुदर्शन (चक्षुः) चक्षुदर्शन (अवधि) अवधि दर्शन (केवलं) केवलदर्शन (इति) इसप्रकार (चतुर्विधं) चार प्रकार का (वर्णितं) कहा है।

भावार्थ–सामान्य आत्मा का दर्शन अवलोकन है। वह चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवल दर्शन के भेद से चार प्रकार का है। चक्षु इन्द्रियों से होने वाले सामान्य अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं। चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मन से पदार्थ का सामान्य अवलोकन हो उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं।

अवधिज्ञान से पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकन को अवधिज्ञान दर्शन कहते हैं। केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को केवल दर्शन कहते हैं।।१०७।।

चक्षुः शेषेन्द्रियज्ञानहेत्वचक्षु रचक्षुषी।

विभंगावधिहेतुः स्योदकं त्ववधिदर्शनम्।।१०८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(चक्षुः शेषेन्द्रियज्ञानहेतुः) चक्षु और शेष इन्द्रियों के ज्ञान में कारण (चक्षुरचक्षुषी) चक्षु और अचक्षु दर्शन है (तु) और (विभंगावधि हेतुः) विभंगावधि का कारण अवधिज्ञान का हेतु (अवधिदर्शनं) अवधिदर्शन (एकं) एक (स्यात्) है।

भावार्थ–चक्षु दर्शन और शेष इन्द्रियों के ज्ञान में कारण चक्षु और अचक्षु दर्शन है और विभंगावधि और अवधिज्ञान का कारण अवधि दर्शन है।।१०८।।

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणैनसाम्।

क्षयोपशमतश्चक्षुर्दर्शनादित्रयं भवेत्।।१०९।।

अन्वयार्थ–(चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणैनसाम्) चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण पाप के (क्षयोपशमत) क्षयोपशम से (चक्षुदर्शनादित्रयं) चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन (भवेत्) होते हैं।

भावार्थ–चक्षुदर्शनावरणीकर्म के क्षयोपशम से चक्षुदर्शन होता है। अचक्षुदर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से अचक्षुदर्शन होता है। अवधि दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से अवधि दर्शन होता है।।१०९।।

समं केवलबोधेन केवलं दशनं भवेत्।

निजावरणनिःशेषक्षयात्क्षायिकमक्रमात्।।११०।।

अन्वयार्थ–(क्षायिकक्रमात्) क्षायिक क्रम से (निजावरणनिशेषक्षयात्) अपने अपने आवरण के सम्पूर्ण कर्म के क्षय होने से (केवलबोधेन) केवलज्ञान के (समं) साथ (केवलं) केवल (दर्शनं) दर्शन (भवेत्) होता है।

भावार्थ–क्षायिक क्रम से अपने अपने आवरण के सम्पूर्ण कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान के साथ केवल दर्शन होता है।।११०।।

लेश्यामार्गणा

कृष्णनीलकपोताख्याः लेश्यास्तिस्रोऽशुभाः शुभाः।

स्युस्तेजः पद्मशुक्लाख्याः कषायोन्मिश्रयोगजाः।।१११।।

अन्वयार्थ–(कृष्णनीलकपोताख्याः) कृष्णनील और कपोत नाम की (तिस्रः) तीन (अशुभाः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ लेश्या है (तेजपद्मशुक्लाख्याः) तेज पद्म शुक्ल नाम की (तिस्रः) तीन (शुभाः) शुभ लेश्या है। यह लेश्या (कषायोन्मिश्रयोगजाः) कषाय से उन्मिश्रित योग से उत्पन्न होती है

भावार्थ–कृष्ण नील और कापोत नाम की लेश्या तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या शुभ लेश्या होती हैं। तीव्र क्रोध करने वाला हो, वैर को नहीं छोड़ने वाला, लड़ने के स्वभाव वाला, धर्म दया से रहित, दुष्ट किसी के वश नहीं होने वाला जीव कृष्ण लेश्या के चिह्नौ वाला होता है, काम करने में मन्द, कार्य करने में विबेक रहित, इन्द्रियों के विषयों में लम्पट मानी, मायाचारी, आलसी, अतिनिद्रालु, धनधान्य में अति लालसा का करना ये नील लेश्या के परिणाम हैं। दूसरे पर क्रोध करना, दूसरे की निन्दा करना, वैर करना शोकाकुल रहना, दूसरे से ईर्ष्या रखना, तिरस्कार करना, अपनी प्रशंसा करना, अपनी स्तुति करने वाले पर संतुष्ट होना, अपनी हानिवृद्धि कुछ न समझना ये कापोत लेश्या के परिणाम हैं। अपने कार्य, अकार्य, सेव्य, असेव्य को समझता, दयादान से तत्पर होना, मन, वचन, काय के विषय में कोमल परिणामी होना वह पीत लेश्या के परिणाम है। दान देने वाला, भद्र परिणामी, उत्तम कार्य करने वाला ये परिणाम पद्म लेश्या वाले के हैं। पक्षपात नहीं करना, निदान नहीं बांधना, सबके प्रति समदर्शी होना, इष्ट में राग, अभीष्ट में द्वेष न करना, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि में स्नेहरहित होना ये सब परिणाम शुक्ल लेश्या के हैं।।१११।।

निर्वाणयोग्यता भव्यताऽन्याऽनिर्वाणयोग्यता।

अष्टकर्मोदयाज्जाते अप्येते परिणामिकौ।।११२।।

अन्वयार्थ–(निर्वाणयोग्यता) निर्वाण की योग्यता (भव्यता) भव्यता है (अनिर्वाणयोग्यता) अनिर्वाणयोग्यता (अभव्यता) अभव्यता है (ऐते) यह भव्यता, अभव्यता (अष्टकर्मोदयात्) अष्टकर्म के उदय से (जाते) होने पर (अपि) भी (परिणामिकौ) परिणामिक भाव है।

भावार्थ–जिसमें सम्यकदर्शनादि निर्वाण के योग्य शक्ति के व्यक्त होने का सामर्थ्य है, वह भव्यता है और जिसमें निर्वाण पद प्राप्त करने की योग्यता नहीं, वह अभव्य है। यद्यपि वह भव्याभव्यता अष्ट प्रकार कर्म के उदय से है, क्योंकि मुक्तावस्था में भव्यताभव्यता नहीं है, तथापि किसी मुख्य कर्म का उदय कारण नहीं होने से यह दोनों भाव पारिणामिक है।।११२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वमार्गणा

षट् सम्यक्त्वानि पूर्वोक्तवेदकादिरुचित्रयम्।

मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्व सासादनगुणैः सह।।११३।।

अन्वयार्थ–(पूर्वोक्तवेदकादिरुचित्रयम्) पूर्व में कहे गये वेदकादि तीन सम्यक्त्व (मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सासादनगुणैः) मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सासादन गुण स्थान के (सह) साथ (षट्) छह (सम्यक्त्वानि) सम्यक्त्व है।

भावार्थ–पूर्वोक्त कथित क्षायिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सासादन यह छह प्रकार सम्यक्त्व है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व सातों प्रकृति का बिल्कुल क्षय हो जाना, क्षायिक सम्यक्त्व है। सातों प्रकृतियों का उपशम हो जाना, उपशम सम्यक्त्व कहलाता है। वर्तमान में उदय आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं का आगामी काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति स्पर्द्धकों का उदय होने को क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।।११३।।

मिथ्यात्वकर्मणः पाकान्मिथ्यात्व मिश्रता भवेत्।

सम्यग्मिथ्यात्वकर्मोदयात्तु श्रद्धानघातिनः।।११४।।

दृङ्मोहम्योदयादिभ्यो यन्न सासादनो गुणः।

जात औदयिकोऽपि स्यात्तदयं पारिणामिकः।।११५।।

अन्वयार्थ–(मिथ्यात्व कर्मणाः) मिथ्यात्व कर्म के (पाकात्) उदय से (मिथ्यात्व) मिथ्यात्व (सम्यग्मिथ्यात्व कर्मोदयात्) सम्यक्मिथ्यात्व कर्म के उदय से (मिश्रता) मिश्रता (भवेत्) होती है (श्रद्धानघातिन) श्रद्धान का घात करने वाले (दृङमोहस्य) दर्शन मोहनीय के (उदयादिभ्यो) उदयादि से (सासादनगुणः) सासादन गुण स्थान (न) नहीं होता है (यत्) यद्यपि (औदायिकः) अनन्तानुबन्धी के उदय से (जातः) उत्पन्न है (ततः) तथापि (अयं) यह (पारिणामिकः) पारिणामिक है।

भावार्थ–मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्यात्व होता है। सम्यगमिथ्यात्व कर्म के उदय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वमिथ्यात्व होता है। जिससे न सम्यक्त्व रूप परिणाम होते हैं और न मिथ्यात्व रूप परिणाम होते हैं, वह मिश्र भाव है। जो अनन्तानुबन्धी कर्म के उदय से सम्यक्त्व से च्युत हो गया है और मिथ्यात्व में पहुंचा नहीं है मध्य की अवस्था सासादन हैं। यद्यपि इसमें अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय है। तथापि दर्शन मोहनीय के उदय का अभाव होने से इसको पारिणामिक भाव कहा है।।११४-११५।।

संज्ञीमार्गणा

संज्ञित्वं समनस्कत्वं शिक्षाऽदानादियोग्यता।

भवेदसंज्ञिता संज्ञिलक्षणालक्षितत्वतः।।११६।।

अन्वयार्थ–(शिक्षादानादियोग्यता) शिक्षादि ग्रहण करने की योग्यता (संज्ञित्वं) संज्ञित्व (समनस्कत्वं) समनस्कत्व है (संज्ञिलक्षणालक्षितत्वतः) संज्ञी लक्षण से अलक्षितवान (असंज्ञिता) असंज्ञिता (भवेत्) होती है।

भावार्थ–हित अहित की परीक्षा तथा गुण दोष का विचार वा स्मरणादिक करने को संज्ञी कहते हैं। हिताहित का विचार करने की जिसमें योग्यता नहीं है उसको असंज्ञी कहते हैं।।११६।।

आहार-मार्गणा

नोकर्मादानमाहारः सादिदेहत्रयोदयात्।

नोकर्माहरणाभावस्त्वनाहारः प्ररूपितः।।११७।।

अन्वयार्थ–(सादिदेहत्रयोदयात्) सादि तीन देह के उदय से (नोकर्मादानम्) नोकर्म वर्गणा को ग्रहण करना (आहारः) आहारकत्व है (तु) और (नोकर्माहरणाभावः) नोकर्म के वर्गणा के अभाव से (अनाहारः) अनाहार (प्ररूपितः) प्ररूपण किया गया है।

भावार्थ–औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं के ग्रहण को आहार कहते हैं। इस प्रकार का आहार जिसके न हो वह अनाहारक कहलाता है।।११७।।

उपयोग

साकार उपयोगः स्यादुपयोगोऽष्टबोधजः।

अनाकारश्चतुर्दर्शनोत्थस्तौ जीव लक्षणम्।।११८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्ववयार्थ–(अष्टबोधजः) आठ प्रकार के ज्ञान से उत्पन्न (साकार) ज्ञान (उपयोगः) उपयोग (चतुर्दर्शनोत्थः) चार प्रकार के दर्शन से उत्पन्न (अनाकारः) अनाकार (दर्शन) दर्शन (उपयोगः) उपयोग (स्यात्) है (तौ) वह दोनों उपयोग (जीवलक्षणं) जीव का लक्षण है।

भावार्थ–(मतिश्रुतादि) आठ प्रकार के ज्ञान से उत्पन्न मतिज्ञानोपयोग श्रुतज्ञानोपयोगादि आठ प्रकार का ज्ञानोपयोग है। चक्षुदर्शनादि चार दर्शन से उत्पन्न चक्षुदर्शनोपयोग आदि चार प्रकार का दर्शन उपयोग है। आत्मा में ज्ञानावरणी कर्म के क्षय और क्षयोपशम से होने वाली अर्थ ग्रहण करने की शक्ति का नाम ज्ञान है। आत्मा का अर्थ को जानने के लिए जो व्यापार है वह उपयोग है। बाह्य और अभ्यन्तर निमित्तों के कारण आत्मा के चैतन्य स्वरूप का ज्ञान और दर्शन से परिणमन होता है उसे उपयोग कहते हैं।।११८।।

जीवों की उत्पत्ति

नृतिर्यक्संज्ञिपर्याप्त कर्मभूगर्भजेजनिः।

सुराणां नारकाणां च सप्तभ्याः स्यात्तिरश्चितु।।११९।।

अन्वयार्थ–(सुराणां) देवों की (नारकाणां) नारकियों की (जनिः) उत्पत्ति (नृतिर्यक्संज्ञिपर्याप्तकर्मभूगर्भजे) मनुष्य, तिर्यञ्च, संज्ञि, पर्याप्त, कर्म भूमि के गर्भज जीवों में (स्यात्) है (तु) परन्तु (सप्तम्याः) सातवें नरक से निकल कर जीव (तिरश्चि) तिर्यञ्च में ही (जनिः) उत्पन्न होता है।

भावार्थ–देव और नारकी वहाँ से च्युत कर्मभूमियां गर्भज, और संज्ञि पर्याप्त गर्भज कर्म भूमियां तिर्यञ्च होते हैं। परन्तु सातवें नरक से निकला हुआ नारकी नियम से गर्भज कर्मभूमियां तिर्यञ्च ही होता है।।११९।।

तीर्थेशाश्चरमांगाश्च संयता देशसंयताः।

तुर्यादिसप्तभ्यंताभ्यश्च्युत्ता नो नारकाः क्रमात्।।१२०।।

नारकोऽन्तरं न स्याच्चक्रेशः केशवोबलः।

शलाकपुरूषा नैव नृतिर्यग्भावनत्रयम्।।१२१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च्युतो न केशवोऽनुदिशानुत्तरविमानतः।
संज्ञि पूर्णेषु जायन्ते आसहस्रारतश्च्युताः।।१२२।।
भवन्त्यनन्तरं देवा ये आईशानतश्च्युताः।
अप्रतिष्ठितप्रत्येक स्थूल भूतोयपूर्णगाः।।१२३।।

अन्वयार्थ–(तुर्यादिसप्तम्यन्ताभ्यः) चौथे नरक से लेकर सप्तमी पृथ्वी से (च्युताः) निकले हुए (नारकाः) नारकी (क्रमात्) क्रम से (तीर्थेशाः) तीर्थंकर (चरमांगाः) चरम शरीरी (संयताः) मुनि (च) और (देशसंयतः) देश संयत (नो) नहीं होते हैं। (नारकः) नारकी (अनन्तरं) नरक से निकलकर (चक्रेशः) चक्रवर्ती (केशवः) नारायण, प्रतिनारायण (बलः) और बलभद्र (श्लाकापुरुषाः) त्रेसठ श्लाका पुरुष (न) नहीं (स्यात्) होते हैं (नृतिर्यग्भावनत्रयम्) मनुष्य, तिर्यंच और भवनत्रियक देव में भी (नैव) श्लाका पुरुष नहीं होते हैं (अनुदिशानुत्तरविमानतः) अनुदिश और अनुत्तर विमान से (च्युताः) च्युत हुये जीव (संज्ञिपूर्णेषु) संज्ञि पर्याप्त जीवों में (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (आईशानतः) दूसरे स्वर्ग तक से (च्युताः) च्युत हुये (ये) जो (देवाः) देव (अनन्तरं) अनन्तरं भव में (अप्रतिष्ठितप्रत्येकस्थूलभूतोयपूर्णगाः) अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्थूल पृथ्वीकाय, जलकाय पर्याप्तों में (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–सातवें नरक से निकला हुआ जीव तिर्यंच ही होता है। और पुनः नरक में जाता है। छठवें नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य हो सकता है और सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त कर सकता है लेकिन देशव्रती नहीं हो सकता। पंचम नरक से निकला हुआ देशव्रती हो सकता है लेकिन महाव्रती नहीं होता लेकिन महाव्रती नहीं हो सकता। चौथे नरक से निकला हुआ जीव केवली भी हो सकता है। परन्तु तीर्थंकर नहीं हो सकता, तीसरे दूसरे और प्रथम नरक से निकले हुए तीर्थंकर हो सकते हैं। नरक से निकलकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और त्रेसठ श्लाका पुरुष नहीं होते हैं। मनुष्य, तिर्यंच और भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिष्क देव भी श्लाका पुरुष नहीं होते हैं। अनुदिश और अनुत्तर विमान से च्युत हुये जीव नारायण नहीं होते हैं। वारहवें के ऊपर से आये हुए जीव मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। दूसरे स्वर्ग से च्युत हुये जीव अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्थूल पृथ्वीकाय, जलकाय पर्याप्तों में उत्पन्न हो सकते हैं।।१२०-१२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यक्षु मर्त्यतिर्यञ्चस्ते तेजोवायुवर्जिताः।

नृषु पंचेन्द्रियाः पूर्णा नारकेष्वमरेष्वपि।।१२४।।

अन्वयार्थ–(तेजोवायुवर्जिताः) तेज काय, वायुकाय को छोड़कर (मर्त्यतिर्यञ्चः) मनुष्य और तिर्यञ्च (नृषु) मनुष्यों में (तिर्यक्षु) तिर्यञ्चों में जाते हैं (पूर्णा;) पर्याप्त (पंचेन्द्रियाः) पंचेन्द्रिय (नरकेषु) नरक में (अपि) और (अमरेषु) देवों में भी जाते हैं।

भावार्थ–एकेन्द्रियादि सम्पूर्ण तिर्यंच तेजकाय और वायुकाय को छोड़कर शेष तिर्यंच मनुष्यों में भी आ सकते हैं। पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, देव और नारकियों में भी जाते हैं। परन्तु तीर्थंकर तो स्वर्ग या नरक से ही आकर होते हैं।।१२४।।

अष्टवाराद्द्विवारान्तं धर्मोर्व्यादिष्वसंज्ञिन;।

सरीसृपाः खगाः सर्पाः सिंहाः कान्ता नरापचराः।।१२५।।

अन्वयार्थ–(घर्मोर्व्यादिषु) धर्मादि पृथ्वियों में (असंज्ञिनः) असंज्ञी (सरिसृपाः) सरीसृप (खगाः) पक्षी (सर्पाः) सर्प (सिंहा) सिंह (कान्ता) स्त्री (नराप्चरा) मनुष्य और मगरमच्छ (अष्टवारात्) आठ बार से लेकर (द्विवारान्तं) दो बार तक जा सकते हैं।

भावार्थ–प्रथम नरक में असंज्ञी अव्यवधान से आठ बार, तक जा सकता है। दूसरे नरक में सरीसृप सात बार जाता है। तीसरे नरक में पक्षी छह बार चौथे में सर्प पांच बार, पांचवें नरक में सिंह चार बार, छठवें नरक में स्त्री तीन बार और सातवें नरक में मनुष्य और मगरमच्छ दो बार जा सकते हैं।।१२५।।

भौमभावनयोः पूर्णो असंज्ञि भोगभूमिजाः।

तापसप्रवराश्चापि जायन्ते भवनत्रये।।१२६।।

अन्वयार्थ–(भौमभावनयोः) भवनवासी और व्यन्तर देवों में (पूर्णः) पर्याप्त (असंज्ञि) असंज्ञी (च) और (तापसप्रवराः) तापसी (भोगभूमिजाः) भोग भूमि के जीव (भवनत्रये) भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क में उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–असंज्ञि, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, भवनवासी और व्यन्तरों में उत्पन्न होते हैं। तापसी और मिथ्यादृष्टि भोग भूमि के जीव भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होते हैं।।१२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्दृष्टिभोगभूजाताः सौधर्मेशानकल्पयो।

पर्याप्ताः कर्मभूसंज्ञिमानवा भोगभूमिषुः।।१२७।।

अन्वयार्थ–(सद्दृष्टिभोगभूजाताः) सम्यग्दृष्टि भोगभूमियां जीव (सौधर्मेशानकल्पयोः) सौधर्म और ईशान कल्प में उत्पन्न होते हैं (भोगभूमिषु) भोगभूमि में (पर्याप्ताः) पर्याप्त (कर्मभूसंज्ञिमानवाः) कर्मभूमि संज्ञि और मानव उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टि भोगभूमियाँ जीव सौधर्म और ईशान स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। और कर्मभूमि के पर्याप्त संज्ञी मनुष्य भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं।।१२७।।

परिव्राड् ब्रह्मकल्पान्तं यात्युग्राचारवानपि।

आजीवकः सहस्त्रारकल्पान्तं दशनोज्झितः।।१२८।।

यान्त्यच्युतान्तमुत्कर्षात्तिर्यञ्चो मानवा अपि।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नाऽसंयता देशसंयताः।।१२९।।

मर्त्यासंयतसद्दृष्टि देशव्रति कुदृष्टयः।

येन्त्यग्रैवेयकान्त ते यान्ति सद्द्रव्यसंयमात्।।१३०।।

अन्वयार्थ–(उग्राचारावान्) उत्कृष्ट आचारवान (अपि) भी (परिव्राड्) एकदंडी त्रिदंडी लक्षण परिव्राड् (ब्रह्मकल्पान्तं) ब्रह्म स्वर्ग तक जाते हैं (दर्शनोज्झिताः) मिथ्यादृष्टि (आजीवकः) परम हंस (सहस्त्रारकल्पान्तं) सहस्त्र कल्प तक (उत्कर्षात्) उत्कृष्टता से (सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः) सम्यग्दर्शन से सम्पन्न (असंयतः) असयत (तिर्यञ्चः) तिर्यंच (मानवाः) मानव (अपि) भी (सहस्त्रारकल्पान्तं) बारहवें स्वर्ग तक और (देशसंयुताः) देश संयत सम्यद्दृष्टि (असंयतसद् दृष्टिदेशव्रतिकुदृष्टयः) सम्यग्दर्शन से सम्पन्न देशव्रती, मिथ्यादृष्टि देशव्रती (मर्त्या) मानव (अच्युतं) अच्युत स्वर्ग तक (यान्ति) जाते हैं (ये) जो (अन्त्यग्रैवेयकान्तं) अन्तिम ग्रैवेयक तक (यान्ति) जाते हैं (ते) वे (सद्द्रव्यसंयमात्) उत्तम द्रव्य महाव्रत के संयोग से जाते हैं।

भावार्थ–उत्कृष्ट आचारवान भी एकदंडी, त्रिदंडी लक्षण परिव्राट् ब्रह्म स्वर्ग तक अथवा पांचवें स्वर्ग तक जाते हैं। मिथ्यादृष्टि कांजी आहार करने वाले सहस्त्रार कल्प तक जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्टता से सम्यग्दर्शन से सम्पन्न असंयत तिर्यञ्च और मानव बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं और देशसंयत सम्यग्दृष्टि सम्यग्दर्शन से सम्पन्न देशव्रती, मिथ्यादृष्टि देशव्रती, मनुष्य और तिर्यंच अच्युत स्वर्ग तक जाते हैं। द्रव्य महाव्रत के संयोग से मनुष्य अन्तिम ग्रैवेयक जाते हैं।।१३०।।

यान्ति सर्वार्थसिध्यन्तं नराः संयमिनश्च्युताः।

सर्वार्थसिद्धिजा मोक्षगाः स्युर्लौकान्तिका अपि।।१३१।।

सलोकपालाः शक्रादिदक्षिणेन्द्रा दिवश्च्युताः।

शंक्राग्रमहिषीयुक्ता नृषु निर्वात्यनन्तरम्।।१३२।।

अन्वयार्थ–(संयमिनः) सम्यग्दृष्टि महाव्रती (सर्वार्थसिध्यन्तं) सर्वार्थ सिद्धि पर्यन्त (यान्ति) जाते हैं। (च्युताः) वहां से च्युत होकर (सर्वार्थसिद्धिजाः) सर्वार्थसिद्धि के देव (मोक्षगाः) मोक्षगामी (स्युः) होते हैं। (अपि) और (लौकान्तिकाः) लौकान्तिक देव (सलोकपालाः) लोकपाल (शक्रादिदक्षिणेन्द्रा) दक्षिण दिशा के छह इन्द्र (शक्राग्रमहिषीयुक्ताः) मुख्य इन्द्राणी सहित प्रथम स्वर्ग का इन्द्र (दिवश्च्युताः) स्वर्ग से च्युत होकर (नृषु) मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर (अनन्तरं) अनन्तर भव में (निर्वान्ति) मोक्ष चले जाते हैं।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टिमहाव्रती, सवार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं वहाँ से च्युत होकर सर्वार्थसिद्धि के देव मोक्ष को जाते हैं और लौकान्तिक देव, लोकपाल, दक्षिणदिशा के छह इन्द्र, मुख्य शची इन्द्राणी सहित प्रथम स्वर्ग का इन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर अनन्तर मोक्ष में चले जाते हैं।।१३१-१३२।।

यस्यां जातिजरामृत्युक्लेशाश्लेषो न विद्यते।

सोक्ता सिद्धगतिर्यान्ति तां मर्त्या गुणभूषणाः।।१३३।।

अन्वयार्थ–(यस्यां) जिसमें (जातिजरामृत्युक्लेशाश्लेषः) जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु और क्लेश का आश्लेष (स्पर्श) (न) नहीं (विद्यते) हैं (सा) वह (सिद्धगतिः) सिद्धगति (उक्ता) कही जाती है (तां) उसको (गुणभूषणः) गुण भूषण (मर्त्या) मनुष्य ही (यान्ति) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–जिसमें जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु और क्लेश का स्पर्श भी नहीं है वह सिद्धगति कही जाती है। उसको गुणभूषण मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं।।१३३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीस पुरूपणा में गुणस्थान

प्ररूपणानामन्योन्थयोजनक्रमबुद्धये।
गुणस्थानानि योज्यन्ते मार्गणादिषु केषुचित्।।१३४।।

अन्वयार्थ–(प्ररूपणानाम्) प्ररूपणाओं का (अन्योन्ययोजनक्रमबुद्धये) अन्योन्य योजना क्रम से जानने के लिए (केषुचित्) किन्हीं (मार्गणादिषु) मार्गणाओं में (गुणस्थानानि) गुणस्थान (योज्यन्ते) युक्त करते हैं।

भावार्थ–किस प्ररूपणा में और किस मार्गणा में कौन सा गुणस्थान होता है। इसका ज्ञान करने के लिए मार्गणाओं में गुणस्थान घटित करते हैं।।१३४।।

चत्वारि पंच सर्वाणि चत्वारि नरकादिषु।
पंचेन्द्रिये त्रसे सर्वाण्याद्यं त्वन्याक्षकाययोः।।१३५।।

अन्वयार्थ–(नरकादिषु) नरकादि में क्रम से (चत्वारि) चार (पंच) पांच (सर्वाणि) सब (चौदह) (चत्वारि) चार गुण स्थान है। (पंचेन्द्रिये) पंचेन्द्रिय में (तु) और (त्रसे) त्रसकाय में (सर्वाणि) सब गुणस्थान हैं। (अन्याक्षकाययोः) एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक और स्थावर काय में (आद्यं) प्रथम गुण स्थान है।

भावार्थ–नरकगति में मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यंच में देश संयत तक पांच गुणस्थान होते हैं। मनुष्यों में चौदह गुणस्थान होते हैं। देवों के आदि के चार गुणस्थान होते हैं। त्रसकाय के और पंचेन्द्रिय के चौदह गुणस्थान होते हैं। पांच स्थावर काय एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है।।१३५।।

संज्ञ्याद्याः क्षीणमोहान्ताः संयोगान्ताश्च ते क्रमात्।
मोषोभयमनोवाक्षु मनोवाक्ष्वपरेष्वपि।।१३६।।

अन्वयार्थ–(संज्ञ्याद्याः) संज्ञी पंचेन्द्रिय प्रथम गुणस्थान से लेकर (क्षीणमोहान्ताः) बारहवें गुणस्थान तक हैं। (मोषोभयमनोवाक्षु) असत्य और उभय मन वचन में (क्षीणमोहान्ताः) बारहवें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थान तक है। (अपि) और (अपरेषु) सत्य और अनुभय (मनोवाक्षु) मन वचन में (क्रमात्) क्रम से (ते) वे प्रथम बारहवें तक और (संयोगताः) सयोगकेवली तक हैं।

भावार्थ–संज्ञी पंचेन्द्रिय के प्रथम से लेकर क्षीणमोह तक गुणस्थान हैं। चार मनोयोग और चार वचन योग प्रथम गुण स्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक है। संयोग केवली गुणस्थान में सत्य और अनुभय मन वचन योग है।।१३६।।

पर्याप्तद्वीन्द्रिया आदिस्तुरीयवचने पुनः।

स्थावरादिसंयोगान्ताः पूर्णा औदारिके मताः।।१३७।।

अन्वयार्थ–(पर्याप्तद्वीन्द्रियाः) पर्याप्त दो इन्द्रिय आदि के (आदिस्तुरीयवचने) प्रथम गुणस्थान और चतुर्थ (अनुभय) वचन योग है (पुनः) और (औदारिके) औदारिक काययोग में (पूर्णाः) पर्याप्त (स्थावरादिसंयोगान्ताः) स्थावर आदि सयोगकेवली तक है।

भावार्थ–पर्याप्त दो इन्द्रिय के प्रथम गुणस्थान और अनुभव वचन योग है। औदारिक काय योग में पर्याप्त स्थावर आदि के प्रथम गुणस्थान से लेकर तेरह गुणस्थान हैं।।१३७।।

कुदृक्सासादनोऽपूर्णः सुदृक् पुंवेद्यसंयतः।

कवाटयोगी तन्मिश्रे मर्त्यतिर्यक्षु तद्द्वयम्।।१३८।।

अन्वयार्थ–(तन्मिश्रे) औदारिकमिश्र काययोग में (अपूर्णः) अपर्याप्त (कुदृक्सासादनाः) मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वर्ती हैं। (सुदृक्) सम्यग्दृष्टि (पुंवेदी) पुरुषवेदी (असयतः) चौथे गुणस्थान वर्ती होते हैं। (कवाटयोगी) कपाट योगी तेरहवें गुणस्थान में (कपाट योग में) औदारिक मिश्र काययोग है (तद्द्वयम्) औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग (मर्त्यतिर्युक्षु) मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है।

भावार्थ–औदारिक मिश्र काय योग में अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वर्ती होते हैं। सम्यग्दृष्टि पुरुष वेदी चौथे गुणस्थान वर्ती है। तेरहवें गुणस्थान में कवाट योग में औदारिक मिश्र काय योग है अर्थात् औदारिक मिश्र काय योग प्रथम द्वितीय चतुर्थ और त्रयोदश गुणस्थान में होता है। चतुर्थ गुणस्थान में औदारिक मिश्र काययोगी पुंवेदी ही होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में औदारिक मिश्र काययोग कपाट समुद्धात में ही होता है। औदारिक और औदारिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र काययोग मनुष्य और तिर्यचों में ही होता है।।१३८।।

पूर्णे वैक्रेयिकोऽपूर्णे तन्मिश्रः सुरनारके।

मिश्रे न मिश्रः सासादनोत्पत्तिर्नरकेषु न।।१३९।।

अन्वयार्थ–(सुरनारके) देव और नारकियों में (पूर्णे) पर्याप्त अवस्था में (वैक्रेयिकः) वैक्रियिक काय योग है। (अपूर्णे) निवृत्यपर्याप्त में (तन्मिश्रे) वैक्रियिक मिश्रकाय योग होता है। (मिश्रे) मिश्र गुणस्थान में (मिश्रं) वैक्रियिक मिश्र (न) नहीं है। (नरकेषु) नरक में (सासादनोत्पत्तिः) सासादन गुण स्थान से उत्पत्ति (न) नहीं होती है।

भावार्थ–देव और नारकियों में पर्याप्त अवस्था में वैक्रियक काययोग होता है। निवृत्यपर्याप्त में वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है। मिश्र गुणस्थान में वैक्रियिक मिश्र नहीं है। नरक में सासादन गुणस्थान से उत्पत्ति नहीं है।।१३९।।

आहारदेहपर्याप्त्या पूर्णापूर्णप्रमत्तयोः।

अन्तर्मुहूर्तकालौ तु आहाराहारमिश्रकौ।।१४०।।

अन्वयार्थ–(आहारकदेहपर्याप्त्या) आहारक शरीर पर्याप्ति से (पूर्णपूर्णप्रमत्तयो) पूर्ण और अपूर्ण प्रमत्त गुणस्थान में (अन्तर्मुहूर्तकालौ) अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त (आहाराहारमिश्रकौ) आहारक और आहारक मिश्र योग होता है।

भावार्थ–प्रमत्त गुणस्थान में देह पर्याप्त की अपूर्ण अवस्था में अन्तमुहूर्त्तकाल तक आहारक मिश्र काय योग है। आहार, शरीर पर्याप्ति की पूर्ण अवस्था में प्रमत्त गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त काल तक आहारक काय योग होता है।।१४०।।

कुदृक्सासादनसुदृक्चतुर्गतिर्गविग्रहे।

कार्माणस्तु संयोगस्य प्रतरे लोकपूरणे।।१४१।।

अन्वयार्थ–(कुद्दक्सासादनसुदृक्चतुर्गतिगबिग्रहे) मिथ्यात्व, सासादन और चतुर्थ गुणस्थान में चारों गति के जीवों के विग्रह गति में (तु) और (सयोगस्य) सयोग केवली के (प्रतरे) प्रतर (लोकपूरणे) और लोकपूरण में (कार्माणः) कार्माणकाय योग होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान में चारोंगतियों के जीवों के विग्रहगति में कार्माणकाय योग होता है। परन्तु नरकगति में सासादन गुणस्थान में कार्माणकाययोग नहीं है। तथा संयोगकेवली के प्रतर और लोकपूरण अवस्था में कार्माणकाययोग होता है। (मनुष्य तिर्यञ्च के निवृत्ति अपर्याप्त अवस्था में प्रथम द्वितीय चतुर्थगुणस्थान में औदारिक मिश्र काययोग होता है। देव नारकियों में निवृत्ति अपर्याप्त अवस्था में प्रथम द्वितीय चतुर्थगुणस्थान में वैक्रियक मिश्रकाययोग होता है, परन्तु नारकियों के दूसरे गुणस्थान में वैक्रियक मिश्रकाययोग नहीं होता है॥१४२॥

स्थावरादिस्ववेदाऽनिवृत्त्यताः स्युर्नपुंसके।

असंज्ञ्यादिस्थवेदानिवृत्त्यन्ताः शेषवेदयोः।।१४२।।

अन्वयार्थ–(नपुंसके) नपुंसक वेद में (स्थावरादिस्ववेदानिवृत्यन्ताः) स्थावरादि में मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृतिगुणस्थान तक हैं। (शेषवेदयोः) शेष स्त्री पुरुष वेद में (असंज्ञ्यादिस्ववेदानिवृत्यन्ताः) असंज्ञी आदि से लेकर अपने वेद के अनिवृत्ति गुणस्थान पर्यन्त हैं।

भावार्थ–नपुंसक वेद में एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय सम्मूर्च्छन से लेकर नवें गणस्थान पर्यन्त है। गर्भज असंज्ञी से लेकर-सवेद भाव नववें गुणस्थान तक स्त्री पुरुष वेद है॥१४२॥

कुदृगाद्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्भागगा गुणाः।

क्रोधत्रये क्रमाल्लोभे सूक्ष्मलोभान्तिका दश।।१४३।।

अन्वयार्थ–(क्रोधत्रये) क्रोध, मान, माया में (कुदृगाद्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्भागगाः) मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के दो भाग, तीन भाग, चार भाग तक (गुणा) गुणस्थान है (लोभे) लोभकषाय में (सूक्ष्मलोभान्तिकादश) मिथ्यात्व से लेकर सूक्ष्मलोभ तक १० गुणस्थान है।

भावार्थ–क्रोधकषाय नवमें गुणस्थान के द्वितीय भाग तक, मान तृतीय भाग तक, माया चतुर्थ भाग तक और लोभकषाय दशवें गुणस्थान तक है॥१४३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकेन्द्रियादिपर्याप्तसंज्ञ्याद्याद्यगुणद्वये।
स्यातां मतिश्रुताज्ञाने विभंगोऽपि यथाक्रमम्।।१४४।।

अन्वयार्थ–(एकेन्द्रियादिपर्याप्तंसंज्ञ्याद्याद्यगुणद्वये) एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपर्याप्त, संज्ञी, आदि को, आदि के दो गुणस्थान में (यथाक्रमं) यथाक्रम से (मतिश्रुताज्ञाने) मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान (स्यातां) होते हैं (विभंगः) तथा विभंगावधिज्ञान (अपि) भी होता है।

भावार्थ–एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के आदि के दो गुणस्थान में मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान होता है और पंचेन्द्रिय सैनी के आदि के दो गुणस्थान में मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगावधिज्ञान भी होता है।।१४४।।

चतुर्थषष्ठप्रभृतिक्षीणमोहान्तगाः क्रमात्।
ज्ञानत्रये मनः पर्ययेऽर्हत्सिद्धेषु केवलम्।।१४५।।

अन्वयार्थ–(ज्ञानत्रये) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तीन ज्ञान में (मनःपर्यये) मनः पर्ययज्ञान में (क्रमात्) क्रम से (चतुर्थषष्ठप्रभृतिक्षीणमोहान्तगाः) चौथे और छह से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक है। (अर्हत्सिद्धेषु) अरिहन्त और सिद्ध अवस्था में (केवल) केवलज्ञान है।

भावार्थ–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीन ज्ञान में चौथे से लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक हैं। मन पर्यय ज्ञान में छठे से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान है। अरिहन्त और सिद्ध में केवलज्ञान है।।१४५।।

असंयमे चतुर्थान्ताः पंचमो देशसंयमे।
प्रमत्ताद्यनिवृत्यंता यमे सामायिकद्वये।।१४६।।

अन्वयार्थ–(असंयमे) असंयममें (चतुर्थान्ताः) चौथे गुणस्थान तक है। (देशसंयमे) देशसंयम में (पंचमः) पांचवाँ गुणस्थान है। (सामायिकद्वये) सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो (यमे) संयमों में (प्रमत्ताद्यनिवृत्त्यन्ताः) प्रमत्तगुणस्थान से लेकर अनिवृतकरण गुणस्थान तक है।

भावार्थ–असंयम में चौथे गुणस्थान तक है। देश संयम में पांचवा गुणस्थान है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम में ६ से लेकर ९ तक गुणस्थान होते हैं।।१४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिहारर्द्धौ प्रमत्ताप्रमत्तौ सूक्ष्मलोभकः।

स्यात् सूक्ष्मसाम्परायेन्ये यथाख्यातेऽतनौ न सः।।१४७।।

अन्वयार्थ–(परिहारर्द्धौ) परिहार विशुद्धि संयम में (अप्रमत्ताप्रमत्तौ) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान है (सूक्ष्मसाम्पराये) सूक्ष्म साम्पराय में (सूक्ष्मलोभकः) सूक्ष्म लोभ अथवा दशवां गुणस्थान है। (यथाख्याते) यथाख्यात संयम में (अन्ये) अन्य उपशान्त मोह से लेकर अयोग केवली तक गुणस्थान हैं और (अतनौ) सिद्धों में (सः) वह संयम (न) नहीं (स्यात्) है।

भावार्थ–परिहारविशुद्धि संयम में प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान हैं। सूक्ष्मसाम्पराय मैं दशवां गुणस्थान है। यथाख्यात में उपशान्त से लेकर अयोगकेवली तक गुणस्थान हैं। सिद्धों में संयम नहीं है।।१४७।।

चक्षुरक्षैकाक्षायतसददृष्ट्याद्यास्तु दर्शने।

छद्मस्थान्तांः स्मृताश्चक्षुष्यवधौ क्रमात्।।१४८।।

अन्वयार्थ–(चक्षुषि) चक्षु (अचक्षुषि) अचक्षु (अवधौ) अवधि (दर्शने) दर्शन में (क्रमात्) क्रम से (चक्षुरक्षैकाक्षायतसदृदृष्ट्याद्याः) चार इन्द्रिय, एकेन्द्रिय, असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर (छद्मस्थान्ताः) छद्मस्थ (बारहवें गुणस्थान तक) स्मृताः) कहे गये हैं।

भावार्थ–चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय से लेकर सब जीवों के होते हैं और मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है। अचक्षुदर्शन एकेन्द्रिय से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है। अवधि दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है।।१४८।।

केवले जिनसिद्धा स्यु स्थावराद्याश्चतुर्गुणाः।

अप्रशस्तत्रिलेश्यासु प्रमत्तान्ताश्च कीर्तिताः।।१४९।।

अन्वयार्थ–(केवले) केवलदर्शन में (जिनसिद्धाः) जिन और सिद्ध (स्युः) हैं। (अप्रशस्तत्रिलेश्यासु) अप्रशस्त तीन लेश्याओं में (स्थावराद्याः) स्थावर आदि के (चतुर्गुणा) चार गुणस्थान (च) और (प्रमत्तान्ताः) छट्ठे गुणस्थान तक (कीर्तिताः) कहे हैं।

भावार्थ–केवल दर्शन में अरिहन्त और सिद्ध है। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या एकेन्द्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से लेकर सब जीवों के होती है और इनके मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक हैं। किसी आचार्य के अभिप्राय से प्रमत्त गुण स्थान तक भी तीन अशुभ लेश्यायें होती हैं।।१४९।।

शुभलेश्यासु संज्ञ्यादिसप्तमान्तास्ततोऽपरे।

शुक्लायां स्युः संयोगान्ताः लेश्यातीतास्ततः परे।।१५०।।

अन्वयार्थ–(शुभलेश्यासु) शुभ लेश्या (संज्ञ्यादिसप्तमान्तन्ता) संज्ञी पंचेन्द्रिय के मिथ्यात्व से लेकर सप्तम गुणस्थान पर्यन्त हैं। (ततः) इसके बाद (अपरे) आठवें से लेकर (संयोगान्ताः) संयोग केवली तक (शुक्लायां) शुक्ल लेश्याएं (स्युः) होती हैं (ततः) इसके बाद (परे) चौदहवें गुणस्थान में और सिद्धों में (लेश्यातीताः) लेश्या से रहित हैं।

भावार्थ–पीत पद्म शुक्ल लेश्या संज्ञी पंचेन्द्रिय के होती है और प्रथम गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक हैं। आठवें गुणस्थान से लेकर संयोगकेवली तक एक शुक्ल लेश्या है। चौदहवें गुणस्थान में और सिद्धों में लेश्या का अभाव है।।१५०।।

भव्ये सर्वगुणस्थानान्यभव्ये प्रथमो गुणः।

मिथ्यात्वादित्रये मिथ्यादृष्ट्याद्याः स्युस्त्रयो गुणाः।।१५१।।

वेदकाद्यौपशमयोश्चतुर्थाद्याश्चतुर्गुणाः।

चतुर्थाद्युपशान्तान्ता द्वितीयोपशमे मताः।।१५२।।

सिद्धान्ताः स्युश्चतुर्थाद्याः सम्यक्त्वे क्षायिके वरः।

संज्ञिनि द्वादश गुणाः मिथ्यादृष्टिरसंज्ञिनि।।१५३।।

अन्वयार्थ–(भव्ये) भव्य जीव में (सर्वगुणस्थानानि) सर्व गुणस्थान हैं। (अभव्ये) अभव्य में (प्रथमः) प्रथम (गुणः) गुणस्थान है। (मिथ्यात्वादित्रये) मिथ्यात्वादि तीन में (मिथ्यादृष्ट्याद्याः) मिथ्यादृष्टि आदि (त्रयः) तीन (गुणाः) गुणस्थान हैं। (वेदकाद्योपशमयः) वेदक सम्यक्त्व और प्रथमउपशमसम्यक्त्व में (चतुर्थाद्याः) चतुर्थ आदि (चतुर्गुणाः) चार गुणस्थान हैं। (द्वितीयोपशमे) द्वितीयोपशम में (चतुर्थाद्यु पशान्तान्ताः) चौथे से लेकर उपशान्तकषाय तक गुणस्थान (मताः) माने हैं। (वरे) उत्तम (क्षायिके) क्षायिक (सम्यक्त्वे) सम्यत्त्व में (चतुर्थाद्याः) चतुर्थ गुणस्थान को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकर (सिद्धान्ताः) सिद्धपर्यन्त हैं। (संज्ञिनि) संज्ञी में (द्वादशगुणाः) बारह गुणस्थान हैं। (असंज्ञिनि) असंज्ञी में (मिथ्यादृष्टिः) मिथ्यादृष्टि एक गुणस्थान है।

भावार्थ–भव्य जीव में सर्वगुणस्थान होते हैं। अभव्यों में प्रथम गुणस्थान है। मिथ्यात्वादि तीन में मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थान है। वेदक सम्यक्त्व और प्रथम उपशम सम्यक्त्व में चतुर्थ, पांचवां, छठा और सातवां ये चार गुण स्थान हैं। द्वितीयउपशम सम्यक्त्व में चौथे से लेकर उपशान्तकषाय तक गुणस्थान माने हैं। उत्तम क्षायिकसम्यक्त्व में चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धपर्यन्त गुणस्थान हैं। संज्ञी में बारह गुणस्थान हैं और असंज्ञी में मिथ्यात्व गुणस्थान है॥१५१-१५३॥

कुदृष्ट्यादिसंयोगान्ता आहारे कार्मणे स्थिताः।

अयोगिनश्चानाहारे सिद्धाः निर्धूतकार्मणाः।।१५४।।

अन्वयार्थ–(आहारे) आहारक मार्गणा में (कुदृष्ट्यादिसयोगान्ताः) मिथ्यादृष्टि से लेकर संयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त है (च) और (अनाहारे) अनाहारक मार्गणा में (कार्मणे) कार्माण काययोग में (स्थिता) मिथ्यात्व सासादन असंयत और प्रतर लोक पूरण गत (संयोगकेवली) संयोग केवली (अयोगिनः) अयोग केवली गुणस्थान है। (निर्धूतकार्मणाः) समस्त कर्मों के नाश करने वाले (सिद्धाः) सिद्ध परमेष्ठी है।

भावार्थ–आहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टि से लेकर संयोगकेवली तक त्रयोदश गुणस्थान है। अनाहारक अवस्था में प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ त्रयोदश और चौदहवां गुणस्थान है और सिद्ध अवस्था में भी अनाहारक अवस्था है॥१५४॥

चतुर्दशसु मिथ्यादृक् पूर्णोऽपूर्णे च संज्ञिनि।

सासादनायतसुदृक्प्रमत्तास्तु गणास्त्रयः।।१५५।।

पूर्णे जीवसमासे स्युः संज्ञिनोऽन्येजिनौ बिना।

एवं जीवसमासेषु मार्गणा अपि योजयेत्।।१५६।।

अन्वयार्थ–(चतुर्दशसु) चौदह जीव समासों में (मिथ्यादृक्) मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। (अपूर्णे) निवृति पर्याप्त (संज्ञिनि) सैनी में (सासादनायतसुदृक्प्रमत्ताः) सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि और प्रमत्त (त्रयः) तीन गुणस्थान हैं (संज्ञिनः) संज्ञी के (पूर्णे) पर्याप्त (जीवसमासे) जीवसमास में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जिनौ) संयोग केवली और अयोग केवली के (विना) बिना (अन्ये) शेष सर्व गुणस्थान हैं (एवं) इसप्रकार (जीवसमासे) जीव समास में (मार्गणाः) मार्गणा (अपि) भी (योजयेत्) लगाना चाहिये।

भावार्थ–प्रथम गुणस्थान में चौदह जीवसमास हैं। संज्ञी निवृत्यपर्याप्त के प्रथम द्वितीय चतुर्थ और प्रमत्त गुणस्थान हैं। संज्ञी पर्याप्त के प्रथम गुणस्थान से लेकर क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यन्त हैं। संयोगकेवली, अयोगकेवली, संज्ञीं असंज्ञी व्यपदेश से रहित है। इस प्रकार जीव समास में मार्गणा भी लगाना चाहिये। जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय मार्गणा को छोड़ कर शेष तेरह मार्गणा में एक तिर्यञ्च गति है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में चारों गति है इत्यादि रूप से घटित करना चाहिये॥१५५-१५६॥

जीवों की न्युनाधिकता

सप्तम्या श्रेण्यसंख्यातभागमात्रास्ततः क्रमात्।
धर्माया नारका यावदसंख्यातगुणाः स्मृताः।।१५७।।

अन्वयार्थ–(सप्तम्याः) सातवें नरक के (नारकाः) नारकी (श्रेण्यसंख्यातभागमात्राः) जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। (तत) वहाँ से (क्रमात्) क्रम से (यावत्) जब तक (धर्माया) प्रथम नरक है तब तक (असंख्यातगुणाः) असंख्यात गुणे (मताः) माने हैं।

भावार्थ–सातवें नरक में नारकियों की संख्या जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उससे असंख्यात गुणे अधिक छट्ठे नरक में है। उससे असंख्यात गुणे चौथे में, उससे असंख्यात गुणे तीसरे में, उससे असंख्यात गुणे दूसरे में, उससे असंख्यातगुणे पहिले नरक में नारकी है॥१५७॥

पंचाक्षाः प्रतराऽसंख्यभागमात्रस्ततोऽधिकाः।
चतुस्त्रिद्वीन्द्रिया जीवाः क्रमात्ते त्रसकायिकाः।।१५८।।
असंख्यलोका स्युस्तेजस्कायिकाः क्रमशोऽधिकाः।
तदसंख्येयभागेन पृथ्व्यप्पवनकायिकाः।।१५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तानन्तसंख्याता निगोदाः क्रमशोऽधिकाः।

वनस्पतय एकाक्षास्तिर्यश्चश्च यथोचितं।।१६०।।

अन्वयार्थ–(पंचाक्षाः) पंचेन्द्रिय जीव (प्रत्तराऽसंख्यातभागमात्राः) जगत्प्रतर के असंख्यात भाग मात्र प्रमाण है। (ततः) उससे (अधिकाः) अधिक (क्रमात्) क्रम से (चतुस्त्रिद्वीन्द्रियाः) चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय हैं। (ते) वे (त्रसकायिकाः) त्रस कायिक के जीव हैं। (तेजस्कायिकाः) तेजकाय के जीव (असंख्यलोकाः) असंख्यात लोक प्रमाण (स्युः) हैं। (ततः) उससे (पृथ्व्यप्पवनकायिकाः असंख्येभागेन) तेजकाय से असंख्यात भाग से अधिक क्रम से पृथिवी, जल और अग्निकायिक जीव हैं (निगोदाः) निगोद (अनन्तानन्तसंख्याताः) अनन्तानन्त संख्यात हैं। उससे (क्रमात्) क्रम से (यथोचित) यथोचित (वनस्पतयः) वनस्पति (एकाक्षाः) एकेन्द्रिय (तिर्यञ्चः) तिर्यञ्च है।

भावार्थ–पंचेन्द्रिय जीव जगतप्रतर के असंख्यात भाग मात्र हैं, उससे अधिक क्रम से चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय त्रसकायिक के जीव हैं। तेज कायिक के जीव असंख्यात लोक प्रमाण हैं। तेजकायिक से अधिक असंख्यात भाग से क्रम से पृथिवी जल और अग्निकायिक जीव हैं। निगोद अन्तानन्त संख्यात है। उससे क्रम से यथोचित अधिक वनस्पति एकेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव हैं।

शंका–निगोद से वनस्पति अधिक कैसे हैं।

उत्तर–निगोद तो केवल साधारण है और निगोद साधारणवनस्पति और प्रत्येक वनस्पति इन तीनों को मिलाने से वनस्पतिकाय जीव अधिक हो जाते हैं।।१५८-१६०।।

अन्तरद्वीपकुनराः संख्याता गुणिताः क्रमात्।

संख्यातरूपैः कुरुषु हरिरम्यकवर्षयो।।१६१।।

हैमवतभूहैरण्यवतोर्व्योर्भोगभूमिजाः।

भरतरावतक्षेत्रे विदेहे पूर्णमानवाः।।१६२।।

लब्ध्यपूर्णा जगच्छ्रेण्यसंख्यभामिता मताः।

भरतादिषु कर्मावनीषु तेभ्योऽधिका नराः।।१६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अन्तरद्वीपकुनराः) अन्तरद्वीप के कुमानुष (क्रमात्) क्रम से (संख्याता) संख्यात गुणित हैं। (ततः) उससे (संख्यातरूपैः) संख्यात से (गुणिताः) गुणित (कुरुषु) देवकुरु और उत्तरकुरु में हैं। उससे संख्यात गुणित (हरिरम्यकवर्षयोः) हरिक्षेत्र और रम्यक क्षेत्र में है। उससे अधिक हैमवतभूमि, हिरण्यवत भूमि में (भोगभूमिजाः) भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले मानव हैं उससे अधिक (भरतैरावतक्षेत्रे) भरत, ऐरावत क्षेत्र में (पूर्णमानवाः) पर्याप्त मानव है। उससे अधिक (विदेह) विदेह क्षेत्र में पर्याप्त मानव है। (तेभ्यः) उससे (अधिकाः) अधिक (भरतादिषु) भरतादि (कर्मावनीषु) कर्मभूमियों में (लब्ध्यपूर्णाः) लब्ध्यपर्याप्त (नराः) मानव (जगच्छ्रेण्यसंख्यभागमिता) जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण (मताः) माने हैं।

भावार्थ–अन्तर द्वीप के कुमानुष क्रम से असंख्यात गुणित है उससे असंख्यात रूप से गुणित देवकुरु, उत्तर कुरु में है, उससे संख्यात गुणित हरिक्षेत्र और रम्यक् क्षेत्र में है, उससे हैमवतभूमि और हिरण्यवत भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले मानव हैं। उससे अधिक भरत और ऐरावत क्षेत्र में पर्याप्त मानव हैं, उससे अधिक विदेह क्षेत्र में मानव हैं, उससे अधिक भरतादि कर्मभूमियाँ में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण माने हैं।।१६१-१८३।।

असख्यश्रेणिवैमानिकेभ्योऽसंख्यगुणाः क्रमात्।

भावना वाना ज्योतिष्क्रास्तेभ्यः संख्यातसंगुणाः।।१६४।।

अन्वायर्थ–(क्रमात) क्रम से (असंख्यश्रेणिवैमानिकेभ्यः) असंख्यात श्रैणी विमानिकों से (असंख्यातगुणाः) असंख्यात गुणे (भावनाः) भवनवासी (वाना) व्यन्तर हैं। (तेभ्यः) उससे (संख्यातसंगुणाः) संख्यातगुणित (ज्योतिष्काः) ज्योतिषी देव हैं।

भावार्थ–असंख्यात श्रेणी विमानों से असंख्यात गुणे भवनवासी देव हैं। भवनवासी से असंख्यात गुणे व्यन्तर देव हैं। व्यन्तर देवों से संख्यात गुणे ज्योतिषी देव हैं।।१६४।।

मर्त्येभ्योऽसंख्यगुणिता असंख्यश्रेणिनारकाः।

तेभ्यों देवास्ततः सिद्धाश्चासंख्यानंतसंगुणाः।।१६५।।

तिर्यञ्चोऽनन्तगुणितास्तेभ्यः संसारिणोऽधिकाः।

सिद्धराशिप्रमाणेन सर्वे जीवास्ततोऽधिकाः।।१६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधारे बादराः सूक्ष्माः सर्वत्र त्रसनालिगाः।

त्रसास्तु विकलाक्षाः स्युस्तिर्यग्लोके व्यवस्थिताः।।१६७।।

अन्वयार्थ–(मर्त्येभ्यः) मनुष्यों से (असंख्यगुणिता) असंख्यगुणित (असंख्यश्रेणिनारकाः) असंख्य श्रेणी प्रमाण नारकी है। (तेभ्यः) उन नारकियों से (अधिकाः) अधिक (देवाः) देव हैं (तत) उन देवों से (असंख्यान्तसंगुणाः) असंख्यात अनन्त संगुणित (सिद्धाः) सिद्ध है (तेभ्यः) उन सिद्धों से (अनन्तगुणिताः) अनन्त गुणित (तिर्यञ्चः) तिर्यञ्च हैं (तेभ्यः) उन तिर्यञ्चों से अधिक (संसारिणः) संसारी जीव है (सिद्धराशिप्रमाणेन) सिद्ध राशि प्रमाण के साथ (संसारिणः) संसारी जीवों के मिलाने से (सर्वे) सम्पूर्ण (जीवाः) जीव राशि होती है (आधारे) आधार से रहने वाले (बादराः) बादर जीव हैं (सूक्ष्माः) सूक्ष्म जीव (सर्वत्र) सर्व लोक में व्याप्त है (तु) उपपाद, मारणान्तिक समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात को छोड़कर (त्रसाः) त्रस जीव (त्रसनालिगाः) त्रसनालि में ही रहते हैं (विकलाक्षाः) विकलेन्द्रिय (तिर्यग्लोके) तिर्यग्लोक में (व्यवस्थिताः) व्यवस्थित हैं।

भावार्थ–मनुष्यों से असंख्यगुणित, असंख्य श्रेणी प्रमाण नारकी हैं। उन नारकियों से अधिक देव हैं, उन देवों से असंख्यात अनन्त संगुणित सिद्ध हैं। उन सिद्धों से अनन्त गुणित तिर्यञ्च हैं, उन तिर्यञ्चों से अधिक संसारी जीव हैं, सिद्ध प्रमाण के साथ संसारी जीव मिलाने से सर्व जीव राशि है। आधार से रहने वाले बादर जीव हैं सूक्ष्म जीव सर्वलोक में भरे हुए हैं और उपपाद, मारणान्तिक, समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात को छोड़कर त्रस जीव त्रस नालि में ही रहते हैं। विकलेन्द्रिय तिर्यग्लोक में व्यवस्थित है।।१६५-१६७।।

कर्मों का वर्णन

कर्मायत्तश्चिरं जीव; संसारे पर्यटत्यसौ।

प्रकृत्याऽष्टविधं त्वष्टचत्वारिंशच्छतं च तत।।१६८।।

अन्वयार्थ–(कर्मायत्तः) कर्मों के वशीभूत हुआ (असौ) ये (जीवः) जीव (चिरं) अनादिकाल से (संसारे) संसार में (पर्यटति) घूमता है (तत्) वह कर्म (प्रकृत्या) प्रकृति से (अष्टविधं) आठ प्रकार है (च) और अष्टचत्वारिशच्छतं) एक सौ अड़तालीस प्रकार का भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–कर्मों के वशीभूत हुआ यह जीव अनादि काल से संसार में भ्रमण करता है। वह कर्म प्रकृति से आठ प्रकार है और उनकी उत्तर प्रकृति एक सौ अड़तालीस प्रकार की भी होती है।।१६८।।

यत्तत्राष्टविधं ज्ञानदर्शनावरणीयतः।

स्याद्वेदनीयमोहायुर्नामगोत्रान्तरायतः।।१६९।।

अन्वयार्थ–(तत्र) उसमें (यत्) जो (ज्ञानदर्शनावरणीयतः) ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय (वेदनीयमोहायुर्नामगोत्रान्तरायतः) वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय के भेद से (अष्टविधं) आठ प्रकार का (स्यात्) है।

भावार्थ–जो आत्मा के ज्ञान गुण को घाते उसको ज्ञानावरण कहते हैं। जो आत्मा के दर्शनगुण को घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं। जिसके उदय से जीव को सुख दुःख होवे उसे वेदनीय कहते हैं। जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं। जिस जीव को किसी नरक आदि शरीर में रोककर रखे उसे आयुकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर आदि की रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से यह जीव ऊंच नीच कुल में पैदा होवे उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य में विघ्न आवे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलम्।

आवृणोतीति तज्ज्ञानावरणं पंचभेदगम्।।१७०।।

अन्वयार्थ–(मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलम्) मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय और केवल (ज्ञानं) ज्ञान को (आवृणोति) आवरण (आच्छादन) करती है (इति) इसप्रकार (तत्) वह (ज्ञानावरणं) ज्ञानावरणी प्रकृति (पंचभेदगं) पाँच प्रकार की है।

भावार्थ–मतिज्ञानावरण (मतिज्ञान को ढाकनेवाला) श्रुतज्ञानावरण (श्रुतज्ञान को ढाकने वाला) अवधिज्ञानावरण (अवधिज्ञान को ढाकने वाला) मनः पर्ययज्ञानावरण (मनः पर्यय ज्ञान को ढाकने वाला और) केवलज्ञानावरण (केवलज्ञान को ढाकने वाला) ये पाँच ज्ञानावरण के भेद हैं।१७०।।

स्त्यानगृद्धिर्निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाद्वयम्।

निद्रा च प्रचला चक्षुरचक्षुर्दर्शनावृती।।१७१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधे केवलस्यापि दर्शनस्यावृतौ इति।

चतुर्विधेऽपि स्वावार्ये दर्शनावृतयो नव।।१७२।।

अन्वयार्थ–(स्त्यानगृद्धिः) स्त्यानगृद्धि (निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाद्वयम्) निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला (निद्रा) निद्रा (प्रचला) प्रचला (चक्षुरचक्षुर्दर्शनावृती) चक्षुदर्शनावरणी, अचक्षु दर्शनावरणी (अवधेः) अवधि (केवलस्य) केवल (दर्शनस्य) दर्शन की (आवृती) आवृत करनें वाली (आवरण) इति) इसप्रकार (चतुर्विधं) चार प्रकार (अपि) भी (स्ववायें) अपने आवरण में (दर्शनावृतयः) दर्शनावरणी (नव) नव प्रकार की है।

भावार्थ–जो चक्षु कर्म चक्षु इन्द्रियों से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। जिस कर्म के उदय से चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मनसे पदार्थ का सामान्य अवलोकन न होने दे उसे अचक्षु दर्शनावरण कहते हैं। जो कर्म अवधिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं। जो कर्म केवलज्ञान के साथ हो वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे केवल दर्शनावरण कहते हैं।

निद्रा–मद खेद श्रम आदि को दूर करने के लिए जो शयन करते हैं वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है। निद्रा-निद्रा-नीद के बाद फिर फिर नीद आने को निद्रा-निद्रा कहते हैं। निद्रानिद्रा के वशीभूत होकर जीव अपनी आँखों को नहीं खोल सकता है। प्रचला-बैठे-बैठे नेत्र शरीर आदि में विकार करने वाली शोक आदि से उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है। उसके वशीभूत सोता हुआ भी जागता रहता है। प्रचलाप्रचला–प्रचला के ऊपर प्रचला आने को प्रचलाप्रचला कहते हैं। इसमें शयन अवस्था में मुंह में लार बहने लगती है, आंगोपांग चलने लगते हैं। स्त्यानगृद्धि–निद्रा के द्वारा सोती अवस्था में भी नाना तरह के भयंकर कार्य कर डालते हैं, आंगोपांग चलने लगते हैं। और जागने पर कुछ मालूम ही नहीं हो सकता कि मैंने क्या किया है उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।।१७१-१७२।।

सातासातद्वयं वेद्यं मोहाऽष्टाविंशतिर्मतः।

मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं दृग्विमोहनम् ।।१७३।।

क्रोधादिभेदानंतानुबंधी संज्वलनस्तथा।

प्रत्याख्यानः कषायः स्यादप्रत्याख्यान इत्यमी।।१७४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्रमोहनीयं स्युर्नोकषायाश्च ते नव।
पुरुषस्त्रीषण्ढवेदत्रयं रत्यरतो तथा।।१७५।।
हास्यशोकौ भयं चापि जुगुप्सायुश्चतुर्विधम्।
निरयायुस्तिर्यग्मिर्त्यसुरायूंषीति वर्णितम्।।१७६।।

अन्वयार्थ–(वेद्यं) वेदनीय के (सातासातद्वयं) साता असाता दो भेद हैं। (मोहः) मोहनीय (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस प्रकार का (मतः) है (मिथ्यात्वं) मिथ्यात्व (सम्यग्मिथ्यात्वं) सम्यग्मिथ्यात्व (सम्यत्त्वं) सम्यक्त्व (दृग्विमोहनम्) दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं (क्रोधादिभेदाअनन्तानुबंधी) क्रोध, मान, माया, लोभ (प्रत्याख्यानः) प्रत्याख्यान क्रोध, मान माया, लोभ (अप्रत्याख्यानः) अप्रत्याख्यान क्रोध मान, माया, लोभ (संज्वलनः कषायः) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ (च) और (पुरुषस्त्रीषण्ढवेदत्रयं) पुरुष, स्त्री, नपुंसक ये तीन वेद (तथा) तथा (रत्यरती) रति, अरति, (हास्यशोको) हास्य, शोक (जुगुप्सा) जुगुप्सा (भयं) भय (ते) वे (नव) नौ (नोकषायाः) नोकषाय (स्युः) है (इति) इस प्रकार (अमी) यह (चारित्रमोहनीयं) चारित्र मोहनीय (स्यात) है (निरयायुः) नरक आयु (तिर्यञ्च मर्त्य सुरायूंषीति) तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु, देव आयु (इति) इस प्रकार (आयुः) आयु (चतुर्विधं) चार प्रकार (वर्णितम्) कही गयी है।

भावार्थ–वेदनीय कर्म साता और असाता के भेद से दो प्रकार है। जिसके उदय से देव आदि गतियों में शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त हो उसको साता वेदनीय कर्म कहते हैं। जिसके उदय से नरकादि गतियों में तरह तरह के दुःख प्राप्त हों उसे असाता वेदनीय कर्म कहते हैं। दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय इन चार भेद रूप मोहनीय कर्म से तीन, दो, नौ और सोलह भेद रूप हैं। जिनमें से सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन दर्शन मोहनीय कर्म के भेद हैं। अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद चारित्र मोहनीय के हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौ अकषाय वेदनीय के भेद हैं। और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेदरूप क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीय के हैं। मिथ्यात्व प्रकृति–जिस कर्म के द्वारा सर्वज्ञ कथित मार्ग में अश्रद्धान हो उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। सम्यक्त्व-प्रकृति–जिस प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन में दोष उत्पन्न हो उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से मिले हुए दही गुड़ के स्वाद की तरह उभय रूप परिणाम हो उसे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। हास्य जिसके उदय से हंसी आवे वह हास्य नो कषाय है। रति-जिसके उदय से विषयों में प्रेम हो वह रति है। अरति-जिसके उदय से विषयों में प्रेम नहीं हो वह अरति है। शोक-जिसके उदय से शोक चिन्ता हो व शोक है। भय-जिसके उदय से डर लगे वह भय है। जुगुप्सा-जिसके उदय से ग्लानि हो वह जुगुप्सा है। स्त्रीवेद-जिसके उदय से पुरुष के साथ रमने का भाव हो स्त्रीवेद है। पुंवेद-किसके उदय से स्त्री के साथ रमने को भाव हो पुरुष वेद है। नपुंसक वेद–जिसके उदय से स्त्री पुरुष दोनों से रमने की इच्छा हो वह नपुंसक वेद है। अनन्तानुबन्धी–जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण को घाते उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं। अप्रत्याख्यानावरण–जिससे उदय से देश चारित्र न हो उसे अप्रत्याख्यान कहते हैं। प्रत्याख्यानावरण–जिसके उदय से सकल चारित्र न हो उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। संज्वलन–जिसके उदय से यथाख्यात चारित्र न हो उसे संज्वलन कहते हैं नरकायु, तिर्यञ्चायु, मानुष्यायु और देवायु ये चार आयुकर्म के भेद हैं। नरकायु जिस कर्म के उदय से जीव नारकी के शरीर में रुका रहे उसे नरकायु कहते हैं इस तरह सब भेदों में समझना चाहिये।।१७३-१७६।।

नाम त्रिनवतिर्भेदैर्गतिस्तत्र चतुर्विधा।
जातिः पंचविधा पंचभेदभगं च वन्धनम् ।।१७७।।

पंचभेदोंऽगसंघातः स्युः संस्थानानि षट् तनोः।
त्रीण्यंगोंपागनामानि देह संहननानि षट्।।१७८।।

वर्णाः पंच द्विगन्धौ स्युः पंच रसाः स्पर्शाष्टकम्।
आनुपूर्व्यश्चतस्रोऽगुरु लध्वेकं शरीरगम्।।१७९।।

उपघात परघातोच्छ्वासातापचतुष्टयम्।
उद्योतमेकं द्विविधं विहायोगतिकर्म यत्।।१८०।।

त्रसवादरपर्याप्तप्रत्येकं स्यात् स्थिरं शुभम्।
सुभगं सुस्वरादेययशस्कीर्ति च सेतरम्।।१८१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्माणमेकं स्यात्तीर्थकरनामाप्यनुत्तरं।
उच्चनीचद्विभेदस्य पात्रं तद् गोत्रकर्म यत्।।१८२।।
स्याद्दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायतः।
पंचभेदोऽन्तरायोऽयं दानद्यन्तरमेति यत्।।१८३।।

अन्वयार्थ–(त्रिनवर्तिभेदैः) तिरानवे भेद (नाम) नाम कर्म के हैं (तत्र) उसमें (गतिः) गति (चतुर्विधाः) चार प्रकार की है। (जातिः) जाति (पंचविधा) पांच प्रकार की है (च) और (पंचभेदगः) पंच भेद वाला (बन्धनं) बन्धन (अंगसंघातः) शरीर और संघात (पंचभेदः) पांच भेद वाले (स्युः) हैं। (संस्थानानि) संस्थान (षट्) छह हैं। (तनो) शरीर के (आंगोपांगनामानि) आंगोपांग नाम (त्रीणि) तीन हैं। (देहसंहनानि) शरीर के संहनन (षट्) छह है (वर्णाः) वर्ण (पंच) पांच हैं (द्वि) दो (गन्धौ) गन्ध (पंचरसाः) पांच रस (स्पर्शाष्टकम्) स्पर्श आठ (आनुपूर्व्याः) आनुपूर्वी (चतस्त्रः) चार (स्युः) है (शरीरगं) शरीरगत (अगुरुलघ्वेकं) अगुरु लघु एक (अपघातपरघातोच्छ्वासातापचतुष्टयम्ः) अपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप चतुष्टय है। (उद्योतं) उद्योत (एकं) एक (विहायोगतिकर्म) विहायोगति कर्म (द्विविधं) दो प्रकार है (त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकं) त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक (स्थिरंशुभम्) स्थिर, शुभ (सुभगंसुस्वरादेययशस्कीर्ति) सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति (स्यात् हैं (च) और (सेतरम्) इनसे विपरीत अर्थात् स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति (निर्माणं) निर्माण (एकं) एक (अनुत्तरं) सर्वोत्कृष्ट (तीर्थंकरनामा) तीर्थंकर नाम (अपि) भी है (उच्चनीचद्विभेदस्य) उच्च नीच भेद का (पात्रं) पात्र (तद्गोत्रकर्म) वह गोत्र कर्म (स्यात्) है (दानलाभभोगोपभोग-वीर्यान्तरायतः) दान, लाभ, भोग और उपभोग वीर्यान्तराय से (पंचभेदः) पांच भेद वाला (अयं) यह (अन्तरायः) अन्तराय कर्म (स्यात्) है (यत्) इस कर्म के उदय से (दानद्यन्तरम्) दानादि में विघ्न (एति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–तिरानवें नाम कर्म के भेद हैं। गति–जिसके उदय से जीव दूसरे भव को प्राप्त करता है उसे गति नाम कर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति। जिसके उदय से आत्मा को नरकगति प्राप्त हो, उसे गति नाम कर्म कहते हैं इसीप्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबमें लगाना चाहिये। जाति-जिस कर्म के उदय से जीव नरकादि गतियों में अव्यभिचार रूप समानता से एक रूपता को प्राप्त हो, वह जाति नाम कर्म है। इसके पांच भेद हैं, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति। जिसके उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे एकेन्द्रियादि जाति कर्म कहते हैं। शरीर–जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना हो उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर नाम कर्म जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसीप्रकार सब में लगाना चाहिये। अंगोपांग–जिसके उदय से अंग उपांगों की रचना हो उसे अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद है। १. औदारिक शरीरांङ्गोपांग २. वैक्रियिक शरीरांगोपांग और आहारक शरीरांगोपांग। जिसके उदय से औदारिक शरीर के अंग और उपांगों की रचना हो उसे औदारिक शरीरांगोपांग नाम कर्म कहते हैं। इस प्रकार शेष लक्षण समझना चाहिये। बन्धन-जिसके उदय से औदारिक शरीर के परमाणु दीबाल में लगे हुये ईंट और गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त हों उसे औदारिक बन्धन नाम कर्म कहते हैं, इसी प्रकार अन्य सबमें लक्षण जानना चाहिये।

वैक्रियिक बन्धन, आहारक बन्धन, तैजस, कार्माण बन्धन, औदारिक बन्धन। संघात नाम कर्म के उदय से औदारिक शरीर के प्रदेशों का छिद्र रहित बन्धन हो उसे संघात नाम कर्म कहते हैं। इसके भी पांच भेद हैं औदारिक संघात इत्यादि। संस्थान नाम कर्म के उदय से शरीर का संस्थान (आकार) बने उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं। उसके छह भेद हैं। समचतुस्त्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक संस्थान। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर ऊपर नीचे तथा बीच में समान भाग रूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुस्त्र संस्थान कहते हैं। जिसका शरीर वटवृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोध परिण्डल संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की वामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से बौना हो उसको वामन संस्थान नाम कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से आंगोपांग किसी खास आकृति के न हों उसे हुंडक संस्थान नाम कर्म कहते हैं। संहनन-जिस नामकर्म के उदय से हड्डियों के बन्धन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषता हो उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं। इसके छह भेद हैं। १. वज्रषँभनाराच संहनन, वज्रन राज नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन। जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (हड्डियाँ वज्र की हो उसे वज्रर्षभनाराच संहनन कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़ और वज्र की कीलियाँ हों परन्तु वेष्टन वज्र के न हों, उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं। सामान्य वेष्टन और कीलि सहित हाड़ हों उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं। हड्डियों की संधियां अर्धकीलित हो उसे अर्धनाराच सहनन नाम कर्म कहते हैं। हड्डियां परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन नाम कर्म कहते हैं। जुदी जुदी हड्डियाँ नसों से बंधी हो परस्पर में कीलित नहीं हो उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से शरीर में स्पर्श हो उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं कोमल, कठोर, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। रस के पांच भेद हैं। तिक्त, कडुआ, कषायला, खट्टा और मधुर। गन्ध के दो भेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध। वर्ण के पांच भेद हैं। शुक्ल, कृष्ण, नील, रक्त और पीत। आनुपूर्व्य जिस कर्म के उदय से विग्रह गति में रमण से पहिले के शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं उसे आनुपूर्व नाम कर्म कहते हैं। इनके चार भेद हैं। नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और देवगत्यानुपूर्व्य। अगुरु लघु-नाम कर्म जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे गोले के समान भारी और आक के तूल के समान हलका न हो, वह अगुरु लघु नामकर्म है। उपघात नामकर्म के उदय से अपने अंगों से अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। परघात के उदय से दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हों उसे परघात नामकर्म कहते हैं। आतप कर्म के उदय से आतप रूप शरीर हो, उसे आतप नाम कर्म है। उद्योत कर्म के उदय से उद्योत रूप शरीर हो उसे उद्योत नाकर्म कहते हैं। उच्छ्वास कर्म के उदय से शरीर में उच्छ्वास हो उसे उच्छवास कहते हैं। जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते है। इसके प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति दो भेद हैं। एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नाम कर्म कहते हैं। एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं। द्वीन्द्रियादिक जीवों में जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में जनम हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं। दूसरे जीवों को अपने से प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं। रूपादि गुणों से युक्त होने पर भी दूसरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवों को अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से उत्तम स्वर हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से खराब स्वर हो उसे दुस्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव देखने में सुन्दर हो उसे शुभ नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हो उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर से न किसी को रोकता है और न किसी से रोका जा सकता है उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से दूसरे को रोकने वाला तथा दूसरे से रुकने वाला स्थूल शरीर हो उसे बादर शरीर नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं–जिसके उदय से पर्याप्ति एक भी पूर्ण नहीं हो उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के धातु तथा उपधातुएं अपने अपने स्थिरता को प्राप्त हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से धातु तथा उपधातु अपने अपने स्थान में स्थिर न रहे उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से प्रभा सहित शरीर हो उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से प्रभा रहित शरीर हो उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव की प्रशंसा हो उसे यशकीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव की संसार में निन्दा हो उसे अयशकीर्ति नामकर्म कहते हैं। अरहन्त के कारण भूत कर्म को तीर्थकरत्व नामकर्म कहते हैं। उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्र कर्म के हैं। जिसके उदय से लोकमान्य कुल में जनम हो उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से लोकनिन्द्य कुल में जन्म हो उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं। दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं। जिसके उदय से जीव दान की इच्छा रखता हुआ भी दान न दे सके उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदों के भी लक्षण समझना चाहिये॥१७७-१८३॥

त्रिंशत्र्याद्यंतरायेषु कोटीकोटयः परा स्थितिः।
सप्ततिर्मोहनीयस्य स्युर्विंशतिर्नामगोत्रयोः॥१८४॥

सागराणां त्रयस्त्रिंशत्स्यादायुष्यपरा स्थितिः।
वेद्ये मुहूर्त्ताः स्युर्द्वादशाष्टौ ते नाम गोत्रयोः॥१८५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शेषेष्वन्तमुर्हूत्तं स्यादात्मना सह संस्थितेः।

कालः प्रतिक्षणं बद्धकर्मणां स्थितिरीरिता।।१८६।।

अन्वयार्थ–(त्रिंशत्याद्यन्तरायेषु) ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय और अन्तराय में (परा) उत्कृष्ट (स्थितिः) स्थिति (त्रिंशत) तीस (मोहनीयस्य) मोहनीय की (सप्ततिः) सत्तर (नामगोत्रयोः) नाम गोत्र की (विंशतिः) बीस (कोटीकोट्यः) कोड़ा कोड़ी सागर हैं (आयुषि) आयु में (त्रयस्त्रिंशत) तैंतीस (सागराणां) सागर की है (अपरा) जघन्य (स्थितिः) स्थिति (वेद्ये) वेदनीय में (द्वादशः) बारह (नामगोत्रयोः) नाम गोत्र में (अष्टौ) आठ (मुहूर्त्ताः) मुहूर्त की (स्युः) है (शेषेषु) शेष कर्मों में (अन्तर्मुहूर्ता) अन्तर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति है (प्रतिक्षणं) प्रत्येक क्षण में (बर्द्धणंकर्मणां) बंधे हुए कर्मों की (आत्मना) आत्मा के (सह) साथ (संस्थितेः) संस्थिति का (कालः) काल (स्थितिः) स्थितिबन्ध (इति) इस प्रकार (ईरिताः) कहा गया है।

भावार्थ–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चारों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर की है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर है। नाम कर्म और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर की है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की है। वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है। नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है। शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। प्रत्येक क्षण में बन्धे हुए कर्मों की आत्मा के साथ संस्थिति का काल स्थिति बन्ध इस प्रकार कहा है।।१८४-१८६।।

कर्मस्पर्शगुणो यस्तु सोऽनुभाग इतीष्यते।

लतानिंबगुड़ाद्यात्मनानाभेदैत्रिंजैर्युतः।।१८७।।

अन्वयार्थ–(यः) जो (त्रिजैः) तीन से उत्पन्न (लतानिंबगुड़ाद्यात्मनानाभेदैः) लता नीम गुडादि स्वरूप नाना भेदों से युक्त (कर्मस्पर्शगुणः) कर्म स्पर्श गुण हैं (सः) वह (अनुभागः) अनुभाग (इति) इसप्रकार (इष्यते) कहा जाता है।

भावार्थ–कर्मों में फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग है। वह घातिया कर्मों का अनुभाग लता, दारू, अस्थि शैल के समान है अघातियों में अप्रशस्त कर्म प्रकृति का अनुभाग नीम,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कांजी, विष, हालाहल विष के समान है और प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग गुण, खांड़, मिश्री और अमृत के समान है।।१८७।।

संतानापेक्षयाऽनादिः सादिर्नूतनबन्धनात्।

प्रदेशः कर्मणः स्कन्धः प्रकृत्यादित्रयात्मकः।।१८८।।

अन्वयार्थ–(प्रकृत्यादित्रयात्मकः) प्रकृति आदि त्रयात्मक (कर्मणः) कर्मों का (स्कन्धः) स्कन्ध (प्रदेशः) प्रदेश बन्ध है यह (सन्तानापेक्षया) सन्तान की अपेक्षा (अनादि) अनादि है (नूतनबन्धनात्) नूतन बन्ध की अपेक्षा (सादिः) सादि है।

भावार्थ–प्रकृति आदि त्रयात्मक कर्मों का स्कन्ध प्रदेश बन्ध है। यह प्रदेश बन्ध सन्तान की अपेक्षा अनादि है, नवीनबन्ध की अपेक्षा सादि बन्ध है।।१८८।।

सिद्धावस्था

जीवकर्मस्वरूपज्ञो विज्ञानातिशयान्वितः।

कर्मनोकर्मनिर्मोक्षादात्मा शुद्धात्मतां व्रजेत् ।।१८९।।

अन्वयार्थ–(जीवकर्मस्वरूपज्ञः) जीव और कर्म के स्वरूप को जानने वाला (विज्ञानातिशयान्वितः) विज्ञान के अतिशय से युक्त (आत्मा) आत्मा (कर्मनोकर्मनिर्मोक्षात्) कर्म और नौकर्म के निर्मोक्ष से (शुद्धात्मतां) शुद्ध आत्मा को (व्रजेत्) प्राप्त होता है।

भावार्थ–जीव और कर्म के स्वरूप को जानने वाला विज्ञान के अतिशय से युक्त आत्मा, कर्म नोकर्म के निर्मोक्ष से शुद्धात्मा को प्राप्त होता है।।१८९।।

अनंतनाथ स्तुति

श्रीमान्नः परमां रमां निरूपमां दद्यादनंतो जिनो।

विज्ञानातिशयेन येन दुरितात्मानौ विभिन्नौ कृतौ

संपृक्तौ प्रतिपक्षहीनर्मामतं प्राप्तं सदावस्थितं।

शमीनक्षजमक्षयं स्वतिशयं शुद्धात्मजात नुतम् ।।१९०।।

अन्वयार्थ–(येन) जिसने (विज्ञानातिशयेन) विज्ञान के अतिशय से (संपृक्तौ) मिले हुये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दुरिदात्मानौ) शरीर और आत्मा को (विभिन्नौ) पृथग्भूत (कृतौ) कर ली है तथा (प्रतिपक्षहीनं) प्रतिपक्ष से रहित (अमितं) अप्रमित (सदावस्थितं) सदावस्थित (अनक्षजं) अनीन्द्रिय से उत्पन्न (स्वतिशयं) अपूर्व (शुद्धात्मजातं) शुद्धात्मा से उत्पन्न (नुतं) नमस्कृत (शर्म)सुख को (प्राप्तं) प्राप्त किया है वह (श्रीमान्) श्रीमान (अनन्तः) अनन्त (जिनः) जिन भगवान (नः) हमारे लिए (परमां) परम (उत्कृष्ट (निरूपां) निरूपम (रमां) लक्ष्मी को (दधात्) देवें।

भावार्थ–जिन्होंने अपने ज्ञानातिशय से आत्मा और शरीर को पृथग् पृथग् किया है। जिसने अतिन्द्रिय शुद्धात्मोत्पन्न अपरिमित, अनुपम, शाश्वत, सुख को प्राप्त किया है वह अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी अनन्तनाथ भगवान हमारे लिए उत्कृष्ट अविनाशी निरूपम मोक्ष लक्ष्मी को प्रदान करे। अथवा देवें।

इति श्रीमद्वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती प्रणीते श्री आचारसार नाम्नि शास्त्रे जीवकर्म प्ररूपणात्मक एकादशोऽधिकारः।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वादशमोऽधिकारः

धर्मनाथस्तुति

सद्वंशजः पेशलविश्वशीलः श्लिष्टो गुणैर्पुष्टतरैर्विशिष्टैः।
दुरंतदुःकर्महरः कृतार्थो धर्मो जिन स्ताद्विजयश्रिये नः।।१।।

अन्वयार्थ–(सद्वंशजः) उत्तम वंश में उत्पन्न (पेशलविश्वशीलः) सुन्दर, विश्वशील (पुष्टतरैः) पुष्टत्तर (विशिष्टैः) विशिष्ट (गुणैः) गुणों के द्वारा (श्लिष्टः) युक्त (दुरंतदुष्कर्महरः) दुरंत दुष्कर्म के हरण करने वाले (कृतार्थः) कृतकृत्य (धर्मः) धर्मनाथ (जिनः) जिनेश (नः) हमारी (जयश्रिये) जय श्री के लिए (स्तात्) हों।

भावार्थ–उत्तम कुल में उत्पन्न, मनोज्ञ, विश्वशील, पुष्टत्तर, विशिष्ट गुणों से युक्त दुरंत दुष्कर्म का हरण करने वाले कृतकृत्य, धर्मनाथ जिनेश्वर हमारी जयश्री के लिए हों। **विशेषार्थ**–धर्म नाम धनुष का भी है, धनुष में डोरी है, इन धर्मनाथ भगवान में विशिष्ट गुणों की डोरी है। धनुष उत्तम वंश (वेणु) से उत्पन्न होता है, यह धर्मनाथ भगवान उत्तम वंश (कुल) में उत्पन्न हैं। धनुष दुरंतर शत्रु का संहार करने वाला है। और धर्मनाथ दुरंत पापों के नाशक हैं। धनुष से युद्ध में विजय श्री प्राप्त होती है इन धर्मनाथ की सहायता से कर्मों पर जय प्राप्त होती है।।१।।

शील के अठारह हजार भेद

धर्मेर्गुप्तिभिः करणसंज्ञाऽक्षप्राणसंयमैः।
अष्टादशसहस्राणि शीलान्यन्योऽन्यसंगुणैः।।२।।

अन्वयार्थ–(धर्मैः) धर्म से (गुप्तिभिः) गुप्ति के द्वारा (करणसंज्ञाऽक्षप्राणसंयमैः) करण, संज्ञा, इन्द्रिय, प्राण संयमों के द्वारा (अन्योन्यसंगुणैः) परस्पर गृणा करने पर (अष्टादसहस्राणि) अठारह हजार (शीलानि) शील के भेद होते हैं।

भावार्थ–दश धर्म, तीन गुप्ति, तीनकरण, चार संज्ञा, पांच इन्द्रिय और दश प्राण इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयमों के भेदों को परस्पर गुणा करने से अठारह हजार शील के भेद होते हैं। १०×३×३×४×५×१० =१८०००.

सत्क्षान्तिमार्दवार्जवशौचाऽऽकिंचन्यसंयमाः।

ब्रह्मचर्यतपः सत्यत्यागा धर्मा दश स्मृताः।।३।।

अन्वयार्थ–(सत्क्षान्तिमार्दवार्जवशौचाऽकिंचन्यसंयमाः) उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, आकिंचन्य, संयम (ब्रह्मचर्यतपः सत्यत्यागाः) ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, त्याग (दशधर्माः) दश धर्म (स्मृता) कहे हैं।

भावार्थ–उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौंच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं।।३।।

चत्वारः सत्क्षमाद्याः स्युश्चतुःक्रोधादिनिर्जयाः।

परिग्रहपरित्यागस्त्यागः शेषाः पुरोदितः।।४।।

अन्वयार्थ–(चतुःक्रोधादिनिर्जयाः) चार क्रोधादि को जीतने से (सत्क्षमाद्याः) उत्तम क्षमादि (चत्वारः) चार धर्म (स्युः) होते हैं। (परिग्रहपरित्यागः) परिग्रह का परित्याग (त्यागः) त्याग धर्म है। (शेषा) शेष धर्म (पुरोदिताः) पहिले कहे जा चुके हैं।

भावार्थ–क्रोध का त्याग उत्तम क्षमा है। मान कषाय का त्याग उत्तम मार्दव है। माया कषाय का त्याग उत्तम आर्जव हैं। लोभ कषाय का त्याग उत्तम शौंच हैं। पाँच इन्द्रिय मन का निरोध करना और छह काय की जीवों की रक्षा करना उत्तम संयम है। असत्य वचन का त्याग उत्तम सत्य है। चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करना उत्तम आकिंचन्य है। अनशन आदि बारह प्रकार उत्तम तप है। चार प्रकार का दान देना उत्तम त्याग है। मैथुन का त्याग उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत है।।४।।

मनोवचनकायानां व्यापाराः करणास्त्रयः।

ज्ञातास्त्रिगुप्तयः संज्ञाश्चतस्रोऽक्षाणि पंच च।।५।।

अन्वयार्थ–(मनोवचनकायानां) मन, वचन, काय का (व्यापाराः) व्यापार (त्रयः) तीन (करणाः) करण हैं। (त्रिगुप्तयः) तीन गुप्ति (चतस्रः) चार (संज्ञा) संज्ञा (च) और (पंच) पांच (अक्षाणि) इन्द्रियाँ पूर्व में (ज्ञाताः) ज्ञात की जा चुकी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–मन, वचन, और काय का व्यापार तीन करण हैं उसको रोकना करण संयम है। मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, कायगुप्ति ३ गुप्ति हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की अभिलाषा चार संज्ञाएं हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांच इन्द्रिय हैं, इनका निरोध करना संयम हैं।।५।।

प्राणादशोर्वीतोयाग्निमरुत्प्रत्येककायिकाः।

अनन्तकायास्युर्द्वित्रिचतुपंञ्चेन्द्रियाङ्गिनः।।६।।

अन्वयार्थ–(उर्वीतोयाग्निमरुत्प्रत्येककायिकाः) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येककायिक (अनन्तकायः) अनन्तकाय (द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाङ्गिनः) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय प्राणियों के (दश) दश (प्राण) प्राण (स्युः) हैं।

भावार्थ–पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, प्रत्येकवनस्पति, साधारण वनस्पति, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, प्राणियों के ये दश प्राण है।।६।।

क्षमायुक्ते मनोगुप्ते सुमनस्यशनास्पृहे।

स्पर्शनोर्वीयमे शीलमाद्यमेवं पराण्यपि।।७।।

अन्वयार्थ–(क्षमायुक्ते) क्षमायुक्त के (मनोगुप्ते) मनोगुप्ति (सुमनसि) मन करण (अशनास्पृहे) आहार संज्ञा का त्याग (स्पर्शनोवीर्यमे) स्पर्शनइन्द्रिय पृथ्वीकाय संयम (आद्यं) प्रथम (शीलं) शील का भेद है (एवं) इस प्रकार (पराणि) दूसरे भंग (अपि) भी हैं।

भावार्थ–मनकरण गुप्त, मनकरण से रहित, शुद्धभावसहित, आहारसंज्ञा से विरक्त, स्पर्शन इन्द्रिय में संवृत, पृथ्वीकाय संयम सहित, क्षमागुण युक्त, शुद्ध चारित्र वाले ऐसे मुनिराज के पहला, शील मनोयोग नाम वाला स्थिर रहता है। इसी तरह शेष शीलों के भेद भी जानना चाहिए।।७।।

चौरासी लाख उत्तर भेद

एकविंशत्यहिंसाद्या अनतिक्रमणादयः।

चत्वारः स्युः शतं प्राणप्राणिघातविवर्जनम्।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रायश्चितानि शीलानामाराधनगुणा दश।

आलोचनगुणाश्चैते गुणास्त्वन्योन्यसंगुणाः।।९।।

अन्वयार्थ–(अहिंसायाः) हिंसादि (एकविंशति) इक्कीस (अनतिक्रमणादयः) अनतिक्रमणादि (चत्वारः) चार (प्राणप्राणिघातविवर्जनम्) प्राण और प्राणियों के घात का त्याग करना (प्रायश्चितानि) प्रायश्चित (शीलानां) शीलों की (आराधनगुणा) आराधना गुण (आलोचनगुणाः) आलोचना गुण (एते) ये (दश) दश (गुणाः) गुण (अन्योऽन्यसंगुणा) परस्पर गुणा करने पर ८४००००० उत्तरगुण होते हैं।

भावार्थ–हिंसादि, अतिक्रम, काय विराधना, आलोचन शुद्धि इनके क्रम से इक्कीस चारसौदश २ भेदों को आपस में गुणा करने पर चौरासी लाख गुणों के भेद होते हैं।।८-९।।

व्रतान्यक्षनिरोधश्च मार्दवादिचतुष्टयम्।

भीरत्यरतिजुगुप्साऽज्ञानपैशून्यवर्जनम्।।१०।।

सम्यक्त्वमप्रमादश्च मनोवाक्कायगुप्तयः।

एकविंशतिरित्येवमहिंसादिगुणाः स्मृताः।।११।।

अन्वयार्थ–(व्रतानि) पंच महाव्रत (अक्षनिरोधः) पंचेन्द्रि निरोध (मार्दवादिचतुष्टयम्) मार्दवादि चतुष्टय (भीरत्यरतिजुगुप्साऽज्ञानपैशून्यवर्जनम्) भय, रति, अरति, जुगुप्सा अज्ञान और पैशून्य का त्याग (सम्यक्त्वं) सम्यक्त्व (अप्रमादः) अप्रमाद (च) और (मनोवाक्कायगुप्तयः) मन, वचन, कायगुप्ति (इति) इसप्रकार (एवं) ही (एकविंशतिः) एक विंशति (अहिंसादिगुणाः) अहिंसादिगुण (स्मृताः) कहे गये हैं।

भावार्थ–हिंसा, झूंठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, अरति, रति, जुगुप्सा, मन, वचन, काय, अगुप्ति, मिथ्यार्शन, प्रमाद, पैशून्य, अज्ञान, इन्द्रियों का अनिग्रह ये हिंसादि इक्कीस भेद हैं।।१०-११।।

अतिक्रमणव्यतिक्रमानाचारातिचारगाः।

त्यागा अनतिक्रमणचतुष्टयमितीरितम्।।१२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ–(अतिक्रमणव्यतिक्रमान्) अतिक्रमण, व्यतिक्रमण (अनाचारातिचारगाः) अनाचार, अतिचार रूप अपराधों का (त्यागाः) त्याग (अनतिक्रमणचतुष्टयं) अनतिक्रमण चतुष्टय (इति) इस प्रकार (ईरितं) कहा गया है।

भावार्थ–संयमी की विषयाभिलाषा अतिक्रमण हैं, विषयोपकरण का उपार्जन व्यतिक्रण हैं, व्रत में शिथिलता तथा कुछ असंयम का सेवन करना अतीचार है, व्रत का सर्वथा भंग होना अनाचार है। इस तरह अतिक्रमादि चार को गुणा करना चाहिये॥१२॥

दशप्राणैर्दशप्राणिष्वेकैकस्य वधाच्छतम्।

प्राणप्राणिवधास्तेषां त्यागाः शतगुणा मताः।।१३।।

अन्वयार्थ–(दशप्राणैः) दश प्राणों के द्वारा (दशप्राणिषु) दश प्राणियों में (एकैकस्य) एक एक के (वधात्) वध से (शतं) सौ (प्राणप्राणिवधाः) प्राण प्राणि वध हैं (तेषां) प्राण प्राणिवध का (त्यागः) त्याग (त्याग करना) (शतगुणाः) सौ गुणा (मताः) माना है।

भावार्थ–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पति, साधारणवनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय, इन दश को आपस में गुणा करने से सौ होते हैं। फिर पहले चौरासी भेदों से गुणा करने पर चौरासी सौ भेद होते हैं॥१३॥

स्त्रीसङ्गोऽर्थार्जनं स्वांगमंडनं वृष्यभोजनम्।

गीतं वाद्यं स्त्रगादिश्च शयनाशनभूषणम्।।१४।।

रात्रिसंचरणं राजसेवा कुत्सितसंगमः।

इत्यमीषां परित्यागा दश शीलप्रसाधकाः।।१५।।

अन्वयार्थ–(स्त्रीसंसर्गः) स्त्रियों का संसर्ग (अर्थार्जनं) अर्थ का अर्जन (स्वांगमंडनं) अपने शरीर को संस्कारित करना (वृष्यभोजनं) गरिष्ठ पदार्थ का सेवन (गीतं) गीत (वाद्यं) वाद् (स्त्रगादि) मालादि (शयनाशनभूषणं) शयन, आसन, भूषण (रात्रिसंचरण) रात्रिसंचरण (राजसेवा) राजसेवा (च) और (कुत्सितसंगमः) कुशील जनों की संगति (इति) इस प्रकार (अमीषां) इनका (त्यागः) त्याग करना (दश) ये दश (शीलप्रसाधकाः) शील के प्रसाधक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–स्त्रियों के साथ स्नेह, पुष्ट आहार का ग्रहण, सुगन्ध द्रव्य और पुष्पों की माला का धारण रूप शरीर संस्कार, कोमलशय्या, कोमल आसन, कटक आदि आभूषण धारण करना, गीत बांसुरी आदि बाजा, सुवर्ण आदि धन का संग्रह, कुशीली जनों की संगति, राजसेवा, बिना कारण रात्रि में चलना ये दश शील की विराधना (नाशक) कहीं हैं। इनसे गुणें तो चौरासी हजार भेद होते हैं।।१४-१५।।

दशाऽत्र पूर्वमुक्तानि प्रायश्चित्तानि विस्तरात्।
आलोचनागस्त्यागाः स्युरालीचनगुणा दश।।१६।।

अन्वयार्थ–(अत्र) इसी ग्रन्थ में (पूर्व) पूर्व में (विस्तरात्) विस्तार से (प्रायश्चित्तानि) प्रायश्चित (दश) दश (उक्तानि) कहे हैं (आलोचनागः) आलोचना के दोषों का (त्यागः) त्याग (दश) दश (आलोचनगुणाः) आलोचना के गुण (स्युः) है।

भावार्थ–आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार, उपस्थापन, इन दश भेदों को गुणने से चौरासी लाख भेद गुणों के होते हैं। उन सब भेदों में जहाँ दोष कहे गये हैं उनके विपरीत गुण समझना।।१६।।

सदयेऽतिक्रमापेते त्यक्तभूभूमिघातने।
सालोचने व्यपेतस्त्रीसंगे आकंपितोज्झिते।।१७।।
आद्यो गुणो भवेदेवं शेषान्नुचारयेद्गुणान्।
गुणाश्चतुरशीतिः स्युर्लक्षाणीति प्रसिद्धिदाः।।१८।।

अन्वयार्थ–(सदये) अहिंसा (अतिक्रमापेते) अतिक्रम्य सहित (व्यक्तभूभूमिधातने) भूमिकाय की विराधना रहित (आलोचने) आलोचना सहित (व्यपेतस्त्रीसंगे) स्त्री संगति रहित (आकम्पितोज्झिते) आकम्पित दोष रहित (आद्यः) प्रथम (गुणः) गुण (भवेत्) होता है (एवं) इस प्रकार (प्रसिद्धिदाः) प्रसिद्धि को देने वाले (चतुरशीतिः) चौरासी (लक्षाणि) लाख (गुणः) गुण (स्युः) होता है।

भावार्थ–हिंसा से रहित अतिक्रमण दोष करने से रहित, पृथ्वी काय से तथा पृथ्वी कायिक की पीड़ा विराधना से रहित, स्त्री की संगति से रहित, आकम्पित दोष के करने से रहित, आलोचना की शुद्धिकर युक्त संयमी धीर वीर मुनि के पहिला गुण अहिंसा नामा होता है। इसी तरह अन्य गुण भी जानना चाहिये।।१७-१८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संख्याप्रस्तारादि

गुणादौ पंच संख्यानं प्रस्तारः परिवर्त्तनम्।

नष्टमुद्दिष्टमित्येते गुणनादिक्रमा मताः।।१९।।

अन्वयार्थ–(गुणादौ) गुणादि में (संख्यानं) संख्या (प्रस्तारः) प्रस्तार (परिवर्त्तनं) परिवर्त्तन (नष्टं) नष्ट (उद्दिष्टं) उद्दिष्ट (इति) इस प्रकार (एमिः) ये (गुणनादिक्रमाः) गुणनादि क्रम (पंच) पांच (मताः) माने हैं।

भावार्थ–शील और गुणों की संख्या, प्रस्तार, अक्षसंक्रम, नष्ट, उद्दिष्ट ये पांच वस्तु जानना चाहिये।।१९।।

पूर्वेपूर्वेऽखिलाः सार्द्धमेकैकैरुत्तरोत्तरैः।

मिलन्तीति क्रमात्तास्तैर्गुणिते प्रमितिर्मता।।२०।।

अन्वयार्थ–(पूर्वे पूर्वे) पूर्व पूर्व में (अखिलाः) अखिलगुण (उत्तरोत्तरैः) उत्तरोत्तर (तैः) उसे (एकैकैः) एक एक के (सार्द्ध) साथ (गुणिते) गुणा कर देने पर क्रम से (मिलन्ति) मिलते हैं (इति) इस प्रकार (प्रमितिः) संख्या (मताः) मानी गयी है।

भावार्थ–शील गुणों के सभी पूर्व भेदों को ऊपर ले भंगों में मिला के एक एक को क्रम से गुणा करने पर दोनों की संख्या बन जाती है।।२३।।

निक्षिप्याद्यादिकं पिंडं प्रतिपिंडं क्रमात्क्षिपेत्।

एकमेकं द्वितीयादैः समप्रस्तारके गुणे।।२१।।

अन्वयार्थ–(समप्रस्तारके) सम प्रस्तारक (गुणे) गुणा में (आद्यादिकं) प्रथम आदि को (निक्षिप्य) विरलन करके (पिंड) पिंड के (प्रति) (क्रमात्) क्रम से (पिंड) पिंड को (क्षिपेत्) क्षेपण करे (द्वितायादेः) द्वितीयादिक के (एकं) एक को (क्षिपेत्) क्षेपण करे।

भावार्थ–प्रथम जो न वचन काय का त्रिक वह शीलप्रमाण है उसे विरलन कर (जुदा-जुदा एक-एक वखेर) पीछे क्रम से एक-एक भेद प्रति एक-एक ऊपर का तीन करण रूप पिंड स्थापन करना। इस तरह पिंड के प्रति एक-एक रखने से प्रस्तार होता है।।२१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयार्धैर्मितं पिंडं निक्षिप्याद्यादिमत्र तु।

एकमेकं द्वितीयादैः प्रस्तारे विषमे क्षिपेत्।।२२।।

Deviation (विषमे) विषम (प्रस्तारे) प्रस्तार में (मितं) प्रमित (पिंडं) पिंड को (निक्षिप्य) विरलन करके (अत्र) इसमें (आद्यं) प्रथम तक (एकं एकं) एक-एक को पिंडरूप से (क्रमात्) क्रम से (क्षिपेत्) क्षेपण करे।

भावार्थ–प्रथम मनवचनकायत्रिक को द्वितीयत्रिकमात्र तीन वार स्थापित करके उसके ऊपर दूसरा करणत्रिक एक-एक द्वितीय प्रमाण तीन बार स्थापे। इस तरह एक पिंड के ऊपर दूसरा स्थापन करने से प्रस्तार होता है। इसी तरह अन्य भी पिंड कर लेना चाहिये।।२२।।

अन्तं गत्वाऽऽदिगे आद्ये द्वितीयोंऽकः सरत्युभौ।

अन्तं गत्वाऽऽदिसंस्थौ चेतृतीयोऽन्येष्वयं क्रमः।।२३।।

अन्वयार्थ–(आदिमे) प्रथमपद के (अन्तं) अन्त को (गत्वा) प्राप्त होकर (आद्ये) आदि को प्राप्त होने पर (द्वितीयः) दूसरा (अंकः) अंक (सरति) प्राप्त होता है (उभौ) दोनों के (अंतं) अंत (गत्वा) जाकर (आदिसंस्थौ) प्रथम में आ जाने पर (तृतीय) तीसरा संक्रमण करता है (अयं) यह (क्रमः) क्रम (अन्येषु) अन्त में भी लगाना चाहिये।

भावार्थ–प्रथमपद के अन्त को प्राप्त होकर आदि को प्राप्त होने पर दूसरा अंक प्राप्त होता है। दोनों के अन्त जाकर प्रथम में आ जाने पर तीसरा संक्रमण करता है। यह अन्त में भी लगाना चाहिये।।२३।।

आद्यसंख्याहृते स्वेष्टभाज्ये शुद्धेऽन्तसंस्थितः।

शेषे शेषमितस्थाने संस्थितोंऽकस्ततः परम्।।२४।।

लब्धं रूपादिकं भाज्यं भाज्यशेषेऽन्यथा पुनः।

लब्धमेव स्वसंख्यायाः क्रियान्या स्यात्पुरोदिता।।२५।।

अन्वयार्थ–(स्वेष्टभाज्ये) अपनी इष्ट भाज्य राशि में (आद्यसंख्याहृते) आदि संख्या का भाग देने पर (शुद्धे) शून्य आ जाने पर (अन्तसंस्थितः) अन्त का स्थान (शेषे) शेष रहने पर (शेषमितस्थाने) शेषप्रमित स्थान में (संस्थितः) स्थित (अंक) अंक (ततः परं) उसके बाद फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग देना चाहिये। (भाज्याशेषे) भाज्य के शेष रहने पर (रूपाधिकं) एक अधिक (लब्धं) लब्ध को (भाज्यं) भाग देना चाहिये। (पुनः) फिर (अन्यथा) मेष में कुछ नहीं रहे तो (स्वसंख्यायाः) अपनी संख्या का (लब्धे) लब्ध (एवं) ही भाज्या होता है (अन्या) अन्य (क्रिया) क्रिया (पुरोदिता) पूर्व कथित (स्यात्) है।

भावार्थ–अपनी इष्ट भाज्यराशि में आदि संख्या का भाग देने पर जब शून्य आ जाय और अन्त का स्थान शेष रहने पर शेष प्रमित स्थान में स्थित अंक में उसके बाद फिर भाग देना चाहिये। शेष भाज्य में एक अधिक लब्ध को भाग देना चाहिये फिर शेष में कुछ नहीं रहे तो अपनी संख्या का लब्ध ही भाज्य होता है। अन्यक्रिया पूर्वकथित है।।२४-२५।।

ऊर्द्धमात्मप्रमाणघ्ने रूपे तस्मिन्नधः क्रमात्।

स्वस्वसंख्याहृते संख्या सर्वत्राऽनकितोज्झिता।।२६।।

अन्वयार्थ–(उर्ध्व) प्रथम (तस्मिन्) उस (रूपे) एक के अंक में (अधः क्रमात्) नीचे के क्रम से (आत्मप्रमाणघ्ने) अपने प्रमाण से गुणा कर देने पर (सर्वत्र) सर्व जगह (अनंकितोज्झितः) अनंकित को छोड़कर (स्वस्वसंख्याहृते) अपनी-अपनी संख्या का गुणा करने पर (संख्या) आती है।

भावार्थ–प्रथम उस एक के अंक में नीचे के क्रम से अपने प्रमाण से गुणा कर देने पर सर्व जगह अनंकित को छोड़कर अपनी-अपनी संख्या का गुणा करने पर संख्या आती है।।२७।।

शीलगुणों का वर्णन

ये पालयन्ति शीलानि गुणांश्च क्रमात् प्रगुणाशयाः।

लभंते ते भवच्छेदादनंतसुखसम्पदम्।।२७।।

अन्वयार्थ–(ये) जो (प्रगुणाशयाः) प्रगुण आसय वाले (शीलानि) शीलों को (च) और (गुणान्) उत्तर गुणों को (पालयंति) पालते हैं (ते) वे (भवच्छेदात्) भव का छेद हो जाने से (अनन्तसुखसम्पदं) अनन्त सुख सम्पदा को (लभन्ते) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ–जो प्रगुण आशय वाले संयमी शीलों और उत्तरगुणों को पालते हैं वे भव का छेद हो जाने पर अनन्त सुख सम्पदा को प्राप्त होते हैं।।२७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांतिनाथ स्तुति

प्रणतभुवननाथो धर्मतीर्थाधिनाथः,
प्रहतदुरितवर्गः प्रोक्तसन्मुक्तिमार्गः।
प्रशमितजनतार्त्तिः शुद्धदृग्ज्ञानमूर्तिः,
प्रवरकनककान्तिः श्रेयसे वोऽस्तु शान्तिः।।२८।।

अन्वयार्थ–(प्रणतभुवननाथो) नमस्कार किया है तीन लोक के स्वामियों ने जिसको (प्रहतदुरितवर्गः) नष्ट किया है पाप समूह को जिसने (प्रोक्तसन्मुक्तिमार्ग) कहा है सन्मुक्ति के मार्ग को जिसने (प्रशमितजनतार्त्तिः) शान्त किया है प्राणियों के दुःखों को जिसने ऐसा (धर्मतीर्थाधिनाथः) धर्म तीर्थ का अधिनाथ (शुद्धग्ज्ञानमूर्त्तिः) शुद्ध, दर्शन, ज्ञान, की मूर्त्ति (प्रवरकनककान्निः) प्रवर सुवर्ण की सी कान्ति वाला (शान्तिः) शांतिनाथ (वः) तुम्हारे (श्रेयसे) कल्याण के लिये (अस्तु) हो।

भावार्थ–नमस्कार किया है तीन लोक के स्वामियों ने जिसको, नष्ट किया है पाप समूह को जिसने, कहा है सन्मुक्ति के मार्ग को जिसने, शान्त किया है प्राणियों के दुःखों को जिसने, ऐसा धर्म तीर्थ का अधिनाथ शुद्ध दर्शन ज्ञान की मूर्त्ति, प्रवर सुवर्ण कान्ति वाले शांतिनाथ तुम्हारे श्रेय के (कल्याण) के लिए हों।।२८।।

जैनशासन प्रशंसा

मिथ्याभावभवातिदर्पपरतद्दुःशासनोच्छेदकं,
प्रज्ञाज्ञावशवर्त्तमानजनतासत्सौख्यसंपादकम्।
नानारूपविशिष्टवस्तुपरमस्याद्वादलक्ष्मीपदं,
जेजीयाज्जिनराजशासनमिदं स्वाचारसारप्रदम्।।२९।।

अन्वयार्थ–(मिथ्याभावभवातिदर्पपरतदु शासनोच्छेदकं) मिथ्याभाव से उत्पन्न अतिदर्प परत दुःशासन का उच्छेक (प्रज्ञाज्ञावशवर्त्तमानजनतासत्सौख्यसम्पादकम्) प्रज्ञा और आज्ञा के वशीभूत वर्त्तमान जनता के समीचीन सुख के सम्पादक (नानारूपविशिष्टवस्तुपरमस्याद्वादलक्ष्मीप्रदं) नाना रूप विशिष्ट वस्तु रूप परम स्याद्वाद लक्ष्मी का पद (स्वाचार सारप्रदं) अपने आचार के सार पद का देने वाला (इदं) यह (जिनराजशासनं) जिनराज का शासन (जेजीयात्) जयवन्त रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–मिथ्या भाव से उत्पन्न अतिदर्प परत दुःशासन का उच्छेदक, प्रज्ञा और आज्ञा के वशीभूत वर्त्तमान जनता के समीचीन सुख के सम्पादक, नाना रूप विशिष्ट वस्तु रूप परम स्याद्वाद लक्ष्मी का पद, अपने आचार के सारपद का देने वाला यह जिनराज का शासन जयवन्त रहे।

"अपने गुरु श्री मेघचन्द्र की स्तुति"

सिद्धान्तार्णवपूर्णतारकपतिस्तर्काम्बुजाहर्पतिः,
शब्दोद्यानवनामृतोरूसरणिर्योगीन्द्रचूड़ामणिः।
त्रैविद्यापरसार्थनामविभवः प्रोद्धूतचेतोभवः,
स्थेपादन्यमृतावनीभृदशनिः श्रीमेघचन्द्रो मुनिः।।३०।।

अन्वयार्थ–(सिद्धांतार्णवपूर्णतारकपति) सिद्धान्त रूपी समुद्र को वृद्धिगत करने के लिए चन्द्रमा (तर्काम्बुजाहर्पत्तिः) तर्क रूपी कमल को विकसित करने के लिये सूर्य (शब्दोद्यानवनामृतोरुसरणिः) शब्द रूपी उद्यान वनामृत का विस्तरित मार्ग (योगीन्द्रचूड़ामणिः) योगीन्द्र चूड़ामणि (त्रैविद्यापरसार्थनामविभवः) त्रैविध दूसरा सार्थक नाम के विभव वाला (प्रोद् धूतचेतोभवः) नाश किया है मनोविकार को जिसने ऐसा (अन्यमतीवनीभृदरानिः) अन्यमती रूपी पर्वत के लिए वज्र समान (श्रीमेघचन्द्रः) श्री मेघचन्द्र (मुनिः) (स्थेयात्) स्थिर रहें।

भावार्थ–सिद्धान्त रूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा, तर्क रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य, शब्दरूपी उद्यावनामृत का विस्तरित मार्ग, योगीन्द्र चूड़ामणि त्रैविद्य दूसरा सार्थक नाम के विभव वाला, नाश किया है मनोविकार को जिसने ऐसा, अन्यमत रूपी पर्वत के लिए वज्र श्री मेघचन्द्र मुनि स्थिर रहें।

यद्वाक्छ्रीखतंसमण्डनमणिर्वैदग्ध्यदिग्धत्विषां,
यच्चारित्रविचित्रता शमभृतां सूत्र पवित्रात्मनाम्।
यत्कीर्त्तिर्धवलप्रसादनधुरंधत्ते धरायोषितः,
स त्रैविधविभूषणं विजयते श्री मेघचन्द्रो मुनिः।।३१।।

अन्वयार्थ–(यद्वाक्छ्रीः) जिसकी वचन श्री (वैद्यग्ध्यदिग्धत्विषां) विद्वता से व्याप्त कान्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले की (यच्चारित्रविचित्रता) जिसके चारित्र की विचित्रता (अवतंसमण्डनमणिः) कर्ण फूल को मणि है (शमभृतां) समता को धारण करने वाले (पवित्रात्मनाम्) पवित्र आत्माओं का (सूत्र) सूत्र है। (यत्कीर्त्तिः) जिसकी कीर्त्ति (धरयोषितः) पृथ्वी रूपी वनिता के (धवलप्रसादनधुरं) धवल प्रसाद की धुरा को (धत्ते) धारण करती है (सः) वह (श्रीमेघचन्द्रः) श्री मेघचन्द्र (मुनिः) मुनि (त्रैविधभूषणं) त्रैविध भूषण को (विजयते) जीतते हैं।

भावार्थ–जिसकी वचन श्री विद्वता से व्याप्त कान्ति वालों की कर्णपूरमणि जिसके चारित्र की विचित्रता कर्ण फूल की मणि हैं, समता को धारण करने वाले पवित्र आत्माओं का सूत्र हैं, जिसकी कीर्त्ति पृथ्वी रूपी वनिता के धवल प्रसाद की धुरा को धारण करती हैं। वह श्री मेघचन्द्र मुनि त्रैविध भूषण को जीतते हैं।।३१।।

वैदग्ध्यश्रीवधूटीप्रतिरतुलगुणालंकृनिर्मेघचन्द्र,
स्त्रैविद्यास्यात्मजातो मदनमहिभृतो भेदने वज्रपातः।
सैद्धांतिव्यूह चूणामणिरनुफलचिन्तामणिर्भूजनानां,
यौऽभूत्सौजन्यरुन्द्रश्रियमवति महौवीरनंदी मुनीन्द्रः।।३२।।

अन्वयार्थ–(वैदग्ध्यश्रीवधूटीपतिः) विद्वता रूपी लक्ष्मी वधूटी के पति (अतुत गुणालंकृतिः) अतुल गुणों से अलंकृत (त्रैविधस्यात्मजातः) त्रैविध का पुत्र (मदनमहिभृतो) मदन रूपी पर्वत को (भेदने) भेदन करने में (वज्रपातः) वज्र के पात समान (यः) जो (मेघचन्द्र) मेघचन्द्र (भूर्जनानां) प्राणियों के लिए (सैद्धान्तिकव्यूहचूडामणिः) सिद्धान्तव्यूहचिंतामणि (अनुफलचितामणि) अनुफल चिंतामणि (अभूत्) हुआ था (सः) वह (वीरनंदीमुनीन्द्रः) वीरनन्दी नुनीन्द्र (महौ) पृथ्वी पर (सौजन्यरुन्द्रश्रियम्) सुजनता की रुन्द्र श्री को (अवति) रक्षा करता है।

भावार्थ–विद्वता और लक्ष्मी रूपी स्त्री के पति अतुल गुणों से अलंकृत त्रैविध के पुत्र, कर्मरूपी पर्वत को भेदने वाला वज्रपात, मेघचन्द्र मुनि जनों के लिए सिद्धान्त व्यूह के लिए अनुफल चिंतामणि हुये थे। वह वीरनन्दी मुनींद्र पृथ्वी पर सौन्जयता की उत्कृष्टता श्री की रक्षा करें।।३२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीरनंदिस्वामी

श्रीमेघचन्द्रोज्वलमूर्त्तिःकीर्तिः,
समस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्ती।
श्रीवीरनंदीकृतवानुदार,
माचारसारं यतिवृत्तसारम्।।३३।।

अन्वयार्थ–(श्री मेघचन्द्रोज्वलमूर्त्तिः) श्री मेघचन्द्र उज्वल कीर्ति (समस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्तिः) समस्त सिद्धान्त का चक्रवर्ती (श्रीवीरनन्दी) वीरनन्दी ने (यतिव्रतसारं) यति व्रत का सार (उदार) उदार (आचारसारं) आचार सार को (कृतवान्) किया है।

भावार्थ–श्री मेघचन्द्र की उज्ज्वलमूर्ति समस्त सैद्धान्तिक चक्रवर्ती श्री वीरनन्दी ने उद्धारकर यह यतियों के व्रतों का सारभूत आचारसार शास्त्र बनाया है।।३३।।

इति श्रीमद्वीरनन्दिसिद्धातचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि शास्त्रे शीलगुण वर्णनात्मको द्वादशोऽधिकारः।।

श्लोकप्रमाणमाह

ग्रन्थप्रमाणमाचारस्तस्य श्लोकसम्मितम्।
भवेत्सहस्त्रं द्विशतं पंचाशच्चांकतस्तथा।।

इस आचारसार ग्रन्थ का प्रमाण अनुष्ठय श्लोकों में एक हजार दो सौ पचास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

ॐ प्रथमं चरणं नमः

श्री करणं द्रव्यं

कोलकाता

फाउण्डेशन के उद्देश्य

- मूल आर्ष परम्परा का शंखनाद।
- देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अगाढ़निष्ठा एवं समर्पण।
- प्राचीन अनुपलब्ध, अप्रकाशित साहित्य का प्रकाशन।
- धार्मिक संस्कार शिविर, श्रावक संस्कार शिविर, विद्वत संगोष्ठियों का आयोजन।
- आगमनिष्ठ विद्वानों एवं विधानाचार्यों का निर्माण एवं समाज के सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन के प्रकल्पों का आयोजन।
- विद्वानों, प्रतिभाओं, पत्रकारों, बुजुर्गों एवं समाज सेवियों का सन्मान

आचार्य शान्तिसागर फाउण्डेशन

1/2 दर्पनारायण टैगोर स्ट्रीट–कोलकाता–700006

मोबाईल – 9831008868, 9903080975

ई-मेल - shantisagar.foundation@gmail.com

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi